तीर्थङ्कर महावीर

भाग २

लेखक

विद्यावल्लभ, विद्याभूषण, इतिहासतत्त्वमहोदधि

जैनाचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि

भूमिका लेखक

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

प्रकाशक :

काशीनाथ सराक

यशोधर्म मन्दिर,

१६६ मर्जबान रोड, अंधेरी,

बम्बई ५८

• प्रथम आवृत्ति १९६२

• मूल्य (दोनों भाग का) २०)

• वीर संवत् २४८८

• विक्रम संवत् २०१८

• धर्म संवत् ४०

• मुद्रक :

बलदेवदास

संसार प्रेस,
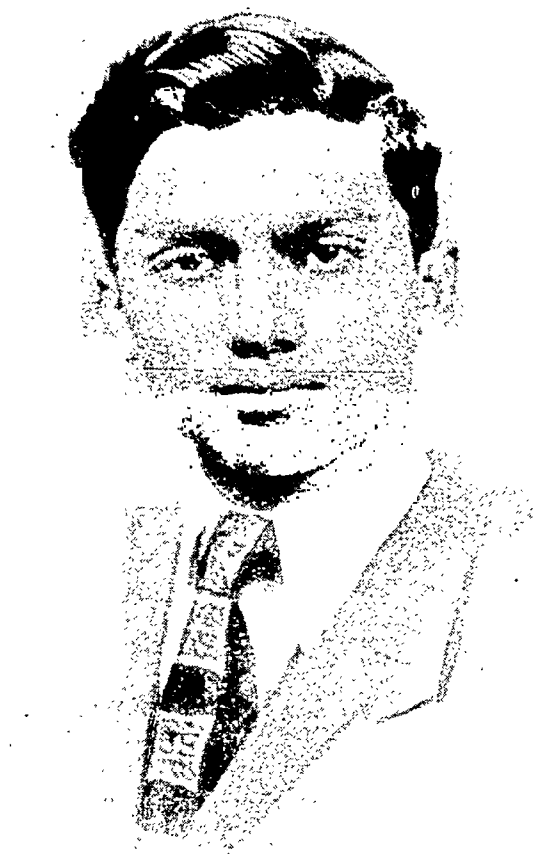
संसार लिमिटेड,

काशीपुरा, वाराणसी

स्वर्गीय अरविंद भोगीलाल झवेरी

(जिनकी स्मृति में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ)

- प्रथम आवृत्ति १९६२
- मूल्य (दोनों भाग का) २०)
- वीर संवत् २४८८
- विक्रम संवत् २०१८
- धर्म संवत् ४०

- मुद्रक :

बलदेवदास
संसार प्रेस,
संसार लिमिटेड,
काशीपुरा, वाराणसी

स्व० अरविंद भोगीलाल झवेरी (पाटन) की स्मृति में

विषय सूची

श्रमण-श्रमणी

श्रावक-श्राविका

भगवान् महावीर के भक्त राजे

सूक्तिमाला

***

भूमिका

जैनाचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि द्वारा निर्मित उत्तम ग्रंथ 'तीर्थङ्कर महावीर' का मैं सहर्ष स्वागत करता हूँ। इस ग्रंथ का पहला भाग जिसमें ३७० पृष्ठ और कई चित्र थे, १९६० में प्रकाशित हुआ था। अब इसका दूसरा भाग जिसमें ७०० पृष्ठ हैं इतनी शीघ्र प्रकाशित हो रहा है, इससे लेखक का एकनिष्ठ-परिश्रम सूचित होता है। विजयेन्द्र सूरि जी जैन-जगत में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। वे चलते-फिरते पुस्तकालय हैं। भारतीय विद्या के अनेक विषयों के साथ उन्हें प्रेम है। उनकी जानकारी कितनी विस्तृत है, यह उनके इन दो ग्रंथों से विदित होता है। भगवान् महावीर के अबतक जितने जीवन-चरित निकले हैं, वर्तमान ग्रंथ उनमें बहुत ही उच्चकोटि का है। इसके निर्माण में सूरि जी ने दीर्घकालीन अनुसंधान-कार्य के परिणाम भर दिये हैं। तीर्थङ्कर महावीर के संबंध में जैन-साहित्य में और बौद्ध-साहित्य में भी जो कुछ परिचय पाया जाता है, उस सबको एक ही स्थान पर उपलब्ध कराना इस ग्रंथ की विशेषता है। महावीर का जन्म जिस प्रदेश और जिस युग में हुआ उसके संबंध की सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सामग्री का पूरा कोश ही लेखक ने इस ग्रंथ में संगृहीत कर दिया है। सौभाग्य से महावीर के संबंध में ऊपर के दोनों तथ्य कुछ प्रामाणिकता के साथ हमें उपलब्ध हैं। प्रथम तो यह कि, विदेह-जनपद की राजधानी वैशाली (आधुनिक बसाढ़) के निकट प्राचीन कुण्डपुर नामक स्थान में (वर्त्तमान वासुकुण्ड) महावीर ने जन्म लिया

था। महावीर 'वेसालिय' भी कहे जाते हैं। किन्तु, उसका अर्थ इतना ही है कि वे वैशाली-क्षेत्र में जन्मे थे, जिसमें कुण्डपुर स्थित था। दूसरा तथ्य यह है कि, महावीर का जन्म 'ज्ञातृक' या 'ञातिक' कुल में हुआ था और वैशाली के लिच्छिवियों से उनका पारिवारिक संबंध था। महावीर के पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का त्रिशाला था। लेखक ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि, महावीर का विवाह भी हुआ था और उनकी पत्नी का नाम यशोदा था। २८ वर्ष की आयु में उन्होंने दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की और लगभग दो वर्ष के समय में गृहस्थ-जीवन का त्याग करके ३० वर्ष की आयु में वे साधु बन गये।

निष्क्रमण से केवलज्ञान-प्राप्ति तक वे कठोर तपस्या में लगे रहे। लगभग १२½ वर्ष तप करने के बाद आयु के ४३-वें वर्ष में उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। ये १२ वर्ष उन्होंने किस प्रकार बिताए और कहाँ-कहाँ वर्षावास किया, इसका विस्तृत वर्णन लेखक ने अपनी पुस्तक के पहले भाग में दिया था, जो पठनीय है। इस अवधि में जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आये उनका भी वर्णन किया गया है। इनमें इन्द्रभूति आदि महापंडित ब्राह्मणों का चरित्र भी है जो महावीर से प्रभावित हुए और उन्होंने उनसे दीक्षा ली। केवलज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर भगवान् महावीर तीर्थङ्कर हुए और वे विविध क्षेत्रों में घूमकर उपदेश करने लगे और उन्होंने अपने संघ का संगठन किया। तेरहवाँ वर्षा-वास राजगृह में व्यतीत हुआ। इस प्रकार ३० वर्ष गृहस्थ रहकर, साढ़े बारह वर्ष तक तपस्वी-जीवन व्यतीत कर, और २९½ वर्ष तक केवली के रूप में उपदेश देकर, सब मिलाकर ७२ वर्ष की आयु में वे निर्वाण को प्राप्त हुए। महावीर-निर्वाण की तिथि ५२७ ई० पू० (४७० वि० पू०) निश्चित होती है। कुल मिलाकर

महावीर के ४१ वर्षावासों का ब्यौरेवार वर्णन लेखक ने ३५० पृष्ठों में दिया है, जिसमें बहुविधि ऐतिहासिक सामग्री का संकलन है। अन्तिम वर्षावास राजगृह में बिताकर अपापापुरी में महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया। महावीर के समकालीन राजाओं का भी लेखक ने इस भाग में सविस्तर वर्णन किया है, जिनमें श्रेणिक और कुणिक अर्थात् बिम्बसार और अजातशत्रु मुख्य थे। बिम्बसार का नाम लेखक के अनुसार 'भम्भासार' था।

श्री आचार्य विजयेन्द्रसूरि का लिखा तीर्थङ्कर महावीर का यह जीवनचरित अनेक प्रकार की सूचनाओं का भण्डार है और इस रूप में उसका बहुत मूल्य है। सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य, तप और अपरिग्रह-रूपी महान् आदर्शों के प्रतीक भगवान् महावीर हैं। इन महाव्रतों की अखण्ड साधना से उन्होंने जीवन का बुद्धि-गम्य मार्ग निर्धारित किया था और भौतिक शरीर के प्रलोभनों से ऊपर उठकर अध्यात्म भावों की शाश्वत विजय स्थापित की थी। मन, वाणी, और कर्म की साधना उच्च अनंत जीवन के लिए कितनी दूर तक संभव है, इसका उदाहरण तीर्थङ्कर महावीर का जीवन है। इस गम्भीर प्रज्ञा के कारण आगमों में महावीर को दीर्घप्रज्ञ कहा गया है। ऐसे तीर्थङ्कर का चरित धन्य है।

वासुदेवशरण अग्रवाल
काशी-विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

जैनों के मूलभूत धर्मग्रंथों को 'आगम' कहते हैं। 'आगम' शब्द पर कलिकाल-सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने अभिधान-चिन्तामणि की स्वोपज्ञ-टीका (देवकाण्ड, श्लोक १५६, पृष्ठ १०४) में लिखा है—

आगम्यतः आगमः

और, अभिधान राजेन्द्र (भाग २, पृष्ठ ५१) में वाचस्पत्य-कोष का उद्धरण इस रूप में दिया गया है—

आ गम्-घञ्-आगतौ, प्राप्तौ। उत्पत्तौ सामाद्युपाये च आगम्यते स्वत्वमनेन स्वत्वप्रापके क्रयप्रतिग्रहादौ।

इन आगमों की रचना कैसे हुई, यह हम इसी ग्रँथ में पृष्ठ ५ पर लिख चुके हैं। अणुयोगद्वार की टीका (पत्र ३८-२) में मलधारी हेमचन्द्राचार्य ने आगम को

आप्त वचनं वाऽऽगम इति

कहा है।

विशेषावश्यक भाष्य की टीका (पत्र ४१६) में आगम में निम्नलिखित पर्याय बताये गये हैं :—

श्रुत १, सूत्र २, ग्रंथ ३, सिद्धांत ४, प्रवचन ५.—ऽऽज्ञोपदेशा ६,—ऽऽगमादीनि ७ श्रुतैकार्थिकनामानि।

—श्रुत, सूत्र, ग्रंथ, सिद्धांत, प्रवचन, अज्ञोपदेश, आगम ये सब श्रुत के एकार्थिक नाम हैं।

विशेषावश्यकभाष्य (पत्र ५९१) में आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने 'आगम' अथवा 'सूत्र' के निम्नलिखित पर्यायवाची बताये हैं :—

सुयधम्म तित्थ मग्गो पावयणं पवयणं च एगट्ठा।
सुत्तं, तंतं, गंथो, पाठो, सत्थं, च एगट्ठा॥

श्रुतधर्म, तीर्थ, मार्ग, प्रावचनं,
प्रवचनं एतानि प्रवचनैकार्थिकानि।
सूत्रं, तंत्रं, ग्रन्थः, पाठः, शास्त्रं च,
इत्येतानि सूत्रैकार्थिकानि॥

—श्रुतधर्म, तीर्थ, मार्ग, प्रावचन, और प्रवचन ये पाँच प्रवचन के एकार्थिक नाथ हैं और सूत्र, तन्त्र, ग्रंथ, पाठ और शास्त्र ये पाँच सूत्र के एकार्थिक नाम हैं।

'आगम' शब्द की टीका ठाणांगसूत्र सटीक (पत्र २६२-२) में इस प्रकार की गयी है :—

आगम्यन्ते—परिच्छिद्यन्ते अर्था अनेनेत्यागमः—आप्त वचन सम्पाद्यो विप्रकृष्टार्थ प्रत्ययः।

—आगम अर्थात् आप्त पुरुष के वचन के रूप में प्राप्त करने योग्य अगम्य पदार्थ का निर्णय रूप।

इन आगमों की संख्या ८४ बतायी गयी है। उनमें निम्न-लिखित ग्रन्थ गिनाये गये हैं :—

११ अंग

१ आचार, २ सूत्रकृत्, ३ स्थान, ४ समवाय, ५ भगवती, ६ ज्ञाताधर्मकथा, ६ उपासकदशा, ८ अंतकृत्, ९ अनुत्तरोपपातिक, १० प्रश्नव्याकरण, ११ विपाक ।

१२ उपांग

१ औपपातिक, २ राजप्रश्नीय, ३ जीवाजीवाभिगम, ४ प्रज्ञापना, ५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ६ चन्द्रप्रज्ञप्ति, ७ सूर्यप्रज्ञप्ति, ८–१२ निरयावलिका (कल्पिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वह्निदशा ।

५ छेद

१ निशीथ, २ वृहत्कल्प, ३ व्यवहार, ४ दशाश्रुतस्कंध, ५ महानिशीथ (छठाँ छेदसूत्र पंचकल्प अब मिलता नहीं)

५ मूल

१ आवश्यक, २ दशवैकालिक, ३ उत्तराध्ययन, ४ नंदि, ५ अनुयोगद्वार ।

८ छूटक

१ कल्पसूत्र, २ जीतकल्प, ३ यतिजीतकल्प, ४ श्राद्धजीतकल्प, ५ पाक्षिक, ६ क्षामणा, ७ वंदित्तु, ८ ऋषिभाषित ।

३० प्रकीर्णक

पहली गणत्री

१ चतुःशरण, २ आतुरप्रत्याख्यान, ३ भक्तपरिज्ञा, ४ संस्तारक, ५ तंदुलवैचारिक, ६ चंद्रवेध्यक, ७ देवेन्द्रस्तव, ८ गणिविद्या, ९ महाप्रत्याख्यान, १० वीरस्तव ।

दूसरी गणत्री

१ अजीवकल्प, २ गच्छाचार, ३ मरणसमाधि, ४ सिद्ध-प्राभृत, ५ तीर्थोद्गार, ६ आराधनापताका, ७ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, ८ ज्योतिष्करंडक, ९ अंगविद्या, १० तिथिप्रकीर्णक ।

तीसरी गणत्री

१ पिंडनिर्युक्ति, २ सारावली, ३ पर्यताराधना, ४ जीव-विभक्ति, ५ कवच, ६ योनिप्राभृत, ७ अंगचूलिया, ८ वंगचूलिया, ९ वृद्धचतुःशरण, १० जंबूपयन्ना ।

१२ निर्युक्ति

१ आवश्यक, २ दशवैकालिक, ३ उत्तराध्ययन, ४ आचा-रांग, ५ सूत्रकृत्, ६ वृहत्कल्प, ७ व्यवहार, ८ दशाश्रुत, ९ कल्प-सूत्र, १० पिंडनिर्युक्ति, ११ ओघनिर्युक्ति, १२ संसक्तनिर्युक्ति, (सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्ति और ऋषिभाषित की निर्युक्तियाँ मिलती नहीं)

ये सब मिलाकर ८३ हुए । विशेषावश्यक मिलाने से उनकी संख्या ८४ हो जाती है ।

नंदीसूत्र में ३७ कालिक और २९ उत्कालिक सूत्रों के नाम मिलते हैं । १ आवश्यक और १२ अंगों का भी उल्लेख नंदी में है । इस प्रकार उनकी संख्या ७९ होती है । ठाणांगसूत्र (सूत्र ७५५) में १० दशाओं का उल्लेख है, जिनमें ५ तो उपर्युक्त गणना में आ जाते हैं, पर १ आचारदशा, २ बंधदशा, ३ द्विगृद्धिदशा, ४ दीर्घदशा और ५ संक्षेपितदशा ये ५ नये हैं । इनको जोड़ देने से संख्या ८४ हो जाती है ।

यहाँ बता दूँ कि, प्रकीर्णकों की संख्या बताते हुए नंदीसूत्र सटीक (पत्र २०३-१) में पाठ आता है

चोद्दसपइन्नगसहस्साणि भगवओ वद्धमाण सामिस्स

—वर्द्धमान स्वामी के १४ हजार प्रकीर्णक हैं।

जैन-आगमों की संख्या के सम्बन्ध में दूसरी मान्यता ४५ की है। हीरालाल रसिकलाल कापड़िया ने 'द' कैनानिकल लिटरेचर आव द' जैनाज' (पृष्ठ ५८) में लिखा है कि, कम से कम 'विचारसार'[1] के निर्माण तक जैन-आगमों की संख्या ४५ हो चुकी थी। समाचारी-शतक (समयसुन्दर-विरचित) में ४५ आगमों की गणना निम्नलिखित रूप में करायी गयी है—

इक्कारस अंगाइं ११, बारसउवंगाई २३, दस पइण्णा ३३ य।
छ च्छेअ ३९, मूलचउरो ४३ नंदी ४४ अणुयोगदाराइं ४५ ॥

—पत्र ७६-१

उसी ग्रंथ में समयसुन्दर ने जिनप्रभसूरि-रचित 'सिद्धान्त-स्तव' को उद्धृत करके ४५ आगमों के नाम भी गिनाये हैं। पर, कापड़िया का यह कथन कि विचारसार तक ४५ की संख्या निश्चित हो चुकी थी, सर्वथा भ्रामक है। समयसुन्दर गणि-विरचित 'श्रीगाथासहस्री' में धनपाल-कृत श्रावक-विधि का उद्धरण है। उसमें पाठ आता है—

१—विचारसार के समय के सम्बन्ध में जैन-ग्रन्थावलि में लिखा है—

प्रद्युम्नसूरि ते सं० १२६४ मां थयेला धर्मघोषसूरि ना शिष्य देवप्रभसूरि ना शिष्य हता। एटले तेओ सं० १३२५ ना अरसा मां थया नाणी शकाय। (पृष्ठ १२८)

पणयालीसं आगम.....

(श्लोक २९७, पृष्ठ १८)

धनपाल राजा भोज का समकालीन था। इसका समय विक्रम की ११-वीं शताब्दि है।

४५ आगमों के नाम इस प्रकार हैं :—

११ अंग

दुवालस गणिपिडगे प० तं०—१ आयार, २ सूयगडे, ३ ठाणे, ४ समवाए, ५ विवाहपन्नत्ती, ६ णायाधम्मकहाओ, ७ उवासगदसाओ, ८ अंतगडदसाओ, ९ अणुत्तरोववाइयदसाओ १० पण्हवागरणाइं, ११ विवागसुए, १२ दिट्ठिवाए

—समवायांगसूत्र सटीक, समवाय १३६, पत्र ९९-२

दृष्टिवाद के अन्तर्गत पूर्व थे। उन पूर्वों के नाम नंदीसूत्र सटीक पत्र २३६-२ में इस प्रकार दिये हैं :—

से किं तं० पुव्वगए ? चउद्दस विहे पण्णत्ते, तंजहा उप्पाय पुव्व १, अग्गाणीयं २, वीरिअं ३, अत्थिनत्थिप्पवायं ४, नाणप्पवायं ५, सच्चप्पवायं ६, आयप्पवायं ७, कम्मप्पवायं ८, पच्चक्खाणप्पवायं ९, विज्जाणुप्पवायं १०, अवंझं ११, पाणाऊ १२, किरिआविसालं १३, लोकविन्दुसार १४

अंतिम चतुर्दश पूर्वी स्थूलभद्र हुए। फिर अंतिम ४ पूर्वों का उच्छेद हो गया। उनके बाद वज्रस्वामी तक १० पूर्वी हुए। देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने श्री पार्श्वनाथ संतानीय देवगुप्त से १ पूर्व अर्थ सहित और १ पूर्व मूल-मूल पढ़ा था। (देखिए आतमप्रबोध, पत्र ३३—१) और अंतिम पूर्वधारी सत्यमित्र हुए। वे एक पूर्व धारण करनेवाले थे। उनके स्वर्गवास के पश्चात

पूर्वों का सर्वथा उच्छेद हो गया। धर्मसागर गणि-लिखित तपा-गच्छ पट्टावलि में (देखिए पट्टावलि समुच्चय, भाग १, पृष्ठ ५१) में पाठ आता है :—

श्री वीरात् वर्ष सहस्रे १००० गते सत्यमित्रे पूर्वव्यवच्छेद:

१२ उपांग

श्रीचन्द्रचार्य-संकलित श्री सुबोधासमाचारी (पत्र ३१-२, ३२-१) में उपांगों की गणना इस प्रकार करायी गयी है। उसमें उन्होंने यह भी बताया है कि, कौन उपांग किस अंग का उपांग है—

इयाणि उवंगा—आयारे उवाइयं उवंगं १, सूयगडे रायपसेणइयं २, ठाणे जीवाभिगमो ३, समवाए पन्नवणा ४, भगवईए सूरपन्नती ५, नायाणं जम्बूद्दीवपन्नत्ती ६, उवासगदसाणं चंद-पन्नत्ती ७, तिहिं तिहिं आयंबिलेहिं एक्केक्कं उवंगं वच्चइ, नवरं तओ पन्नत्तीओ कालियाओ संघट्टं च कीरइ, सेसाण पंचण्हमंगाणं मयंतरेण निरावलिया सुयखंधो उवंगं, तत्थ पंच वग्गा निरयावलियाउ कप्पवडिंसियाऊ, पुप्फियाउ, पुप्फचूलियाउ, वण्हीदसाउ……

(कुछ लोग वण्हिदसा का स्थान पर द्वीपसागरप्रज्ञप्ति को १२-वाँ उपांग मानते हैं)

—आचारांग का १ औपपातिक, सूत्रकृतका २ राजप्रश्नीय, ठाणा का ३ जीवाभिगम, समवाय का ५ प्रज्ञापना, भगवती का ५ सूर्यप्रज्ञप्ति, ज्ञाता का ६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, उपासकदशा का ७ चन्द्रप्रज्ञप्ति और शेष ५ अंगों का निरयावलिया।

४. समवायांग ... १ लाख ४४ हजार
५. भगवती ... २ लाख ८८ हजार
६. ज्ञाता ... ५ लाख ७६ हजार
७. उपासकदशा ... ५२ हजार
८. अंतकृत ... २३ लाख ४ हजार
९. अणुत्तरोपपातिक ... ४६ लाख ८ हजार
१०. प्रश्नव्याकरण ... ९२ लाख १६ हजार
११. विपाक ... १ करोड़ ८४ लाख ३२ हजार

'पद' की टीका करते हुए समवायांगसूत्र की टीका में अभयदेवसूरि ने (पत्र १०१-१) लिखा है—

पदाग्रेण प्रज्ञप्तः इह यत्रार्थोपलब्धिस्तत्पदं

और, नंदी के वृत्तिकार मलयगिरि ने नंदी की टीका (पत्र २११-२) में पद की टीका निम्नलिखित रूप में की है—

यत्रार्थोपलब्धिस्तत् पदम्

ऐसा ही हरिभद्रसूरि ने भी अपनी टीका में लिखा है (पत्र ९८-२)

आगम साहित्य का वर्तमान रूप

आगमों के सम्बन्ध में आवश्यकता-निर्युक्ति (आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, भाग १, पत्र ३५-२) में गाथा आती है:—

अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ ॥१९२॥

—अर्हत् भगवान् ने अर्थ का प्ररूपण किया और उनके गणधरों ने उसे सूत्ररूप में निबद्ध किया।

भगवान् के पाट पर उनके महापरिनिर्वाण के बाद सुधर्मा स्वामी बैठे। उन्होंने भगवान् के उपदेशों को अपने शिष्यों से कहा। अतः वर्तमान काल में आगमों का जो रूप मिलता है, उसमें पाठ आता है कि, सुधर्मास्वामी ने कहा कि, जैसा भगवान् ने कहा था, वैसा मैं तुमको कहता हूँ।

भगवान् महावीर-निर्वाण की दूसरी शताब्दि में भयंकर अकाल पड़ा। साधु लोग अपने निर्वाह के लिए समुद्रतटवर्ती ग्रामों में चले गये। उस समय पठन-पाठन शिथिल होने के कारण श्रुतज्ञान विस्मृत होने लगा—कारण कि बारम्बार आवृत्ति न होने से बुद्धिमान का अभ्यास भी नष्ट हो जाता है। दुष्काल समाप्त होने पर जब समुद्र-तट पर गये लोग भी वापस आ गये तो पाटलिपुत्र में समस्त संघ एकत्र हुआ। जिनके पास अंग-अध्ययन और उद्देशादिक जो उपस्थित थे, उनके पास से वे अंश ले लिये गये। इस प्रकार ११ अंग संघ को मिले।

दृष्टिवाद के निमित्त विचार किया जाने लगा। यह जानकर कि भद्रबाहु स्वामी पूर्वधर हैं, श्रीसंघ ने उन्हें बुलाने के लिए २ साधु नेपाल भेजे। वहाँ जाकर साधु भद्रबाहु स्वामी से बोले—"हे भगवन्! आपको बुलाने के लिए श्रीसंघ ने आदेश किया है।" यह सुनकर भद्रबाहु स्वामी ने कहा—"मैंने महाप्राण—ध्यान आरम्भ किया है। वह १२ वर्षों में पूरा होगा। महाप्राण-व्रत की सिद्धि होने पर मैं सब पूर्वों के सूत्र और अर्थ को एक मुहूर्त मात्र में कह सकूँगा।"

मुनियों ने जाकर यह उत्तर श्रीसंघ से कहा। इस पर संघ ने दो अन्य साधुओं को आदेश दिया—"तुम लोग जाकर आचार्य से कहो—"जो श्रीसंघ की आज्ञा न माने उसे क्या दंड दिया जाये ?" इस पर यदि भद्रबाहु स्वामी कहें कि—"उसे संघ से वाहर कर देना चाहिए," तो कहना—"आप स्वयं उस दंड के भागी हैं।" उन मुनियों ने जाकर तद्रूप सभी बातें कहीं। सुनकर भद्रबाहु स्वामी ने कहा—"मेरे व्रत को ध्यान में रखकर श्रीमान संघ बुद्धिमान शिष्यों को यहीं भेज दे तो अच्छा। मैं उन्हें प्रतिदिन सात वाचनाएं दूंगा। एक वाचना भिक्षाचर्या से लौट कर तीन वाचनाएं तीसरे प्रहर और संध्या समय प्रतिक्रमण के पश्चात् तीन वाचनाएँ दूँगा। इस प्रकार मेरी व्रत-साधना में बाधा भी न आयेगी और श्रीसंघ का भी काम हो जायेगा।"

श्रीसंघ ने स्थूलभद्र के साथ पाँच सौ साधु नेपाल भेजे। आचार्य उनको वाचना देने लगे। 'वाचना वहुत कम मिलती है,' इस विचार से उद्वेग पाकर वे सब साधु लौट गये। एक स्थूलभद्र मात्र बचे रहे। महामति स्थूलभद्र ने आचार्य भद्रबाहु के पास आठ वर्षों में आठ पूर्व सम्पूर्ण रीति से पढ़े। एक दिन आचार्य ने उनसे कहा—"हे वत्स! तुम हतोत्साह क्यों हो गये ?" स्थूलभद्र ने उत्तर दिया—"हे भगवंत! मैं हतोत्साहित तो नहीं हूं, पर मुझे वाचना अत्यल्प लगती है।" इस पर आचार्य ने कहा—"मेरा ध्यान लगभग पूरा होने को आया है। उसे समाप्त होने पर मैं तुम्हें यथेच्छ वाचना दूंगा।" इस पर स्थूलभद्र ने पूछा—"हे प्रभो! अभी मुझे कितना पढ़ना शेष

है।" गुरु ने उत्तर दिया—"एक बिन्दु के इतना पढ़ा है और अभी समुद्र-परिमाण पढ़ना शेप है।" बाद में महाप्राण-व्रत समाप्त होने तक आचार्य भद्रबाहु ने स्थूलभद्र को दो वस्तु कम दश पूर्व तक पढ़ाया।

एक बार भद्रबाहु स्वामी विहार करते हुए पाटलिपुत्र नगर के बाहर उद्यान में पधारे। आचार्य महाराज के आगमन का समाचार सुनकर स्थूलभद्र की बहिन यक्षादि साध्वियाँ उन्हें वंदन करने आयीं। गुरु महाराज का वंदन करके उन साध्वियों ने पूछा—"हे प्रभो! स्थूलभद्र कहाँ हैं?" गुरु ने उत्तर दिया—"निकट के जीर्ण देवकुल में हैं।" वे साध्वियाँ देवकुल में गयीं। उन्हें आता देखकर स्थूलभद्र ने सिंह का रूप धारण कर लिया। सिंह देखकर भीत साध्वियाँ गुरु के पास गयीं और उन्होंने सारी बातें उनसे कहीं। आचार्य ने कहा—"वह तुम्हारा ज्येष्ठ भाई है। उसका वंदन करो। वह सिंह नहीं है।"

उसके बाद जब स्थूलभद्र गुरु के पास गये तो गुरु ने कहा—"तुम वाचना के लिए अयोग्य हो।" और, उन्होंने वाचना नहीं दी। स्थूलभद्र ने क्षमा माँगी, पर जब तब भी भद्रबाहु तैयार न हुए तो स्थूलभद्र ने गुरु से अनुरोध करने के लिए श्री-संघ से आग्रह किया। श्रीसंघ के कहने से भद्रबाहु ने शेष पूर्व मूल-मूल पढ़ाये और यह आदेश दिया कि, इनको किसी को न पढ़ाना।

जैन-आगमों की यह प्रथम वाचना पाटलिपुत्र-वाचना के नाम से विख्यात है। यह प्रथम वाचना महावीर-निर्वाण-संवत् १६० के लगभग हुई ।

उसके कुछ समय बाद, भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के ८२७ अथवा ८४० वर्ष के बीच फिर आर्य स्कंदिल के नेतृत्व में मथुरा में आगमों के संरक्षण का दूसरा प्रयास हुआ ।

इसी समय के लगभग आचार्य नागार्जुन के नेतृत्य में वल्लभी में सूत्रों की रक्षा का प्रयास हुआ। यह वल्लभी-वाचना कहलायी ।

और, उसके लगभग १५० वर्षों के बाद वल्लभी में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में आगमों को लिपिबद्ध किया गया ।

कुछ लोग नंदिसूत्र के लेखक देववाचक और देवर्द्धिगणि को एक मानते हैं; पर यह उनकी भूल है। देववाचक नंदि के सूत्रकार थे और देवर्द्धिगणि ने आगमों को लिपिबद्ध मात्र किया। निश्चित है कि, देववाचक देवर्द्धिगणि से पूर्ववर्ती थे ।

आगमों का वर्तमान रूप वस्तुतः देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के प्रयास का रूप है। पर, यह कहीं नहीं मिलता कि आगम महावीर स्वामी के बाद किसी ने लिखे। जो कुछ भी प्रयास था, वह तीर्थंकर भगवान् के उपदेशों को विस्मृत होने देने से बचाने का ही प्रयास था ।

'आगम' शब्द का जहाँ भी स्पष्टीकरण है, वहाँ इसे गुरु-परम्परा से आया हुआ ही बताया गया है। हम उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ कर रहे हैं :—

(१) आगच्छति गुरु पारम्पर्येणेत्यागमः ।

—भगवतीसूत्र सटीक, श० ५, उ० ४, पत्र ४०१ ।

(२) आचार्य परम्पर्येणागच्छतीत्यागमः आप्त वचनं चाऽऽगम इति ।

—अणुयोगद्वार सटीक पत्र ३८-२ ।

(३) गुरुपारम्पर्येणागच्छतीत्यागमः आ—समन्ताद्गम्यन्ते—ज्ञायन्ते जीवादयः पदार्था अनेनेति वा ।

—अणुयोगद्वार सटीक, पत्र २१९-१ ।

(४) गुरु समीपे श्रूयत इति श्रुयत्, अर्थान्तं सूचनात् सूत्रं ।

—अणुयोगद्वार सटीक, पत्र ३८-२ ।

जैन जगत को अनादि और अनन्त मानते हैं । अतः ये आगम भी अनादि और अनन्त है ।

इन आगमों के लिए नन्दीसूत्र सटीक (सूत्र ५८ पत्र २४७-१) में पाठ आता है :—

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ च, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए' अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए निच्चे''।

—यह द्वादशांगी गणिपिटक कभी नहीं था, ऐसा नहीं, कभी नहीं है ऐसा भी कोई समय नहीं, तथा कभी नहीं होगा यह भी नहीं, गतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगा, यह द्वादशांगी ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय (व्ययरहित) अवस्थित तथा नित्य है ।

सूत्रों के अर्थ अति गहन-गम्भीर है । उनके अध्ययन के लिए नंदीसूत्र (पत्र २४९-२) में आता है—

सुत्तथो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्ति मीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणु ओगे॥

पहला अनुयोग, सूत्रार्थ मूल और अर्थरूप से, दूसरा अनुयोग निर्युक्ति सहित कहा गया है, और तीसरा अनुयोग प्रसंगानुप्रसंग के कथन से निरवशेष कहा जाता है......।

सूत्रों के स्पष्ट होने के लिए विचारामृत-संग्रह (पत्र १४-२) में कुलमंडन सूरि ने

निर्युक्ति भाष्य संग्रहणि चूर्णि पंजिकादि।

का आश्रय लेने का विधान किया है। और, इसके समर्थन में उन्होंने उक्त ग्रंथ में उसी स्थल पर विशेष विचार किया है।

मैंने ऊपर कहा है कि, जैन-आगमों को देवर्द्धिगणि क्षमा-श्रमण ने लिपिबद्ध किया। जैन-आगम तो अपने प्रारम्भ से ही व्यवस्थित थे। ये वाचनाएँ वस्तुतः आगमों को विस्मृत न होने देने के प्रयास मात्र थे; क्योंकि वैदिकों के समान जैनों में भी पहले शास्त्रों को कण्ठ करने की प्रथा थी और लिपि-शास्त्र के परिचय के वावजूद शास्त्र लिखे नहीं जाते थे। जैन-साहित्य में कितने ही स्थलों पर लिपियों के उल्लेख हैं। स्वयं व्याख्याप्रज्ञप्ति के प्रारम्भ में

णमो बंभीए लिविए

कहा गया है। समवायांग सूत्र के १८-वें समवाय में लिपियों के नाम गिनाये गये हैं :—

बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेखविहाणे पं० तं०—१ बंभी, २ जवणो, ३ लियादोसा, ४ ऊरिया, ५ खरोट्ठिआ ६

सावित्रा, ७ पहराइया, ८ उच्चत्तरिया, ६ अक्खरपुट्ठिया, १० भोगवयता, ११ वेणतिया, १२ णिण्हइया, १३ अंकलिवि, १४ गणिअलिवि, १५ गंधव्वलिवी, १६ भूयलिवि. आदंसलिवी, १७ माहेसरीलिवी, १८ दामिलिवी, १६ वोलिंदिलिवी।

—१ ब्राह्मी, २ यावनी, ३ दोपउपरिका, ४ खरोष्टिका, ५ खरशाविका, ६ पहारानिगा, ७ उच्चत्तरिका, ८ अक्षरपृष्टिका ९ भोगवनिका, १० वैणकिया, ११ निण्हविका, १२ अंकलिपि, १३ गणितलिपि, १४ गंधर्वलिपि, १५ आदर्शलिपि, १६ माहेश्वरी, १७ दामिलिपि, १८ वोलिदलिपि।

विशेषावश्यक भाष्य टीका (गाथा ४६४, पत्र २५६) में १८ लिपियों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं :—

१ हंसलिवि, २ भूअलिवि, ३ जक्खी तह, ४ रक्खसी य वोधव्वा, ५ उड्डी, ६ जवणि, ७ तुरुक्की, ८ कीरी, ९ दविड़ीय १० सिंधविया, ११ मालविणी, १२ नडि, १३ नागरि, १४ लाडलिवि, १५ पारसी य वोयव्वा। त ह १६ अनिमित्ती य लिवी, १७ चाणक्की, १८ मूलदेवी य।

अठारह लिपियों के नाम प्रज्ञापनासूत्र सटीक पत्र ५६-१ में भी आये हैं।

जैनों के लिपि-ज्ञान का अकाट्य प्रमाण उनके शिलालेख हैं। भगवान् महावीर के महानिर्वाण के ८४ वर्ष बाद के एक शिलालेख का चर्चा-चित्र और उसका पाठ हमने इसी पुस्तक में दिया है। उसके बाद के तो अशोक, खारवेल तथा मथुरा आदि के शिलालेख बहुज्ञात हैं।

हमने पहले अंगों के पदों की जो संख्या दी है, उस रूप में आज हमारा आगम-साहित्य हमें उपलब्ध नहीं है। उसका बहुत-सा भाग आज विलुप्त हो गया है। मालवणिया ने जैन-संस्कृति-संशोधन-मंडल की पत्रिका १७ (जैन-आगम) में जैनों को इसका दोषी ठहराया है और ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि, ब्राह्मणों ने वेदों को अक्षुण्ण बनाये रखा। पर, मालवणिया की यह भूल है। काल सभी वस्तुओं पर पर्दा डाला करता है— यह उसका स्वभाव है। वर्तमान शासन के जैन-आगमों ने लगभग ढाई हजार वर्ष का समय देखा है। उसमें अधिकांश समय वह अलिखित रहा। फिर उसमें से कुछ अंश विलुप्त हो जाना, क्या आश्चर्य की बात है। जिन ब्राह्मणों की प्रशंसा मालवणिया करते हैं, उन ब्राह्मणों का भी साहित्य अक्षुण्ण नहीं है। स्वयं वेदों को लीजिए—ऋग्वेद की २१ शाखाएं थीं, अब केवल १२ शाखाएं मिलती हैं। यह भी वस्तुतः काल का ही प्रभाव है। काल के प्रभाव की सर्वथा उपेक्षा करके इस प्रकार दोषारोपण करना मालवणिया की उद्धत-वृत्ति है। मालवणियाँ ने उसी जैन-आगम (पृष्ठ २५) में लिखा है—

"कुछ में कल्पित कथाएं देकर उपदेश दिया गया है जैसे ज्ञाताधर्मकथा आदि।" ज्ञाता को यदि कल्पित माना जाये तो श्रेणिक, अभयकुमार आदि सभी कल्पित हो जायेंगे। ज्ञाता की कथावस्तु की ओर डा० जगदीशचन्द्र जैन ने भी संकेत किया है। उन्होंने 'प्राकृत साहित्य का इतिहास' पृष्ठ ७५ में लिखा है—

…"इसकी वर्णन-शैली एक विशिष्ट प्रकार भी है। विभिन्न

उदाहरणों, दृष्टान्तों और लोक में प्रचलित कथाओं के द्वारा बड़े प्रभावशाली और रोचक ढंग से यहाँ संयम, तप और त्याग का प्रतिपादन किया गया है।"

डाक्टर जैन ने उसका जहाँ इतना शिष्ट परिचय दिया है, वहाँ मालवणियाँ ने कल्पित लिखकर सारे ग्रंथ के ऐतिहासिक महत्त्व को नष्ट कर दिया है।

इसी जैन-आगम में (पृष्ठ २६) पर उन्होंने पयेसी को श्रावस्ती का राजा बताया गया है। यह पयेसी श्वेताम्बिका का राजा था, श्रावस्ती का नहीं। रायपसेणी में पाठ आता है—

तत्थणं सेयवियाए णगरीए पएसीणामं राया होत्था।

—सूत्र १४२, पत्र २७४

यह मालवणियाँ का जैन-आगमों के अध्ययन का नमूना है।

जैनों पर प्रमाद का दोषारोपण करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि, जैन लोग 'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः' के मानने वाले रहे हैं और उनकी क्रियावादिता में निष्ठा का ही यह फल था श्रमणों की पाँच[1] संस्थाओं में से केवल जैन ही भारत में बच रहे तावस, गेरुय, आजीवक तो नष्ट ही हो गये और बौद्ध भारत से विलुप्त हो गये।

जैनों की यह क्रियावादिता उन्हें परम्परा से मिली थी। कई वर्ष पूर्व अर्नेस्ट ल्यूमैन ने 'बुद्ध और महावीर' शीर्षक से एक

—निग्गंथ १ सक्क २, तावस ३ गेरुय ४ आजीव ५ पंचहासमणा

—प्रवचनसारद्धार सटीक, पत्र २१२-२

आप उसे पढ़ें और उस पर विचार करें, कुछ अधिक कह सकना कठिन है। पर, यहाँ इतना मात्र अवश्य कह देना चाहता हूँ कि, जैन-साहित्य का कुछ ऐसा अपना महत्व भी है कि यदि निष्पक्ष इतिहास लिखा जाये तो विश्व को जैन-साहित्य का कितने ही बातों में ऋणी होना पड़ेगा।

उदाहरण के लिए हम ल्यूमैन के लेख (पृष्ठ ३४) से ही एक उद्धरण देना चाहेंगे :—

उदाहरण लें—परिध और व्यास के बीच सम्बन्ध प्रकट करने के अंक का ठीक निर्णय करना बहुत कठिन है। पर, वह उसमें दिया है और लगभग यह भी कहा जा सअता है कि इसने ही (स्वयं) विधान किया है। वह इस प्रकार है परिध = व्यास × १० का वर्गमूल। अपने में प्रचलित यह अंक ३१।७ है।... इससे हम यह मान सकते हैं कि महावीर ने स्वयं परिध = व्यास √१० यह समीकरण शोध निकाला होगा।...परिधि के अनेक हिसाबों से यह समीकरण सच आता है।"

जैन-ज्योतिष के सम्बंध में डाक्टर हजारीप्रसाद का कथन है कि—

"...इस बात से स्पष्ट ही प्रमाणित होता है कि सूर्यप्रज्ञप्ति ग्रीक आगमन के पूर्व की रचना है...जो हो सूर्य आदि को द्वित्व प्रदान अन्य किसी जाति ने किया हो या नहीं, इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैन-परम्परा में ही इसको वैज्ञानिक रूप दिया गया है। शायद इस प्रकार का प्राचीनतम उल्लेख भी जैन-शास्त्रों में ही

है।······जैनधर्म कई बातों में आर्य पूर्व जातियों के धर्म और विश्वास का उत्तराधिकारी है।''

और, रही ऐतिहासिक दृष्टि से जैन-ग्रन्थों के महत्त्व की बात, तो मैं कहूँगा कि जैन-साहित्य ही भारतीय साहित्य की उस कड़ी की पूर्ति करता है जिसे पुराण छोड़ गये हैं। एक निश्चित अवधि के बाद पुराणों की गतिविधि मृत हो गयी। उस समय का इतिहास जैन-ग्रंथों में ही है। उदाहरण के लिए श्रेणिक का नाम ही लें। वैदिक ग्रंथों में तो उसका नाम मात्र है—वह कौन था, उसने क्या किया, इन सबका उत्तर तो एक मात्र जैन-साहित्य में ही मिलने वाला है। जैन-साहित्य के इस महत्त्व से परिचित भगवत्‌दत्त-जैसे इतिहासज्ञ जब उस पर 'गप्प' का आरोप लगाते हैं तो इस पर दुःख प्रकट करने के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

भगवान् महावीर की जीवन-कथा का पूरा आधार वर्तमान उपलब्ध आगम ही है। हमारे पास महावीर-कथा के लिए और कोई ऐसा साधन नहीं है, जिसे हम मूल प्रमाण कह सकें। हिन्दू-ग्रंथों में वर्द्धमान् महावीर का कोई उल्लेख नहीं मिलता और जो मिलता भी है, उसे धार्मिक मतभेद के कारण हिन्दुओं ने विकृत कर दिया है। उदाहरण के लिए कहें विष्णु के सहस्त्र नामों में एक नाम 'वर्द्धमान' भी है, पर उसकी टीका शंकराचार्य ने अति विकृत रूप में की है। आगमों के बाद साधनों में दूसरा स्थान निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका, आदि का है।

अथवा गम्भीर पाठक को सन्तोष दे सके। इस चुनौती की ओर मेरा ध्यान २५-३० वर्ष पहले गया था। मेरे मन में तभी से महावीर-चरित्र लिखने की इच्छा थी और मैंने अपना खोज-कार्य तभी प्रारम्भ कर दिया था। पर सुविधा के अभाव में, तथा अन्य कामों में व्यस्त रहने के कारण इस कार्य की ओर मैं अधिक समय न दे सका।

यहाँ बम्बई आने पर सेठ भोगीलाल लहरेचन्द झवेरी की वसति में निश्चिन्त रहने का अवसर मिलने पर मैंने अपने मन में महावीर-चरित्र लिखने की दबी इच्छा पूर्ण कर लेने का निश्चय किया। वर्तमान ग्रन्थ 'तीर्थंकर महावीर' वस्तुतः लगभग ६ वर्षों के प्रयास का फल है।

इस ग्रंथ का प्रथम भाग विजयादशमी २०१७ वि० को प्रकाशित हुआ। केवलज्ञान-प्राप्ति तक का भगवान् का जीवन उस ग्रंथ में है। प्रथम भाग के प्रकाशन के बाद समाचारपत्रों, अनुशीलन-पत्रिकाओं और विद्वानों ने उसका अच्छा सत्कार किया। उससे मुझे तुष्टि भी हुई और कार्य करने का मेरा उत्साह भी बढ़ा। यह द्वितीय भाग अब आपके हाथों में है। यह कैसा बन पड़ा है, इसके निर्णय का भी भार आप ही पर है। इस भाग में भगवान् के तीर्थंकर-जीवन, उनके मुख्य श्रमण-श्रमणियों, मुख्य श्रावक-श्राविकाओं तथा उनके भक्त राजाओं का वर्णन है। महावीर-चरित्र की शृंखला में ही इस ग्रन्थ में हमने रेवती-दान का भी विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया है। ऐसे तो भगवान् के उपदेश अति अगम-अथाह हैं; पर साधारण व्यक्ति

को भगवान् की देशनाओं के निकट पहुँचने के निमित्त मैंने भगवान् के वचनामृत की १०८ सूक्तियाँ अन्त में दे दी हैं।

हमारे पास यद्यपि पुस्तकों का संग्रह था, फिर भी वह संग्रह ही अलम् सिद्ध न हो सका। मुझे पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती। इस कार्य में जैन-साहित्य-विकास-मंडल के पुस्तकालय ने मेरी सहायता की। पर, इस बीच मुझे एक कटु अनुभव यह हुआ कि, सरकारी अथवा सार्वजनिक पुस्तकालयों से ग्रंथ प्राप्त करना तो सहज है, पर जैन-भंडारों से (जो जैनों में धर्मप्रचार की दृष्टि से ही स्थापित हुए हैं।) ग्रंथ प्राप्त करना अपेक्षाकृत दुष्कर है। अपने साहित्य के प्रचार के लिए जैनों को भी अब हिन्दू, बौद्ध अथवा ईसाई धर्मावलंबियों से शिक्षा लेनी चाहिए और अपने साहित्य की ओर आकृष्ट करने के लिए अधिक से अधिक सुविधा जैन और अजैन विद्वानों को उपलब्ध करानी चाहिए। पुस्तकालय-संरक्षण-शास्त्र में अब बड़ी उन्नति हो गयी है फोटोस्टैट और माइक्रोफिल्मिग की व्यवस्था आज सम्भव है। जैन-समाज में इतने कोट्याधिपति और लक्ष्याधिपति हैं। जैन-संघ के पास ज्ञानखाताओं में प्रचुर साधन हैं। ऐसी स्थिति में भी जब पुस्तकों को देखने तक की सुविधा नहीं मिलती तो दुःख होता है।

विद्या-दान सबसे बड़ा दान है। उसका फल कभी-न-कभी किसी न किसी रूप में अवश्य होता है। हमारे गुरु महाराज परम पूज्य जगत्प्रसिद्ध शास्त्र विशारद स्वर्गीय विजय धर्म सूरीश्वर जी ने विदेशी विद्वानों को किस उदारता से ग्रन्थों

को देखने की सुविधा प्राप्त करायी, यह बात किसी से छिपी नहीं है। यूरोप, अमेरिका आदि देशों में जैन-साहित्य पर जो कुछ काम हुआ, उसका श्रेय बहुत-कुछ गुरु महाराज के विद्या-दान को ही है।

उनके उदाहरण पर ही मैं भी आजीवन देशी-विदेशी विद्वानों की सहायता करता रहा। जापान में जैनशास्त्रों के अध्यापन की कोई व्यपस्था नहीं थी, यद्यपि वहाँ डाक्टर शूब्रिंग के एक प्राकृतभिज्ञ शिष्य एक विश्वविद्यालय में थे। डाक्टर शूब्रिंग के आग्रह पर मैंने उनको पुस्तकों की सहायता की और अब वहाँ भी क्यूश्-विश्वविद्यालय में डाक्टर मत्सुनायी की अध्यक्षता में जैन- साहित्य पढ़ाने की व्यवस्था हो गयी।

अपने शास्त्रों और विचारों को अधिक प्रचारित और प्रसारित न करने का ही यह फल है कि, अभी भी हमारे साहित्य का प्रचार अन्य धर्मों से कम है और तथाकथित साक्षर लोग भी ऐसी-ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें कर बैठते हैं, जिसे कहते लज्जा लगती है। साहित्य-अकेडमी से प्रकाशित एक पुस्तक में भगवान् महावीर को लेखक ने 'नट' लिखा है। मैं तो कहूँगा कि ऐसी अकेडमी और ऐसे उसके लेखक रहे तो भारत के नाम पर धव्वा लगाने के अतिरिक्त ये और क्या करेंगे।

अकेडमी की एक अन्य पुस्तक धर्मानंद कौसाम्बी का 'भगवान् बुद्ध' है। यह बुद्ध का जीवन-चरित्र है। बुद्ध पर छोटे-बड़े कितने ही चरित्र-ग्रंथ हैं। कितने ही मूल ग्रंथ हैं। जिनके प्रकाशन की अतीव आवश्यकता आज भी थी। पर

अकेडमी की दृष्टि और किसी ओर न जाकर इसी पुस्तक पर क्यों पड़ी ? धर्म-निरपेक्ष राज्य में सरकार से सहायता प्राप्त करने वाली संस्था ऐसी पुस्तक क्यों प्रकाशित करती है, जिसमें दूसरे धर्म की भावना पर आघात पड़े। धर्मानन्द बुद्ध का जीवन-चरित्र लिख रहे थे। उसमें जैनों का ऐसा निन्दनीय उद्धरण न तो अपेक्षित था और न वर्णनक्रम से उसकी कोई आवश्यकता थी। धर्मानन्द ने इसे खाहमख्वाह इसमें घुसेड़ दिया। और, अकेडमी के सम्पादकों को क्या कहें जिन्होंने अनपेक्षित खंड अविकल रहने दिये।

इस पुस्तक की सामग्री जुटाने के लिए दौड़-धूप करने में, तथा मेरी सेवा-सुश्रुषा में जैनरत्न काशीनाथ सराक ने जो निस्वार्थ सहायता की वह स्तुत्य है। २४ वर्षों से वह निरन्तर मेरी सेवा में संलग्न हैं और यहाँ तक कि अपना सब कुछ छोड़कर मेरे साथ पाद-विहार तक करते रहे। अब तो मेरी दोनों आँखों में मोतिया है और शरीर वृद्धावस्था का है। काशीनाथ ही वस्तुतः इस उम्र में मेरे हाथ-पाँव हैं।

विद्याविनोद ज्ञानचन्द्रजी ने इस पुस्तक को रूप-रंग देने में सर्व प्रकार से प्रयत्न किया और समय-समय पर उपयोगी सूचनाएँ देने में उन्होंने किसी प्रकार का संकोच न रखा।

इस ग्रंथ की तैयारी में श्री काशीनाथ सराक और ज्ञानचन्द्र मेरे दोनों हाथ-सरीखे रहें। यदि ये दोनों हाथ न होते तो यह पुस्तक पाठकों के हाथों में कभी न आती। अतएव मैं अंतःकरणपूर्वक इन दोनों को विशेष रूप से धर्मलाभ और धन्यवाद देता हूँ

इस बीच मैं कई वार वीमार पड़ा। वैद्य-मारनण्ड कन्हैया लाल भेड़ा ने जिस लगन और निस्पृहता से मेरी चिकित्सा आदि की व्यवस्था की उसके लिए उन्हें आशीर्वाद।

मेरे लिखने में मतिभ्रम से अथवा प्रेस की असावधानी से यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो आशा है वाचकवर्ग मुझे क्षमा करेगा।

अंत में मैं परमोपासक भोगीलाल लहेरचन्द झवेरी को भी अंतःकरणपूर्वक धर्मलाभ कहना चाहता हूँ। उनकी ही वसति में यह ग्रंथ निर्विघ्नरीत्या समाप्त हो सका। उनके सहायक होने से ही यह ग्रंथ इतनी जल्दी तैयार हो सका है।

वसन्तपंचिमी
संवत् २०१८ वि०
धर्म संवत् ४०

विजयेन्द्र सूरि
(जैनाचार्य)

दो शब्द

तीर्थङ्कर महावीर का प्रथम भाग आपके सम्मुख पहुँच चुका है और अब यह उसका द्वितीय भाग आपके हाथों में है। यह भाग कैसा बना, इसके निर्णय का भार आप पर है। इस भाग में पृष्ठ-संख्या प्रथम भाग की अपेक्षा अधिक है। पुस्तक के स्थायी महत्त्व को ध्यान में रखकर इस भाग में हमने अच्छे कागज का भी उपयोग किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं है। दीक्षा की दृष्टि से श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन-साधुओं में प्रस्तुत पुस्तक के लेखक जैनाचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि जी महाराज ज्येष्ठतम आचार्य हैं। आपकी साहित्य-सेवा से प्रभावित होकर चेकोस्लोवाकिया की ओरियंटल-सोसाइटी ने आपको अपना मानद सदस्य निर्वाचित किया था। आप नागरी प्रचारिणी सभा के भी मानद आजीवन सदस्य हैं और प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी के संस्थापक सदस्य हैं। आचार्यश्री का यथातथ्य परिचय तो पाठकों को 'लेटर्स टु विजयेन्द्र सूरि' देखने से ही प्राप्त होगा, जिसमें विदेशों से उनके पास आये कुछ पत्रों का संकलन है।

इस पूरी पुस्तक की तैयारी तथा छपाई में लगभग २४॥ हजार व्यय पड़ा। इतना व्यय होने पर भी हमने घाटा सहकर सबको सुलभ होने की दृष्टि से पुस्तक का मूल्य २०) मात्र रखा है। पुस्तक के मूल्य को दृष्टि में रखकर एक जैन-संस्था ने हमें सहायता देने से इनकार कर दिया था। हमारे पास उसी संस्था की एक पुस्तक है—भगवतीसूत्र का १५-वाँ शतक और उसकी टीका। उस पुस्तक में कुल ८० पृष्ठ हैं और उसका मूल्य ढाई रुपये है। उस पुस्तक का पाठ तो भगवती के छपे पत्र दे देने मात्र से कम्पोज हो सकता था। और, इस पुस्तक के व्यय

में तो अनुसंधान, पुस्तकों की व्यवस्था आदि सभी खर्चे सम्मिलित हैं। एक जैन-संस्था द्वारा ऐसे उत्तर दिये जाने का हमें घोर दुःख है।

तीर्थङ्कर महावीर का अंग्रेजी अनुवाद हो रहा है और यथासमय प्रकाशित हो जायेगा। इसके अतिरिक्त इसका गुजराती और साधारण संस्करण निकालने की भी हमारी योजना है। आशा है, जैन-समाज तथा पाठकगण अपनी कृपा बनाये रखकर हमें प्रोत्साहित करेंगे।

अहमदाबाद की आनन्दजी कल्याणजी की पीढ़ी ने प्रथम भाग की २०० पुस्तकें खरीद कर हमारी बड़ी सहायता की।

प्रस्तुत पुस्तक के तैयार करने में स्वर्गीय श्री वाडीलाल मनसुखराम पारेख कपड़वंज, श्रीमती मैनाबेन वाडीलाल पारेख कपड़वंज, श्रीपोपटलाल भीखाचंद झवेरी पाटन, श्री चमनलाल मोहनलाल झवेरी बम्बई, श्री मानिकलाल स्वरूपचंद पाटन, श्रीखूबचंद स्वरूपचंद पाटन, श्रीमती सुशीला शान्तिलाल झवेरी पालनपुर, श्री हिन्दूमल दोलाजी खीवांदी, श्री रघुवीरचंद जैन जालंधर (पंजाब), शाह सरदारमल माणिकचंद खीवांदी, श्री जयसिंह मोतीलाल पाटन ने अग्रिम सहायक बनकर हमें जो उत्साह दिलाया उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

श्री गोपीचंद धाड़ीवाल के भी हम विशेष रूप से कृतज्ञ हैं। उन्होंने हमें सहायता तो दी ही और उसी के साथ साथ पुस्तक में लगा कागज भी मिल-रेट से दिलाने की कृपा उन्होंने की।

हमें अपने काम में वस्तुतः पूज्य आचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि जी महाराज के आशीर्वाद और सेठ भोगीलाल लहेरचन्द झवेरी की कृपा का ही आश्रय रहा है। हम उन दो में से किसी से भी उऋण नहीं हो सकते।

यशोधर्म मंदिर,
१६६ मर्जबान रोड,
अंधेरी, बम्बई ५८

काशीनाथ सराक
(जैन-रत्न)
प्रकाशक

सहायक ग्रंथ

हम तीर्थंकर महावीर भाग १ में सहायक ग्रंथों की सूची दे चुके हैं। उनके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थों की सहायता लेनी पड़ी है। हम उनके नाम यहाँ दे रहे हैं :—

जैन-ग्रन्थ

योगशास्त्र-हेमचन्द्राचार्य-लिखित, स्वोपज्ञ टीका सहित।
युक्तिप्रबोध नाटक मेघविजय उपाध्याय-रचित।
विचार-रत्नाकर।
उपदेशपद सटीक।
उपदेश प्रासाद सटीक।
वृहत् कथाकोश (सिंघी-जैन-ग्रंथमाला)
निर्ग्रंथ-सम्प्रदाय (जैन-संस्कृति-संशोधक-मण्डल, वाराणसी)।

दिगम्बर ग्रन्थ

उत्तर पुराण (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी)।

वैदिक ग्रन्थ

अग्निपुराण।
मारकण्डेय पुराण (पार्जिटर कृत अंग्रेजी अनुवाद)।
मत्स्यपुराण।
वृहत्संहिता।
योगिनी तन्त्र।

निरुक्तम, आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना।
वाक्यपदीय।
लेक्चर्स आन पतंजलीज महाभाष्य-पी. एस. ?
मीमांसा दर्शन, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता १८७३।
बौधायन सूत्र (चौखम्भा सिरीज)।
चतुर्वर्ग चिंतामणि, हेमाद्रि-रचित (भरतच सम्पादित, एशियाटिक सोसाइटी आव बेंगाल

आधुनिक ग्रन्थ

आर्क्योलाजिकल सिरीज आव इण्डिया, सिरीज, वाल्यूम ५१—लिस्ट आव मानूमेंट्स आव बिहार ऐंड उड़ीसा। मौलवी मुहम्मद लिखित, १९३१।
भारत की नदियाँ।
इपिग्राफिका इंडिका, वाल्यूम २०, संख्या ७
ऐन इम्पीरियल हिस्ट्री आव इंडिया, मंजुश्रीमू प्रसाद जायसवाल-सम्पादित।
आन युवान् च्वाङ् ट्रैवेल्स इन इंडिया (वाटर्स-
कार्पोरेट लाइफ इन एंशेंट इंडिया। डा० मजूमद

पत्र-पत्रिकाएं

इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, खंड १४, अंक अंक ४।

***

शास्त्रविशारद जैनाचार्य

स्वर्गीय श्री विजयधर्म सूरीश्वर जी

विश्वाभिरूपगण सत्कृत मेधिगम्य !
विद्याप्रचारक ! मुनीन्द्र ! जगद्धितैषिन् !
भक्त्याऽर्पयामि भगवन् ! भवतेऽभिवन्द्य,
स्वल्पामिमां कृतिमनल्प ऋणानुबद्धः ॥

—विजयेन्द्र

तीर्थ-स्थापना

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं, मईमं पडिलेहिया।
सव्वे अक्कन्तदुक्खा य, अओ सव्वे न हिंसया ॥७॥

बुद्धिमान् मनुष्य छहों जीव-निकायों का सब प्रकार की युक्तियों से सम्यक्ज्ञान प्राप्त करे और 'सभी जीव दुःख से घबराते हैं'—ऐसा जानकर उन्हें दुःख न पहुँचाये।

[सूत्र०, श्रु० १, अ० ११, गा० ६]

श्रीमदर्हते नमः

जगत्पूज्य श्री विजयधर्मसूरि गुरुदेवेभ्यो नमः

तीर्थङ्कर महावीर

भाग २

—:❀:—

तीर्थस्थापना

हम पिछले भाग में यह बता चुके हैं कि, भगवान् ने किस प्रकार इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मणों की शंकाओं का निवारण किया और किस प्रकार वैदिक धर्मावलम्बी उन महापंडितों ने श्रमण-धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार उत्तम कुल में उत्पन्न, महाप्रज्ञ, संवेगप्राप्त ये प्रसिद्ध ११ विद्वान् भगवान् महावीर के मूल शिष्य हुए।[1]

पिछले भाग में ही हम सविस्तार आर्य चन्दना का उल्लेख कर आये हैं।[2] कौशाम्बी में उसने आकाश में आते-जाते हुए देवताओं को देखा।

१—महाकुलाः महाप्राज्ञाः संविग्ना विश्ववंदिता।
एकादशापि तेऽभूवन्मूलशिष्या जगद्गुरो॥
—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ५, पत्र ७०—१

२—तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २३७-२४२

देवों के इस आने-जाने को देखकर वह यह बात जान गयी कि, भगवान् को केवल-ज्ञान हो गया। और, उसके मन में दीक्षा लेने की इच्छा हुई। उसकी इच्छा देखकर देवता लोग उसे भगवान् की पर्षदा में ले आये। भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा करके और वंदना करके वह सती दीक्षा लेने के लिए खड़ी हुई। भगवान् ने चंदना को दीक्षित किया[1] और उसे साध्वी समुदाय का अग्रणी बनाया।[2]

उसके पश्चात् भगवान् ने सहस्रों नर-नारियों को श्रावक-व्रत[3] दिया। इस प्रकार भगवान् ने चतुर्विध संघ[4] रूपी तीर्थ[5] की स्थापना की।

संघ की स्थापना के बाद भगवान् ने 'उप्पन्नेइ वा विगएइ वा धुवेइ[6] वा' त्रिपदी[7] (तिपया) का उपदेश किया।

१.—त्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ५, श्लोक १६४, पत्र ७०-१
गुणचन्द्र-रचित 'महावीर चरियं', प्रस्ताव ८, पत्र २५७-२

२—कल्पसूत्र सुबोधिका-टीका सहित, सूत्र १३५, पत्र ३५६

३—त्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ५, श्लोक १६४, पत्र ७०–१

४—(अ) चउविहे संघे पं० तं० समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ।

—ठाणांगसूत्र सटीक, पूर्वार्द्ध, ठा० ४, उ० ४, सू० ३६३, पत्र २८१–२

(आ) तित्थं पुण चाउवन्नाइन्ने समणसंघो तं०—समण, समणीओ, सावया, सावियाओ

—भगवतीसूत्र सटीक, शतक २०, उ० ८, सूत्र ६८२, पत्र १४६१

५—तीर्थं नाम प्रवचनं तच्च निराधारं न भवति, तेन साधु-साध्वी-श्रावक–श्राविकारूपः चतुर्वर्णः संघः

—सत्तरिसयठाणा वृत्ति १०० द्वार, आ० म०

राजेन्द्राभिधान, भाग ४, पृष्ठ २२७६

६—(आ) भगवतीसूत्र सटीक, शतक ५, उद्देशः ६, सूत्र २२५, पत्र ४४९ में यह पाठ इस रूप में है :—

देवों के इस आने-जाने को देखकर वह यह बात जान गयी कि, भगवान् को केवल-ज्ञान हो गया। और, उसके मन में दीक्षा लेने की इच्छा हुई। उसकी इच्छा देखकर देवता लोग उसे भगवान् की पर्षदा में ले आये। भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा करके और वंदना करके वह सती दीक्षा लेने के लिए खड़ी हुई। भगवान् ने चंदना को दीक्षित किया[1] और उसे साध्वी समुदाय का अग्रणी बनाया।[2]

उसके पश्चात् भगवान् ने सहस्रों नर-नारियों को श्रावक-व्रत[3] दिया। इस प्रकार भगवान् ने चतुर्विध संघ[4] रूपी तीर्थ[5] की स्थापना की।

संघ की स्थापना के बाद भगवान् ने 'उप्पन्नेइ वा विगएइ वा धुवेइ[6] वा' त्रिपदी[7] (तिपद्या) का उपदेश किया।

१—त्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ५, श्लोक १६४, पत्र ७०-१
गुणचन्द्र-रचित 'महावीर चरियं', प्रस्ताव ८, पत्र २५७-२

२—कल्पसूत्र सुबोधिका-टीका सहित, सूत्र १३५, पत्र ३५६

३—त्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ५, श्लोक १६४, पत्र ७०-१

४—(अ) चउव्विहे संघे पं० तं० समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ।

—ठाणांगसूत्र सटीक, पूर्वार्द्ध, ठा० ४, उ० ४, सू० ३६३, पत्र २८१-२

(आ) तित्थं पुण चाउवन्नाइन्ने समणसंघो तं०—समण, समणीओ, सावया, सावियाओ

—भगवतीसूत्र सटीक, शतक २०, उ० ८, सूत्र ६८२, पत्र १४६१

५—तीर्थं नाम प्रवचनं तच्च निराधारं न भवति, तेन साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूपः चतुर्वर्णः संघः

—सत्तरिसयठाणा वृत्ति १०० द्वार, आ० म०
राजेन्द्राभिधान, भाग ४, पृष्ठ २२७६

६—(आ) भगवतीसूत्र सटीक, शतक ५, उद्देशः ६, सूत्र २२५, पत्र ४४९ में यह पाठ इस रूप में है :—

उसके बाद भगवान् ने उन्हें द्वादशांगी-रचना का आदेश दिया।[1] इसी त्रिपदी[2] से गणधरों के द्वादशांग और दृष्टिवाद के अन्तर्गत १४ पूर्वों की रचना की। उन द्वादशांगों के नाम नन्दी-सूत्र में इस प्रकार गिनाये गये हैं।

(पृष्ठ ४ की पादटिप्पणि का शेषांश)

उप्पन्ने विगए परिणए

(अ) गुणचन्द्र-रचित 'महावीर-चरियं', प्रस्ताव ८, पत्र २५७—१

(इ) उप्पन्न विगम धुवपयतियम्मि कहिए जणेण तो तेहिं।
सव्वेहिं वि य बुद्धीहिं बारस अङ्गाइं रइयाइं ॥१२६४॥

—नेमिचन्द्र-रचित 'महावीर चरियं', पत्र ६६-२

(ई) तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५ का २९-वाँ सूत्र है—

उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्

(उ) ठाणांगसूत्र के ठाणा १०, उ० ३, सूत्र ७२७ में 'माउयाणुओगे' शब्द आता है। उसकी टीका में लिखा है :—

'माउयाणुओगे' त्ति मातृकेव मातृका—प्रवचन पुरुषस्योत्पादव्यय ध्रौव्य लक्षणा पदत्रयी तस्या··· —पत्र ४८१-१

(ऊ) समवायांग की टीका में इसका विवरण इस प्रकार है :—

दृष्टिवादार्थप्रसवनिबन्धनत्वेन मातृका पदानि

—समवायांगसूत्र सटीक, समवाय ४६, पत्र ६५-२

७—जाते संघे चतुर्धैवं ध्रौव्योत्पादव्ययात्मिकाम्।
इन्द्रभूति प्रभृतानां त्रिपदीं व्याहरत् प्रभुः ॥१६५॥

—त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग ५ पत्र ७०-१

१—कल्पसूत्र सुबोधिका-टीका सहित, पत्र ३४०

२—(अ) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ५, श्लोक १६५-१५८ पत्र ७०-१

(आ) गुणचन्द्र-रचित 'महावीर चरियं' प्रस्ताव ८, पत्र २५७-२

(इ) दर्शन-रत्न-रत्नाकर में पाठ आता है।—

आकाश में देवताओं ने लोक लिया। आधी भूमि पर गिरी। उसमें से आधा भाग राजा ने ले लिया और शेष आधा लोगों ने बाँट लिया।

उसके पश्चात् प्रभु सिंहासन पर से उठे और उत्तर द्वार से निकलकर द्वितीय प्राकार के बीच में स्थित देवच्छन्दक[1] में विश्राम करने गये। भगवान् के चले जाने के बाद गौतम गणधर ने उनके चरण-पीठ पर बैठकर उपदेश किया। दूसरी पौरुषी समाप्त होने पर गौतम स्वामी ने उपदेश समाप्त किया।[2]

इस प्रकार तीर्थ की स्थापना करके भगवान् तीर्थंकर हुए। तीर्थंकर शब्द की व्याख्या करते हुए कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने[3] लिखा है :—

तीर्यते संसार समुद्रोऽनेनेति तीर्थं प्रवचनाधारश्चतुर्विधः संघः प्रथम गणधरोवा। यदाहु :—"तित्थं भन्ते तित्थं तित्थयरे तित्थं गोयमा अरिहा तावनियमा तित्थंकरे तित्थं पुण चाउवण्णे समणसंघे पठम गणहरे"[4] तत्करोति तीर्थङ्कारः···

उसके बाद कुछ काल तक वहाँ ठहरने के पश्चात् भगवान् ने राजगृही की ओर प्रस्थान किया।

(पृष्ठ ७ की पादटिप्पणि का शेषांश)

४—आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध पत्र ३२३ में 'बलि' को 'तंदुलाणं सिद्धं' लिखा है।

१—**तत्रैवेशान कोणे प्रभोर्विश्रामार्थं देवच्छन्दको रत्नमयः**

धर्मघोष सूरि-रचित 'समवसरण-स्तव' अवचूरी सहित (आत्मानंद जैन सभा, भावनगर), पत्र ६

समवसरण-रचना का विस्तृत वृत्तांत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १, सर्ग ३, श्लोक ४२३-५५८ पत्र ८१-२ से ८६-२ तक में है। जिज्ञासु पाठक वहाँ देख लें।

२—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ५, श्लोक १८२-१८५। पत्र ७०-२

३—अभिधान-चिंतामणि स्वोपज्ञ टीका सहित, देवाधिदेव कांड श्लोक २५ की टीका, पृष्ठ १०

४—यह पाठ भगवतीसूत्र सटीक शतक, २०, उद्देश ८, सूत्र ६८२, १४६१ में आता है।

तीर्थङ्कर-जीवन

मंगलं

अरिहंता मंगलं।
सिद्धा मंगलं।
साहू मंगलं।
केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं।

मङ्गल

अर्हन्त मङ्गल है;
सिद्ध मङ्गल है;
साधु मङ्गल है;
केवली-प्ररूपित अर्थात् सर्वज्ञ-कथित धर्म मङ्गल है।

[पंचप्रति० संथारा० सू०]

१३-वाँ वर्षावास

भगवान् राजगृह में

मध्यम पावा से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, अपने परिवार के साथ, भगवान् महावीर राजगृह पधारे। उस राजगृह नगर में पार्श्वनाथ भगवान् के सम्प्रदाय के बहुत-सी श्रावक-श्राविकाएं रहती थीं। राजगृह नगर के उत्तर-पूर्व दिशा में गुणशिलक-नामक चैत्य था।[1] भगवान् अपनी पर्षदा के साथ उसी गुणशिलक-चैत्य में ठहरे।

भगवान् के आने की सूचना जब राजा श्रेणिक[2] को मिली तो वह पूरी राजसी मर्यादा से अपने मंत्रियों, अनुचरों और पुत्रों को लेकर भगवान् की वन्दना करने चला।

भगवान् के समक्ष पहुँचकर, श्रेणिक ने भगवान् की प्रदक्षिणा की, वन्दना की तथा स्तुति की।

उसके बाद भगवान् ने धर्म-देशना दी। प्रभु की धर्म-देशना सुनकर श्रेणिक ने समकित ग्रहण किया और अभयकुमार आदि ने श्रावक-धर्म अंगीकार किया।[3]

१—रायगिहे नामं नयरे होत्था......रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था, सेणिए राया, चेल्लणा देवी

—भगवतीसूत्र सटीक, शतक १, उद्देशः १ सूत्र ४ पत्र १०-२

२—श्रेणिक पर राजाओं के प्रसंग में हमने विशेष विचार किया है। पाठक वहाँ देख लें।

देशना समाप्त होने के बाद श्रेणिक राजा अपने समस्त परिवार सहित राजमहल में वापस लौट आया।

मेघकुमार की प्रव्रज्या

श्रेणिक राजा के राजमहल में आने के पश्चात्, मेघकुमार[१] ने श्रेणिक और धारिणी देवी को हाथ जोड़कर कहा—"आप लोगों ने चिरकाल तक मेरा लालन-पालन किया। मैं आप लोगों को केवल श्रम देने वाला ही रहा। पर, मैं इतनी प्रार्थना करता हूँ कि, मैं दुःखदायी जगत से थक गया हूँ। भगवान् महावीर स्वामी पधारे हैं। यदि अनुमति दें तो मैं साधु-धर्म स्वीकार कर लूँ।" माता-पिता ने मेघकुमार को बहुत समझाया पर मेघकुमार अपने विचार पर दृढ़ रहा।

हारकर श्रेणिक ने कहा--"हे वत्स! तुम संसार से उद्विग्न हो गये हो; फिर भी मेरा राज्य कम-से-कम एक दिन के लिए ग्रहण करके मेरी दृष्टि को शांति दो।" मेघकुमार ने पिता की बात स्वीकार कर ली। बड़े समारोह से मेघकुमार का राज्याभिषेक हुआ। फिर, श्रेणिक ने पूछा—"हे पुत्र, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?" इस पर मेघकुमार बोला—"पिताजी, यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कुत्रिकापण[२] से मुझे रजोहरण-

---

(पृष्ठ ११ की पादटिप्पणि का शेषांश)

३—श्रुत्वा तां देशना भर्तुः सम्यक्त्वं श्रेणिकोऽश्रयत्।
श्रावक धर्मं त्वभय कुमाराद्याः प्रपेदिरे ॥ ३७६॥

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०सर्ग ६, पत्र ८४-१

एमाई धम्मकहं सोउं सेणिय निवाइया भव्वा।
संमत्तं पडिवन्ना केई पुण देस विरयाइ ॥ १-२६४ ॥

—नेमिचन्द्र-रचित महावीर-चरियं, पत्र ७१-२

१—मेघकुमार का वर्णन ज्ञाताधर्मकथा के प्रथम श्रुतस्कंध के प्रथम अध्ययन में विस्तार से आता है। जिज्ञासु पाठक वहाँ देख सकते हैं।

२—देखिए पृष्ठ १७

पात्रादि मँगा दें।" श्रेणिक ने समस्त व्यवस्था कर दी और फिर बड़े धूमधाम से मेघकुमार ने दीक्षा ग्रहण की।

मेघकुमार की अस्थिरता

दीक्षा लेने के बाद मेघकुमार मुनि रात को बड़े-छोटे साधुओं के क्रम से शैया पर लेटे थे, तो आते-जाते मुनियों के चरण बार-बार उसे स्पर्श होते। इस पर उसे विचार हुआ, मैं वैभव वाला व्यक्ति हूँ फिर भी ये मुनि मुझे चरण स्पर्श कराते जाते हैं। कल प्रातःकाल प्रभु की आज्ञा लेकर मैं व्रत छोड़ दूँगा।" यह विचार करते-करते उसने बड़ी कठिनाई से रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल व्रत छोड़ने की इच्छा से वह भगवान् के पास गया। उसके मन की बात, अपने केवल-ज्ञान से जानकर, भगवान् बोले—"हे मेघकुमार! संयम के भार से भग्न चित्त वाला होने पर तुम अपने पूर्व भव पर ध्यान क्यों नहीं देते?

मेघकुमार के पूर्वभव

देखकर तुम तीसरे मंडल में गये। वहाँ खड़े-खड़े तुम्हारे शरीर में खुजली हुई। खुजली मिटाने के विचार से तुमने एक पैर ऊपर उठाया। प्राणियों के आधिक्य के कारण एक शशक तुम्हारे पाँव के नीचे आकर खड़ा हो गया। पग रखने से शशक दबकर मर जायेगा, इस विचार से तुम में दया उत्पन्न हुई और तुम तीन पाँव पर खड़े रहे।

"ढाई दिन में दावानल शांत हुई। शशक आदि सभी प्राणी अपने-अपने स्थान पर चले गये। क्षुधा से पीड़ित तुम पानी पीने के लिए बढ़े। अधिक देर तक एक पग ऊँचा किये रहने से, तुम्हारा चौथा पैर बँध गया था। इससे तीन पैर से चलने में तुम्हें कठिनाई हो रही थी। चल न सकने के कारण, तुम भूमि पर गिर पड़े और प्यास के कारण तीसरे दिन बाद तुम मृत्यु को प्राप्त हुए।

"शशक पर की गयी दया के कारण, तुम मर कर राजपुत्र हुए। इस प्रकार मनुष्य-भव प्राप्त करने पर तुम उसे वृथा क्यों गँवाते हो।"

भगवान् महावीर का वचन सुनकर मेघकुमार अपने व्रत में पुनः स्थिर हो गया।[१] उसने नाना तप किये और मृत्यु पाकर विजय-नामक अणुत्तर विमान[२] में उत्पन्न हुआ। वहाँ से महाविदेह में जन्म लेने के बाद वह मोक्ष प्राप्त करेगा।

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र; पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ३६२—४०६, पत्र ८३ २ से ८५-१।

२—उड्ढ लोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालता पं० तं०—विजये १, विजयंते २, जयंते ३, अपराजिते ४, सव्वट्ठसिद्धे ५।

—ठाणांगसूत्र सटीक, ठा० ५, उ० ३, सू० ४५१ पत्र ३४१-२

नन्दिषेण की प्रव्रज्या

भगवान् महावीर की धर्मदेशना से प्रभावित होकर, एक दिन नन्दिषेण[1] ने प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए अपने पिता से अनुज्ञा माँगी। श्रेणिक की अनुमति मिलते ही व्रत लेने के लिए वह घर से निकला।

उस समय किसी देवता ने अन्तरिक्ष से कहा—"हे वत्स! व्रत लेने के लिए उत्सुक होकर तुम कहाँ जाते हो? अभी तुम्हारे चरित्र का आवरण करने वाले भोगफल कर्म शेष हैं। जब तक उन कर्मों का क्षय नहीं हो जाता, तब तक थोड़े समय तक तुम घर में ही रहो। उनके क्षय होने के बाद दीक्षा लो; क्योंकि अकाल में की हुई क्रिया फलीभूत नहीं होती।"

उसे सुनकर नन्दिषेण ने कहा—"मैं साधुपने में निमग्न हूँ। चरित्र को आवरण करने वाले कर्म मेरा क्या करेंगे?"

ऐसा कहकर वह भगवान् महावीर के पास आया और प्रभु के चरण-कमल के निकट उसने दीक्षा ले ली[2]। छट्ठ-अट्ठम आदि तप करता हुआ वह प्रभु के साथ विहार करने लगा।

गुरु के पास बैठकर उसने सूत्रों का अध्ययन किया और परिषहों को सहन करता रहा। प्रतिदिन वह आतापना लेता और विकट तप करता।

इसकी विकट तपस्या से वह देवता बड़ा उद्विग्न होता। एक बार वह देवता बोला—"हे नन्दिषेण? तुम मेरी बात क्यों नहीं सुनते? हे दुराग्रही! भोगफल भोगे बिना त्राण नहीं है। तुम यह वृथा प्रयत्न क्यों करते हो?"

१—यह नंदिषेण श्रेणिक के हाथी सेचनक की देख-रेख करता था—आवश्यक-चूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १७१, आवश्यक हारिभद्रीय टीका, पत्र ६८२—२

२—आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र ५५६;
आवश्यक हारिभद्रीय टीका, पत्र ४३०—१

इस प्रकार देवता ने बार-बार कहा। पर, नन्दिषेण ने इस पर किंचित् मात्र ध्यान नहीं दिया।

एक बार एकाकी विहार करने वाला नंदिषेण छट्ठ की पारणा के लिए भिक्षा लेने के निमित्त निकला और भोगों के दोष की प्रेरणा से वह वेश्या के घर में घुसा। वहाँ जाकर उसने 'धर्मलाभ' कहा। इस पर वह वेश्या बोली—"मुझे तो केवल 'अर्थलाभ' अपेक्षित है। 'धर्मलाभ' की मुझे आवश्यकता नहीं है।" इस प्रकार कहती हुई विकार चित्त वाली वह वेश्या हँस पड़ी।

"यह विकारी मुझ पर हँसती क्यों है?"—ऐसा विचार करते हुए नन्दिषेण ने एक तृण खींचकर रत्नों का ढेर लगा दिया। और, "ले 'अर्थलाभ'"—कहता हुआ, नन्दिषेण उसके घर से बाहर निकल पड़ा।

वेश्या संभ्रम उसके पीछे दौड़ी और कहने लगी—"हे प्राणनाथ! यह दुष्कर व्रत त्याग दो!! मेरे साथ भोग भोगो, अन्यथा मैं अपना प्राण त्याग दूँगी।"

बारम्बार इस विनती के फलस्वरूप, व्रत तजने के दोष को जानते हुए भी, भोग्य कर्म के वश होकर नंदिषेण ने उसके वचन को स्वीकार कर लिया। पर, यह प्रतिज्ञा की—"मैं प्रतिदिन १० अथवा उससे अधिक मनुष्यों को प्रतिबोध कराऊँगा। यदि किसी दिन मैं इतने व्यक्ति को प्रतिबोध न करा सका, तो उसी दिन मैं फिर दीक्षा ले लूँगा।"

मुनि का वेश त्याग कर, नंदिषेण वेश्या के घर रहने लगा और दीक्षा लेने से पूर्व की देवता की बात स्मरण करने लगा। भोगों को भोगता हुआ, वेश्या के पास रहते हुए, वह प्रतिदिन १० व्यक्तियों को प्रतिबोध करा महावीरस्वामी के पास दीक्षा के लिए भेजने के बाद भोजन करता।

भोग्य कर्म के क्षीण होने से, एक दिन नंदिषेण ने ९ व्यक्तियों को प्रतिबोध को प्रतिबोध कराया, पर १०-वें व्यक्ति (जो सोनार था) ने किसी भी रूप में प्रतिबोध नहीं पाया। उसके प्रतिबोध कराने के प्रयास

में बहुत समय लग गया। वेश्या रसोई तैयार करके बैठी थी। बारम्बार बुलवा भेजने लगी। पर, अभिग्रह पूर्ण न होने के कारण नंदिषेण न उठा। कुछ देर बाद वेश्या स्वयं आकर बोली—"स्वामी! कब से रसोई तैयार है। बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रही थी। रसोई निरस हो गयी।"

नंदिषेण बोला—"अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आज मैं १० व्यक्तियों को प्रतिबोध नहीं करा सका। ९ व्यक्ति ही प्रतिबोध पा सके और १०-वाँ व्यक्ति अब मैं स्वयं हूँ।"

इस प्रकार वेश्या के घर से निकलकर नंदिषेण ने भगवान् के पास जाकर पुनः दीक्षा ले ली। और, अपने दुष्कृत्य की आलोचना करके महावीर स्वामी के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता रहा और तीक्ष्ण व्रतों को पालते हुए मरकर देवता हुआ।

भगवान् ने अपनी १३-वीं वर्षा राजगृह में ही बितायी।

कुत्रिकापण

(सूत्र ८५७ की टीका) पत्र ४१३-२, निशीथ सूत्र सभाष्य चूर्णि विभाग ४ पृष्ठ १०२, १५१ तथा उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित पत्र ७३–१ में भी है।

वृहत्कल्पसूत्र-निर्युक्ति-भाष्य सहित (विभाग ४, पृष्ठ ११४४, गाथा ४२१४) में कुत्रिकापण की परिभाषा इस रूप में दी हुई है:—

कु त्ति पुढ़वीय सण्णा जं विज्जति तत्थ चेदण मचेयं।
गहणुवभोगे य खमं न तं तहिं आवणे णत्थि॥

अर्थात् तीनों लोकों में मिलनेवाले जीव-अजीव सभी पदार्थ जहाँ मिलते हों, उसे कुत्रिकापण कहते हैं। विशेषावश्यक की टीका (देखिये गाथा २४८६, पत्र ९९४-२) में भी यही अर्थ दिया है।

कुत्रिकापण में मूल्य तीन तरह से लगता था। वृहत्कल्प भाष्य (विभाग ४, पृष्ठ ११४४) में गाथा ४२१५ में आता है :—

पणतो पागतियाणं, साहस्सो होति इब्भमादीणं।
उक्कोस सतसहस्सं, उत्तम पुरिसाण उवधी व॥

—प्राकृतपुरुषाणां प्रव्रजतामुपधिः कुत्रिकापणसत्कः, 'पञ्चकः' पञ्चरूपक मूल्यो भवति। 'इभ्यादिनां' इभ्य-श्रेष्ठि-सार्थवाहादीनां मध्यमपुरुषाणां 'साहस्रः' सहस्रमूल्य उपाधिः। 'उत्तम पुरुषाणां' चक्रवर्ति-माण्डलिकप्रभृतीनामुपधिः शतसहस्रमूल्यो भवति। एतच्च मूल्यमानं जघन्यतो मन्तव्यम्, उत्कर्षतः पुनस्त्रयाणामप्यनियतम्। अत्र च पञ्चकं जघन्यम्, सहस्रं मध्यमम्, शत सहस्रकमुत्कृष्टतम्॥

अर्थात् इस दूकान पर साधारण व्यक्ति से जिसका मूल्य पाँच रुपया लिया जाता था, इब्भ-श्रेष्ठि आदि से उसी का मूल्य सहस्र रुपया और चक्रवर्ती आदि से लाख रुपया लिया जाता था।

इस सम्बन्ध में विशेषावश्यक की टीका (पत्र ९९४-२) में लिखा है :—

(१) अस्मिश्च कुत्रिकापणे वणिजः कस्यापि मन्त्र्याधाराधितः सिद्धा व्यन्तर सुरः क्रायक जन समीहितं सर्वमपि वस्तु कुतोऽप्यानीय संपादयति······

(२) अन्येतु वदन्ति—'वणिग् रहितः सुराधिष्ठिता एव तं आपणा भवन्ति। ततो मूल्य द्रव्यमपि एवं व्यन्तर सुरः स्वीकारोति।

(१) दूकान का मालिक किसी व्यन्तर को सिद्ध कर लेता था। वही व्यन्तर वस्तुओं की व्यवस्था कर देता था।

(२) पर, अन्य लोगों का कहना है कि ये दूकानें वणिक्-रहित होती थीं। व्यन्तर ही उनको चलाते थे और द्रव्य का मूल्य भी वे ही स्वीकार करते थे।

बृहत्कल्पसूत्र सभाष्य (विभाग ४, पृष्ठ ११४५) में उज्जैनी में चण्डप्रद्योत के काल में ९ कुत्रिकापण होने का उल्लेख है —

पज्जोए णरसीहे णव उज्जेणीय कुत्तिआ आसी

उज्जैनी के, अतिरिक्त राजगृह में भी कुत्रिकापण था (बृहत् कल्पसूत्र सभाष्य, विभाग ४, गाथा ४२२३, पृष्ठ ११४६)।

—: ❀ :—

१४-वाँ वर्षावास

ऋषिभदत्त-देवानन्दा की प्रव्रज्या

वर्षावास समाप्त होने के बाद, अपने परिवार के साथ ग्रामानुग्राम में विहार करते हुए, भगवान् महावीर ने विदेह की ओर प्रस्थान किया और ब्राह्मणकुण्ड ग्राम पहुँचे[1], इसके निकट ही बहुशाल-चैत्य था। भगवान् अपनी परिषदा के साथ इसी बहुशाल्य चैत्य में ठहरे।

इसी ग्राम में, ऋषभदत्त-नाम का ब्राह्मण रहता था। उसका उल्लेख हम 'तीर्थंकर महावीर' (भाग १, पृष्ठ १०२) में गर्भपरिवर्तन के प्रसंग में कर आये हैं। आचारांग सूत्र (बाबू धनपत सिंह वाला, द्वितीय श्रुतस्कंध, पृष्ठ २४३) में तथा कल्पसूत्र सुबोधिका-टीका सहित, सूत्र ७ (पत्र ३२) में उसका ब्राह्मण होना लिखा है। केवल इतना ही उल्लेख आवश्यक चूर्णि (पूर्वार्द्ध, पत्र २३६) में भी है। पर, भगवतीसूत्र सटीक (शतक ९, उद्देशः ६, सूत्र ३८० पत्र ८३७) में उसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं माहणकुण्डग्गामे नयरे होत्था, वन्नओ, बहुसालए चेतिए[2], वन्नओ, तत्थ णं माहण-

---

१. इस ब्राह्मणकुण्ड ग्राम की स्थिति के सम्बन्ध में हमने 'तीर्थंकर महावीर' भाग १, पृष्ठ ६०–८६ पर विपद् रूप से विचार किया है। जिज्ञासु पाठक वहाँ देख सकते हैं। राजेन्द्राभिधान भाग ६, पृष्ठ २६८ तथा पाइअसद्दमहण्णवो, पृष्ठ ८५३ में उसे मगध देश में बताया गया है। यह वस्तुत उन कोषकारों की भूल है।

२. पुप्फ भिक्खु (फूलचन्द जी)—सम्पादित 'जीवन-श्रेयस्कर-पाठमाला' भाग २ (भगवई—विवाह पण्णत्ती) पृष्ठ ५९१ पर सम्पादकने 'चेतिये' पाठ बदल कर

कुंडग्गामे नयरे उसभदत्ते नामं माहणे परिवसति अड्ढे दित्ते वित्ते जाव अपरिभूए रिउवेद, जजुवेद, सामवेद अथव्वणवेद जहा खंदओ जाव अन्नेसु य बहुसु बभन्नएसु नएसु सुपरिनिट्ठए समणोवासए......

भगवतीसूत्र के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि, जहाँ वह चारों वेदों आदि का पंडित था, वहीं वह 'श्रावक' भी था। कल्पसूत्र आदि तथा भगवतीसूत्र के पाठ की तुलना से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि, वह ऋषभदत्त बाद में श्रमणोपासक हो गया था।

इस ऋषभदत्त की पत्नी देवानंदा थी।

भगवान् के आने की सूचना समस्त ग्राम में फैल गयी। सूचना पाते ही, ऋषभदत्त अपनी पत्नी देवानंदा के साथ भगवान् का वंदन करने चला।

जब ऋषभदत्त भगवान् महावीर स्वामी के निकट पहुँचा तो वह पाँच अभिगमों[1] (मर्यादा) से युक्त होकर [१ सचित्त वस्तुओं

(पृष्ठ २० की पादटिप्पणि का शेषांश)

'उज्जाणे' कर दिया है। स्थानकवासी साधु अमोलक ऋषि ने जो भगवती छपवायी थी उसमें पत्र १३३४ पर 'चेइए' ही पाठ है और उसके आगे वर्णक जोड़ने को लिखा है। स्थानकवासी विद्वान शतावधानी जैनमुनि रत्नचन्द्र जी ने भी अर्द्धमागधी कोष, भाग २, पृष्ठ ७३८ पर 'चेइए' शब्द में 'बहुसाल चेइए' दिया है।

भगवती के प्रारम्भ में ही राजगृह के गुणशिलक चैत्य का उल्लेख है। वहाँ वर्णक जोड़ने की बात नहीं कही गयी है। चैत्य के वर्णक का पूरा पाठ औपपातिकसूत्र सटीक सूत्र २ (पत्र ८) में आता है। अतः यहाँ बहुसाल चैत्य के प्रसंग में उसका अर्थ उद्यान कदापि नहीं हो सकता।

पुप्फ भिक्खु ने ऐसे और कितने ही अनधिकार परिवर्तन पाठ में किये हैं।

१. भगवतीसूत्र, शतक ९, उद्देशः ६, सूत्र ३८० पत्र ८४० में पाँच अभिगमों का उल्लेख है। उसका पूरा पाठ भगवती सूत्र शतक २, उद्देशः ५ सूत्र १०८ (सटीक पत्र २४२) में इस प्रकार है :—

का त्याग, २ वस्त्रों को व्यवस्थित मर्यादा में रखना, ३ दुपट्टे का उत्तरा संग करना, ४ दोनों हाथ जोड़ना, ५ मनोवृत्तियों को एकाग्र करना] वह भगवान् के पास गया। तीन बार उनकी परिक्रमा करके, उसने भगवान् का वंदना की और देशना सुनने बैठा ! वंदन करने के बाद देवानन्दा भी बैठी। उस समय वह रोमांचित हो गयी और उसके स्तन से दूध की धारा बह निकली। उसके दोनों नेत्रों में आनन्दाश्रु आ गये।

उस समय गौतम स्वामी ने भगवान् की वंदना करके पूछा—"हे भगवान्! देवानंदा रोमांचित क्यों हो गयी ? उसके स्तन से क्यों दूध की धारा बह निकली ?"

इसके उत्तर में भगवान् महावीर ने कहा—"हे गौतम ? देवानंदा

(पृष्ठ २१ की पादटिप्पणि का शेषांश)

पच विहेणं अभिगमेणं अभिगच्छन्ति तंजहा—सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए १, अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए २, एगसाडिएणं उत्तरासंगकरणेणं ३ चक्खुप्फासे अंजलिप्पगहेणं ४ मणसो एगत्ती करणेणं ५.........

'सच्चित्ताणं' त्ति पुष्पताम्बूलादीनां 'विउसरणयाए' त्ति 'व्यवसर्जनया' त्यागेन१, 'अच्चित्ताणं' ति वस्त्रमुद्रिकादीनाम् 'अविउसरणयाए' त्ति अत्यागेन२, 'एगसाडिएणं' ति अनेकोत्तरीय शाटकानां निषेधार्थमुक्तम् 'उत्तरासंग करणेन' त्ति उत्तरासङ्ग उत्तरीयस्य देहे न्यासविशेषः ३, 'चक्षुः स्पर्शः' दृष्टिपाते 'एगत्ती-करणेन' ४ त्ति अनेक त्वस्य अनेकालम्बन त्वस्यएकत्व करणम्—एकालम्बनत्व करण मेकत्रीकरणं तेन ५......

इन अभिगमों का विस्तृत वर्णन धर्मसंग्रह (गुजराती भाषान्तर, भाग १, पृष्ठ ३७१-३७२) में है।

औपपातिकसूत्र सटीक सूत्र १२, पत्र ४४ में राजा के भगवान् के पास जाने का उल्लेख है। जब राजा भगवान् के पास जाता है तो वह पंच राजचिह्न का भी त्याग करता है :—खग्गं १, छत्तं २, उप्फेसं ३, वाहणाओ ४, वालवी अणं ५, (१ खड्ग, २ छत्र, ३ मुकुट, ४ वाहन, ५ चामर)।

ब्राह्मणी मेरी माता है। मैं इस देवानंदा ब्राह्मणी का पुत्र हूँ। पुत्रस्नेह के कारण देवानन्दा रोमांचित हुई।[1]

तब तक भगवान् के गर्भपरिवर्तन की बात किसी को भी ज्ञात नहीं थी। भगवान् के इस कथन पर ऋषभदत्त-देवानन्दा सहित पूरी पर्षदा को आश्चर्य हुआ।[2]

भगवान् महावीर ने ऋषभदत्त ब्राह्मण, देवानन्दा ब्राह्मणी तथा उपस्थित विशाल पर्षदा को धर्मदेशना दी। उसके बाद लोग वापस चले गये।

१—(अ) भगवती सूत्र सटीक में इसका उल्लेख इस प्रकार है :—

गोयमा! देवाणंदा माहणी ममं अम्मगा, अहं णं देवाणंदाए माहणीए अत्तए, तए णं सा देवाणंदा माहणी तेणं पुव्व पुत्तसिहेणरागेणं आगयपण्हया जाव समूसवियरोमक्खा……

—शतक ६, उद्देशः ६, सूत्र ३८१, पत्र ८४०

इसकी टीका इस प्रकार दी है :—

प्रथम गर्भाधान काल सम्भवो यः पुत्रस्नेह लक्षणोऽनुरागः स पूर्व पुत्रस्नेहानुरागस्तेन —पत्र ८४५

(आ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर्व १०, सर्ग ८ में इससे अधिक स्पष्ट रूप में वर्णन है :—

अथाख्यद्भगवान् वीरो गिरा स्तनितधीरया।
देवानां प्रिय भो देवानन्दायाः कुक्षिजोऽस्म्यहम् ॥१०॥
दिवश्च्युतोऽहमुषितः कुक्षावस्या द्व्यशीत्यहम्।
अज्ञात परमार्थापि तेनैषा वत्सला मयि ॥११॥ —पत्र ९९-२

२—(अ) देवानन्दर्षभदत्तौ मुमुदाते निशम्य तत्।
सर्वा विसिष्मिये पर्षत्तादृगपूर्विणी ॥१२॥

—त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग ८, पत्र ९९–२

अस्सुयपुव्वे सुणिए को वा नो विम्हयं वहइ ॥२॥

—महावीर-चरियं, गुणचन्द्र-रचित, पत्र २५९–२

अंत में ऋषभदत्त ने भगवान् महावीर के पास जाकर दीक्षा लेने की अनुमति माँगी। फिर, ऋषभदत्त ईशान दिशा में गया। वहाँ आभरण, माला, अलंकार आदि सब उतार कर उसने पंच मुष्टि लोच किया और प्रभु के निकट आकर तीन बार प्रदक्षिणा की और प्रव्रज्या ले ली।

उसने सामायिक आदि तथा ११ अंगों का अध्ययन किया। छठ-अट्ठम-दशम आदि अनेक उपवास किये और विचित्र तप-कर्मों से बहुत वर्षों तक आत्मा को भावित करता हुआ साधु-जीवन व्यतीत करता रहा अंत में एक मास की संलेखना करके ६० वेला का अनशन किया और मर कर मोक्ष प्राप्त किया।

उसी समय देवानन्दा ब्राह्मणी ने भी दीक्षा ले ली और आर्यचन्दना के साथ रहने लगी। उसने भी सामायिक आदि तथा ११ अंगों का अध्ययन किया तथा विभिन्न तपस्याएँ कीं। अंत में वह भी सर्व दुःखों से मुक्त हुई।[1]

जमालि की प्रव्रज्या

ब्राह्मणकुंड के पश्चिम में क्षत्रियकुंड-नामक नगर था। उस ग्राम में जमालि-नामक राजकुमार रहता था। यह जमालि भगवान् की बहन सुदंसणा[2] का पुत्र था—ऐसा उल्लेख कितने ही जैन-शास्त्रों में आता है।

(१) इहैव भरत क्षेत्रे कुण्डपुरं नामं नगरम्। तत्र भगवतः श्री महावीरस्य भागिनेयो जामालिर्नाम राजपुत्र आसीत्…

—सटीक विशेषावश्यक भाष्य, पत्र ९३५

१—भगवती सूत्र सटीक, शतक ९, उद्देशा ६, पत्र ८३७–८४५। यह कथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर्व १०, सर्ग ८ श्लोक १–२७ पत्र ९९–१—९९–२ में तथा गुणचन्द्र रचित महावीरचरियं, अष्टम् प्रस्ताव, पत्र २५५–१—२६०–१ में भी आती है।

२—भगिणी सुदंसणा…

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, सूत्र १०९, पत्र २६१

(२) कुण्डपुरं नगरं, तत्थ जमाली सामिस्स भाइणिज्जो…

—आवश्यक हरिभद्रीय टीका, पत्र ३१२–२

(३) महावीरस्य भगिनेयो

—ठाणांग सूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध, पत्र ४१०–२

(४) तेणं कालेणं तेणं समएणं कुंडपुरं नयरं। तत्थ सामिस्स जेट्ठा भगिणी सुदंसणा नाम। तीए पुत्तो जमालि…

—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, पत्र ६९–१, उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य की टीका पत्र १५३–१

जमालि का विवाह भगवान की पुत्री से हुआ था। इसका भी जैन-शास्त्रों में कितने ही स्थलों पर उल्लेख है :—

(१) तस्य भार्या श्रीमन्महावीरस्य दुहिता…

—सटीक विशेषावश्यक भाष्य, पत्र ९३५

(२) तस्स भज्जा सामिणो धूया…

उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, पत्र ६९-१

(३) तस्य भार्या स्वामिनो दुहिता…

—आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, पत्र ३१२-२

विशेषावश्यक भाष्य सटीक में भगवान् की पुत्री के तीन नाम दिये हैं :—

ज्येष्ठा, सुदर्शना तथा अनवद्या[1]

(१)—पत्र ९३५

पर कल्पसूत्र (सूत्र १०९,) में महावीर स्वामी की पुत्री के केवल दो नाम दिये हैं—अणोज्जा और पियदंसणा

जमालि ने एक दिन देखा कि, बहुत बड़ा जन-समुदाय क्षत्रियकुण्ड

१—आवश्यक की हारिभद्रीय टीका में भी ये तीन नाम दिये हैं। पर नेमिचन्द्रकी उत्तराध्ययन की टीका में (पत्र ६९-१) नाम अशुद्ध रूप में अणुज्जंगी छप गया है।

१५-वाँ वर्षावास

जयन्ती की प्रव्रज्या

वैशाली से विहार करके भगवान् महावीर वत्स-देश की ओर गये। वत्स-देश की राजधानी कौशाम्बी थी। वहाँ चन्द्रावतरण नामका चैत्य था। उस समय कौशाम्बी-नगरी में राजा सहस्रनीक का पौत्र, शतानीक[1] का पुत्र, वैशाली के राजा चेटक की पुत्री मृगावती देवी का पुत्र उदयन[2]-नामक राजा राज्य करता था। उदयन की बूआ (शतानीक की बहन) जयन्ती श्रमणोपासिका थी।

भगवान् के आगमन का समाचार सुनकर मृगावती अपने पुत्र उदयन के साथ भगवान् का वन्दन करने आयी। भगवान् ने धर्मदेशना दी।

भगवान् का धर्मोपदेश सुनने के बाद जयन्ती ने भगवान् से पूछा—"भगवन्! जीव गुरुत्व को कैसे प्राप्त होता है?"

भगवान् ने कहा—"हे जयन्ती, १ प्राणातिपात, २ मृषावाद, ३ अदत्तादान, ४ मैथुन, ५ परिग्रह, ६ क्रोध, ७ मान, ८ माया, ९ लोभ, १० प्रेम, ११ द्वेष, १२ कलह, १३ दोषारोपण, १४ चाड़ी-चुगली, १५ रति और अरति, १६ अन्य की निन्दा, १७ कपट पूर्वक मिथ्या भाषण, १८ मिथ्या-दर्शन अठारह दोष हैं। इनके सेवन से जीव भारीपने को प्राप्त होता है। और चारों गतियों में भटकता है।"

जयन्ती—"भगवान्, आत्मा लघुपने को कैसे प्राप्त होती है?"

१—विस्तृत विवरण राजाओं के प्रसंग में देखिये।

२—विस्तृत विवरण राजाओं के प्रसंग में देखिये।

भगवान्—"प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शन के अटकाव से जीव हल्केपने को प्राप्त होता है। इस प्राणातिपात आदि करने से जिस प्रकार जीव संसार को बढ़ाता है, लम्बा करता है, संसार में भ्रमता है, उसी प्रकार प्राणातिपात आदि की निवृत्ति से वह संसार को घटाता है, छोटा करता है और उलंघन कर जाता है।"[1]

जयन्ती—"भगवन्! मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव को स्वभाव से प्राप्त होती है या परिणाम से?"

भगवान्—"मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता स्वभाव से है, परिणाम से नहीं।"

जयन्ती—"क्या सब भवसिद्धक मोक्षगामी हैं?"

भगवान्—"हाँ! जो भवसिद्धक हैं, वे सब मोक्षगामी हैं।"

जयन्ती—"भगवन्! यदि सब भवसिद्धक जीवों की मुक्ति हो जायेगी, तो क्या यह संसार भवसिद्धक जीवों से रहित हो जायेगा?"

भगवान्—"हे जयन्ती, ऐसा तुम क्यों कहती हो? जैसे सर्वाकाश की श्रेणी हो, वह आदि अनन्त हो, वह दोनों ओर से परिमित और दूसरी श्रेणियों से परिवृत हो, उसमें समय-समय पर एक परमाणु पुद्गल खंड

१—इसका पूरा पाठ भगवतीसूत्र सटीक शतक १, उद्देशः ६, सूत्र ७३ पत्र १६७ में आता है। उस सूत्र के अन्त में (पत्र १६८) पाठ आता है:—

पसत्था चत्तारि अपसत्था चत्तारि

इसकी टीका करते हुए अभयदेव सूरि ने लिखा है:—'पसत्था चत्तारि' त्ति लघुत्वपरीतत्वह्रस्वत्वव्यतिव्रजनदंडकाः प्रशस्ताः मोक्षाङ्गत्वात्, 'अपसत्था चत्तारि' त्ति गुरुत्वा कुलत्व दीर्घत्वानुपरिवर्त्तन दण्डकाः अप्रशस्ता अमोक्षाङ्ग त्वादिति

अर्थात् चार १ हलकापन, २ संसार का घटाना, ३ संसार का छोटा करना और ४ संसार का उलंघन करना प्रशस्त है; क्योंकि वे मोक्ष के अंग हैं और १ भारीपन २ संसारपने को बढ़ाना, ३ संसार का लम्बा करना और ४ संसार में भ्रमना अप्रशस्त हैं; क्योंकि वे अमोक्ष के अंग हैं।

काढ़ता-काढ़ता अनन्त उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी व्यतीत कर दे; पर फिर भी वह श्रेणी खाली नहीं होने की, इसी प्रकार, हे जयन्ती, भवसिद्धक जीवों के सिद्ध होने पर भी यहाँ संसार भवसिद्धकों से खाली नहीं होने का।"

जयन्ती—"सोता हुआ अच्छा है या जागता हुआ अच्छा है?"

भगवान्—"कितने जीवों का सोना अच्छा है और कितने जीवों का जागना अच्छा है।"

जयन्ती—"यह आप कैसे कहते हैं कि, कितने जीवों का सोना अच्छा है और कितने जीवों का जागना अच्छा है?"

भगवान्—"हे जयन्ती! जो जीव अधार्मिक है, अधर्म का अनुसरण करता है, अधर्म जिसे प्रिय है, अधर्म कहनेवाला है, अधर्म का देखनेवाला है, अधर्म में आसक्त है, अधर्माचरण करनेवाला है, अधर्मयुक्त जिसका आचरण है, उसका सोना अच्छा है। ऐसा जीव जब सोता रहता है तो बहुत-से प्राणों के, भूतों के, जीवों के, और सत्त्वों के शोक और परिताप का कारण नहीं बनता। जो ऐसा जीव सोता हो, तो उसकी अपनी और दूसरों की बहुत-सी अधार्मिक संयोजना नहीं होती। इसलिए ऐसे जीवों का सोना अच्छा है।

"और, हे जयन्ती! जो जीव धार्मिक और धर्मानुसारी हैं तथा धर्म-युक्त जिसका आचरण है, ऐसे जीवों का जागना ही अच्छा है। जो ऐसा जीव जागता है तो बहुत-से प्राणियों के अदुःख और अपरिताप के लिए कार्य करता है। जो ऐसा जीव जागता हो तो अपना और अन्य लोगों के लिए धार्मिक संयोजना का कारण बनता है। ऐसे जीव का जागता रहना अच्छा है।

"इसीलिए, मैं कहता हूँ कि कुछ जीवों का सोता रहना अच्छा है और कुछ का जागता रहना।"

जयन्ती—"भगवन्! जीवों की दुर्बलता अच्छी है या सबलता?"

भगवान्—"कुछ जीवों की सबलता अच्छी है, और कुछ जीवों की दुर्बलता अच्छी है।"

जयन्ती—"हे भगवन्! यह आप कैसे कहते हैं कि, कुछ जीवों की दुर्बलता अच्छी है और कुछ की सबलता?"

भगवान्—"हे जयन्ती! जो जीव अधार्मिक हैं और जो अधर्म से जीविकोपार्जन करते हैं, उन जीवों के लिए दुर्बलता अच्छी है। जो यह दुर्बल हो तो दुःख का कारण नहीं बनता।

"जो जीव धार्मिक है उसका सबल होना अच्छा है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि कुछ की दुर्बलता अच्छी है, कुछ की सबलता!"

जयन्ती—"हे भगवन्! जीवों का दक्ष और उद्यमी होना अच्छा है या आलसी होना?"

भगवान्—"कुछ जीवों का उद्यमी होना अच्छा है और कुछ का आलसी होना।"

जयन्ती—"हे भगवन्! यह आप कैसे कहते हैं कि कुछ का उद्यमी होना अच्छा है और कुछ का आलसी होना?"

भगवान्—"जो जीव अधार्मिक है और अधर्मानुसार विचरण करता है उसका आलसी होना अच्छा है। जो जीव धर्माचरण करते हैं उनका उद्यमी होना अच्छा है; क्योंकि धर्मपरायण जीव सावधान होता है, तो वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान (रुग्ण), शैक्ष, गण, संघ और सधार्मिक का बड़ा वैयावृत्य (सेवा-सुश्रुषा) करता है।"

जयन्ती—"हे भगवान्! श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभूत पीड़ित जीव क्या कर्म बाँधता है?"

भगवान्—"क्रोध के वश में हुए के सम्बन्ध में मैं बता चुका हूँ कि वह संसार में भ्रमण करता है। इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभूत जीव

ही नहीं, चक्षुइन्द्रिय से स्पर्श इन्द्रिय[1] तक पाँचों इन्द्रियों का वशीभूत जीव संसार में भ्रमता है।"

भगवान् के उत्तर से सन्तुष्ट होकर जयन्ती ने प्रव्रज्या ले ली।[2]

सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठ की दीक्षा

वहाँ से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् श्रावस्ती आये। इसी अवसर पर सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठ ने दीक्षा ली।

सुमनोभद्र ने वर्षों तक साधु-धर्म का पालन किया और विपुल पर्वत (राजगृह) पर मुक्ति प्राप्त की।

सुप्रतिष्ठ ने २७ वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर विपुल पर्वत (राजगृह) पर मोक्ष प्राप्त किया।[3]

आनन्द का श्रावक होना

वहाँ से ग्रामानुग्राम विहार कर भगवान् वाणिज्य ग्राम गये। वहाँ आनन्द-नामक गृहपति ने श्रावक-धर्म स्वीकार किया। उसका विस्तृत वर्णन हमने मुख्य श्रावकों के प्रसंग में किया है। भगवान् ने अपना चातुर्मास वाणिज्यग्राम में बिताया।

१—पंच इंदियत्था पं० तं०—सोतिंदियत्थे जाव फासिंदियत्थे

—ठाणांगसूत्र, ठाणा ५, उद्देशः ३, सूत्र ४४३ पत्र ३३४-२

इन्द्रियों के विषय पाँच हैं:—१ श्रोत्रेन्द्रिय का विषय—शब्द, २ चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप, ३ घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध, ४ जिह्वेन्द्रिय का विषय रस और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्श।

१६-वाँ वर्षावास

धान्यों की अंकुरोत्पत्ति-शक्ति

वर्षावास बीतने के पश्चात् भगवान् ने वाणिज्यग्राम से मगध-देश की ओर विहार किया और ग्रामानुग्राम रुकते हुए तथा धर्मोपदेश देते हुए राजगृह के गुणशिलक-चैत्य में पधारे। राजा आदि उनका धर्मोपदेश सुनने गये।

इस अवसर पर गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! शालि[1], व्रीहि[2], गोधूम (गेहूँ), यव और यवयव[3] धान्य यदि कोठले में हों ('कोट्ठाउत्ताणं' त्ति कोष्ठे—कुशूले, आगुतानि—तत्प्रक्षेपणेन संरक्षणेन

१—'सालीणं' ति कलमादीनां—भगवतीसूत्र सटीक शतक ६, उ० ७ पत्र ४९९। 'कलम' का अर्थ करते हुए 'आप्टेज संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी, भाग १, पृष्ठ ५४५ पर लिखा है कि यह चावल मई-जून में बोया जाता है तथा दिसम्बर-जनवरी में तैयार होता है। श्रीमद्वालमीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग १४, श्लोक १५ में आता है—

प्रसूतं कलमं क्षेत्रे वर्षेणेव शतक्रतुः' (पृष्ठ ३४२)

अभिधान-चिन्तामणि सटीक भूमिकाण्ड, श्लोक २३५ पृष्ठ ४७१ में शालि और कलम समानार्थी बताये गये हैं। वहाँ आता है :

शालयः कलमाद्यास्तु कलमस्तु कलामकः।
लोहितो रक्तशालिः स्याद् महा शालि सुगन्धिकः॥

२—'व्रीहि' ति सामान्यतः—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ४९९। साधारण धान

३—'जवजवाणं' ति यवविशेषणाम्—भगवतीसूत्र सटीक पत्र ४९९, अमोलक ऋषि ने इसका अर्थ ज्वार लिखा है (भगवती सूत्र, पत्र ८२२)

संरक्षितानि कोष्ठागुप्तानि), बाँस की बनी डाल में हों ('पल्लाउत्ताणं' त्ति इह पल्यो—वंशादिमयो धान्याधारविशेषः) मचान पर हों, मकान के ऊपर के भाग में हों ('मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं' मित्यत्र मञ्चमाल-योर्भेदः "अक्कुड्डे होइ मंचो, य घरोवरिं होति"—अभित्तिको मञ्चो मालश्च गृहोपरि भवति) अंदर रख कर द्वार पर गोबर से लीप दिया गया हो ('ओलित्ताणं' ति द्वारदेशे पिधानेन सह गोमयादिनाऽवलिप्तानाम्), रखकर पूरा गोबर से लीप दिया गया हो ('लित्ताणं' तिसर्वतो गोमयादिनैव लिप्तानां), रखकर ढँक दिया गया हो ('पिहियाणं' ति स्थगितानां तथा विधाच्छादनेन), मुद्रित कर दिया गया हो ('मुद्दियाणं' ति मृत्तिकादि मुद्रावतां), लांछित कर दिया गया हो ('लंछियाणं' ति रेखादि कृत लाञ्छनानां) तो उनमें अंकुरोत्पत्ति की हेतुभूत शक्ति कितने समय तक कायम रहेगी ?"

भगवान्—"हे गौतम ! उनकी योनि कम-से-कम एक अन्तर्मुहूर्त तक कायम रहती है और अधिक-से-अधिक तीन वर्ष तक कायम रहती है। उसके बाद उनकी योनि म्लान हो जाती है, प्रतिध्वंस हो जाती है और वह बीज अबीज हो जाता है। उसके बाद, हे श्रमणायुष्मन् ! उसकी उत्पादन-शक्तिव्युच्छेद हुई कही जाती है।"

गौतम—"हे भन्ते ! कलाय[१], मसूर, मूँग, उड़द, निष्फाव[२], कलत्थी, आलिसंदग[३], अरहर[४], गोल काला चना[५] ये धान्य पूर्वोक्त विशेषण वाले हों तो उनकी योनि-शक्ति कितने समय तक कायम रहेगी।"

१—'कलाय' त्तिकलाया वृत्तचनकाः इत्यन्ये—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ४९९

२—'निप्फाव' त्ति वल्लाः—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ४९९ एक प्रकारकी दाल

३—'आलिसन्दग' त्ति चवलक प्रकाराः, चवलका एवान्ये—भगवतीसूत्र सटीक पत्र ४९९

४—'सईण' त्ति तुवरी—भगवती सूत्र सटीक, पत्र ४९९

५—'पलिमंथग' त्ति वृत्तचनकाः काल चनका इत्यन्ये—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ४९९

भगवान्—"जो कुछ शालि के लिए कहा, वही इसका भी उत्तर है। इनकी अवधि ५ वर्ष जाननी चाहिए। शेष पूर्व सदृश्य ही है।"

गौतम—"अलसी, कुसुंभग,[1] कोदव, कंगु, वरग,[2] रालग,[3] कोदूसण,[4] शग, सरसो, मूलगबीय[5] ये पूर्वोक्त विशेषण वाले हों तो इनकी योनि कितने काल तक रहेगी?

भगवान्—"सात वर्ष तक। शेष उत्तर पूर्व सदृश्य ही है।[6]

शालिभद्र की दीक्षा

राजगृह में शालिभद्र नामक एक व्यक्ति था। उसके पिता का नाम गोभद्र और माता का नाम भद्रा था। गोभद्र ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ले ली थी औ विधिपूर्वक अनशन करके देवलोक गया था।[7]

इस शालिभद्र को ३२ पत्नियाँ थीं और वह बड़े ऐश्वर्य से अपना

१—'कुसुंभग' त्ति लट्टा—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ४६६

२—'वरग' त्ति वरट्टो—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ४६६ वरें—संस्कृत-शब्दार्थ कौस्तुभ, पृष्ठ ७३८

३—'रालग' ति कङ्गु विशेषः—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ४६६

४—'कोदूसण' त्ति कोद्रव विशेषः—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ४६६

५—'मूलगबीय' त्ति मूलक बीजानि शाक विशेष बीजानीत्यर्थः—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ४६६

६—बीजों की योनि-शक्ति का उल्लेख प्रवचन-सारोद्धार सटीक (उत्तरार्द्ध) द्वार १५४, गाथा ६६५—१००० पत्र २६६-१ से २६७-१ में भी है। धान्यों के सम्बन्ध में श्रावकों के प्रकरण में धन-धान्य के प्रसंग में हमने विशेष विचार किया है। जिज्ञासु पाठक वहाँ देख लें।

७—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग १०, श्लोक ८४ पत्र १३३-१, उपदेशमाला सटीक गाथा २०, पत्र २५६ तथा भरतेश्वर-बाहुबलि-वृत्ति-भाग १, पत्र १०७-१ में भी गोभद्र के साधु होने का उल्लेख है।

दिन व्यतीत करता था। एक बार कोई व्यापारी[८] रत्नकम्बल बेचने आया। वह उन्हें बेचने श्रेणिक के पास ले गया। उन रत्नकम्बलों का मूल्य अधिक होने से श्रेणिक ने उन्हें खरीदने से इनकार कर दिया। घूमता-घामता वह व्यापारी शालिभद्र के घर पहुँचा। भद्रा ने सारे रत्नकम्बल खरीद लिये।

दूसरे दिन चिल्लणा ने श्रेणिक से अपने लिए रत्नकम्बल खरीदने को कहा। राजा ने व्यापारी को बुलवाया तो व्यापारी ने भद्रा द्वारा सारे रत्नकम्बल खरीदे जाने की बात कह दी। राजा ने भद्रा के यहाँ आदमी भेजा तो भद्रा ने बताया कि उन समस्त रत्नकम्बलों का शालिभद्र की पत्नियों के लिए पैर-पोंछना बनाया जा चुका है।

राजा को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने शालिभद्र को अपने यहाँ बुलवाया; पर शालिभद्र को भेजने के बजाय भद्रा ने श्रेणिक को अपने यहाँ आमन्त्रित किया।

भद्रा ने राजा के स्वागत-सत्कार की पूरी व्यवस्था कर दी।

राजा शालिभद्र के घर पहुँचा। चौथे महले पर वह सिंहासन पर बैठा। राजा शालिभद्र का ऐश्वर्य देखकर चकित रह गया।

शालिभद्र की माता श्रेणिक के आगमन की सूचना देने शालिभद्र के पास सातवें महले पर गयी और बोली—"श्रेणिक यहाँ आया है, उसे देखने चलो।" शालिभद्र ने उत्तर दिया—"इस सम्बन्ध में तुम सब कुछ जानती हो। जो योग्य मूल्य हो दे दो। मेरे आने का क्या काम है?" इस पर भद्रा ने कहा—"पुत्र, श्रेणिक कोई खरीदने की चीज नहीं है। वह लोगों का और तुम्हारा स्वामी है।"

८—वह नेपाल से आया था—पूर्णभद्र-रचित 'धन्य-शालिभद्र महाकाव्य, पत्र ५५, गद्यबद्ध धन्यचरित्र पत्र २१६-२

"उसका भी कोई अधिपति है", यह जानकर शालिभद्र बड़ा दुःखी हुआ और उसने महावीर स्वामी से व्रत लेने का निश्चय कर लिया।

पर, माता के अनुरोध पर वह श्रेणिक के निकट आया और उसने विनयपूर्वक राजा को प्रणाम किया। राजा ने उससे पुत्रवत् स्नेह दर्शाया और उसे गोद में बैठा लिया।

भद्रा बोली—"हे देव ! आप इसे छोड़ दें। यह मनुष्य है; पर मनुष्य की गन्ध से इसे कष्ट होता है। उसका पिता देवता हो गया है और वह अपने पुत्र और पुत्रवधुओं को दिव्य वेश अंगराग आदि प्रतिदिन देता है।"

यह सुन कर राजा ने शालिभद्र को विदा किया और वह सातवीं मंजिल पर चला गया।

शालिभद्र को ग्लानी थी ही, उसी बीच धर्मघोष-नाम के मुनि के उद्यान में आने की सूचना मिली। शालिभद्र उनकी वन्दना करने गया। वहाँ उसने साधु होने का निश्चय कर लिया और अपनी माता से अनुमति लेने घर आया।

माता ने उसे सलाह दी कि, यदि साधु होना हो तो धीरे-धीरे त्याग करना प्रारम्भ करो।

अतः, वह नित्य एक पत्नी और एक शैया का त्याग करने लगा।

जब इस बार भगवान् महावीर राजगृह आये तो शालिभद्र ने दीक्षा ले ली।[1]

१–त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग १० श्लोक ५७–१८१ पत्र १३२–१–१३६–१; भरतेश्वर-बाहुबलि–वृत्ति, भाग १, पत्र १०६–१११; उपदेश-माला सटीक, तृतीय विश्राम, पत्र २५५–२६१

इनके अतिरिक्त ठाणांगसूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध पत्र ५१०–१–५१०–२ में भी शालिभद्र की कथा आती है। शालिभद्रके सम्बन्ध में दो चरित्र–ग्रन्थ भी हैं—(१) पूर्णभद्र–रचित 'धन्य–शालिभद्र–महाकाव्य' और (२) ज्ञानसागर गणि–रचित गद्यबद्ध धन्य-चरित्र

धन्य की दीक्षा

उसी नगर में शालिभद्र की छोटी बहन का विवाह धन्य[1]-नामक व्यक्ति से हुआ था। उसकी बहन को अपने भाई के वैराग्य और एक-एक पत्नी तथा एक-एक शैय्या के त्याग का समाचार मिला तो वह बहुत दुःखित हुई। उसकी आँखों में आँसू आ गये। उस समय वह अपने पति को स्नान करा रहीं थीं। अपनी पत्नी[2] की आँखों में आँसू[3] देख कर धन्य ने कारण पूछा तो वह बोली—"मेरा भाई शालिभद्र व्रत लेने के विचार से प्रतिदिन एक-एक पत्नी और एक-एक शैया का त्याग कर रहा है।" सुनकर धन्य ने मजाक में कहा—"तुम्हारा भाई हीनसत्व लगता है।" इस पर उसकी पत्नी ने उत्तर दिया—"यदि व्रत लेना सहज है तो आप व्रत क्यों नहीं ले लेते।"

धन्य बोला—"मेरे व्रत लेने में तुम विघ्न-रूप हो। आज वह पूर्ण योग अनुकूल हुआ है। अब मैं भी सत्वर-व्रत लूँगा।" यह सुनकर उसकी पत्नी को बड़ा दुःख हुआ। वह कहने लगी—"नाथ! मैंने तो मजाक में कहा था।"

पर, धन्य अपने वचन पर दृढ़ रहा। बोला—"स्त्री, धन आदि सब अनित्य हैं और त्याज्य हैं। मैं तो अवश्य दीक्षा लूँगा।"

१–धन्य–चरित्र (गद्य) में धन्य के पिता का नाम धनसार और माता का नाम शीलवती दिया है (पत्र १५–२, १६–२)

२–जगदीशलाल शास्त्री–सम्पादित 'कथा-कोश' (पृष्ठ ६०) में धन्य की पत्नी का नाम सुभद्रा लिखा है। पूर्णभद्रगणि-रचित 'धन्यशालिभद्र महाकाव्य' में धन्य की पत्नी का नाम सुन्दरी लिखा है (पत्र २२–२)

३–श्रीधन्य चरित्र (गद्य) पत्र २७८–२ में धन्य की पत्नी की आँखों से धन्य के कन्धे पर आँसू गिरने का उल्लेख है—

"उष्णा अश्रु बिन्दवो धन्यस्य स्कन्ध द्वये पतुः"

और, भगवान् के राजगृह आने पर धन्य ने भी शालिभद्र के साथ दीक्षा ले ली।[1]

धन्य-शालिभद्र का साधु-जीवन

धन्य और शालिभद्र दोनों ही बहुश्रुत हुए और महातप करने लगे। शरीर की किञ्चित् मात्र चिन्ता किये बिना वे पक्ष, मास, द्विमासिक, त्रैमासिक तपस्या करके पारणा करते।

भगवान् महावीर के साथ विहार करते हुए वे एक बार फिर राजगृह आये। उस समय उन दोनों ने एक मास का उपवास कर रखा था। भिक्षा लेने जाने के लिए अनुमति लेने के विचार से वे भगवान् के निकट गये। भगवान् ने कहा—"आज अपनी माता से आहार लेकर पारणा करो।"

शालिभद्र मुनि धन्य के साथ नगर में गये। दोनों भद्रा के द्वार पर जाकर खड़े हो गये। उपवास के कारण वे इतने कृषकाय हो गये थे कि पहचाने भी नहीं जा सकते थे।

भगवान् के दर्शन करने के विचार में भद्रा व्यस्त थी। उसका ध्यान मुनियों की ओर नहीं गया।

उसी समय शालिभद्र की पूर्वभव की माता धन्या नगर में दही और घी बेचती निकली। शालिभद्र को देखकर उसके स्तन से दूध निकलने लगा। उसने मुनियों की वन्दना की और उन्हें भिक्षा में दही दिया।

वहाँ से लौट कर शालिभद्र भगवान् के पास आये और उन्होंने पूछा—"आप की आज्ञानुसार मैं माता के पास गया। पर, गोचरी क्यों नहीं मिली?" तब भगवान् ने बताया कि दही देनेवाली वह नारी तुम्हारे पूर्वभव की माता थी।

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग १०, श्लोक १३६–१४८ पत्र १३४–२—१३५–१

उसके बाद भद्रा भी भगवान् के पास आयी और उसने अपने पुत्र को भिक्षा लेने घर न आने का कारण पूछा। भगवान् ने उसे सारी बात बता दी।

भद्रा, श्रेणिक राजा के साथ, अपने पुत्र को देखने, वैभारगिरि पर गयी। अपने पुत्र की दशा देखकर वह दहाड़ मार-मार कर रोने लगी। श्रेणिक ने भद्रा को समझाया। श्रेणिकके समझाने पर भद्रा को प्रतिबोध हुआ और भद्रा तथा श्रेणिक दोनों अपने-अपने घर लौट आये।

धन्य और शालिभद्र दोनों मुनि काल को प्राप्त करके सर्वार्थसिद्ध-नामक विमान में प्रमोद-रूपी सागर में निमग्न हुए और ३३ सागरोपम के आयुष्य वाले देवता हुए।[1]

अपना वह वर्षावास भगवान् ने राजगृह में बिताया।

—: ❀ :—

[1]—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग १०, श्लोक १४९-१८१ पत्र १३५-१ से १३६-१

१७-वाँ वर्षावास

भगवान् चम्पा में

वर्षावास समाप्त होने के बाद भगवान् ने चम्पा की ओर विहार किया। चम्पा में पूर्णभद्र-नामक यक्षायतन था। भगवान् उस यक्षायतन के उद्यान में ठहरे।

उस समय चम्पा में दत्त-नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम रक्तवती था। दत्त-रक्तवती को महाचन्द्र-नामक पुत्र था। वही युवराज था। महाचन्द्र को ५०० पत्नियाँ थी, उनमें श्रीकान्ता प्रमुख थी।

भगवान् के आगमन का समाचार सुनकर राजा दत्त सपरिवार भगवान् की वन्दना करने गया। भगवान् ने धर्मदेशना दी। धर्मदेशना से महाचन्द्र बड़ा प्रभावित हुआ और उसने श्रावकों के व्रतों को स्वीकार किया।

महाचन्द्र बड़ी निष्ठा से श्रावक-व्रतों का पालन करता। एक बार पौषधशाला में धर्मजागरण करते हुए महाचन्द्र को विचार हुआ कि यदि भगवान् चम्पा पधारें तो मैं प्रव्रजित हो जाऊँ।

महाचन्द्र की दीक्षा

महाचन्द्र का विचार जानकर भगवान् महावीर पुनः चम्पा आये। महाचन्द्र अपने माता-पिता के समझाने पर भी दृढ़ रहा और भगवान् के निकट जाकर उसने प्रव्रज्या ले ली।

खाने की अनुमति दे दी जाती तो कालान्तर में छद्मस्थ साधु सचित्त तिल भी खाने लगते।

इसी विहार में प्यास से व्याकुल साधुओं को एक ह्रद दिखलायी पड़ा। उस ह्रद का जल अचित्त था। पर, भगवान ने उस ह्रद का जल पीने की अनुमति साधुओं को नहीं दी; क्योंकि इसमें भी भय था कि, सचित्त-अचित्त का भेद न जानने वाले छद्मस्थ साधुओं में ह्रद-जल पीने की प्रथा चल पड़ेगी।[1]

अंत में विहार करते हुए भगवान् वाणिज्यग्राम आये और अपना वर्षावास उन्होंने वहीं बिताया।

—:❀:—

१—बृहत्कल्पसूत्र साभाष्य वृत्ति सहित, विभाग २, गाथा ९९७–९९९ पृष्ठ ३१४–३१५

१८-वाँ वर्षावास

भगवान् वाराणसी में

वाणिज्यग्राम में वर्षावास पूरा करके भगवान् महावीर ने वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। वाराणसी में कोष्ठक-चैत्य था। भगवान् उसी चैत्य ठहरे। भगवान् के आने का समाचार सुनकर वाराणसी का राजा जितशत्रु उनकी वन्दना करने गया[१]। हमने राजाओं वाले प्रकरण में इसका उल्लेख किया है।

चुल्लिनी-पिता और सुरादेव का श्रावक होना

भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर चुल्लिनी-पिता और उसकी पत्नी श्यामा[२] तथा सुरादेव और उसकी पत्नी धन्या[३] ने श्रावक-व्रत ग्रहण किये। ये दोनों ही भगवान् के मुख्य श्रावकों में थे। मुख्य श्रावकों के प्रकरण में हमने में हमने उनके सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला है।

पुद्गल की प्रव्रज्या

वाराणसी से भगवान् आलभिया[४] गये। आलभिया में शंखवन-नामक

१—उवासगदसाओ (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) पृष्ठ ३२

२—वही, पृष्ठ ३२-३७

३—वही, पृष्ठ ३८-४०

४—आलभिया की स्थिति के सम्बन्ध में हमने 'तीर्थंकर महावीर', भाग १, पृष्ठ २०७ पर विचार किया है।

उद्यान था। आलभिया के राजा का भी नाम जितशत्रु था। शंखवन में भगवान् के आने का समाचार सुनकर जितशत्रु भगवान् की वन्दना करने गया।[1]

आलभिया के शंखवन के निकट ही पुद्गल-नामक परिव्राजक[2] रहता था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों में पारंगत था। निरन्तर ६ टंक का उपवास करने से तथा हाथ ऊँचा करके आतापना लेते रहने रहने से शिव राजर्षि के समान उसे विभंग ज्ञान (विपरीत ज्ञाना) उत्पन्न हो गया।

उस विभंग ज्ञान के कारण वह ब्रह्मलोक कल्प में स्थित देवों की स्थिति जानने और देखने लगा। अपनी ऐसी स्थिति देखकर उसे यह विचार उत्पन्न हुआ—"मुझे अतिशय वाले ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो गये हैं। देवों की जघन्य स्थिति १० हजार वर्षों की है और पीछे एक समय अधिक दो समय अधिक यावत् असंख्य समय अधिक करते उनकी १० सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति होती है। उसके आगे न देवता हैं और न देवलोक।'

ऐसा विचार कर आतापना-भूमि से नीचे उतर त्रिदंड, कुंडिका तथा भगवा वस्त्र ग्रहण करके वह आलभिया नगरी में तापसों के आश्रम में गया।

और, घूम-घूमकर सर्वत्र कहने लगा—"हे देवानुप्रियों! मुझे अतिशय वाले ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हुए हैं।" ऐसा कहकर वह अपने मत का प्रचार करने लगा।

१—उवासगदसाओ [पी० एल० वैद्य-सम्पादित] पृष्ठ ४१। इसका वर्णन हमने राजाओं के प्रकरण में किया है।

२—तापसों का विस्तृत वर्णन हमने 'तीर्थंकर महावीर', भाग १, पृष्ठ ३३९-३४८ में किया है।

गौतम स्वामी जब भिक्षाटन के लिए गये, तो उन्होंने पुद्गल-सम्बन्धी चर्चा सुनी। भिक्षाटन से लौटकर गौतम स्वामी ने पुद्गल के प्रचार की चर्चा भगवान् से की।

भगवान् ने पुद्गल का प्रतिवाद करते हुए कहा—'देवों की आयुष्य-स्थिति कम-से-कम १० हजार वर्ष और अधिक-से-अधिक ३३ हजार साग-रोपम की है। उसके उपरान्त देव और देवलोक का अभाव है।"

भगवान् महावीर की बात पुद्गल के कानों तक पहुँची तो उसे अपने ज्ञान पर शंका उत्पन्न हो गयी। वह भगवान् के पास शंखवन-उद्यान में गया। उसने उनकी वन्दना की तथा भगवान् का प्रवचन सुनकर संघ में सम्मिलित हो गया।

अन्त में शिवराजर्षि के समान तपस्या करके पुद्गल ने मुक्ति प्राप्त की।[1]

चुल्लशतक श्रावक हुआ

इसी विहार में चुल्लशतक और उसकी स्त्री बहुला ने श्रावक-धर्म स्वीकार किया।[2] उनका सविस्तार वर्णन हमने श्रावकों के प्रसंग में किया है।

वहाँ से विहार कर भगवान् राजगृह आये।

भगवान् राजगृह में

राजगृह की अपनी इसी यात्रा में भगवान् महावीर ने मंकाती, किंक्रम, अर्जुन, काश्यप को दीक्षित किया। इनका वर्णन अंतगडदसा में आता है। अंतगड शब्द की टीका कल्पसूत्र की सुबोधिका-टीका में इस प्रकार दी है :—

१—भगवतीसूत्र सटीक शतक ११, उद्देशा १२, सूत्र ४३६ पत्र १०११-१०१३

२—उवासगदसाओ (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) पंचम अध्ययन, पृष्ठ ४१-४२

अन्तकृत् सर्वदुखानाम्[1]

समवायांगसूत्र सटीक समवाय १४३ में 'अंतगड'[2] शब्द पर बड़े विशद् रूप में प्रकाश डाला गया है और तद्रूप ही उसकी टीका ठाणांगसूत्र सटीक में की गयी है :—

अंतो—विनाशः स च कर्म्मणस्तत्फल भूतस्य वा संसारस्य कृतो यैस्तेऽन्तकृतः ते च तीर्थकराद्यास्तेषां दशाः अन्तकृद्दशाः ।[3]

—अर्थात् जो कर्म और उसके फलभूत संसार का विनाश करता है, वह अंतकृत तीर्थंकरादि हैं। और, उनकी दशा अंतकृद्दशा है।[4]

मंकाती की दीक्षा

यह मंकाती गृहपति[5] था। गंगादत्त के समान इसने अपने सबसे बड़े पुत्र को गृहभार सौंप दिया और स्वयं भगवान् के निकट जाकर साधु हो गया। उसने अन्य साधुओं के साथ सामायिक आदि ११ अंगों का अध्ययन किया। गुणरत्न-संवत्सर-तपकर्म किया। इसे केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। १६ वर्ष पर्याय पालकर विपुल पर्वत पर पादपोपगमन[6] करके सिद्ध हुआ।[7]

१—कल्पसूत्र सुबोधिका-टीका सहित, व्याख्यान ६, सूत्र १२४ पत्र ३४४

२—समवायांगसूत्र सटीक, समवाय १४३, पत्र १११-११२

३—ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा १०, उद्देशः ३, सूत्र ७५५ पत्र ५०५—२ तथा ५०७—१

४—ठाणांगसूत्र टीका के अनुवाद-सहित, विभाग, ४, पत्र १७६—१

५—एल० डी० बार्नेट ने अन्तगड अणुत्तरोववाइय के अंग्रेजी-अनुवादमें 'गाहा-वई' का अर्थ 'जेंटिलमैन' लिखा है। मैंने आनन्द श्रावक के प्रसंग में इस शब्द पर विस्तृत रूप में विचार किया है।

६—देखिये समवायांग सटीक, समवाय १४३ पत्र ११२–१,
तथा नंदीसूत्र सटीक सूत्र ५३ पत्र २३२–२

७—अंतगड-अणुत्तरोववाइयदसाओ (एन०पी० वैद्य-सम्पादित) अंतगड, अध्याय ६, सूत्र ६४–६६ पृष्ठ २६

किंक्रम की दीक्षा

किंक्रम भी राजगृह का निवासी था। इसने भी अपने पुत्र को गृहस्थी सौंपकर भगवान् के निकट जाकर साधु-धर्म स्वीकार किया। सामायिक आदि और ११ अंगों का अध्ययन करके विभिन्न तप किये। केवल-ज्ञान प्राप्त किया और विपुल पर्वत पर पादपोपगमन करके सिद्ध हुआ।[१]

अर्जुन माली की दीक्षा

उसी नगर में अर्जुन-नामक एक मालाकार रहता था। उसकी पत्नी का नाम बन्धुमती था। नगर के बाहर अर्जुन की एक पुष्प-वाटिका थी। उस वाटिका में मुद्गरपाणि (मुद्गर हाथ में है जिसके, वह यक्ष) नामक यक्ष का यक्षायतन था। अर्जुन वहाँ नित्य फूल चढ़ाता और मुद्गरपाणि की वंदना करता।

एक दिन अर्जुन अपनी पत्नी के साथ फूल तोड़ने पुष्प-वाटिका में गया। उस दिन ६ व्यक्ति पहले से ही मंदिर में छिप गये थे। जब अर्जुन फूल लेकर अपनी पत्नी के साथ लौटा तो उन लोगों ने अर्जुन को पकड़ लिया और उसकी पत्नी के साथ भोग भोगा। अर्जुन को बड़ा दुःख हुआ कि इतने समय से मुद्गरपाणि की पूजा करने के बावजूद मैं असमर्थ हूँ। मुद्गरपाणि अर्जुन के शरीर में प्रवेश कर गया और यक्ष के बल से अर्जुन ने उन ६ को मार डाला। फिर वह नित्य ६ पुरुषों और १ नारी की हत्या करता। उसके उपद्रव से सभी तंग आ गये।

अर्जुन माली के इस कृत्य से नगर में आतंक छा गया। पर, उसका कोई उपचार न था।

उस समय राजगृह में सुदर्शन-नामक श्रेष्ठी रहता था। यह सुदर्शन श्रमणोपासक था। भगवान् के आगमन का समाचार सुनकर सुदर्शन

१—वही, अध्ययन ६, सूत्र ९७ पृष्ठ ३६

का विचार भगवान् की वन्दना करने के लिए जाने को हुआ। घर वालों ने मुद्गरपाणि यक्ष के भय के मारे उसे मना किया पर वह अपने विचार पर अडिग रहा।

स्नानादि से निवृत्त होकर वह भगवान् का दर्शन करने जा रहा था कि, उसे मुद्गरपाणि यक्ष के प्रभाव से युक्त अर्जुन माली दिखायी पड़ा। अर्जुन मुद्गर लेकर उसे मारने चला; पर उसके आघात का श्रमणोपासक अर्जुन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

इस घटना के बाद मुद्गरपाणि अर्जुन माली को छोड़कर चला गया। मुद्गरपाणि का अर्जुन के शरीर से निकलना था कि, अर्जुन माली भूमि पर गिर पड़ा।

होश में आने पर अर्जुन ने सुदर्शन से पूछा—"आप कौन हैं?" सुदर्शन ने उसे अपना परिचय देते हुए कहा—"मैं भगवान् का दर्शन करने जा रहा हूँ।"

अर्जुन भी भगवान् की वन्दना करने चल पड़ा और गुणशिलक-चैत्य में पहुँचकर उसने भगवान् की परिक्रमा करके उनका वन्दन किया।

भगवान् की धर्मदर्शना से प्रभावित होकर अर्जुन ने दीक्षा ले ली। सामायिक आदि ११ अंगों का अध्ययन किया। वह साधु-धर्म पालता तथा तप करता रहा। उसने केवल-ज्ञान प्राप्त किया और अन्त में पादपोप-गमन करके मोक्ष को प्राप्त किया।[1]

काश्यप की दीक्षा

उसी राजगृह नगर में काश्यप-नामक गृहपति रहता था। उसने भी मंकाती की तरह साधु-व्रत ग्रहण किया और सामायिक आदि तथा ११ अंगों का अध्ययन करके विभिन्न तप करता रहा। केवल-ज्ञान प्राप्त किया

१—वही, सूत्र ६६–१२१, पृष्ठ २६–३३

और १६ वर्षों तक साधु-धर्म पालकर अंत में विपुल-पर्वत पर पादपोप-गमन करके मोक्ष गया।[1]

वारत्त की दीक्षा

राजगृह में वारत्त-नामक गृहपति रहता था। अन्यों के समान उसने भी साधु-धर्म ग्रहण किया। सामायिक तथा ११ अंगों का अध्ययन किया और विभिन्न तप किये। केवल-ज्ञान प्राप्त किया। १२ वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर मोक्ष को गया।[2]

भगवान् ने अपना वह वर्षावास राजगृह में बिताया।

—:०:—

१—वही, सूत्र १२२, पृष्ठ ३४
२—वही, सूत्र १२३ पृष्ठ ३४

१६-वाँ वर्षावास

श्रेणिक को भावी तीर्थङ्कर होने की सूचना

वर्षावास के वाद भी भगवान् धर्म-प्रचार के लिए राजगृह में ही ठहरे। एक दिन श्रेणिक भगवान् के पास वैठा था। उसके निकट ही एक कुष्ठी वैठा था। इतने में भगवान् को छींक आ गयी। वह कोढ़ी वोला—"तुम मृत्यु को प्राप्त होगे।" फिर श्रेणिक को छींक आयी, तो कोढ़ी वोला—"वहुत दिन जीओगे।" थोड़ी देर वाद अभयकुमार को छींक आयी तो कोढ़ी ने कहा—"जीओ या मरो।" इतने में कालशौरिक छींका। तव कुष्ठी ने कहा—"जीओगे नहीं, पर मरोगे भी नहीं।"

उस कोढ़ी ने भगवान् के लिए मरने की वात कह दी थी, इस पर श्रेणिक को वड़ा क्रोध आया। उसने अपने सुभटों को आज्ञा दी कि कोढ़ी जव उठकर चले तो पकड़ लें। देशना समाप्त हो जाने पर राजा के कर्मचारियों ने उसे घेर लिया; पर क्षण भर में वह आकाश में उड़ गया।

विस्मित होकर श्रेणिक ने भगवान् से पूछा—"यह कुष्ठी कौन था?" भगवान् ने उस कुष्ठी का परिचय वताया और उसकी छींक-सम्वन्धी टिप्पणियों का विवेचन करते हुए कहा—"उसने मुझसे कहा कि अव तक संसार में रहकर क्या कर रहे हो। शीघ्र मोक्ष जाओ।

"तुम्हें कहा—'जीओ', इसका अर्थ है कि तुम्हें जीते जी ही सुख है। मरने के वाद तो तुम्हें नरक जाना है।

"अभयकुमार को कहा—'जीयो या मरो,' इसका अर्थ था कि जीते-जी अभयकुमार धर्म कर रहा है, मर कर वह अणुत्तरविमान में जायेगा।

"काल-शौरिक को कहा—'जीओ नहीं; पर मरो भी नहीं,' इसका अर्थ था कि, वह अभी तो पाप-कर्म कर ही रहा है, मर कर वह ७-वें नरक में जायेगा।"

श्रेणिक को अपने नरक में जाने की सूचना से बड़ी चिन्ता हुई। उसने भगवान् से कहा— "आप-सरीखा मेरा स्वामी और मैं नरक में जाऊँगा?" भगवान् ने उत्तर दिया —"जो कर्म व्यक्ति बाँधता है, उसे भोगना अवश्य पड़ता है। पर, इस पर चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। भावी चौबीशी में तुम महापद्म-नामके प्रथम तीर्थंकर होगे।[1]

श्रेणिक ने भगवान् से पूछा—"नरक जाने से बचने का कोई उपाय है?" तो, भगवान् बोले—"हे राजन् कपिला-ब्राह्मणी के हाथ हर्ष पूर्वक साधुओं को भिक्षा दिलवाओ और कालशौरिक से कसाई का काम छुड़वा दो तो नरक से तुम्हारी मुक्ति हो सकती है।[2]

श्रेणिक ने लौट कर कपिला-ब्राह्मणी को बुलाया और दान देने के लिए धन देने को कहा। पर, कपिला ने धन मिलने पर भी भिक्षा देना स्वीकार नहीं किया।

१—श्रेणिक के उस भव का विस्तृत विवरण ठाणांगसूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध, ठाणा ९, उ० ३ सूत्र ६९३ पत्र ४५८-२ से ४६८-२ तक मिलता है।

ठाणांग के उसी सूत्र में उसके दो अन्य नाम भी दिये हैं—(१) देवसेन और (२) विमलवाहन, प्रवचनसारोद्धार सटीक, द्वार ७, गाथा २९३ पत्र ८०-१ तथा त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक १४२ पत्र १२३-२ में उसका नाम पद्मनाभ दिया है।

२—आवश्यक चूर्णि उत्तरार्द्ध पत्र १६९ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ४४४-१४५ पत्र १२३-२ तथा योगशास्त्र सटीक, प्रकाश २, पत्र ६१-१-६४-२ में भी इसका उल्लेख है।

महया, सुमरुता, महामरुता, मरुदेवा, भद्रा, सुभद्रा, सुजाता, सुमना, भूतदत्ता—नामक श्रेणिक की १३ रानियों ने प्रव्रजित होकर भगवान् के संघ में प्रवेश किया।[1]

आर्द्रककुमार और गोशालक

उसी समय आर्द्रक मुनि भगवान् का वंदन करने गुणशिलक-चैत्य की ओर आ रहे थे। रास्ते में उसकी भेंट विभिन्न धर्मावलम्बियों से हुई। सबसे पहले आजीवक-सम्प्रदाय का तत्कालीन आचार्य गोशालक मिला। गोशालक ने आर्द्रककुमार से कहा—

"हे आर्द्रक! श्रमण (महावीर स्वामी) ने पहले क्या किया है, उसे सुन लो। वह पहले एकान्त में विचरने वाले थे। अब वह अनेक भिक्षुओं को एकत्र करके धर्मोपदेश देने निकले हैं। इस प्रकार उस अस्थिर व्यक्ति का वर्तमान आचरण उनके पूर्वव्रत से विरुद्ध है।"

यह सुनकर आर्द्रककुमार बोला—"भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों स्थितियों में उनका अकेलापन तो है ही। संसार का सम्पूर्ण स्वरूप समझ कर त्रस-स्थावर जीवों के कल्याण के लिए हजारों के बीच उपदेश देने वाला श्रमण या ब्राह्मण एकान्त ही साधता है; क्योंकि उसकी आन्तरिक वृत्ति तो समान ही रहती है।" और, फिर आर्द्रककुमार ने श्रमण के सम्बन्ध में अपनी मान्यता गोशालक को बताते हुए कहा—"यदि कोई स्वयं क्षान्त (क्षमाशील), दान्त (इन्द्रियों को दमन करने वाला), जितेन्द्रिय हो, वाणी के दोष को जानने वाला और गुणयुक्त भाषा का प्रयोग करने वाला हो तो उसे धर्मोपदेश देने मात्र से कोई दोष नहीं लगता। जो महाव्रतों (साधु-धर्म), अणुव्रतों (श्रावक-धर्म), कर्म-प्रवेश के पाँच

---

[1]—अंतगडदसाओ (मोदी-सम्पादित) पृष्ठ ५१

आश्रव-द्वार (पाँच महा-पाप) और सँवर-विरति आदि श्रमणधर्मों को जानकर कर्म के लेश मात्र से दूर रहता है, उसे मैं श्रमण कहता हूँ।"

गोशालक—"हमारे सिद्धान्त के अनुसार ठंडा पानी पीने में, बीज आदि धान्य खाने में, अपने लिए तैयार किये आहार खाने में और स्त्री-सम्भोग में अकेले विचरने वाले साधु को दोष नहीं लगता।"

आर्द्रक—"यदि ऐसा हो तो वह व्यक्ति गृहस्थ से भिन्न नहीं होगा। गृहस्थ भी इन सब कामों को करते हैं। इन कर्मों को करने वाला वस्तुतः श्रमण ही न होगा। सचित्त धान्य खानेवाले और सचित्त जल पीने वाले भिक्षुओं को तो मात्र आजीविका के लिए भिक्षु समझना चाहिए। मैं ऐसा मानता हूँ कि संसार का त्याग कर चुकने पर भी वे संसार का अंत नहीं कर सके।"

गोशालक—"ऐसा कहकर तो तुम समस्त वादियों का तिरस्कार करते हो।"

आर्द्रक—"सभी वादी अपने मत की प्रशंसा करते हैं। श्रमण और ब्राह्मण जब उपदेश करते हैं तो एक दूसरे पर आक्षेप करते हैं। उनका कहना है कि तत्त्व उन्हीं के पास है। पर, हम लोग तो केवल मिथ्या मान्यताओं का प्रतिवाद करते हैं। जैन-निर्गंथ दूसरे वादियों के समान किसी के रूप का परिहास करके अपने मत का मंडन नहीं करते। किसी भी त्रस-स्थावर जीव को कष्ट न हो, इसका विचार करके जो संयमी अति सावधानी से अपना जीवन व्यतीत कर रहा हो, वह किसी का तिरस्कार क्यों करेगा?"

गोशालक—"आगंतगार (धर्मशाला) और आरामगार (बगीचे में बने मकान) में अनेक दक्ष तथा ऊँच अथवा नीच कुल के बातूनी तथा चुप्पे लोग होंगे, ऐसा विचार करके तुम्हारा श्रमण वहाँ नहीं ठहरता है। श्रमण को भय बना रहता है कि, शायद वे सब मेधावी, शिक्षित और

बुद्धिमान हों। उनमें सूत्रों और उनके अर्थ के जानने वाले भिक्षु यदि कोई प्रश्न पूछ देंगे तो उनका मैं क्या उत्तर दूँगा ?"

आर्द्रक—"वह श्रमण प्रयोजन अथवा विचार के बिना कुछ नहीं करते। राजा आदि का बल उनके लिए निष्फल है। ऐसा मनुष्य भला किसका भय मानेगा ? ऐसे स्थानों पर श्रद्धा-भ्रष्ट अनार्य लोग अधिक होते हैं, ऐसी शंका से हमारे श्रमण भगवान् वहाँ नहीं जाते। परन्तु, आवश्यकता पड़ने पर वह श्रमण आर्यपुरुषों के प्रश्नों का उत्तर देते हैं।"

गोशालक—"जैसे कोई व्यापारी लाभ की इच्छा से माल बिछाकर भीड़ एकत्र कर लेता है, मुझे तो तुम्हारा ज्ञातपुत्र भी उसी तरह का व्यक्ति लगता है।"

आर्द्रक—"वणिक्-व्यापारी तो जीवों की हिंसा करते हैं। वे ममत्व युक्त परिग्रह वाले होते हैं और आसक्ति रखते हैं। धन की इच्छा वाले, स्त्री-भोग में तल्लीन और काम-रस में लोलुप अनार्य भोजन के लिए दूर-दूर विचरते हैं। अपने व्यापार के अर्थ वे भीड़ एकत्र करते हैं; पर उनका लाभ तो चार गतियों वाला जगत है; क्योंकि आसक्ति का फल तो दुःख ही होता है। उनको सदा लाभ ही होता हो, ऐसा भी नहीं देखा जाता। जो लाभ होता भी है, तो वह भी स्थायी नहीं होता है। उनके व्यापार में सफलता और असफलता दोनों होती है।

"पर, ज्ञानी श्रमण तो ऐसे लाभ के लिए साधना करते हैं, जिसका आदि होता है, पर अंत नहीं होता। सब जीवों पर अनुकम्पा करने वाले, धर्म में स्थित और कर्मों का विवेक प्रकट करने वाले, भगवान् की जो तुम व्यापारी से तुलना करते हो, यह तुम्हारा अज्ञान है।

"नये कर्म को न करना, अबुद्धि का त्याग करके पुराने कर्मों को नष्ट कर देना—ऐसा उपदेश भगवान् करते हैं। इसी लाभ की इच्छा वाले, वे श्रमण हैं, ऐसा मैं मानता हूँ।

आर्द्रककुमार और बौद्ध

गोशालक के बाद आर्द्रककुमार को बौद्ध मिला। बौद्ध-भिक्षु ने कहा—"खोल के पिंड को मनुष्य जानकर यदि कोई व्यक्ति उसे भाले से छेद डाले और अग्नि पर पकाये अथवा कुम्हड़े को कुमार मानकर ऐसा करे तो मेरे विचार से उसे प्राणिवध का पाप लगता है। परन्तु, खोल का पिंड जान कर यदि कोई श्रावक उसे भाले से छेदे अथवा कुम्हड़ा मानकर किसी कुमार को छेदे और उसे आग पर सेंके तो मेरे विचार से उसे पाप नहीं लगेगा। बुद्ध-दर्शन में विश्वास रखनेवाले को ऐसा मांस कल्पता है। हमारे शास्त्र का ऐसा मत है कि, नित्य दो हजार स्नातक-भिक्षुओं को भोजन करानेवाले मनुष्य महान् पुण्य स्कंधों का उपार्जन करके महासत्त्ववेत आरोप्य देव[1] होते हैं।

आर्द्रक—जीवों की इस प्रकार हिंसा तो किसी सुसंयमी पुरुष को शोभा नहीं देती। जो ऐसा उपदेश देते हैं और जो ऐसा स्वीकार करते हैं, वे दोनों अज्ञान और अकल्याण को प्राप्त होते हैं। जिसे संयम से प्रमाद-रहित रूप में अहिंसा-धर्म-पालन करना है, और जो त्रस-स्थावर जीवों को ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक-लोक में समझता है, वह क्या तुम्हारे कथनानुसार करेगा अथवा कहेगा? जो तुम कहते हो वह संभव नहीं है—खोल के पिंड को कौन मनुष्य मान लेगा?

"क्या किसी पिंड को मनुष्य मान लेना सम्भव है? अनार्य पुरुष ही ऐसा कह सकते हैं। पिंड से मनुष्य की कल्पना कैसे होगी—ऐसा कहना ही असत्य है। ऐसी वाणी नहीं बोलनी चाहिए, जिससे बुराई हो। ऐसे वचन गुणहीन होते हैं। कोई दीक्षित व्यक्ति उन्हें नहीं बोलता।

१—बौद्ध मतानुसार 'अरूपधातु' सर्वोच्च स्वर्ग है। दीघनिकाय (हिन्दी) में पृष्ठ १११, अरूप भव का अर्थ निराकार लोक दिया है।

"हे शाक्यदार्शनिक ! तुम पूरे ज्ञाता दिखलायी पड़ते हो। तुमने कर्म-विपाक पर पूरी तरह विचार कर लिया है। इसी विज्ञान के फल-स्वरूप तुम्हारा यश पूर्व और पश्चिम समुद्र तक विस्तार प्राप्त कर चुका है। तुम तो (ब्राह्माण्ड को) हथेली पर देखते हो।

"जीव का जो अणुभाग है, उन्हें जो पीड़ा-रूप दुःख हो सकता है, उस पर भली प्रकार विचार करके (जैन-साधु) अन्न-पानी के सम्बन्ध में विशुद्धता का ध्यान रखते हैं। तीर्थंकर के सिद्धान्तों को मानने वाले साधुओं का ऐसा अणुधर्म है कि, वह गुप्त रूप में भी पाप नहीं करते।

"जो व्यक्ति २ हजार स्नातक साधुओं को नित्य जिमाता है, तुम कहते हो, उसे पुण्य होता है; पर वह तो रक्त लगे हाथों वाला है। उसे इस लोक में निन्दा मिलती है और परभव में उसकी दुर्गति होती है।

"मोटे-मेढ़े को मार कर उसके मांस में नमक डाल कर, तेल में तलकर, पीपल डालकर तुम्हारे लिए भोजन तैयार किया जाता है।

"तुम लोग इस प्रकार भोजन करते थके, भोग भोगते थके और फिर भी कहते हो कि तुम्हें पाप-रूप रज स्पर्श नहीं होता। यह अनार्य-धर्मी है। अनाचारी बाल और अज्ञानी रसगृद्ध ऐसी बातें करते हैं।

"जो अज्ञानी इस प्रकार मांस भोजन करते हैं, वे केवल पाप का सेवन करते हैं। कुशल पंडित ऐसा कोई कार्य नहीं करते। इस प्रकार की बातें ही असत्य हैं।

"एकेन्द्रियादिक सभी जीवों के प्रति दया के निमित्त उसे महादोष-रूप जानकर ऐसा कार्य नही करते। हमारे धर्म के साधुओं का ऐसा आचरण है।

"ज्ञातपुत्र के अनुयायी, जो पाप है, उसका त्याग करते हैं। इसलिए वे अपने लिए बनाये भोजन को ग्रहण नहीं करते।"

आर्द्रककुमार और वेदवादी

उसके बाद आर्द्रककुमार को वेदवादी द्विज मिला। वेदवादी द्विज ने कहा—"जो हमेशा दो हजार स्नातक-ब्राह्मणों को जिमाता है, वह पुण्य राशि प्राप्त करके देव बनता है, ऐसा वेद-वाक्य है।"

आर्द्रक—बिल्ली की भाँति खाने की इच्छा से घर-घर भटकने वाले दो हजार स्नातकों को जो खिलाता है, वह नरकवासी होकर फाड़ने-चीरने को तड़पते हुए जीवों से भरे हुए नरक को प्राप्त होता है—देवलोक को नहीं। दयाधर्म को त्याग कर हिंसा-धर्म स्वीकार करने वाले शील से रहित ब्राह्मण को भी जो मनुष्य भोजन कराये, वह एक नरक से दूसरे नरक में भटकता फिरता है। उसे देवगति नहीं प्राप्त होगी।"

आर्द्रककुमार और वेदान्ती

वेदवादी के पश्चात् आर्द्रककुमार को वेदान्ती मिला। उस वेदान्ती ने कहा—"हम दोनों एक ही समान धर्म को मानते हैं, पहले भी मानते थे और भविष्य में भी मानेंगे। हम दोनों के धर्म में आचार-प्रधान शील और ज्ञान को आवश्यक कहा गया है। पुनर्जन्म के सम्बन्ध में भी हम दोनों में मतभेद नहीं है।

"परन्तु हम एक लोक व्यापी, सनातन, अक्षय और अव्यय आत्मा को मानते हैं। वही सब भूतों में व्याप रहा है, जैसे चन्द्र तारों को।"

आर्द्रक—"यदि ऐसा ही हो तो फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और प्रेष्य [दास], इसी प्रकार, कीड़े, पक्षी, साँप, मनुष्य और देव-सरीखे भेद न रहेंगे। इसी प्रकार विभिन्न सुखों और दुःखों का अनुभव करते हुए वे इस संसार में भटकें ही क्यों?

"केवल (सम्पूर्ण) ज्ञान से लोक का स्वरूप स्वयं जाने बिना जो दूसरों को धर्म का उपदेश देते हैं, वे स्वयं अपने को और दूसरों को क्षति

श्रेणिक ने इसका कारण पूछा तो आर्द्रक कुमार ने तत्सम्बन्धी पूरी कथा कह सुनायी।[1]

उसके बाद आर्द्रकमुनि भगवान् महावीर के पास गये और उन्होंने भक्ति पूर्वक उनका वंदन किया। भगवान् के आर्द्रक मुनि द्वारा प्रतिबोधित राजपुत्रों और तापसादि को प्रव्रज्या देकर उन्हीं के सुपुर्द किया।

अपना वह वर्षावास भगवान् ने राजगृह में बिताया।

आर्द्रककुमार का पूर्व प्रसंग

समुद्र के मध्य में अनार्य देश में, आर्द्रक-नाम का एक देश था। उसी नामकी उसकी राजधानी थी। उस देश में आर्द्रक नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम आर्द्रका था। और, उसके पुत्र का नाम आर्द्रककुमार था।[2]

अनुक्रम से आर्द्रककुमार युवा हुआ। एक बार श्रेणिक राजा ने पूर्व परम्परा के अनुसार आर्द्रक राजा को भेंट भेजी। उस समय आर्द्रककुमार अपने पिता के पास बैठा था। श्रेणिक की भेंट देखकर आर्द्रककुमार विचार करने लगा—"यह श्रेणिक राजा एक बड़े राज्य का मालिक है। यह मेरे पिता का मित्र है। यदि उसे कोई पुत्र हो तो मैं उसके साथ मैत्री करूँ।" उसने भेंट लाने वाले राजदूतों को महल में बुलवाकर पूछा—"श्रेणिक राजा को क्या कोई ऐसा सद्गुणी पुत्र है, जिसके साथ मैं मैत्री कर सकूँ?" आर्द्रककुमार की बात सुन कर वे बोले—"श्रेणिक राजा को बहुत-से महाबलवंत पुत्र हैं। उनमें सबसे गुणवान् और श्रेष्ठ अभय-

---

१—तत्सम्बंधी पूरी कथा 'आर्द्रककुमार के पूर्व प्रसंग' में दी हुई है।

२—सूत्रकृतांगनिर्युक्ति; टीका-सहित, श्रु० २, अ० ६, पत्र १३६-१ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ७, श्लोक १७७-१७९ पत्र ९२-२; पर्यूषणाऽष्टाह्निका व्याख्यान, श्लोक ५, पत्र ६-१

कुमार है।" पूर्वजन्म[१] के अनुराग के कारण अभयकुमार का नाम सुनकर आर्द्रककुमार को बड़ा आनन्द आया।

आर्द्रककुमार ने उनसे कहा—"जब आप लोग अपने नगर वापस जाने लगें तो अभयकुमार के लिए मेरी भेंट तथा मेरा पत्र लेते जाइयेगा।"

जब वे वापस लौटने लगे तो आर्द्रककुमार ने उनके द्वारा अपनी भेंट भेजी, राजगृह पहुँचकर दूतों ने अभयकुमार को आर्द्रककुमार का पत्र और भेंट दिये। अभयकुमार ने पहले भेंट देखी। भेंट में मुक्तादि देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर, उसने पत्र पढ़ा। पत्र पढ़कर अभयकुमार को लगा—"निश्चय ही पत्र भेजने वाला कोई आसन्नसिद्धि वाला व्यक्ति है कारण कि, बहुल-कर्मी जीव तो मेरे साथ मैत्री करने से रहा। लगता है कि, पूर्व जन्म में इसने व्रत की विराधना की है। इस कारण अनार्य—देश में इसने जन्म लिया है।" ऐसा विचार करके अभयकुमार यह विचार करने लगा कि किस प्रकार आर्द्रककुमार को प्रतिबोध हो!

ऐसा विचार कर अभयकुमार ने भगवान् आदिनाथ की सोने की प्रतिमा तैयार करायी और धूपदानी घंटा आदि अनेक उपकरणों के साथ उसे एक पेटी में रखकर आर्द्रककुमार से पास भेजा और कहलाया कि इस पेटी को एकांत में खोल कर देखें।

राजदूत उस भेंट को लेकर आर्द्रककुमार के पास गये और अभयकुमार की भेंट उसे दी। आर्द्रककुमार भेंट पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। आर्द्रककुमार ने अन्न-वस्त्र आभूषणादि से सत्कार करने के पश्चात् दूतों को विदा किया।

एकान्त में आर्द्रककुमार ने जब पेटी खोली तो पूजा-सामग्री युक्त आदिनाथ की प्रतिमा देखकर उसके मन में जो उहापोह हुआ, उससे उसे

१—आर्द्रककुमार के पूर्वभव की कथा सूत्रकृतांग आदि ग्रंथों में आती है। अपने पूर्वभव में वह बसंतपुर (मगध) में था। देखिये सूत्रकृतांग-निर्युक्ति-टीका सहित, भाग २ पत्र १३७-२

जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वह विचार करने लगा—"अहो ! मैं व्रत भंग होने के कारण अनार्य-देश में पैदा हुआ। अरिहंत की प्रतिमा भेजकर अभयकुमार ने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया।"

अब अभयकुमार से मिलने की उसे बड़ी तीव्र उत्कंठा जागी। राज-गृह जाने के लिए उसने अपने पिता से अनुमति माँगी। उसके पिता ने उत्तर दिया—"हमारे राज्य के शत्रु पग-पग पर हैं। अतः तुम्हारी इतनी लम्बी यात्रा उचित नहीं है।" पिता की बात से आर्द्रककुमार बड़ा दुःखी हुआ।

आर्द्रककुमार के पिता ने आर्द्रककुमार की रक्षा के लिए ५०० सामन्त नियुक्त कर दिये।

आर्द्रककुमार उन ५०० सामन्तों के साथ नगर के बाहर घोड़े पर नित्य जाया करता। अभयकुमार से मिलने को अति उत्सुक आर्द्रककुमार घोड़े पर घूमने के समय नित्य अपनी दूरी बढ़ाया करता। इस प्रकार अवसर पाकर आर्द्रककुमार वहाँ से भाग निकला। समुद्र-यात्रा के बाद वह लक्ष्मीपुर-नामक नगर में पहुँचा।[1] वहाँ पहुँच कर आर्द्रककुमार ने पाँच मुष्टि लोच किया।

उस समय शासन-देवी ने कहा—"हे आर्द्रककुमार ! अभी तुम्हारे भोग-कर्म शेष हैं। तुम अभी व्रत मत स्वीकार करो।" पर, आर्द्रक-कुमार अपने विचार पर दृढ़ रहा और साधु-वेश में राजगृह की ओर चला। रास्ते में बसन्तपुर पड़ा। आर्द्रककुमार उस नगर के बाहर एक मंदिर में कायोत्सर्ग में खड़ा हो गया।

उस समय वहाँ की श्रेष्ठिपुत्री धनश्री जो पूर्वभव में आर्द्रककुमार की पत्नी थी अपनी सखियों के साथ खेल रही थी। अंधकार में वे मंदिरके स्तम्भ पकड़तीं और कहतीं—"यह मेरा पति है।" अंधकार में धनश्री को

१—भरतेश्वर-बाहुबलि-वृत्ति सटीक, भाग २, पत्र २०७-१

कुमार हैं।" पूर्वजन्म[3] के अनुराग के कारण अभयकुमार का नाम सुनकर आर्द्रककुमार को बड़ा आनन्द आया।

आर्द्रककुमार ने उनसे कहा—"जब आप लोग अपने नगर वापस जाने लगें तो अभयकुमार के लिए मेरी भेंट तथा मेरा पत्र लेते जाइयेगा।"

जब वे वापस लौटने लगे तो आर्द्रककुमार ने उनके द्वारा अपनी भेंट भेजी, राजगृह पहुँचकर दूतों ने अभयकुमार को आर्द्रककुमार का पत्र और भेंट दिये। अभयकुमार ने पहले भेंट देखी। भेंट में मुक्तादि देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर, उसने पत्र पढ़ा। पत्र पढ़कर अभयकुमार को लगा—"निश्चय ही पत्र भेजने वाला कोई आसन्नसिद्धि वाला व्यक्ति है कारण कि, बहुल-कर्मा जीव तो मेरे साथ मैत्री करने से रहा। लगता है कि, पूर्व जन्म में इसने व्रत की विराधना की है। इस कारण अनार्य—देश में इसने जन्म लिया है।" ऐसा विचार करके अभयकुमार यह विचार करने लगा कि किस प्रकार आर्द्रककुमार को प्रतिबोध हो!

ऐसा विचार कर अभयकुमार ने भगवान् आदिनाथ की सोने की प्रतिमा तैयार करायी और धूपदानी घंटा आदि अनेक उपकरणों के साथ उसे एक पेटी में रखकर आर्द्रककुमार से पास भेजा और कहलाया कि इस पेटी को एकांत में खोल कर देखें।

राजदूत उस भेंट को लेकर आर्द्रककुमार के पास गये और अभयकुमार की भेंट उसे दी। आर्द्रककुमार भेंट पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। आर्द्रककुमार ने अन्न-वस्त्र आभूषणादि से सत्कार करने के पश्चात् दूतों को विदा किया।

एकान्त में आर्द्रककुमार ने जब पेटी खोली तो पूजा-सामग्री युक्त आदिनाथ की प्रतिमा देखकर उसके मन में जो उहापोह हुआ, उससे उसे

३—आर्द्रककुमार के पूर्वभव की कथा सूत्रकृतांग आदि ग्रंथों में आती है। अपने पूर्वभव में वह वसंतपुर (मगध) में था। देखिये सूत्रकृतांग-निर्युक्ति-टीका सहित, भाग २ पत्र १३७-२

जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वह विचार करने लगा—"अहो ! मैं व्रत भंग होने के कारण अनार्य-देश में पैदा हुआ। अरिहंत की प्रतिमा भेजकर अभयकुमार ने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया।"

अब अभयकुमार से मिलने की उसे बड़ी तीव्र उत्कंठा जागी। राज-गृह जाने के लिए उसने अपने पिता से अनुमति माँगी। उसके पिता ने उत्तर दिया—"हमारे राज्य के शत्रु पग-पग पर हैं। अतः तुम्हारी इतनी लम्बी यात्रा उचित नहीं है।" पिता की बात से आर्द्रककुमार बड़ा दुःखी हुआ।

आर्द्रककुमार के पिता ने आर्द्रककुमार की रक्षा के लिए ५०० सामन्त नियुक्त कर दिये।

आर्द्रककुमार उन ५०० सामन्तों के साथ नगर के बाहर घोड़े पर नित्य जाया करता। अभयकुमार से मिलने को अति उत्सुक आर्द्रककुमार घोड़े पर घूमने के समय नित्य अपनी दूरी बढ़ाया करता। इस प्रकार अवसर पाकर आर्द्रककुमार वहाँ से भाग निकला। समुद्र-यात्रा के बाद वह लक्ष्मीपुर-नामक नगर में पहुँचा। वहाँ पहुँच कर आर्द्रककुमार ने पाँच मुष्टि लोच किया।

उस समय शासन-देवी ने कहा—"हे आर्द्रककुमार ! अभी तुम्हारे भोग-कर्म शेष हैं। तुम अभी व्रत मत स्वीकार करो।" पर, आर्द्रक-कुमार अपने विचार पर दृढ़ रहा और साधु-वेश में राजगृह की ओर चला। रास्ते में वसन्तपुर पड़ा। आर्द्रककुमार उस नगर के बाहर एक मंदिर में कायोत्सर्ग में खड़ा हो गया।

उस समय वहाँ की श्रेष्ठिपुत्री धनश्री जो पूर्वभव में आर्द्रककुमार की पत्नी थी अपनी सखियों के साथ खेल रही थी। अंधकार में वे मंदिरके स्तम्भ पकड़तीं और कहतीं—"यह मेरा पति है।" अंधकार में धनश्री को

१—भरतेश्वर-बाहुबलि-वृत्ति सटीक, भाग २, पत्र २०७-१

कोई स्तम्भ नहीं मिला और आर्द्रककुमार को ही स्पर्श कर वह बोली—"यह मेरा पति है।"

इसी समय आकाश में एक देवता बोला—"सभी कन्याएँ तो स्तम्भ का ही वरण करती रहीं, पर धनश्री ने तो ऐसे का वरण किया जो तीनों भुवनों में श्रेष्ठ है। देवताओं ने आकाश में दुंदुभी बजायी और रत्नों की वर्षा की।

देवदुंदुभी सुनकर धनश्री आर्द्रकमुनि के चरणों पर गिर पड़ी और बड़ी दृढ़ता से आर्द्रककुमार का चरण पकड़ लिया। आर्द्रककुमार ने धनश्री के हाथ से अपना पैर छुड़ाकर वहाँ से विहार कर दिया।

वसन्तपुर का राजा रत्नादि की वृष्टि का समाचार सुनकर रत्नों को संग्रह करने वहाँ पहुँचा; पर शासन-देवी ने उसे मना कर दिया।

कुछ समय बाद धनश्री के पिता ने धनश्री के विवाह की बात अन्यत्र चलायी; पर धनश्री ने कहा—"उत्तम कुल में उत्पन्न कन्या एक ही बार वरण करती है। जिसके वरण के समय देवताओं ने रत्नों की वृष्टि की वही मेरा पति है।" सुनकर धनश्री के पिता ने पूछा—"पर, वह साधु तुम्हें मिलेगा कहाँ ?" इस पर धनश्री बोली—"बिजली की चमक में उस साधु के चरण में मैंने पद्म देखे हैं। मैं उन्हें पहचान जाऊँगी।" उसके पिता ने कहा—"तुम नित्य दानशाला में दान दिया करो। जो साधु आयें, उनके चरण देखा करो। सम्भव है, वह साधु कभी आ जाये।"

धनश्री पिता के कथनानुसार नित्य दान देती।

दिशाभ्रम होने से एकबार आर्द्रककुमार पुनः वसन्तपुर में आ पहुँचे। उन्हें देखकर धनश्री ने अपने पिता को बुला भेजा। मुनि को देखकर धनश्री के पिता ने कहा—"हे मुनि, यदि आप मेरी पुत्री का पाणिक्-ग्रहण नहीं करेंगे, तो वह प्राण त्याग देगी।" आर्द्रककुमार को अपनी भोगावलि शेष रहने की बात स्मरण आयी और उन्होंने धनश्री से विवाह करना स्वीकार कर लिया।

धनश्री से विवाह करके आर्द्रककुमार बड़े सुख से जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ काल बाद धनश्री को पुत्र हुआ। जब वह पुत्र ५ वर्ष का हो गया तो आर्द्रककुमार ने अपनी पत्नी से साधु होने की अनुमति माँगी। यह सुनकर उसकी पत्नी चरखा लेकर सूत कातने लगी। माँ को साधारण नारी की भाँति सूत कातते देखकर उसके पुत्र ने पूछा—"माँ सूत क्यों कात रही हो?" माँ ने कहा—"तुम्हारे पिता साधु होनेवाले हैं। फिर तो सूत कातना ही पड़ेगा।" यह सुनकर पुत्र ने तकुए से सूत लेकर धागे से अपने पिता के पाँव बाँध दिये और बोला—"अब कैसे जायँगे, मैंने उनके पैर बाँध दिये हैं।" आर्द्रककुमार ने कहा—"जितनी बार सूत लपेटा गया है, उतने वर्ष मैं गृहस्थावास में और रहूँगा।" आर्द्रककुमार ने गिना सूत १२ बार लपेटा गया था। अतः, उसने १२ वर्षों तक गृहस्थावास में और रहना स्वीकार कर लिया।

बारह वर्ष बीतने पर आर्द्रककुमार ने अपनी पत्नी की आज्ञा लेकर व्रत अंगीकार करके राजगृह की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में एक घोर जंगल पड़ा। उस जंगल में वे ५०० सामंत भी रहते थे, जो आर्द्रककुमार की रक्षा के लिए नियुक्त किये गये थे। आर्द्रककुमार के भाग जाने के पश्चात् वे डर के मारे आर्द्रकपुर न लौट कर यहाँ भाग आये थे और चोरी करके जीवन-निर्वाह करते थे। आर्द्रककुमार ने उन्हें प्रतिबोधित किया और वे सब भी आर्द्रक कुमार के साथ चल पड़े।

आर्द्रककुमार की इसी यात्रा में गोशालक आदि उसे मिले थे, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।[1]

१—आर्द्रककुमार का चरित्र सूत्रकृतांग-निर्युक्ति-टीका-सहित (गोड़ी जी, बम्बई), श्रु० २, अ० ६, पत्र १३५–१ से १५८–१, ऋषिमंडलप्रकरण सटीक पत्र ११४–१–११७–२, भरतेश्वर-बाहुबलि-वृत्ति-सटीक, भाग २, पत्र २०४–२—२११–२, पर्युषणाऽष्टाह्निका व्याख्यान (यशोविजय-ग्रन्थमाला) पत्र ५–२—६–२ आदि ग्रन्थों में आता है।

२०-वाँ वर्षावास

भगवान् आलभिया में

वर्षावास समाप्त होने के बाद भगवान् ने राजगृह से कौशाम्बी की की ओर विहार किया।

रास्ते में आलभिया-नामक नगरी पड़ी। उस आलभिया में अनेक श्रमणोपासक रहते थे। उनमें मुख्य ऋषिभद्रपुत्र था। एक समय श्रमणोपासकों में इस प्रसंग पर वार्ता चल रही थी कि, देवलोक में देवताओं की स्थिति कितने काल की कही गयी है। इस पर ऋषिभद्रपुत्र ने उत्तर दिया—"देवलोक में देवताओं की स्थिति कम-से-कम १० हजार वर्ष और अधिक-से-अधिक ३३ सागरोपम बतायी गयी है। इससे अधिक काल तक देवता की स्थिति देवलोक में नहीं रह सकती।" परन्तु, श्रावकों को उसके कथन पर विश्वास नहीं हुआ।

जब भगवान् विहार करते, इस बार आलभिया आये तो श्रावकों ने उनसे पूछा। भगवान् ने भी ऋषिभद्रपुत्र की बात का समर्थन किया। भगवान् द्वारा पुष्टि हो जाने पर श्रावकों ने ऋषिभद्र पुत्र से क्षमा-याचना की।

वह ऋषिभद्रपुत्र बहुत वर्षों तक शीलव्रत का पालन करके, बहुत वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर ६० टंक का उपवास कर मृत्यु को प्राप्त करने के बाद सौधर्मकल्प में अरुणाभ-नामक विमान में देवता-रूप में उत्पन्न हुआ।[1]

१—भगवती सूत्र सटीक, शतक ११, उद्देशा १२ सूत्र ४३३-४३५ पत्र १००९-१०११।

२१-वाँ वर्षावास

धन्य की प्रव्रज्या

वर्षावास समाप्त होने पर भगवान् मिथिला[1] होते हुए काकंदी आये उस नगरी के राजा का नाम जितशत्रु[2] था। उस नगरी के बाहर सहस्राम्रक नामक उद्यान था।

उस नगरी में भद्रा-नामक सार्थवाह-पत्नी रहती थी। उसे एक पुत्र था। उसका नाम धन्य[3] था। उसने ७२ कलाओं का अध्ययन किया। युवा होने पर उसका विवाह ३२ इभ्य-कन्याओं से हुआ। उनके लिए ३२ भवन बनवा दिये गये। उनमें धन्य अपनी पत्नियों के साथ सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

भगवान् के काकन्दी आने पर समवसरण हुआ। भगवान् के आगमन की सूचना समस्त नगर में फैल गयी। राजा जितशत्रु भी समवसरण में

१—भगवान् की मिथिला-यात्रा का उल्लेख भगवतीसूत्र सटीक, शतक ९, उद्देशा १, पत्र ७७९ में आया है। यहाँ गौतम स्वामी ने जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में भगवान् से प्रश्न पूछा था और भगवान् ने जम्बूद्वीप-सम्बन्धी विवरण बताया था। इस मिथिला के राजा का नाम जितशत्रु था, (देखिये, सूर्यप्रज्ञप्ति सटीक, पत्र १)

२—जितशत्रु राजा का नाम अणुत्तरोववाइय (म० चि० मोदी-सम्पादित) पृष्ठ ७१ में आता है।

३—धन्य का उल्लेख ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा १०, उ० ३, सूत्र ७५५ पत्र ५०९-१ तथा ५१०-१ में आया है। ऋषिमंडलप्रकरण सटीक पत्र १३७ में भी उसकी कथा आती है।

गया। भगवान् का उपदेश सुनकर धन्य बड़ा सन्तुष्ट हुआ और उसने भगवान् से साधु-धर्म ग्रहण करने की अनुमति माँगी।

समवसरण के बाद जमालि के समान अपने माता-पिता से अनुमति माँगने वह घर लौटा। महब्बल की कथा के अनुरूप ही उसकी वार्ता हुई। राजा ने भी उसे समझाने की चेष्टा की। राजा से उसकी वार्ता थावच्चा-पुत्र के समान हुई।

धन्य की वार्ता से प्रभावित होकर जितशत्रु ने उसी प्रकार घोषणा करायी, जैसी थावच्चा-पुत्र के प्रसंग में आती है—

"जो लोग मृत्यु के नाश की इच्छा रखते हों और इस हेतु विषय-कषाय त्याग करने को उद्यत हो परन्तु केवल मित्र, जाति तथा सम्बन्धियों की इच्छा से रुके हों, वे प्रसन्नतापूर्वक दीक्षा ले लें। उनके सम्बन्धियों के योग-क्षेम की देख-रेख बाद में मैं अपने ऊपर लेता हूँ।"[1]

१—इस घोषणा का मूल पाठ ज्ञाताधर्मकथा सटीक श्रु० १, अ० ८ पत्र १०६-१ में इस प्रकार है—

"एवं खलु देवा० थावच्चापुत्ते संसार भउव्विग्गे भीए जम्मणमरणाणं इच्छति अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अन्तिए मुण्डे भवित्ता पव्वइत्तए, तं जो खलु देवाणुप्पिया ! राया वा, जुवराया वा, देवी वा, कुमारे वा, ईसरे वा तलवरे वा, कोडुम्बिय०, माडंबिय० इब्भसेट्ठिसेणावइ सत्थवाहे वा थावच्चापुत्तं पव्वायंतमणुपव्वयति तस्स णं कण्हे वासुदेवे अणुजाणाति पच्छा तुरस्सविय से मित्त नाति नियग संबंधि परिजणस्स जोगखेमं वहमाणं पडिवहति त्ति कट्टु घोसणं घोसेह जाव घोसन्ति......

'योगक्षेम' की टीका ज्ञाताधर्मकथा में इस प्रकार दी हुई है—

"तत्रालब्धस्येप्सितस्य वस्तुनो लाभो योगो लब्धस्य परिपालनं क्षेम-स्ताभ्यां वर्तमानकालभवा वार्तमानी वार्ता योगक्षेमवार्तमानी"—पत्र ११०-१

उसके बाद बड़े धूमधाम से धन्य ने दीक्षा लेली। दीक्षा के बाद वह संयम पालन करते हुए तप-कर्म करने लगा और भगवान् के स्थविरों के पास रहकर उसने सामायिक आदि और ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

एक दिन उसने भगवान् से कहा—भगवान् मुझे यावज्जीवन छट्ठ-छट्ठ उपवास करने और छट्ठ-व्रत के अंत में आयम्बिल[1] करने की अनुमति दीजिए। उस समय भी संसट्ठ[2] अन्न ही मुझे स्वीकार होगा।

भगवान् की अनुमति मिल जाने पर धन्य ने छट्ठ-छट्ठ की तपस्या प्रारम्भ की। विकट तपस्या से सूखकर धन्य हड्डी-हड्डी रह गये।[3]

भगवान् एक बार जब राजगृह पधारे तो श्रेणिक राजा उनकी वन्दना करने गया। समवसरण समाप्त होने के बाद श्रेणिक ने भगवान् से कहा—"भंते, क्या ऐसा है कि गौतम इन्द्रभूति-सहित आपके १४ हजार साधुओं में धन्य अनगार महादुष्कर कार्य के कर्ता और (महानिर्जरा) कर्म-पुद्गलों को आत्मा से पृथक करते हैं।"

भगवान् बोले—"मेरे साधुओं में धन्य सब से अधिक दुष्कर कर्म करने वाले हैं।"

श्रेणिक फिर धन्य के पास गया। उसने धन्य की वन्दना की।

उसके बाद धन्य ने विपुल पर्वत पर मरणांतिक संलेखना स्वीकार करके एक मास का उपवास करके देहत्याग किया और स्वर्ग गये। धन्य का साधु-जीवन कुल ९ मास का रहा।[4]

१—इस प्रसंग के अन्त में दी गयी टिप्पणि देखें। (देखिये पृष्ठ ७१)

२—इस प्रसंग के अन्त में दी गयी टिप्पणि देखें। (देखिये पृष्ठ ७३)

३—धन्य का नख-शिख वर्णन अणुत्तरोववाइयसुत्त (मोदी-सम्पादित) पृष्ठ ७८-७८ में विस्तार से दिया है।

४—वहीं, वर्ग ३, पृष्ठ ७१-८२

सुनक्षत्र को दीक्षा

काकन्दी की भगवान् की इसी यात्रा में सुनक्षत्र ने भी दीक्षा ली। इसकी माता का नाम भद्रा था। दीक्षा लेने के बाद इसने भी सामायिक आदि तथा ११ अंगों का अध्ययन किया और वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर अनशन करके मृत्यु को प्राप्त हुआ और सर्वार्थसिद्ध विमान पर गया।[1]

कुण्डकोलिक का श्रावक होना

काकंदी से विहार कर भगवान् काम्पिल्यपुर पधारे। उनके समक्ष कुण्डकोलिक ने श्रावक-व्रत ग्रहण किया। इसका विस्तृत विवरण हमने मुख्य श्रावकों के प्रसंग में किया है।

सद्दालपुत्र श्रावक हुआ

वहाँ से ग्रामानुग्राम विहार कर भगवान् पोलासपुर आये और उनके समक्ष सद्दालपुत्र ने श्रावक-व्रत ग्रहण किया। मुख्य श्रावकों के प्रसंग में उसका विस्तृत विवरण है।

पोलासपुर से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् वाणिज्यग्राम आये और अपना वर्षावास भगवान् ने वैशाली में बिताया।

आयंबिल

ऊपर के विवरण में 'आयंबिल' शब्द आया है। इसका संस्कृत रूप आचाम्ल होता है। आचार्य हरिभद्र सूरि ने अपने ग्रंथ संबोध-प्रकरण में उसके निम्नलिखित पर्याय किये हैं :—

अंबिलं नीरस जलं दुप्पायं धाउ सोसणं
कामग्घं मंगलं सीयं एगट्ठा अंबिलस्साधि ॥

१—अणुत्तरोववाइयसूत्र (मोदी-सम्पादित) वर्ग ३, पृष्ठ ८२-८३। इसका उल्लेख ठाणांगसूत्र सटीक ठाणा १०, उद्देशा ३ सूत्र ७५५ पत्र ५०६-१ तथा ५१०-२ में भी आता है।

—अर्थात् अंबिल, नीरस जल, दुष्प्राप्य, धातु-शोषण, कामाघ्न, मंगल, शीत ये आयंबिल शब्द के समानार्थी हैं।

इस शब्द पर टीका करते हुए औपपातिकसूत्र में आचार्य अभयदेव सूरि ने लिखा है—

'आयंबिलए' त्ति आयामम्लम् ओदन कुल्माषादि

—औपपातिकसूत्र सटीक, सूत्र १९, पत्र ७५

पंचाशक की टीका में उसका विवरण इस प्रकार है—

आयाममवश्रावणं अम्लं च सौवीरकं, ते एव प्रायेण व्यंजने यत्र भोजने उदन कुल्माष सक्तु प्रभृतिके तदायामाम्लं समय भाषयोच्यते

—पंचाशक अभयदेवसूरि की टीका सहित, पं० ५, गा० ९, पत्र ९३-१

आवश्यक की टीका में हरिभद्रसूरि ने पत्र ८५५-१ से ८५६-१ तक इस शब्द पर विशेष रूप से विचार किया है। उसमें आता है—

···एत्थ आयंबिलं च भवति आयंबिल पाउण्णं च, तत्थोदणे आयम्बिलं आयंबिल पाउग्गं च, आयंबिला सक्करा, जाणि कूर विहाणाणि, आयंबिलं पाउग्गं, तंदुलकणि याउ कुंडतो पीट्टं पिहुगा पिट्ठपोवलियाओ रालगा मंडगादि, कुम्मासा पुव्वं पाणिएण कुट्टिज्जंति पच्छा उखलिए पोसंति, ते तिविहा—सण्हा, मज्झिमा, थूला, एते आयंबिलं·····

—पत्र ८५५-१

आवश्यक-निर्युक्ति-दीपिका (तृतीय विभाग) में माणिक्यशेखर सूरि ने लिखा है—

आयामोऽव श्रामणं आम्लं चतुर्थरसः ताभ्यां निर्वत्तं आयामाम्लं। इदं चोपाधिभेदा त्रिधा—ओदनः धवल धान्य इत्यर्थः, कुल्माषाः काष्ट द्विदल मित्यर्थः, सक्तवो लोट्ट इत्यर्थः, ओदनादीनधिकृत्य जीरकादियुक् करीरादि फलानि च धान्य

स्थानीयानि, पृथक् लवणं चाकल्प्यं उत्सर्गोऽनुक्तत्वात्। एकैकं ओदनादि त्रिविधं स्यात्। जघन्यं, मध्यमं, उत्कृष्टं स्यात्...

—पत्र ४०-२

इस आचाम्ल-व्रत में विकृति-रहित सूखा उबला हुआ अथवा भुना हुआ अन्न खाया जाता है। 'हिस्ट्री आव जैन मोनाचिज्म' में डाक्टर शान्ताराम बालचन्द्र देव ने (पृष्ठ १९५) केवल 'उबला हुआ' लिखा है। यह भूल जैन-शास्त्रों से उनके अपरिचित होने के कारण हुई। इसी प्रकार उन्होंने केवल 'चावल' का उल्लेख किया है। ऊपर की टीकाओं में चावल, कुल्माष, सत्तू आदि का स्पष्ट उल्लेख है। विकृतियाँ दूध, दही, घी, गुड़, पक्वान आदि हैं।

संसट्ठ

दूसरा शब्द 'संसट्ठ' आया है।

प्रवचन-सारोद्धार-सटीक, द्वार ९६ गाथा ७४० पत्र २१५-२ में भिक्षा के प्रकार दिये हैं। उसमें आता है—

तं मि य संसट्ठा हत्थमत्तएहिं इमा पढम भिक्खा

इसकी टीका इस प्रकार की गयी है—

'तं मि' ति प्राकृतत्वात्तासु भिक्षासु मध्ये संसृष्टा हस्तमात्रकाभ्यां भवति, कोऽर्थः? संसृष्टेन-तक्रतीमनादिना खरण्टितेन हस्तेन संसृष्टेनैव च मात्रकेण—करोटिकादीना गृह्णतः साधो संसृष्टा नाम भिक्षा भवति, इयं च द्वितीयाऽपि मूल गाथोक्तक्रमापेक्षया प्रथमा, अत्र च संसृष्टासंसृष्ट सावशेष निरवशेषद्रव्यैरष्टौ भङ्गाः तेषु चाष्टमो भङ्गः संसृष्टो हस्तः संसृष्टं मात्रं सावशेषं द्रव्यमित्येषगच्छनिर्गतानां सूत्रार्थहान्यादिकं कारणमाश्रित्य कल्पन्त इति.....

—खरंटित हाथ अथवा कलछुल से दी गयी भिक्षा

—:※:—

२२-वाँ वर्षावास

महाशतक का श्रावक होना

वर्षाकाल बीतने पर भगवान् ने मगध-भूमि की ओर विहार किया और राजगृह पहुँचे। भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर महाशतक गाथापति ने श्रमणोपासक-धर्म स्वीकार किया। उसका विस्तृत वर्णन हमने मुख्य श्रावकों के प्रकरण में प्रकरण में किया है।

पार्श्वपत्यों का शंका-समाधान

इसी अवसर पर बहुत-से पार्श्वपत्य (पार्श्व-संतानीय) स्थविर भगवान् के समवसरण में आये। दूर खड़े होकर उन्होंने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! असंख्य जगत में अनन्त दिन-रात्रि उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे? नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं और नष्ट होंगे? अथवा नियत परिणाम वाले रात्रि-दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं अथवा उत्पन्न होंगे? और नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं अथवा नष्ट होंगे?

इस पर भगवान् ने कहा—"हाँ, असंख्य लोक में अनन्त दिन-रात उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे।"

पार्श्वपत्य—"हे भगवान्! वे किस कारण उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे?"

भगवान्—"हे आर्य! पुरुषादानीय पार्श्व ने कहा है कि, लोक शाश्वत अनादि है और अनन्त है। वह अनादि, अनन्त, परिमित, आलोकाकाश से परिवृत्त, नीचे विस्तीर्ण, बीच में सँकड़ा, ऊपर विशाल; नीचे पल्यंक के आकार वाला, बीच में उत्तम वज्र के आकार वाला और ऊपरी

भाग में ऊर्ध्व मृदंग-जैसा है। इस अनादि-अनन्त लोक में अनन्त जीव-पिंड उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। परिणाम वाले जीव-पिंड भी उत्पन्न हो होकर नष्ट होते हैं—वह लोक भूत है, उत्पन्न है, विगत है और परिणत है। कारण यह है कि, अजीवों द्वारा वह देखने में आता है, निश्चित होता है और अधिक निश्चित होता है। जो दिखलायी पड़ता है और जाना जाता है वह लोक कहलाता है (यो लोक्यते स लोकः)।[1]

भगवान् के उत्तर के पश्चात् पार्श्वपत्यों ने भगवान् को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वीकार कर लिया और उनकी वन्दना करके पार्श्वनाथ भगवान् के चतुर्याम-धर्म के स्थान पर पंचमहाव्रत स्वीकार करने की अनुमति माँगी। अनुमति मिल जाने पर उन लोगों ने भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण कर ली और मरने के बाद उनमें से कितने ही देवलोक में उत्पन्न हुए।[2]

रोह के प्रश्न

उस समय रोह ने भगवान् से पूछा—"पहले लोक है, पीछे अलोक या पहले अलोक है पीछे लोक?

भगवान्—"इस लोक-अलोक में दोनों ही पहले भी कहे जा सकते है और पीछे भी। इनमें पहले-पीछे का क्रम नहीं है।

रोह—जीव पहले है, अजीव पीछे है या अजीव पहले है जीव पीछे है?

भगवान्—रोह! लोक-अलोक के विषय में जो कहा है, वही जीव-अजीव के सम्बन्ध में भी है। उसी प्रकार भवसिद्ध-अभवसिद्ध, सिद्ध

१—'जे लोक्कइ से लोके—' भगवतीसूत्र सटीक, शतक ५, उद्देशा ६, सूत्र २२६ पत्र ४४६ उसी सूत्र की टीका में एक अन्य स्थल पर टीका करते हुए अभयदेव सूरि ने लिखा—"यत्र जीवघना उत्पद्य २ विलीयन्ते स लोकोभूत"—पत्र ४५१।

२—भगवतीसूत्र सटीक शतक ५, उद्देशः ६, पत्र ४४८–४५०।

संसार असिद्धसंसार तथा सिद्ध और सांसारिक प्राणी के विषय में भी जानना चाहिए।

रोह—"हे भगवन्! पहले अंडा है फिर मुर्गी या पहले मुर्गी है पीछे अंडा ?"

भगवान्—"वह अंडा कहाँ से उत्पन्न हुआ ?"

रोह—"वह मुर्गी से उत्पन्न हुआ।

भगवान्—"वह मुर्गी कहाँ से उत्पन्न हुई ?"

रोह—वह मुर्गी अण्डे से ऊत्पन्न हुई।

भगवान्—"इसलिए अंडा और मुर्गी में कौन आगे है, कौन पीछे यह नहीं कहा जा सकता। इनमें शाश्वत-भाव है। इनमें पहले-पीछे का कोई क्रम नहीं है।

रोह—"हे भगवन्! पहले लोकान्त है, पीछे अलोकान्त अथवा पहले अलोकान्त है पीछे लोकान्त ?

भगवान्—"लोकान्त-अलोकान्त में पहले-पीछे का कोई क्रम नहीं है।

रोह—"पहले लोक पीछे सप्तम अवकाशान्तर या पहले सप्तम अवकाशान्तर और पीछे लोक ?

भगवान्—"लोक और सप्तम अवकाशान्तर इनमें दोनों पहले हैं। हे रोह! इन दोनों में किसी प्रकार का क्रम नहीं है। लोकान्त, सातवाँ तनुवात, घनवात, घनोदधि और पृथ्वी—इस प्रकार एक-एक के साथ लोकान्त और नीचे लिखे के विषय में भी प्रमाण जोड़ लेना चाहिए :—

अवकाशान्तर, वात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर, वर्ष-क्षेत्र, नैरयिकारिक जीव, अस्तिकाय, समय, कर्म, लेश्या, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, संख्या, शरीर, योग, उपभोग, द्रव्य-प्रदेश और पर्यव तथा काल पहले हैं या लोकान्त।

रोह—"हे भगवन्! पहले लोकान्त है और पीछे सर्वाद्धा (अतीत आदि सब समय) है ?

भगवान्—"हे रोह ? जिस प्रकार लोकान्त के साथ यह सम्पूर्ण स्थान जुड़ा है, उसे भी इसी प्रकार जान लेना चाहिए।"

इस प्रकार रोह के प्रश्नों का उत्तर देकर भगवान् ने उसकी शंकाओं का समाधान कर दिया।[1]

लोक-सम्बन्धी शंकाओं का समाधान

उसी अवसर गौतम स्वामी ने पूछा—"हे भगवन् ! लोक की स्थिति कितने प्रकार की है ?"

भगवान्—हे गौतम ! लोक की स्थिति ८ प्रकार की कही है :—

१—वायु आकाश के आधार पर है।

२—पानी वायु के आधार पर है।

३—पृथ्वी जल के आधार पर है।

४—त्रस जीव तथा स्थावर जीव पृथ्वी के आधार पर हैं।

५—अजीव जीव के आधार पर रहते हैं।

६—जीव कर्म के आधार पर रहते हैं।

७—जीव-अजीव संगृहीत हैं।

८—जीव-कर्म संगृहीत हैं।

गौतम स्वामी—हे भगवन् ! किस कारण लोक की स्थिति ८ प्रकार की कही गयी है ? वायु-आकाश आदि के आधार की बातें कैसे हैं ?

भगवान्—जैसे किसी मशक को हवा से पूर्ण भर कर उसका मुँह बंद कर दे। फिर बीच से मशक बाँध कर मुँह की गाँठ खोलकर हवा निकाल कर उसमें पानी भर कर फिर मुँह पर गाँठ लगा दे। और, फिर बीच का बंधन खोल दे तो वह पानी नीचे की हवा पर ठहरेगा ?"

गौतम—"हाँ भगवन् ! पानी हवा के ऊपर ठहरेगा ?"

१—भगवतीसूत्र सटीक, शतक१, उद्देशः ६ पत्र १३९-१४०

भगवान्—"आकाश के ऊपर हवा, हवा के ऊपर पानी आदि इसी क्रम से रहते हैं। हे गौतम ! कोई आदमी मशक को हवा से भर कर उसे अपनी कमर में बाँधे हुए अथाह जल को अवगाहन करे तो वह ऊपर ठहरेगा या नहीं ?"

गौतम—"हाँ भगवन् ! ठहरेगा।"

भगवान्—"इसी प्रकार लोक की स्थिति ८ प्रकार की है से लेकर जीव के कर्म-सम्बन्ध तक सम्पूर्ण बात समझ लेनी चाहिए।

गौतम—"हे भगवन् ! जीव और पुद्गल क्या परस्पर सम्बद्ध हैं ? परस्पर सटे हुए है ? परस्पर एक दूसरे से मिल गये हैं ? परस्पर स्नेह-प्रतिबद्ध हैं और मिले हुए रहते हैं ?"

भगवान्—"हाँ गौतम।

गौतम—"हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?"

भगवान्—"जैसे कोई पानी का ह्रद[1] हो, वह पानी से भरा हो, पानी से छलछला रहा हो, पानी छलछला रहा हो, ऐसा हो जैसे घड़े में पूरा-पूरा पानी भरा हो और उस ह्रद में कोई छिद्र वाली डोंगी लेकर प्रवेश करे। छिद्र से आये जल के कारण नाव भरे घड़े के समान नीचे बैठेगी न ?

गौतम—"हाँ भगवन् बैठेगी।"

भगवान्—"गौतम ! जीव और पुद्गल ऐसे ही परस्पर बँधे हुए हैं—मिले हुए हैं।"

गौतम—"हे भगवन् ! सूक्ष्म स्नेहकाय[2] (अप्काय) क्या सदा माप-पूर्वक पड़ता है ?

१—ह्रदोऽगाध जलो ह्रदः —अभिधानचिंतामणि सटीक, भूमिकांड, श्लोक १५८, पृष्ठ ४३७

२—अप्काय विशेष—भगवतीसूत्र सटीक पत्र १४५

भगवान्—"हाँ पड़ता है।"

गौतम—वह ऊँचे पड़ता है, नीचे पड़ता या तिरछे पड़ता है ?

भगवान्—"वह ऊँचे पड़ता है, नीचे पड़ता है और तिरछे पड़ता है।

गौतम—"वह सूक्ष्म अप्काय इस स्थूल अप्काय के समान परस्पर समायुक्त (संयुक्त) होकर दीर्घ काल तक रहता है ?

भगवान्—"इस दृष्टि से समर्थ नहीं है—वह नहीं रहता। वह सूक्ष्म अप्काय शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है।[२]

अपना वह वर्षावास भगवान् ने राजगृह में बिताया।

—:०:—

२—भगवतीसूत्र सटीक, शतक १, उद्देशः ६, पत्र १४०-१४५

२३ वाँ वर्षावास

स्कंदक की प्रव्रज्या

वर्षावास समाप्त होने के बाद, भगवान् राजगृह के बाहर स्थित गुण-शिलक-चैत्य से निकले और ग्रामानुग्राम विहार करते हुए कृतंगला—नामक नगरी में पहुँचे। उस नगरी के ईशान-कोण में छत्रपलाशक-नामक चैत्य था, वहाँ ही भगवान् ठहरे और उनका समवसरण हुआ।

उस कृतंगला के निकट ही श्रावस्ती-नामक नगर था। उस श्रावस्ती नगरी में कात्यायन-गोत्रीय गर्दभाल-नामक परिव्राजक का शिष्य स्कंदक-नामक परिव्राजक रहता था। वह चारों वेद, पाँचवाँ इतिहास, छठाँ निघंटु का ज्ञाता था और षष्टितंत्र (कापिलीय-शास्त्र) का विशारद था। वह गणितशास्त्र, शिक्षा-शास्त्र, आचार-शास्त्र, व्याकरण-शास्त्र, छंदशास्त्र, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा अन्य ब्राह्मण-नीति और दर्शन-शास्त्रों में पारंगत था।

उस नगरी में भगवान् महावीर के वचन में रस लेने वाला पिंगल[1] नामका निर्गंथ (साधु) रहता था।

१—'पाइअसद्दमहण्णवो' में पृष्ठ ७३५ पर पिंगल को 'एक जैन-उपासक', लिखा है। यह पिंगल उपासक नहीं था, साधु था। मूल पाठ—'पिंगलाए णामं नियंठे वेसालिय सावए' है। कोषकार को 'सावए' शब्द पर भ्रम हुआ। इसका कारण यह था कि कोषकार ने टीका नहीं देखी। भगवती की टीका (पत्र २०१) में 'वेसालिए सावए' की टीका इस प्रकार दी हुई है—"विशाला—महावीर जननी तस्या अपत्यमिति वैशालिकः—भगवांस्तस्य वचनं शृणोति तद्रसिकत्वादिति वैशालिक श्रावकः तद्वचनामृतपाननिरत इत्यर्थः"। और, 'निगंथ' की टीका में "निर्गंथः श्रमण इत्यर्थः" स्पष्ट लिखा है।

एक दिन पिंगल स्कंदक-तापस के वासस्थान की ओर जा निकला। स्कंदक के निकट जाकर उसने पूछा—" हे मागध ! यह लोक अंत वाला है या बिना अंत वाला है ! जीव अन्त वाला है या बिना अन्त वाला है ? सिद्धि अंत वाली है या बिना अन्त वाली है ? सिद्ध अन्त वाला है या बिना अन्त वाला है ? किस मरण से मरता हुआ जीव घटता अथवा बढ़ता है ? जीव किस प्रकार मरे तो उसका संसार बढ़े अथवा घटे ? इन प्रश्नों का तुम उत्तर बताओ।"

इन प्रश्नों को सुनकर उनके उत्तर के सम्बन्ध में स्कंदक शंकाशील हो गया। और, विचारने लगा—"इनका क्या उत्तर दूँ ? और, जो उत्तर दूँगा उससे प्रश्नकर्ता संतुष्ट होगा या नहीं ?" शंकाशील स्कंदक उनका उत्तर न दे सका।

पिंगल ने कई बार अपने प्रश्न दुहराये। पर, शंकावाला कांक्षावाला स्कंदक कुछ न बोल सका; क्योंकि उसे स्वयं अविश्वास हो गया था और उसकी बुद्धि भंग हो गयी थी।

यह कथा उसी समय की है, जब भगवान् छत्रपलासक-चैत्य में ठहरे हुए थे। लोगों के मुख से स्कंदक ने भगवान् के आगमन की बात सुनी तो स्कंदक को भी भगवान् के पास जाकर उन्हे वन्दन करके, अर्थों के, हेतुओं के, प्रश्नों के, व्याकरणों के पूछने की इच्छा हुई।

ऐसा विचार कर वह स्कंदक परिव्राजक मठ की ओर गया और वहाँ जाकर उसने त्रिदंड, कुंडी, (कंचणिअं) रुद्राक्ष की माला, (करोटिका) मिट्टी का बरतन, आसन, (केसरिका) बरतनों को साफ-सुथरा करने का कपड़ा, (छणणालयं) त्रिकाष्ठिका, अंकुश (पत्र आदि तोड़ने का अंकुश), पवित्रकं (कुश की अंगूठी-सरीखी वस्तु), (गणेत्तियं) कलायी का एक प्रकार का आभूषण, छत्र, (वाहणाइ) पगरखा, (धाउ-रत्ताओ) गेरुए रंग में रंगा कपड़ा आदि यथास्थान धारण करके कुतं-गला-नगरी की ओर चला।

उधर भगवान् ने गौतम स्वामी से कहा—"हे गौतम ! आज तुम अपने एक पूर्वपरिचित को देखोगे।"

भगवान् की बात सुनकर गौतम स्वामी ने पूछा—"मैं किस पूर्व परिचित से मिलूँगा ?"

भगवान्—"कात्यायन स्कंदक परिव्राजक से !"

गौतम—"कैसे ? वह स्कंदक परिव्राजक कैसे मिलेगा ?"

भगवान्—"श्रावस्ती में पिंगल-नामक निर्गंथ ने स्कंदक से कुछ प्रश्न पूछे। पर, वह उनका उत्तर नहीं दे सका। फिर, वह आश्रम में गया और कुंडी आदि लेकर गेरुआ वस्त्र पहन कर यहाँ आने के लिए अब वह प्रस्थान कर चुका है। थोड़े ही समय बाद वह यहाँ आ पहुँचेगा।"

गौतम—"क्या उसमें आपका शिष्य होने की योग्यता है ?"

भगवान्—"स्कंदक में शिष्य होने की योग्यता है और वह निश्चय ही मेरा शिष्य हो जायेगा।'

इतने में स्कंदक दृष्टिगोचर हुआ। उसे देखकर गौतम स्वामी उसके पास गये और उन्होंने पूछा—"हे मागध ! क्या यह सच है कि, पिंगल-निर्गंथ ने आपसे कुछ प्रश्न पूछे ? और, क्या आप उसका उत्तर न दे सके ? इसीलिए क्या आपका यहाँ आना हुआ ?"

गौतम स्वामी के इन प्रश्नों को सुनकर स्कंदक बड़ा चकित हुआ और उसने पूछा—"हे गौतम ! ऐसा कौन ज्ञानी तथा तपस्वी है जिसने हमारी गुप्त बात इतनी जल्दी बता दी ?"

गौतम—"हे स्कंदक ! हमारे धर्मगुरु, धर्मोपदेशक श्रमण भगवंत महावीर ज्ञान तथा दर्शन को धारण करनेवाले हैं। वे अर्हत् हैं, जिन हैं, केवली हैं, भूत-वर्तमान भविष्य के जानने वाले हैं। वह सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी हैं। उनको तुम्हारी बात ज्ञात हो गयी।"

फिर, स्कंदक ने भगवान् की वंदना करने का विचार गौतम स्वामी से प्रकट किया।

गौतम स्वामी स्कंदकको भगवान् के पास ले गये।

भगवान् के दर्शन मात्र से स्कंदक संतुष्ट हो गया। उसने भगवान् की प्रदक्षिणा की और उनकी वंदना की।

भगवान् ने स्कंद से कहा—"हे मागध! श्रावस्ती नगरी में रहने वाले पिंगल-नामक निर्गंथ ने तुमसे पूछा था—'यह लोक अंतवाला है या इसका अंत नहीं है?' इस प्रकार के और भी प्रश्न उसने तुमसे पूछे थे। इन प्रश्नों के ही लिए तुम मेरे पास आये हो? यह बात सच है न?"

स्कंदक ने भगवान् की बात स्वीकार कर ली। फिर, भगवान् ने कहना प्रारम्भ किया—"हे स्कंदक! यह लोक चार प्रकार का है। द्रव्य से द्रव्यलोक, क्षेत्र से क्षेत्रलोक, काल से काललोक और भाव से भावलोक।

"इनमें जो द्रव्यलोक है, वह एक है और अंतवाला है। जो क्षेत्रलोक है, वह असंख्य कोटाकोटि योजन की लम्बाई-चौड़ाईवाला है। उसकी परिधि असंख्य कोटाकोटि योजन कही गयी है। उसका अंत अर्थात् छोर है। जो कालकोक है, वह किसी दिन न होता हो, ऐसा कोई दिन नहीं है; वह किसी दिन नहीं था, ऐसा भी नहीं था; और किसी दिन न रहेगा, ऐसा भी नहीं है। वह सदैव रहा है, सदैव रहता है और सदैव रहेगा। वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षत, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। उसका अंत नहीं है। जो भावलोक है वह अनंत वर्णपर्यवरूप है। अनंत गंध, रस, स्पर्श-पर्यवरूप है; अनंत संस्थान (आकार) पर्यवरूप है। अनन्त गुरु-लघु-पर्यवरूप है तथा अनंत अगुरु-लघु पर्यवरूप है।

"हे स्कंदक! इस प्रमाण से द्रव्यलोक अंतवाला है; क्षेत्रलोक अंतवाला है, काललोक विना अंत का है और भावलोक विना अंत का है। यह लोक अंतवाला भी है और विना अंतवाला भी है।

"हे स्कंदक! तुम्हें जो यह विकल्प हुआ कि जीव अंतवाला है या विना अंतवाला तो उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है। यावत् द्रव से जीव एक है और अंतवाला है, क्षेत्र से जीव असंख्य प्रदेश वाला है और

असंख्य प्रादेशिक है; पर उसका भी अंत है; काल के विचार से 'जीव किसी दिवस न रहा हो', ऐसा नहीं है इस रूप में वह नित्य है और उसका अंत नहीं है; भाव से जीव ज्ञान-पर्याय-रूप है, अनन्त दर्शनरूप अनंत गुरुलघुपर्याय रूप है और उसका अंत नहीं है। इस प्रकार, हे स्कंदक ! द्रव्य जीव अंतवाला है, क्षेत्रजीव अंतवाला है, काल जीव बिना अंत का है और भावजीव बिना अंतवाला है।

"हे स्कंदक ! तुम्हें यह विकल्प हुआ कि, सिद्धि अंतवाली है या बिना अंतवाली है। इसका उत्तर यह है—द्रव्य से सिद्धि एक है और अंतवाली है, क्षेत्र से सिद्धि की लम्बाई-चौड़ाई ४५ लाख योजन है और उसकी परिधि १ करोड़ ४२ लाख ३० हजार २४९ योजन से थोड़ा अधिक है। पर, उसका छोर है, अंत है। काल की दृष्टि से यह नहीं कह सकते कि किसी दिन सिद्धि नहीं थी, नहीं है अथवा नहीं रहेगी। और, भाव से भी वह अंत वाली नहीं है। अतः द्रव्य तथा क्षेत्र सिद्धि अंतवाली है और काल तथा भाव-सिद्धि अनन्तवाली है।

"हे स्कंदक ! तुम्हें शंका हुई थी कि सिद्ध अंतवाला है या बिना अंतवाला है। द्रव्यसिद्ध एक है और अंतवाला है, क्षेत्रसिद्ध असंख्य प्रदेश में अवगाढ़ होने के बावजूद अंतवाला है, कालसिद्ध आदिवाला तो है पर बिना अंतवाला है, भावसिद्ध ज्ञानपर्यवरूप और दर्शनपर्यवरूप है और उसका अंत नहीं है।

"हे स्कंदक ! तुम्हें शंका थी कि किस रीति से मरें कि उसका संसार घटे या बढ़े। हे स्कंदक ! उसका उत्तर इस प्रकार है। मरण दो प्रकार का है—(१) बालमरण और (२) पंडितमरण।"[१]

१—समवायांग सूत्र सटीक समवाय १७ पत्र ३१–२ तथा उत्तराध्ययन (शांत्याचार्य की टीका) निर्युक्ति गाथा २१२–२१३ पत्र २३०–२ में भी मरण के प्रकार दिये हैं।

स्कंदक—"बालमरण क्या है ?"

भगवान्—"बालमरण के १२ भेद हैं।"

(१) वलन-मरण—तड़पता हुआ मरना।

(२) वसट्ट-मरण—पराधीनता पूर्वक मरना।

(३) अंतःशल्य-मरण—शरीर में शस्त्रादि जाने से अथवा सन्मार्ग से पथभ्रष्ट होकर मरना।

(४) तद्भव-मरण—जिस गति में मरे फिर उसी में आयुष्य बाँधना।

(५) पहाड़ से गिर कर मरना।

(६) पेड़ से गिर कर मरना।

(७) पानी में डूबकर मरना।

(८) आग में जल कर मरना।

(९) विष खा कर मरना।

(१०) शस्त्र-प्रयोग से मरना।

(११) फाँसी लगाकर मरना।

(१२) गृद्ध आदि पक्षियों से नुचवा कर मरना।

"हे स्कंदक ! इन १२ प्रकारों से मरकर जीव अनन्त बार नैरयिक भव को प्राप्त होता है। वह तिर्यक्-गति का अधिकारी होता है और चतुर्गत्यात्मक संसार को बढ़ाता है। मरण से बढ़ना इसी को कहते हैं।

स्कंदक—"पंडित मरण क्या है ?"

भगवान्—"पंडित मरण दो प्रकार का है—

(१) पादपोपगमन (२) भक्तप्रत्याख्यान।"

स्कंदक—"पादपोपगमन क्या है ?"

भगवान्—"पादपोपगमन दो प्रकार का है—(१) निर्हारिम—जिस प्रकार मृतक का शव अंतिम संस्कार में ले जाते हैं, उस प्रकार मरना निर्हारिम-पादपोपगमन है और उसका उलटा अनिर्हारिम पादपोपगमन है। इन दोनों प्रकारों का पादपोपगमन मरण प्रतिकर्म बिना है।

स्कंदक—"भक्त-प्रत्याख्यान क्या है ?

भगवान्—"भक्तप्रत्याख्यान-मरण दो प्रकार का है—(१) निर्हारिम और (२) अनिर्हारिम। इन दोनों प्रकारों का भक्तप्रत्याख्यान मरण प्रीति कर्मवाला है।

"हे स्कन्दक ! इन प्रकारों से जो मरते हैं वह नैरयिक नहीं होते और न अनन्त भवों को प्राप्त होते हैं। ये दीर्घसंसार को कम करते हैं।"

इसके पश्चात् स्कंदक ने भगवान् महावीर के वचन पर अपनी आस्था प्रकट की और प्रव्रजित होने की इच्छा प्रकट की। भगवान् ने स्कंदक को प्रव्रजित कर लिया और तत्सम्बन्धी शिक्षा और समाचारी से परिचय कराया।

भगवान् की सेवा में रहते स्कंदक ने एकादशांगी का अध्ययन किया। १२ वर्षों तक साधु-धर्म पालकर स्कंदक ने भिक्षु-प्रतिमा और गुण-रत्न-संवत्सर[1] आदि विविध तप किये और अंत में विपुलाचल पर जाकर समाधि पूर्वक अनशन करके देह छोड़ अच्युतकल्प-नामक स्वर्ग में उसने देवपद प्राप्त किया।[2]

नंदिनीपिता का श्रावक होना

छत्रपलाशक-चैत्य से विहार कर भगवान् श्रावस्ती के कोष्ठक-चैत्य में पधारे। उनकी इसी यात्रा में गाथापति नन्दिनी-पिता आदि ने गृहस्थ-धर्म स्वीकार किया। उसकी चर्चा हमने मुख्य श्रावकों के प्रसंग में सविस्तार की है।

श्रावस्ती से भगवान् वाणिज्यग्राम आये और अपना वर्षावास भगवान् ने वहीं बिताया।

१—इन व्रतों का उल्लेख भगवतीसूत्र में विस्तार से आया है।

२—भगवतीसूत्र सटीक, शतक २, उद्देशा १ पत्र १६७–२२७

—: ❀ :—

२४-वाँ वर्षावास

जमालि का पृथक होना

वर्षाकाल समाप्त होने के बाद भगवान् ने विहार किया और ब्राह्मण-कुंडके बहुशाल-चैत्य में पधारे। यहाँ जमालि की इच्छा अपने ५०० शिष्यों को लेकर पृथक होने की हुई। उसने भगवान् के सम्मुख जाकर उनका वंदन किया और पूछा—"भगवन्! आपकी आज्ञा से मैं अपने परिवार-सहित पृथक विहार करना चाहता हूँ।" भगवान् ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

जमालि ने दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार अनुमति माँगी; पर भगवान् दूसरी और तीसरी बार भी मौन रहे। उसके बाद भगवान् को नमन करके और उनकी वंदना करके जमालि बहुशाल-चैत्य से निकल कर अपने परिवार सहित स्वतंत्र विहार करने लगा।[१]

चन्द्र-सूर्य की वन्दना

वहाँ से भगवान् ने वत्स देश की ओर विहार किया और कौशाम्बी पधारे। यहाँ सूर्य और चन्द्र अपने मूल विमानों के साथ आपकी वंदना करने आये।[२] इसे जैनशास्त्रों में आश्चर्य कहा गया है।[३]

१—भगवतीसूत्र सटीक, शतक ९, उद्देशा ६, सूत्र ३८६, पत्र ८८९

२—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ८, श्लोक ३३७-३५३ पत्र ११०-२ तथा १११-१

३—ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा १०, उ० ३, सूत्र ७७७ पत्र ५२३-२; कल्पसूत्र सुबोधिका-टीका पत्र ६७; प्रवचनसारोद्धार सटीक गाथा ८८५ पत्र २५६-१—२५८-२

पार्श्वपत्यों का समर्थन

कौशाम्बी से विहार कर भगवान् राजगृह के गुणशिलक-चैत्य में पधारे। गौतम स्वामी भिक्षा के लिए नगर में गये तो उन्होंने बहुत-से आदमियों से सुना—"हे देवानुप्रिय! तुंगिका-नगरी[1] के बाहर पुष्पवती-नामक चैत्य में पार्श्वनाथ भगवान् के शिष्य स्थविर आये हैं। उनसे श्रावकों ने इस प्रकार प्रश्न पूछे—'हे भगवन्! संयम का क्या फल है? हे भगवन्! तप का क्या फल है?' इसका उन्होंने उत्तर दिया—'संयम का फल आश्रव-रहित होना है और तप का फल कर्म का नाश है।'

"इसे सुनकर गृहस्थों ने पूछा—'हम लोगों ने सुना है कि संयम से देवलोक की प्राप्ति होती है और लोग देव होते हैं! यह क्या बात है?

"साधुओं ने इसका उत्तर दिया—'सराग अवस्था में आचारित तप से और सराग अवस्था में पाले गये संयम से मनुष्य जब मृत्यु से पहिले कर्मों का नाश नहीं कर पाता तो बाह्य संयम होने के कारण और अन्तर की बची आसक्ति के कारण मुक्ति के बदले देवत्व प्राप्त होता है।"

गौतम स्वामी को यह वार्ता सुनकर बड़ा कुतूहल हुआ और भिक्षा लेकर जब वे लौटे तो उन्होंने भगवान् से पूछा—"भगवान् पार्श्वपत्य साधुओं का दिया उत्तर क्या सत्य है? क्या वे इस प्रकार उत्तर देने में समर्थ हैं? क्या वे विपरीत ज्ञान से मुक्त हैं? क्या वे अच्छे प्रकृति वाले हैं? क्या वे अभ्यासी हैं और विशेष ज्ञानी हैं?"

१—यह तुंगिका नगरी राजगृह के निकट थी। प्राचीन तीर्थमाला, भाग १, पृष्ठ २६ (भूमिका) में इसकी पहचान बिहार-शरीफ से की गयी है। बिहार शरीफ से ४ मील की दूरी पर तुंगी-नामक गाँव है, उसे तुंगिका मानना अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है (देखिये सर्वे आव इंडिया का नकशा संख्या ७२ G १ इंच=४ मील) इसके अतिरिक्त एक और तुंगिका थी। वह वत्स-देश में थी। महावीर स्वामी के गणधर मेतार्य यहाँ के रहने वाले थे (आवश्यकनिर्युक्ति-दीपिका, भाग १, गा० ६४६ पत्र १२२-१)

इस पर भगवान् ने उत्तर दिया—"हे गौतम ! वे स्थविर उन श्रमणो-पासकों को उत्तर देने में समर्थ हैं—असमर्थ नहीं हैं। उस प्रकार का उत्तर देने के लिए वे साधु अभ्यासवाले हैं, उपयोग वाले हैं तथा विशेष ज्ञानी हैं। उन्होंने सच बात कही। केवल अपनी बड़ाई के लिए नहीं कहा। मेरा भी यही मत है कि, पूर्व तप और संयम के कारण और कर्म के शेष रहने पर देवलोक में मनुष्य जन्म लेता है।"

फिर गौतम स्वामी ने पूछा—"उस प्रकार के श्रमण अथवा ब्राह्मण की पर्युपासना करने वाले मनुष्य को उनकी सेवा का क्या फल मिलता है ?"

भगवान्—"हे गौतम ! उनकी पर्युपासना का फल श्रवण है अर्थात् उनकी पर्युपासना करने से सत्शास्त्र सुनने को मिलते हैं ?"

गौतम स्वामी—"उस श्रवण का क्या फल है ?"

भगवान्—"उसका फल ज्ञान है अर्थात् सुनने से उनका ज्ञान होता है।"

गौतम स्वमी—"उस जानने का क्या फल है ?"

भगवान्—"उस जानने का फल विज्ञान है।"

गौतम स्वामी—"उस विज्ञान का क्या फल है ?"

भगवान्—"हे गौतम ! उसका फल प्रत्याख्यान है अर्थात् विशेष जानने के बाद सब प्रकार की वृत्तियाँ अपने आप शांत पड़ जाती है।"

गौतम स्वमी—"हे भगवन् ! उस प्रत्याख्यान का क्या फल है ?'

भगवान्—"हे गौतम ! उसका फल संयम है अर्थात् प्रत्याख्यान प्राप्त होने के पश्चात् सर्वस्व त्याग रूप संयम होता है।"

गौतम स्वामी—"हे भगवान् ! उस संयम का क्या फल है ?"

भगवान्—"उसका फल आश्रवरहितपना है अर्थात् विशुद्ध संयम प्राप्त होने के पश्चात् पुण्य अथवा पाप का स्पर्श नहीं होता। आत्मा अपने मूल रूप में रमण करता है।"

गौतम स्वामी—"उस आश्रवरहितपने का क्या फल है ?"

भगवान्—"हे गौतम ! उसका फल तप है।"

गौतम स्वामी—"उस तप का क्या फल है ?"

भगवान्—"उसका फल कर्म-रूप मैल साफ करना है।"

गौतम स्वामी—"कर्म-रूप मैल साफ होने का क्या फल है ?"

भगवान्—"उससे निष्क्रियपना प्राप्त होती है।"

गौतम स्वामी—"उस निष्क्रियपन से क्या लाभ है ?"

भगवान्—"उसका फल सिद्धि है अर्थात् अक्रियपन प्राप्ति के पश्चात् सिद्धि प्राप्त होती है। कहा गया है—

सवणे णाणे य विन्नाणे पच्चक्खाणे य संजमे।
अणरहये तवे चेव अकिरिया सिद्धि॥

—(उपासना से) श्रवण, श्रवण से ज्ञान, ज्ञान से विज्ञान, विज्ञान से प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान से संयम, संयम से अनाश्रव, अनाश्रव से तप, तप से कर्मनाश, कर्मनाश से निष्क्रियता और निष्क्रियता से सिद्धि—अजरामरत्व—प्राप्त होती है।[1]

१—भगवतीसूत्र सटीक, शतक २, उद्देशा ५, पत्र २३७-२४६

२५-वाँ वर्षावास

वेहास-अभय आदि की देवपद-प्राप्ति

इसी वर्ष भगवान् के शिष्य वेहास-अभय आदि साधुओं ने राजगृह के पार्श्ववर्ती विपुल-पर्वत पर अनशन करके देवपद प्राप्त किया।[1] भगवान् ने अपना वर्षावास भी राजगृह में बिताया।

भगवान् चम्पा में

वर्षावास समाप्त होते ही भगवान् ने चम्पा की ओर विहार किया। श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् कूणिक ने अपनी राजधानी चम्पा में बना ली थी। इसका सविस्तार वर्णन हमने राजाओं के प्रसंग में किया है!

भगवान् चम्पा[2] में पूर्णभद्र-चैत्य[3] में ठहरे। राजा कूणिक बड़ी सज-धज से भगवान का वंदन करने गया। कूणिक के भगवान् की वंदना करने जाने का बड़ा विस्तृत वर्णन औपपातिकसूत्र में आता है।

भगवान् पर कूणिक की निष्ठा का प्रमाण

कूणिक के सम्बन्ध में औपपातिक में उल्लेख आता है—

१—अणुत्तरोववाइयासूत्र (एन० वी० वैद्य, सम्पादित) १, पृष्ठ ४८

२—औपपातिकसूत्र सटीक (सूत्र १, पत्र १-७) में चम्पा-नगर का बड़ा विस्तृत वर्णन आता है। जैनसूत्रों में जहाँ भी नगर का वर्णन मिलता है वहाँ प्रायः करके 'जहा चम्पा' का उल्लेख मिलता है।

३—औपपातिकसूत्र सटीक सूत्र २ पत्र ८-९ में चैत्य का बड़ा विस्तृत वर्णन है। चैत्य का एक मात्र यही वर्णक जैन-साहित्य में है। जहाँ भी 'चैत्य' शब्द के बाद

तस्सणं कोणिअस्स रण्णो एक्के पुरिसे विउलकयवित्तिए भगवओ पवित्तिवाउए भगवओ तद्देवसिअं पवित्तिं णिवेएइ तस्स णं पुरिसस्स बहवे अण्णे पुरिसा दिण्णभतिभत्तवेअणा भगवओ पवित्तिवाउआ भगवओ तद्देवसियं पवित्तिं णिवेदेंति ॥

—औपपातिक सूत्र, सटीक, सूत्र ८ पत्र २४–२५

इसकी टीका इस प्रकार की गयी है—

'तस्स णं' मित्यादौ 'विउलकयवित्तिए' त्ति विहित–प्रभूतजीविक इत्यर्थः, वृत्ति प्रमाणं चेदम्—अर्द्ध त्रयोदशरजतसहस्राणि, यदाह— 'मंडलियाण सहस्सा पीईदाणं सयसहस्सा' 'पवित्ति वाउए' त्ति प्रवृत्ति व्यापृतो वार्ताव्यापारवान्, वार्तानिवेदक इत्यर्थः। 'तद्देवसिअं' ति दिवसे भवा दैवसिकी सा चासौ विवक्षिता—अमुत्र नागरादावागतो विहरति भगवानित्यादिरूपा, दैवसिकी चेति तद्दैवसिकी, अतस्तां निवेदयति। 'तस्स ण' मित्यादि अत्र 'दिण्णभतिभत्तवेयण' ति दत्तं भृतिभक्त रूपं वेतनं—मूल्यं येषां ते तथा, तत्रभृतिः—कार्षापणादिका भक्तं च भोजनमिति।

उस कोणिक राजा ने एक पुरुष की विस्तीर्ण वृत्ति—आजीविका भोजनादि का भाग वृत्ति—निकाली थी, वह पुरुष भगवंत महावीरस्वामी की सदैव (रोज-रोज) की वार्ता-समाचार कहने वाला था। उस पुरुष के हाथ नीचे और भी बहुत-से पुरुष थे। उनको इस पुरुष ने बहुवृत्ति भोजनादिक का विभाग दिया था, जिससे वे जहाँ भगवंत विचरते रहते

(पृष्ठ ९१ की पाद टिप्पणि का शेषांश)

'वण्णओ' जैन-साहित्य में मिलता है, वहाँ यही वर्णक जोड़ा जाता है। इस वर्णक को ध्यान में रखकर उसका अर्थ 'उद्यान' आदि किया ही नहीं जा सकता। अनजान श्रावकों को भ्रम में डालने के लिए फिर भी कुछ लोग ऐसी अनधिकार चेष्टा करते हैं।

उनके समाचार उस प्रवर्तिक वादुक पुरुष को कहते थे और वह प्रवर्तिक प्रवादुक पुरुष उन समाचारों को महाराज कोणिक को कहता था।

इस कथन से ही स्पष्ट है कि, कूणिक भगवान् का कितना बड़ा भक्त था।

श्रेणिक के पौत्रों की दीक्षा

भगवान् ने कूणिक राजा और नगर-निवासियों को धर्मोपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर अनेक गृहस्थों ने अनगार-व्रत अंगीकार किया। श्रेणिक के १० पौत्र पद्म, महापद्म, भद्र, सुभद्र, महाभद्र, पद्मसेन, पद्मगुल्म, नलिनीगुल्म, आनंद और नंदन ने भी साधु-व्रत स्वीकार किया।[१]

इनके अतिरिक्त जिनपालित[२] आदि अनेक समृद्ध नागरिकों ने निर्गंथ श्रमण-धर्म अंगीकार किया तथा पालित[३] आदि ने श्रावक-धर्म स्वीकार किया।

—: ❀ :—

१—निरयावलिका (कप्पवडिंसियाओ) (डा० पी० एल० वैद्य-सम्पादित) पृष्ठ ३१।

२—ज्ञाताधर्मकथा (एन० वी० वैद्य-सम्पादित) १-९ पृष्ठ १२१-१३२।

३—उत्तराध्ययन (नेमिचंद्र की टीका सहित) अध्ययन २१ पत्र २७३-२।

अपना शरीर इतना कृष देखकर उन्होंने संलेखना आदि करने की आर्य चंदना से अनुमति माँगी। आर्य चंदना ने उन्हें अनुमति दे दी।

पूरे ८ वर्षों तक श्रामण्य पर्याय पालकर अंत में मासिक संलेखना से आत्मा को सेवित करती हुई ६० भक्तों को अनशन से छेदित कर मृत्यु को प्राप्त कर उसने सिद्ध-पद प्राप्त किया।

सुकाली ने कनकावलि-तप किया। इसकी एक परिपाटी में १ वर्ष ५ माह १८ दिन लगते हैं। सुकाली ने ९ वर्षों तक चारित्र-पर्याय पाल कर मोक्ष प्राप्त किया।

महाकाली ने लघुसिंह-निष्क्रीडित-नामक तप किया। इसके एक क्रम में ३३ दिन पारणे के और ५ महीने ४ दिन की तपस्या होती है। इस प्रकार की ४ परिपाटी उसने २ वर्ष २८ दिनों में पूरी की। इसके अतिरिक्त भी उसने अन्य तपस्याएँ कीं और अन्तिम समय में संथारा करके कर्मों के सम्पूर्ण नाश हो जाने पर मोक्ष गयी।

कृष्णा ने महासिंह-निष्क्रीडित-तप आर्य चन्दना की अनुमति लेकर

वीरकृष्णा ने महासर्वतोभद्र-तपस्या की और अपने सभी कर्म खपा कर वह भी मोक्ष गयी।

रामकृष्णा ने भद्रोत्तर-प्रतिमा-नामक तपस्या की। उसकी चार परिपाटी में उसे २ वर्ष २ मास २० दिन लगे। कर्मों का क्षय कर उसने भी सिद्ध-पद प्राप्त किया।

पितृसेणा ने कितने ही उपवास किये और कर्मों का क्षय करके मोक्ष-पद प्राप्त किया।

महासेणकृष्णा ने आयंबिल-वर्द्धमान-नामक तप किया। इसमें उसे १४ वर्ष ३ मास २० दिन लगे। १७ वर्षों तक चरित्र-पर्याय पालकर अन्त में मासिक संलेखना से आत्मा को भावित करती हुई वह भी मोक्ष गयी।[1]

—:*:—

१—अन्तकृतदशांग (एन० वी० वैद्य-सम्पादित) अ० ८, पृष्ठ ३८-४७।

और तप के फल की प्राप्ति तथा उसके प्रथम प्रयोग का भी उल्लेख हम प्रथक भाग में ही कर चुके हैं (देखिये पृष्ठ २१८)। डाक्टर बाशम ने अपनी पुस्तक 'आजीवक' में (पृष्ठ ५०) लिखा है कि, गोशाला ने झील के तट पर तेजोलेश्या के लिए तप किया था और संदर्भरूप में भगवती का नाम दिया है। पर, झील का उल्लेख न तो भगवतीसूत्र (शतक १५, सूत्र ५४४) में है, न आवश्यकचूर्णि (पूर्वार्द्ध, पत्र २९९) न आवश्यक मलयगिरि-टीका (पत्र २८७-१), न आवश्यक हरिभद्रीय टीका (पत्र २१४-२) न कल्पसूत्र (सुबोधिका टीका सहित, पत्र ३०५) में और न चरित्र-ग्रन्थों में।

बाशम को सूत्र में आये 'वियडासएणं' शब्द से और उसकी टीका देखकर भ्रम हुआ। टीकाकार ने 'विटकं' का अर्थ 'जलं' किया है। पर, बाशम ने यह समझने की चेष्टा नहीं कि, इस 'विकट' का प्रयोग कैसे अर्थ में हुआ है। यह शब्द जैन-साहित्य में कितने स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। हम उनमें से कुछ उद्धरण सप्रमाण दे रहे हैं :—.

(१) शुद्ध विकटं—प्रासुकमुकदम्

—आचारांग सटीक पत्र ३१५-२

(२) वियडेण—'विकटेन' विगत जीवेनाप्युदकेन

—सूत्रकृतांग सटीक १, ९, १९ पत्र १८१

(३) शुद्ध विकटं—शुद्ध विकटम्—उष्णोदकं

—ठाणांगसूत्र सटीक ३, ३, १८२, पत्र १४८-२

(४) सुद्ध वियडे—उष्णोदकं

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका सहित, पत्र ५४८

तो इस जल से झील का अर्थ तो लग ही नहीं सकता। भगवान् ने जहाँ तेजोलेश्या-प्राप्ति की विधि बतायी है, वहाँ उसे 'कुम्मासपिंडियाए' और 'वियड' का आश्रय लेने को कहा है। यहाँ मूल शब्द 'आसएणं' है।

'वियडासएणं' का संस्कृत टीकाकार ने 'विकटाश्रयो' किया है—अर्थात् इन दो वस्तुओं का सहारा लेकर। 'कुम्मासपिंडियाए' के लिए टीकाकार ने लिखा है—'अर्द्धस्विन्ना' अर्थात् आधा उबला हुआ। और, कितनी मात्रा में यह बताते हुए भगवान् ने कहा 'सनहाए' अर्थात् बँधी मुट्ठी के ऊपर जितना कुल्माष रखा जा सके, उतना मात्र खाकर।

'आश्रय' की टीका टीकाकार ने 'स्थानं' किया है। 'ठाण' का अर्थ है—अंक का स्थान अर्थात् परिमाण। यह शब्द मर्यादाद्योतन के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसे टीकाकार ने और स्पष्ट कर दिया है—

प्रस्तावारुचुलुकमाहुर्वृद्धा —अर्थात् एक चिल्लू मात्र पानी

डाक्टर बाशम ने गोशाल के तेजोलेश्या-प्रप्ति का समय मंख का व्यवसाय छोड़ने के लगभग ७ वर्ष बाद माना है।[1] इस गणना का मूल आधार यह है कि उन्होंने ६ वर्षों तक गोशाला का भगवान् के साथ रहना माना है। कल्याणविजय जी ने भी अपनी पुस्तक 'भगवान् महावीर' में लिखा है—"लगभग ६ वर्षों तक साथ रहने के बाद वह उनसे पृथक हो गया।[2]" ऐसा ही गोपालदास जीवाभाई पटेल ने 'महावीर-कथा' में लिखा है।[3] कल्याणविजय और गोपालदास ने अपने ग्रन्थों में गोशाला का भगवान् की छद्मावस्थ के दूसरे वर्ष में भगवान् के साथ आना और १०-वें वर्ष में पृथक होना लिखा है। ऐसा ही क्रम 'आवश्यकचूर्णि' में भी है। प्रथम भाग में हम इन सब का विस्तृत विवरण सप्रमाण दे चुके हैं। अतः हम उनकी यहाँ आवृत्ति नहीं करना चाहते।

भगवती में ६ वर्ष का पाठ देखकर वस्तुतः लोग भ्रम में पड़ जाते हैं। और, स्वयं अपने पूर्व लिखे पर ध्यान न रखकर ६ वर्ष लिखकर भ्रम पैदा करते हैं।

१—आजीवक, पृष्ठ ५०

२—पृष्ठ १२३

३—पृष्ठ—२८०

गोशाला दूसरे वर्षावास में भगवान् से मिला और ६-वाँ वर्षावास भगवान् ने अनार्यभूमि में बिताया। इस प्रकार भगवान् के साथ का उसका वह ७-वाँ वर्ष था—अर्थात् ६ वर्ष पूरा हो चुका था और कुछ मास अधिक हो चुके थे। अनार्य भूमि से गोशाला भगवान् के साथ लौटा और तेजोलेश्या की विधि जानने तक भगवान् के साथ रहा। अतः यह बात निर्विवाद है कि वह भगवान् के साथ ६ वर्ष से अधिक ही रहा।

तेजोलेश्या

जैन-ग्रंथों में लेश्या की परिभाषा बताते हुए लिखा है—

लिश्यते प्राणी कर्मणा यया सा लेश्या[1]

लेश्याओं का सविस्तार वर्णन द्रव्यलोक प्रकाश में आता है।[2] उसी स्थल पर उनके रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि का भी विस्तार से वर्णन है। ठाणांग सूत्र[3] तथा समवयांग सूत्र[4] में ६ लेश्याएँ बतायी गयी हैं—

१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, ३ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५ पद्म-लेश्या और ६ शुक्ललेश्या।

तेजोलेश्या की टीका करते हुए प्रवचनसारोद्धार के टीकाकार ने लिखा है—

तत्र तेजोलेश्या लब्धि क्रोधाधिक्यात्प्रतिपन्थिनं प्रति मुखेनानेक योजन प्रमाणक्षेत्राश्रित वस्तु दहन दक्षतीव्रतर तेजो निसर्जन शक्तिः।[5]

१—ठाणांगसूत्र सटीक, ठा० १, सूत्र ५१ पत्र ३१-२

२—द्रव्यलोक-प्रकाश गुजराती अनुवाद सहित (आगमोदय-समिति) सर्ग ३, पृष्ठ ११२-१२६

३—ठाणांग सूत्र सटीक, उत्तरार्ध, ठा० ६, उ० ३, सूत्र ५०४ पत्र ३६१-२

४—समवायांग सूत्र सटीक, समवाय ६, पत्र ११-१।

५—प्रवचनसारोद्धार सटीक, द्वार २७० पत्र ४३२-१।

तेजोलेश्या किन परिस्थितियों में काम करती है, इसका उल्लेख सटीक ठाणांगसूत्र में सविस्तार है।[1]

निमित्तों का अध्ययन

तेजोलेश्या के लिए तप में सफलता प्राप्त होने के बाद गोशाला ने दिसाचारों से निमित्त सीखे। इसका भी वर्णन हम पहले कर चुके हैं।[2]

'दिशाचर' शब्द पर टीका करते हुए अभयदेव सूरि ने लिखा है—

'दिसाचर' त्ति दिशं मेरां चरन्ति—यान्ति मन्यते भगवतो वयं शिष्या इति दिक्चराः।

भगवच्छिष्याः पार्श्वस्थी भूता इति टीकाकारः 'पासावच्चिज्ज' त्ति चूर्णिकारः।[3]

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में इसका वर्णन अधिक स्पष्ट है।[4] उपदेशमाला सटीक में स्पष्ट 'पासाऽवच्चिज्जा' लिखा है।[5]

१—ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा १०, उ० ३, सूत्र ७७६ पत्र ५२०-२ उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन ३४ [नेमिचन्द की सटीक सहित] पत्र ३६८-१—३७३-१ में भी लेश्याओं की सविस्तार वर्णन है।

२—तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २१८।

३—भगवतीसूत्र सटीक, श० १५, उ० १, सूत्र-५३९ पत्र १२१०।

४—श्री पार्श्वशिष्या अष्टांगनिमित्त ज्ञान पंडिताः,
गोशालसस्य मिलिताः षडमी प्रोज्झितव्रताः ॥१२४॥
नाम्नाः शोणः कलिन्दो ऽन्यः कर्णिकारोऽपरः पुनः।
अच्छिद्रोऽथाग्निवेशामोऽथार्जुनः पञ्चमोत्तरः ॥१२५॥
तेऽप्याख्युरष्टांग महानिमित्तं तस्य सौहृदात्……

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ४, पत्र ४५-२

५—उपदेशमाला दोघट्टी विशेष वृत्ति, पत्र ३२०

बाशम ने लिखा है कि दिशाचरों ने पूर्वों से ८ निमित्त और २ मग्ग निकाले। गोशाला ने उन पर विचार किया और स्वीकार कर लिया।[1] बाशम ने भगवती का जो यह अर्थ निकाला वह विकृत है। वस्तुतः तथ्य यह है कि गोशाला ने उन दिसाचरों से निमित्त आदि सीखे।

अपने 'उवासगदसाओ' के परिशिष्ट में हार्नेल ने भगवतीसूत्र के १५-वें शतक का अनुवाद दिया है। उनके लिखे का तात्पर्य इस प्रकार है—

"६ दिसाचर गोशाला के पास आये। उनसे गोशाला ने उनके सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचार-विमर्ष किया। गोशाला ने अपने निज के सिद्धान्तों में जो ८ महानिमित्तों से निकाले गये थे (जो पूर्वों के एक अंश थे)—उनसे उसने निम्नलिखित ६ सिद्धान्त स्वीकार किये।...[2]"

हार्नेल का यह अनुवाद न भगवती से मेल खाता है और न चरित्रों से। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में कैसा उल्लेख है, यह हम प्रथम भाग में दे चुके हैं।[3] नेमिचन्द्र[4] और गुणचन्द्र[5] ने भी अपने ग्रंथों में इसे स्पष्ट कर दिया है। तद्रूप ही उल्लेख आवश्यकचूर्णि[6], आवश्यक की हरिभद्रीय टीका[7] तथा मलयगिरि की टीका[8] में भी है।

जो पार्श्वसंतानीय साधु दीक्षा छोड़ देते थे, वे प्रायः करके निमित्त से जीविकोपार्जन करते थे। ऐसे कितने ही उदाहरण जैन-शास्त्रों में मिलते

१—आजीवक, पृष्ठ २१३

२—उवासगदसाओ, परिशिष्ट, खंड

३—तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २१८,

४—नेमिचन्द्र-रचित 'महावीर चरियं', श्लोक ६३, पत्र ४६-१

५—गुणचन्द्र-रचित 'महावीर चरियं', प्रस्ताव ६, पत्र २६३-२

६—पूर्वार्द्ध, पत्र २६६

७—पत्र २१५-२

८—पत्र २८७-१

हैं। प्रसंगवश हम पाठकों का ध्यान उत्पल की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। उसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।[१]

निमित्त

जैन-शास्त्रों में ८ निमित्त बताये गये हैं। ठाणांगसूत्र में उनके नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं :—

अट्ठविहे महानिमित्ते पं० तं०—भोमे १, उप्पाते २, सुविणे ३ अंतलिक्खे ४, अंगे ५, सरे ६, लक्खणे ७, वंजणे ८।[२]

ये ही नाम भगवतीसूत्र की टीका में[३] तथा कल्पसूत्र की सुबोधिका टीका[४] में भी दिये हैं।

इन अष्टांग निमित्तों के अतिरिक्त गोशाला ने नवाँ गीतमार्ग और दसवाँ नृत्यमार्ग (जो पूर्वों के अंग थे) दिसाचरों (घुमक्कड़) से सीखे। इनके आधार पर वह १ लाभ, २ अलाभ, ३ सुख, ४ दुःख, ५ जीवन और ६ मरण बता सकने में समर्थ था।[५]

पूर्व

जैन-शास्त्रों में 'पूर्व' अथवा 'पूर्वगत' का उल्लेख दृष्टिवाद-नामक १२-वें अंग में किया गया है। 'पूर्व' शब्द पर टीका करते हुए समवायांगसूत्र के टीकाकार ने लिखा है—

पूर्वगत? उच्यते, यस्मा त्तीर्थकरः तीर्थ-प्रवर्तनाकाले गणधरानां सर्वसूत्र धारत्वेन पूर्वं पूर्वगतं सूत्रार्थं भापते तस्मा

१—तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ १७२

२—ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा ८, उ० सूत्र ६०८ पत्र ४२७-१

३—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२१०

४—पत्र १७१

५—भगवतीसूत्र सटीक, श० १५, उ० १ सूत्र ५३९ पत्र १२०९-१२१०

त्पूर्वाणीति भणितानि, गणधराः पुनः श्रुत रचनां विदधाना आचार क्रमेण रचयन्ति स्थापयन्ति च, मान्तरेण तु पूर्वगत-सूत्रार्थः पूर्वमर्हता भाषितो गणधरैरपि पूर्वगत श्रुतमेव पूर्वं रचितं पश्चादाचारादि[1]

इसी आशय की टीका नन्दीसूत्र की टीका में भी दी हुई है।[2]

ठाणांग सूत्र में दृष्टिवाद के १० नाम दिये हुए हैं वहाँ 'पूर्वगत' की टीका में आता है—

सर्वं श्रुतात्पूर्वं क्रियंत इति पूर्वाणि—उत्पाद् पूर्वादीनि चतुर्दश तेषु गतः-अभ्यन्तरीभूतस्तत्स्वभाव इत्यर्थः पूर्वगतः...[3]

जैन-शास्त्रों में पूर्वों की संख्या १४ बतायी गयी है और उनके नाम इस प्रकार बताये गये हैं :—१-उत्पादपूर्व, २ अग्रायणीयपूर्व, ३ वीर्य-प्रवाद पूर्व, ४ अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व, ५ ज्ञानप्रवादपूर्व, ६ सत्यप्रवाद-पूर्व, ७ आत्मप्रवादपूर्व, ८ कर्मप्रवादपूर्व, ९ प्रत्याख्यान, १० विद्या-नुप्रवाद पूर्व, ११ अवंधपूर्व, १२ प्राणायुःपूर्व, १३ क्रियाविशालपूर्व १४ लोकबिन्दुसारपूर्व[4]।

यह 'पूर्व' शब्द जैन-साहित्य में पारिभाषिक शब्द है। इस रूप में 'पूर्व' का व्यवहार न तो वैदिकों में मिलता है और न बौद्धों में। डाक्टर बरुआ ने 'पूर्व' का अर्थ परम्परागत[5] किया है। पर, यह उनकी भूल है।

१—समवायांग सूत्र सटीक, समवाय १४७ पत्र १२१–२

२—नंदीसूत्र सटीक, पत्र २४०–२

३—ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा १०, उद्देशा ३, सूत्र ७४२ पत्र ४९१–२

४—समवायांग सूत्र सटीक, समवाय १४, पत्र २५–१, समवाय १४७ पत्र११९–२ तथा नन्दीसूत्र सटीक, सूत्र ५७, पत्र २३६–२—२३७–१

५—जर्नल आव द' डिपार्टमेंट आव लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, ii, पृष्ठ ४१, आजीवक (बाशम-लिखित) पृष्ठ २१४

'पूर्वों' के सम्बंध में हम जो कुछ ऊपर लिख आये हैं, उससे अधिक कुछ स्पष्टीकरण के लिए अपेक्षित नहीं है।

गोशाला जिन बना

श्रावस्ती में ही गोशाला ने तेजोलेश्या की प्राप्ति की और वहीं निमित्तादि का ज्ञान प्राप्त करके गोशाला अपने को "'मैं जिन[1] हूँ,' 'मैं अर्हत्[2] हूँ,' 'मैं केवली[3] हूँ,' 'मैं सर्वज्ञ[4] हूँ'" कहकर विचरने लगा और आजीवक-सम्प्रदाय का धर्माचार्य बन गया।

उसने अपना चौमासा श्रावस्ती में बिताया था। वह उसका चौबीसवाँ चौमासा था। चौमासे के बाद भी गोशाला हालाहला कुम्भकारिन की भांडशाला[5] में ठहरा था।

भगवान् श्रावस्ती में

इसी समय भगवान् विहार करते हुए श्रावस्ती पहुँचे और श्रावस्ती के ईशान-कोण में स्थित कोष्ठक-चैत्य में ठहरे। भगवान् की आज्ञा लेकर भगवान् के मुख्य गणधर इन्द्रभूति गौतम गोचरी के लिए श्रावस्ती नगरी में गये। श्रावस्ती-नगरी में विचरते हुए इन्द्रभूति ने लोगों के मुख से सुना—"गोशालक अपने को 'जिन' कहता हुआ विचर रहा है।"

१—राग-द्वेष-जेता

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका सहित, पत्र ३२२

२—अरिहननात् रजोहननात् रहस्याभावाच्चेति वा पृषोदरादित्वात्

—अभिधान चिंतामणि सटीक, देवाधिदेव कांड, श्लोक २४, पृष्ठ ६

३—सर्वथावरण विलये चेतनस्वरूपाविर्भावः केवलं तदस्यास्ति केवली

—अभिधान चिन्तामणि सटीक, पृष्ठ १०

४—सर्वं जानाति इति सर्वज्ञः

—अभिधानचिंतामणि, सटीक पृष्ठ १०

५—सभाष्य-चूर्णि निशीथ में कुम्भकार की पाँच शालाओं का उल्लेख आता है:—

लौटकर इन्द्रभूति जब आये तो समवसरण के बाद पर्षदा वापस चली जाने पर इन्द्रभूति ने भगवान् से पूछा—"हे देवानुप्रिय ! मंखलीपुत्र गोशालक अपने को 'जिन' कहता है और 'जिन' शब्द का प्रकाश करता विचर रहा है। यह किस प्रकार माना जा सकता है ? यह कैसे सम्भव है ? मंखलिपुत्र गोशालक के जन्म से लेकर अंत तक का वृतांत आपसे सुनना चाहता हूँ।"

मंखलिपुत्र का जीवन

इस प्रश्न को सुनकर भगवान् बोले—"हे गौतम ! तुमने बहुत-से मनुष्यों से सुना कि मंखलिपुत्र अपने को 'जिन' कहकर विचरता है। वह मिथ्या है। मैं इसे इस रूप में कहता हूँ कि मंखलिपुत्र गोशाला का पिता मंख जाति का मंखलि[1]-नामक व्यक्ति था। मंखलि को भद्रा-नामकी भार्या थी। एक बार भद्रा गर्भवती हुई थी।

(पृष्ठ १०६ की पादटिप्पणि का शेषांश)

(१) पणिअ साला—जत्थ भायणाणि विक्केति, वणिय, कुंभकारो वा एसा पणियसाला

—जहाँ भांड बेचे जायें वह पणियसाला

(२) भंडशाला—जहिं भंयणाणि संगोवियाणि अच्छंति

—जहाँ भांडसुरक्षित रखे जायें

(३) कम्मसाला—जत्थकम्मं करेंत्ति कुम्भकारो

—जहाँ कुंभकार भांड बनाता है

(४) पयणसाला जहिं पच्चंति भायणाणि

—जहाँ भांड पकाये जाते हैं

(५) इंधणसाला जत्थ तण करिसभारा अच्छंति

—जहाँ वह ईंधन संग्रह करता है—निशीथ समाष्य चूर्णि, भाग ४, पृष्ठ ६२

१—'विश्वोद्धारक महावीर', भाग १ (पृष्ठ ११२) में गोशाला के पिता का नाम गोवाहुल लिखा है, जो सर्वथा अशुद्ध और शास्त्रों में आये प्रसंगों से असिद्ध है (देखिये आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र २८२)।

"उस समय सरवण-नामक सन्निवेश था। उस सरवण-सन्निवेश में गोब्रहुल-नामका ब्राह्मण रहा था। वह ऋद्धिवाला और अपरिभूत था, ऋग्वेदादि का पंडित था और सुपरिनिष्ठ था। उस गोब्रहुल की गोशाला थी।

"मंखली चित्र-फलक हाथ में लेकर अपनी गर्भवती पत्नी के साथ ग्रामानुग्राम भिक्षाटन करता हुआ सरवण-नामक ग्राम में आया और गोब्रहुल की गोशाला के एक विभाग में अपने भंडोपकरण उसने रख दिये। गर्भ के ९। मास पूरे हो रहे थे। अतः यहीं भद्रा को पुत्र पैदा हो गया। ११ दिन बीतने पर बारहवें दिन उस पुत्र का गुणनिष्पन्न नाम गोशाला रखा गया (क्योंकि वह गोशाला में पैदा हुआ था।[१])

"बचपन पार कर चुकने के बाद गोशाला स्वयं चित्रफलक लेकर भिक्षाटन करने लगा।

"उस समय ३० वर्ष गृहवास में बिताकर, माता-पिता के स्वर्ग-गमन के पश्चात् एक देवदूष्य लेकर मैंने साधु-व्रत स्वीकार किया। उस समय अर्द्धमास खमण की तपस्या करता हुआ, अस्थिकग्राम की निश्रा में

(पृष्ठ १०७ पाद टीप्पणि का शेषांश)

बौद्ध-ग्रंथों में उसका नाम मक्खली-गोशाला मिलता है। सामञ्जफल-सुत्त की टीका में बुद्धघोष ने लिखा है कि गोशाला दास था। फिसलन वाली भूमि में तेल का घड़ा लेकर जा रहा था। उसके मालिक ने उसे चेतावनी दी—'तात मा खल इति।' इसके बावजूद उसने तेल नष्ट कर दिया। तेल नष्ट होने के बाद मालिक के डर से वह भागा। पर, मालिक ने उसके दास-वस्त्र का टोका पकड़ लिया। अपना वस्त्र छोड़कर गोशाला नंगा ही भागा। इस प्रकार वह नग्न साधु हो गया और मालिक द्वारा कहे गये 'मा खलि' शब्द के आधार पर वह 'मक्खली' कहा जाने लगा। —डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृष्ठ ४००

१—गोशालक का जन्म गोशाला में हुआ था, ऐसा सामञ्ज फलसुत्त की टीका में बुद्धघोष ने भी लिखा है—सुमंगलविलासिनी—पृष्ठ १४३-४; आजीवक (बारुआ-कृत) पृष्ठ ३७

प्रथम वर्षावास विताने मैं आया। दूसरे वर्ष में मास खमण की तपस्या करके पूर्वानुपूर्वी विचरता हुआ, ग्रामानुग्राम में विहार करता हुआ राज-गृह-नगर के नालंदापाड़ा के बाहर यथाप्रतिरूप अवग्रह मात्र कर तंतुवायशाला के एक भाग में वर्षावास विताने के लिए रुका।

"अन्यत्र स्थान न मिलने के कारण गोशालक भी उसी तंतुवायशाला में आकर ठहरा। मास-खमण की पारणा के लिए मैं तंतुवायशाला से निकला और नालंदा के मध्य भाग में होता हुआ राजगृह पहुँचा। राज-गृह में विजय-नामक गाथापति रहता था। उसने बड़े आदर से मुझे भिक्षा दी। उस समय उसके घर में पाँच दिव्य प्रकट हुए— १ वसुधारा की वृष्टि, २ पाँच वर्णों के पुष्पों की वृष्टि, ३ ध्वजा-रूप वस्त्र की वृष्टि, ४ देवदुंदुभी बजी और ५ 'आश्चर्यकारी दान', 'आश्चर्यकारी दान' की ध्वनि स्वर्ग से आने लगी। राजमार्ग में भी लोग उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। बहुत-से लोगों से विजय की प्रशंसा सुन गोशाला को कुतूहल उत्पन्न हुआ और वह विजय के घर आया। फिर मेरे पास आकर उसने कहा—'हे भगवन्! आप हमारे धर्माचार्य हैं और मैं आपका अंतेवासी।'[1] उस समय मैंने गोशाला के इस कथन का आदर नहीं किया।

"दूसरा मास-क्षमण पूरा करके भिक्षा के लिए मैं निकला और आनंद गाथापति के घर की भिक्षा से मैंने पारणा की। तीसरा मास-क्षमण करके मैंने सुनन्द के घर भिक्षा ग्रहण की। इन दोनों की भी बड़ी प्रशंसा हुई

१—अभिधान चिन्तामणि स्वोपज्ञ टीका सहित, देवाधिदेव कांड, श्लोक ७९ (पृष्ठ २५) में अंतेवासी के पर्याय इस रूप में दिये हैं:—

शिष्यो विनेयोऽन्तेवासी।

और, 'अन्तेवासी' की टीका इस प्रकार दी हुई है—

गुरोरन्ते वसत्यवश्यं इति अन्तेवासी शयवासिवासेष्व कालात्।

और दोनों के घर पंचदिव्य प्रकट हुए। चौथे मास क्षमण के अन्त में मैंने नालंदा के निकट स्थित कोल्लाग-सन्निवेश में बहुल-नामक ब्राह्मण के घर भिक्षा ग्रहण की।

"मुझे तंतुवायशाला में न पाकर गोशाला मुंडित होकर, अपना वस्त्र आदि त्याग कर कोल्लाग में आया। गली-कूचे में खोजता-खोजता कोल्लाग सन्निवेश के बाहर पणियभूमि[1] में वह मुझे मिला।

"वहाँ तीन बार मेरी प्रदक्षिणा करके वह बोला—'हे भगवन्! आप हमारे धर्माचार्य हैं और मैं आपका शिष्य हूँ।' हे गौतम! इस बार मैंने गोशाला की बात स्वीकार कर ली। उसके बाद ६ वर्षों तक पणियभूमि तक वह मेरे साथ विहार करता रहा।"

पणियभूमि

'पणियभूमि' शब्द पर टीका करते हुए भगवतीसूत्र की टीका में लिखा है—

पणितभूमेरारभ्य प्रणीतभूमौ वा मनोज्ञभूमौ विहृत वानिति योगः।[2]

कल्पसूत्र में जहाँ भगवान् के वर्षावास गिनाये गये हैं, वहाँ भी एक वर्षावास 'पणिअभूमि'[3] में बिताने का उल्लेख है। सुबोधिका-टीका में उसकी टीका इस प्रकार दी है :—

१—'पणिय भूमि' की टीका करते हुए भगवतीसूत्र के टीकाकार ने लिखा है—

'भाण्ड विश्राम स्थाने प्रणीत भूमौ वा मनोज्ञ भूमौ (पत्र १२१६)

'पणिय' शब्द समाप्यचूर्णि निशीथ में भी आया है। हम उसका उल्लेख पृष्ठ १०७ पर पादटिप्पणी में कर चुके हैं। यहाँ पणियभूमि वह भूमि है, जहाँ भगवान् ठहरे थे। आप्टेज 'संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी' में 'प्रणीत' का अर्थ 'डेलिवर्ड', 'गिवेन', 'आफर्ड', 'प्रेजेंटेड' दिया है अर्थात् वह भूमि जो भगवान् को ठहरने के लिए दी गयी थी।

२—भगवतीसूत्र सटीक पत्र १२१६।

३—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका सहित, व्याख्यान ६, सूत्र १२२, पत्र ३४२।

वज्रभूम्याख्यानार्ये देशे इत्यर्थः[1] ।

इसी प्रकार की टीका संदेह-विषौषधि-टीका में आचार्य जिनप्रभसूरि ने दी है :—

वज्रभूमाख्येऽनार्य देशे[2] ।

वज्रभूमि अनार्यदेश के चौमासे का वर्णन आचारांग में आया है। वहाँ उसे **"दुच्चर लाढ़माचारी वज्जभूमिं च सुब्भभूमिं च"**[3] लिखा है। आचारांग के टीकाकार ने 'सुब्भभूमि' को 'शुभ्रभूमि' कर दिया है; पर यह दोनों ही किसी लिपिकार की भूल है। मूल शब्द वह 'सुम्ह' भूमि होना चाहिए। इसका उल्लेख आर्य और बौद्ध दोनों ही ग्रन्थों में मिलता है। हम यहाँ उसके कुछ प्रमाण दे रहे हैं :—

(१) महाभारत के टीकाकार नीलकंठ ने 'सुम्ह' और 'राढ़' को एक ही देश माना है।[4]

(२) 'दिग्विजय-प्रकाश' में राढ़ देश को वीरभूमि से पूर्व और दामोदर घाटी से उत्तर में बताया गया है।[5]

(३) इसका उल्लेख बौद्ध-ग्रन्थों में भी आता है। संयुक्त निकाय[6] और उसकी टीका सारत्थपकासिनी[7] तथा तेलपत्त-जातक[8] में इसका नाम आता है।[9]

१—वही, पत्र वही ।

२—संदेह-विषौषधि-टीका, पत्र ११० ।

३—आचारांग सूत्र सटीक, १–९–३ पत्र २८१ ।

४—महाभारत की टीका २, ३०, १६; हिस्ट्री आव बेंगाल (आर० सी० मजूमदार-लिखित) भाग १, पृष्ठ १०

५—'वसुमति' माघ १३४०, पृष्ठ ६१०; हिस्ट्री आव बेंगाल (मजूमदार-लिखित) भाग १, पृष्ठ १०

६—संयुक्त निकाय (हिन्दी-अनुवाद) भाग २, पृष्ठ ६६१, ६६५, ६६६

७—सारत्थप्पकासिनी ३, १८, १

८—जातक (हिन्दी-अनुवाद) भाग १, तेलपत्त जातक (९६) पृष्ठ ५५६, जातकट्ठ-कथा (मूल) पृष्ठ ३८७

९—'डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स,' भाग २, पृष्ठ १२५२

दशकुमार चरित्र में भी सुम्भ देश का उल्लेख आया है।[1]

लिखने की यह भूल आवश्यकचूर्णि पूर्वार्द्ध (पत्र २९६), आवश्यक हारिभद्रीय टीका (भाग १, पत्र २११-१) तथा मलयगिरि की टीका (भाग १, पत्र २८५-२) में भी है। वहाँ भी सुद्धभूमि लिखा है, जब कि उसे 'सुम्ह भूमि' होना चाहिए था।

सुद्धभूमि वाली यह भूल त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (पर्व १०, सर्ग ४, श्लोक ५४, पत्र ४२-२) तथा गुणचन्द्र-रचित महावीर-चारियं (प्रस्ताव ६, पत्र २१८-१) में भी है।

इस देश के सम्बन्ध में हमने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारतवर्ष नू सिंहावलोकन' में विस्तृत विचार किया है[2] और उसकी स्थिति के संबंध में तीर्थंकर महावीर (भाग १) में प्रकाश डाल चुका हूँ।[3]

गोशाला को तेजोलेश्या का ज्ञान

उसके बाद भगवान् ने कहा—"अनार्य देश के विहार के बाद प्रथम शरद्-काल में सिद्धार्थ ग्राम से कूर्मग्राम की ओर जाता हुआ तिल के पौदों वाला प्रसंग हुआ और फिर कूर्मग्राम में बालतपस्वी और तेजोलेश्या वाली घटना घटी। वहीं उसने मुझसे तेजोलेश्या की विधि पूछी और मैंने उसे बता दी।"

भगवान् ने अपने साथ की पूरी कथा कहने के बाद कहा—"उसके बाद गोशाला मुझसे पृथक हो गया और तपस्या करके ६ मास में उसने तेजोलेश्या प्राप्त की।

"फिर दिशाचरों से उसने निमित्त सीखे और उसके बाद 'जिन' होता हुआ भी वह अपने को 'जिन' कहता हुआ विचर रहा

१—दशकुमारचरित्र (रामचन्द्र काले सम्पादित) उच्छ्वास ६, पृष्ठ १४[illegible]

२—पृष्ठ १८६–१९६

३—तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २०२, २११–२१३

हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशालक 'जिन' नहीं है; परन्तु 'जिन' शब्द का प्रलाप करता है।"

पर्षदा जब लौटी तो उसने सर्वत्र कहना प्रारम्भ किया—"हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान् महावीर कहते हैं कि, मंखलिपुत्र गोशालक 'जिन' नहीं है और 'जिन' का प्रलाप करता हुआ विचर रहा है।"

गोशाला-आनन्द की वार्ता

उस समय भगवान् महावीर के एक शिष्य आनन्द[1] थे जो छट्ठ-छट्ठ की तपस्या कर रहे थे। पारणा के दिन उन्होंने गौतम स्वामी के समान[2] अनुमति ली और उच्च-नीच और मध्यम कुलों में गोचरी के लिए गये। उस समय गोशाला ने उन्हें देखा। और बुलाकर कहा—

"हे आनन्द यहाँ आओ और मेरा एक दृष्टान्त सुनो। आज से कितने काल पहले धन के अर्थी, धन में लुब्ध, धन की गवेषणा करने वाले कितने ही छोटे-बड़े वणिक् विविध प्रकार के बहुत-से भंड[3] गाड़ी में डालकर और

१—एक आनन्द का उल्लेख निरयावलिया के कप्पवडिंसियाओ के ६-वें अध्ययन में मिलता है। उसकी माता का नाम आनन्दा था। २ वर्ष साधु-धर्म पाल का वह काल करके १०-वें देवलोक प्राणत में गया और महाविदेह में सिद्ध होगा। (गोपाणी-चौकसी सम्पादित निरयावलिया, पृष्ठ ३२-३३ तथा ६०]

२—यहाँ पाठ हैं—

पढमाए पोरिसिए एवं जहा गोयम सामी ...'

इसका पूरा पाठ उवासगदसाओ (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) अध्ययन १, सूत्र ७६ में दिया है।

३—टीकाकार ने 'पणिय भंड' की टीका में लिखा है—

'पणिय भंडे' त्ति पणितं व्यवहारस्तदर्थं भांडं पणितं वा क्रयाणकम् तद्रूपं भाण्डं न तु भाजनमिति पणित भाण्डं—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२३४

हिन्दी में इसे कहिये—क्रमाणक, पण्य, बेचने की वस्तु

बहुत भोजन-पानी की व्यवस्था करके एक जंगल में गये। ग्रामरहित और मार्गरहित उस जंगल में कुछ दूर जाने पर उनका जल समाप्त हो गया। पास में जल न होने के कारण तृषा से पीड़ित वे कहने लगे—'हे देवानुप्रियो! इस ग्रामरहित जंगल में हमारे पास का पानी तो समाप्त हो गया। अतः अब इस जंगल में चारों ओर पानी की गवेषणा करनी चाहिए।' वे सभी चारों ओर पानी की गवेषणा करने गये। घूमते-फिरते वे एक ऐसे स्थल पर पहुँचे जहाँ उन्हें चार बाँबियाँ दिखलायी पड़ीं। व्यापारियों ने एक बाँबी खोदा तो उन्हें स्वच्छ जल मिला। सबने जल पिया और अपने बर्तनों में भर लिया। जल मिल जाने पर उनमें से एक सुबुद्धि वणिक् ने लौट चलने की सलाह दी। पर, शेष लोभी वणिकों ने अन्य बाँबियाँ खोदने के लिए आग्रह किया। दूसरी बाँबी तोड़ने पर उन्हें सोना मिला। तीसरी बाँबी तोड़ने पर मणि-रत्नों का खजाना मिला। लोभी वणिकों की तृष्णा न बुझी। उन्होंने चौथी बाँबी तोड़ी। उसमें दृष्टिविष सर्प निकला और सब के सब भस्म हो गये।[1]

"हे आनन्द! यह उपमा तेरे धर्माचार्य पर भी लागू होती है। तेरे धर्माचार्य को सम्पूर्ण लाभ प्राप्त हो चुकने पर भी संतोष नहीं है। वे मेरे सम्बन्ध में कहते फिरते हैं 'गोशाला मेरा शिष्य है! वह छद्मस्थ है!! वह मंखली पुत्र है!!!' तू जा अपने धर्माचार्य को सावधान कर दे अन्यथा मैं स्वयं आकर उनकी दशा दुर्बुद्धि वणिकों-सी करता हूँ।"

दृष्टिविष सर्प

प्रज्ञापना सूत्र सटीक में 'दृष्टिविष' की टीका करते हुए लिखा है—

१—बाशम का मत है कि यह कथा आजीवकों के शास्त्र में रही होगी और वहाँ से यहाँ उद्धृत हुई है। —देखिये 'आजीवक', पृष्ठ २१६

यह कथा कल्पसूत्र सुबोधिका-टीका सहित, पत्र ६५ में 'उपसर्ग' आश्चर्य के प्रसंग में भी आयी है।

दृष्टौ विषं येषां ते दृष्टिविषाः[1]

प्रज्ञापनासूत्र में सर्पों का बड़ा विस्तृत विवेचन और वर्गीकरण किया गया है। 'परिसप्पथलयरपंचिदियतिरक्खयोनी' के दो भेद १ उरपरिसप्प और २ भुयपरिसप्प किये गये हैं। 'उरपरिसप्प' के ४ भेद हैं—१ अही, २ अयगरा, ३ आसालिया ४ महोरगा। 'अही' के दो भेद हैं—१ दव्वीकरा २ मउलिणो। 'दव्वीकरा' के अनेक भेद हैं। यथा—१ आसीविस २ दिट्ठिविस ३ उग्गविस ४ भोगविस ५ तयाविस ६ लालाविस, ७ निसासविस, ८ कण्हविस, ९ सेदसप्प १० काओदरा, ११दज्झपुप्फा, १२ कोलाहा, १३ मेलिथिंदा, १४ सेसिंदा। मउलिणो के भी अनेक भेद हैं—१ दिव्वागा, २ गोणसा, ३ कसाहीया ४ वइउला, ५ चित्तलिणो, ६ मंडलिणो, ७ मालिणो ८ अही, ९ अहिसलागा, १० वासपंडगा।

इस प्रकार कितनी ही शाखा-प्रशाखाएँ सर्पों की उस ग्रंथ में बतायी गयी हैं।[2]

आनन्द द्वारा भगवान् को सूचना

गोचरी से लौटकर आनन्द ने सारी बात भगवान् से कही और पूछा—"हे भगवान्! मंखलिपुत्र गोशालक क्या अपने तपःतेज से भस्म करने में समर्थ है?" ऐसे कितने ही प्रश्न भीत आनन्द ने भगवान् से पूछे।

भगवान् की चेतावानी

भगवान् ने कहा—"हाँ, मंखलीपुत्र समर्थ है; परन्तु अरिहंत को भस्म करने में वह समर्थ नहीं है। वह अरिहंत को परितातना मात्र कर सकता है। जितना तपःतेज गोशाला का है, उससे अनन्तगुणा विशिष्टतर सामान्य साधु में होता है, उससे अनन्त गुणा तपःतेज स्थविरों में होता है, और

१—प्रज्ञापनासूत्र सटीक, पत्र ४७-१।

२—वही, पत्र ४५-२—४६-१।

जितना तपःतेज स्थविरों में होता है, उससे अनन्तगुणा अरिहन्त भगवन्त में होता है; क्योंकि वह क्षान्ति (क्षमा) वाले होते हैं।

"इसलिए हे आनन्द ! तुम गौतमादि श्रमण-निर्ग्रंथों के पास जाओ और कहो कि मंखलिपुत्र गोशालक ने श्रमण-निर्ग्रंथों के साथ अनार्यपना अंगीकार किया है। इसलिए उसके यहाँ आने पर उसके साथ धर्म-सम्बन्धी प्रतिचोदना (उसके मत से प्रतिकूल वचन) मत करना, प्रति-सारणा (उसके मत से प्रतिकूल अर्थ का स्मरण) मत कराना और उसका प्रत्युपचार (तिरस्कार) मत करना।" आनन्द ने जाकर सप्रसंग सब बातें गौतमादि से कहीं।

गोशाला का आगमन

इधर ये बातें चल रही थीं कि, उधर गोशालक आजीवक-संघ के साथ हालाहला-कुम्भकारिन की भांडशाला से निकला और श्रावस्ती-नगरी के मध्य से होता हुआ कोष्ठक चैत्य में आया। भगवान् के सम्मुख जाकर वह बोला—"ठीक है, आयुष्मान काश्यप ! अच्छा है, तुमने मेरे बारे में यह कहा है कि, 'मंखलिपुत्र गोशाला मेरा शिष्य है। जो मंखलिपुत्र गोशाला तेरा धर्म का शिष्य था, वह शुक्लशुक्लाभिजात बनकर काल के अवसर में कालकर किसी देवलोक में देव-रूप उत्पन्न हुआ है। कुंडियायन-गोत्रीय उदायी नामवाले मैंने अर्जुन गौतम-पुत्र का शरीर छोड़कर मंखलिपुत्र गोशाला के शरीर में प्रवेश किया है। इस तरह प्रवेश करते मैंने सातवाँ शरीर धारण किया है। आयु-ष्मान् काश्यप ! जो कोई गत काल में सिद्ध हुए, वर्तमान में सीझते हैं और अनागत में सीझेंगे, वे सब हमारे शास्त्रानुसार वहाँ पर चौरासी लाख महाकल्प पर्यन्त सुख भोगते हैं। ऐसे ही सात देव, सात संज्ञी मनुष्य के भव भोगकर-शरीरान्तर में प्रवेश करते हैं। सात संज्ञी गर्भान्तर पश्चात्

कर्म के पाँच लाख साठ हजार छः सौ तीन भेद अनुक्रम से क्षय करके सिद्ध हुए, मुक्त हुए यावत् अन्त किया, करते हैं और करेंगे।

"अब महाकल्प का प्रमाण कहते हैं :—

"जैसे गंगा नदी जहाँ से निकलकर जहाँ जाकर समस्त प्रकार से समातपने को प्राप्त होती है, वह गंगा ५०० योजन लम्बी, आधा योजन चौड़ी तथा ५०० धनुष ऊँची है। ऐसी

"७ गंगा = १ महागंगा
"७ महागंगा = १ सादीनगंगा
"७ सादीनगंगा = १ मृत्युगंगा
"७ मृत्युगंगा = १ लोहितगंगा
"७ लोहितगंगा = १ अवंतीगंगा
"७ अवंतीगंगा = १ परमावतीगंगा

"इस प्रकार पूर्वापर एकत्र करने से १ लाख ७० हजार ६४९ गंगाओं के बराबर हुआ।

"उस गंगा में रही हुई बालुका के दो भेद हैं—(१) सूक्ष्म बोंदिकलेवररूप और (२) बादरबोंदिकलेवररूप।

"हम यहाँ सूक्ष्म शरीर कण की परिभाषा नहीं करते।

"उक्त गंगाओं में से एक-एक कण निकालते जितने काल में वे सब क्षीण—रजरहित—निर्लेप व अवयवरहित हो उसे सरप्रमाणकाल कहते हैं।

"ऐसे ३ लाख सरप्रमाणकाल = १ महाकल्प।

"८४ लाख महाकल्प = १ महामानस अथवा मानसोत्तर।

"अब सात दिव्यादिक् की प्ररूपणा करते हैं।

"अनन्त संयूथ—अनन्त जीव के समुदाय-रूप निकाय से जीव च्यव करके संयूथ देवभव में एक मानस सरप्रमाण का आयुष्य प्राप्त करता है। वहाँ देवलोक में दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरण करता

है। उस देवलोक का आयुष्य समाप्त करके वह गर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्यपने को प्राप्त होता है।

'उसके बाद वहाँ से च्यव कर मध्यम मानसस(प्रमाण आयुष्य वाले देवसंयूथ में जाता है। वहाँ दिव्य भोग भोगकर दूसरा मनुष्य भव प्राप्त करता है।

"इसके बाद वह मानसप्रमाण आयुष्य वाले नीचे के देवसंयूथ में देवगति को प्राप्त होता है। वहाँ से निकलकर तीसरा मनुष्य जन्म ग्रहण करता है।

"फिर वह मानसोत्तर देवसंयूथ में मानसोत्तर आयुष्य वाला देव होकर फिर चौथा मनुष्य जन्म ग्रहण करता है।

"उसके बाद वह मानसोत्तरसंयूथ में देव होता है, फिर पाँचवाँ मनुष्य-जन्म ग्रहण करता है।

"वह मानसोत्तरदेवसंयूथ में देवपद प्राप्त करता है और वहाँ दिव्य सुख भोग कर वह फिर मनुष्य होता है।

"वहाँ से निकल कर ब्रह्मलोक-नामक कल्पदेवलोक में उत्पन्न होता है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बाई वाला है और उत्तर-दक्षिण विस्तार वाला है (जिस प्रकार प्रज्ञापना-सूत्र में स्थानपद प्रकरण में कहा गया है)। उसमें पाँच अवतंसकविमान कहे गये हैं।[1] वह अशोकावतंसक विमान में उत्पन्न होता है।

"वहाँ १० सागरोपम तक दिव्य भोग भोगकर वहाँ से च्यवकर सातवाँ गर्भज मनुष्य उत्पन्न होता है। वहाँ ९ मास ७॥ दिन व्यतीत होने के बाद सुकुमाल, भद्र, मृदु, दर्भ की कुंडली के समान संकुचित केशवाला देवकुमार के समान बालक-रूप जन्म लेता है।

१—प्रज्ञापनासूत्र सटीक, पूर्वार्द्ध, स्थान २, पत्र १०२-२ तथा १०३-१ में ब्रह्म-देवलोक का वर्णन है।

"हे काश्यप ! मैं वही हूँ। हे काश्यप ! कुमारावस्था में ब्रह्मचर्य धारण करने से, अविद्धकर्ण, व्युत्पन्न बुद्धि वाला होने से, प्रव्रज्या ग्रहण करने की मुझमें इच्छा हुई। सात प्रवृत्तिपरिहार शरीरांत प्रवेश भी मैं कर चुका हूँ। वे इस प्रकार हैं—१ ऐणेयक, २ मल्लराम, ३ मंडित, ४ रोह, ५ भरद्वाज, ६ गौतमपुत्र अर्जुन और तब ७ मंखलिपुत्र गोशालक के शरीर में प्रवेश किया।

"१—सातवें मनुष्य भव में मैं उदायी कुंडियायन था। राजगृह नगर के बाहर मंडिकुक्षि-चैत्य[1] में उदायी कुंडियायन का शरीर छोड़ कर मैंने ऐणेयक के शरीर में प्रवेश किया और २२ वर्ष उसमें रहा।

"२—उद्दंडपुर नगर के चन्द्रावतरण-चैत्य में ऐणेयक का शरीर छोड़ा और मल्लराम के शरीर में प्रवेश किया। २० वर्ष उसमें रहा।

"३—चम्पा-नगर के अंगमंदिर-चैत्य में मल्लराम का शरीर छोड़कर मंडित के शरीर में प्रवेश किया और १८ वर्ष उसमें रहा।

"४—वाराणसी नगरी में काममहावन में माल्यमंडित का शरीर छोड़कर रोह के शरीर में प्रवेश किया और १९ वर्ष उसमें रहा।

"५—आलभिया-नगरी के पत्तकलाय-चैत्य में रोह के शरीर से निकल कर भरद्राज के शरीर में प्रवेश किया और १८ वर्ष वहाँ रहा।

"६—वैशाली नगरी के कोण्डिन्यायनचैत्य में गौतमपुत्र अर्जुन के शरीर में प्रवेश करके १७ वर्ष उसमें रहा।

"७—श्रावस्ती में हालाहला की भांडशाला में अर्जुन के शरीर से निकल कर इस गोशालक के शरीर में प्रवेश किया। इस शरीर में १६ वर्ष रहने के पश्चात् सर्व दुःखों का अंत करके मुक्त हो जाऊँगा।

१—मंडिकुक्षि-चैत्य की स्थिति के सम्बन्ध में राजाओं वाले प्रसंग में श्रेणिक राजा के प्रसंग में विचार किया गया है।

"इस प्रकार हे आयुष्मान् काश्यप ! १३३ वर्षों में मैंने ७ शरीरांतर-परावर्तन किया है।"[1]

गोशाला को भगवान् का उत्तर

गोशाला के इस प्रकार कहने पर भगवान् बोले—"हे गोशालक ! जिस प्रकार कोई चोर हो, वह ग्राम-वासियों से पराभव पाता जैसे गड्ढे, दरी, दुर्ग, निम्नस्थल, पर्वत या विषम स्थान न मिलने से एकाध ऊन के रेशे से, सन के रेशे से अथवा रुई के रेशे से या तृण के अग्रभाग से अपने को ढँक कर—न ढँका हुआ होने पर भी—यह मान ले कि, मैं ढँका हुआ हूँ; उसी प्रकार तू भी दूसरा न होता हुआ—'मैं दूसरा हूँ,' कहकर अपने को छिपाना चाहता है। हे गोशालक ! अन्य न होने पर भी तुम अपने को अन्य कह रहे हो ! ऐसा मत करो। ऐसा करना योग्य नहीं है।"

श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार के कथन से गोशाला एक दम क्रुद्ध हो गया और अनेक प्रकार के अनुचित वचन कहता हुआ बोला—"मैं ऐसा मानता हूँ कि तुम नष्ट हो गये हो अथवा विनष्ट हो गये हो अथवा भ्रष्ट हो गये हो और कदाचित् तुम नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट तीनों ही हो गये हो। कदाचित् तुम आज नहीं होगे। तुम्हें मुझसे कोई सुख नहीं होनेवाला है।"

गोशाला के ऐसे कहने पर पूर्व देश में जन्में[2] भगवान् के शिष्य

१—बाशम ने इनको गोशाला से पूर्व के आजीवक आचार्य माना है, (आजीवक, पृष्ठ ३२)। ऐसा ही मत कल्याणविजय ने 'भगवान् महावीर' [पृष्ठ २६५] में व्यक्त किया है। भगवती में आता है कि गोशाला अपने को इस अवसर्पिणी का २४-वाँ तीर्थंकर मानता है। इसका अर्थ हुआ कि २३ तीर्थंकर उससे पहले हो चुके थे। ये जो ७ बताये गये हैं, वे वस्तुतः गोशाला के पूर्वभव थे। भगवती में ही सात भवों के बाद सिद्धि-प्राप्ति की बात कही गयी है।

२—यहाँ मूल शब्द 'पाईण जाणवए' है। इसकी टीका करते हुए टीकाकार ने लिखा है—

इसके पश्चात् अयोध्या में उत्पन्न हुआ सुनक्षत्र-नामक अनगार गोशालक को हितवचन कहने लगा। गोशालक ने उस पर भी तेजोलेश्या छोड़ी और उसे भी जलाया। मंखलिपुत्र गोशालक के तपःतेज से जला हुआ सुनक्षत्र उस स्थान पर आया, जहाँ भगवान् महावीर थे। वहाँ आकर सुनक्षत्र ने तीन बार भगवान् की प्रदक्षिणा की और वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार के पश्चात् सुनक्षत्र ने स्वयमेव पाँच महाव्रतों का उच्चारण किया, साधु-साध्वियों को खमाया, खमा कर आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधिपने को प्राप्त हुआ और अनुक्रम से काल धर्म को प्राप्त हुआ।[1]

एक शंका और उसका समाधान

कुछ लोग कहते हैं कि पहले तो भगवान् ने गोशाला को तेजोलेश्या से बचाया था (तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २१७) पर सर्वानुभूति और सुनक्षत्र को उन्होंने क्यों नहीं बचाया। इसका उत्तर भगवतीसूत्र की टीका में अभयदेवसूरि ने इस प्रकार दिया है—

'मेयं भगवं! गयगयमेयं भगवं' ति अथ गतं—अवगतमेतन्यया हे भगवन्! यथा भगवतः प्रसादादार्यं न दग्धः, सम्भ्रमार्थत्वाच्च गतशब्दस्य पुनः पुनरुच्चारणम्, इह च यद् गोशालकस्य संरक्षणं भगवता कृतं तत्सरागत्वेन दयैकरसत्वाद्भगवतः, यच्च सुनक्षत्र-सर्वानुभूति मुनिपुङ्गवयोर्न करिष्यति तद्वीतरागत्वेन लब्ध्यनुपजीवकत्वाद्वश्यंभाविभावत्वाद्वेत्यवसेयमिति……

—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२२६।

१—सुनक्षत्र मरकर अच्युत-नामक १२ वें देवलोक में देव-रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ २२ सागरोपम रहने के बाद वह महाविदेह में जन्म लेगा। उसके बाद सिद्ध होगा—उपदेशमाला दोघट्टी-टीका सहित, पत्र २८३।

दानशेखर गणि ने भी इसी रूप में अपनी टीका (पत्र २१८-२) में इस प्रश्न का समाधान किया है।

अपनी छद्मावस्था में भगवान् ने किस कारण से गोशाला की तेजोलेश्या से रक्षा की थी, इसका उत्तर भगवती सूत्र में स्वयं भगवान् ने ही दिया है। भगवान् ने उसका कारण बताते हुए कहा—

मंखलिपुत्तस्स अणुकंपणट्ठयाए

—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२२२.

अर्थात् मंखलिपुत्र पर अनुकम्पा के कारण उसकी रक्षा की। वह तो छद्मावस्था थी। पर, केवल-ज्ञान के बाद भगवान् वीतराग थे। सरागपन समाप्त हो गया था और भूत, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञाता होने के कारण तथा सभी बातें जानने के करण वह अवश्यम्भावी घटने वाली घटना से भी पूर्व परिचित थे। पर, रागहीन होने के कारण भगवान् ने इस बार तेजोलेश्या का कोई प्रतिकार नहीं किया!

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि भगवान् ने गोशाला पर पहले अनुकम्पा दिखाकर भूल की। पर, यह वस्तुतः कहने वाले की भूल है। भगवान् ने अपने तपस्वी-जीवन में भी कभी प्रमाद अथवा पाप कर्म न किया; न किसी से कराया और न करने वाले का अनुमोदन किया।

णच्चाण से महावीरे, णोचिय पावगं सय मकासी
अन्नेहिं वा ण कारित्था कीरंतंपि णाणु जाणित्था ॥८॥
अकसाती विगयगेही य, सद्दरूवेसु अमुच्छिए झाति;
छउमत्थोवि विपरक्कममाणो, ण पमायं सइंपि कुव्वित्था ॥१५॥

—आचारांग सूत्र, श्रुतस्कन्ध १, अध्ययन ९, उद्देशा ४

—तत्त्व के ज्ञाता महावीर स्वयं पाप करते नहीं, दूसरे से पाप कराते नहीं और करने वाले का अनुमोदन नहीं करते।

कषायरहित होकर, गृद्धिपरिहार करके, शब्दादिक विषयों पर

आकृष्ट न होते हुए, भगवान् सदा ध्यानमग्न रहते और इस प्रकार छद्मावस्था में प्रबल पराक्रम प्रदर्शित करने में भगवान् ने कभी प्रमाद नहीं किया।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि, भगवान् ने स्वयं अनुकम्पा की बात कही है। 'अनुकम्पा' के विरोधीजनों को भगवान् के वचन से सीख लेनी चाहिए।

भगवान् पर तेजोलेश्या छोड़ना

उसके बाद भगवान् ने भी गोशाला को समझाने की चेष्टा की। भगवान् के समझाने का और भी विपरीत परिणाम हुआ। तैजस्-समुद्घात[1] करके गोशाला ७-८ पग पछे की ओर हटा और भगवान् महावीर का वध करने के लिए उसने तेजोलेश्या बाहर निकाली। तेजोलेश्या भगवान् का चक्कर काटती हुई ऊपर आकाश में उछली और वापस गोशाला के शरीर में प्रविष्ट कर गयी। आकुल होता गोशालक बोला—"हे आयुष्मान् काश्यप! मेरे तपःतेज से तेरा शरीर व्याप्त हो गया है। तू ६ महीने में पित्तज्वर से और दाह से पीड़ित होकर छद्मस्थावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।"

१—समुद्घात—सम् = एकत्रपना, उत = प्रबलता से कर्म की निर्जरा अर्थात एक साथ प्रबलता से जीव-प्रदेशों से कर्मपुद्गल को उदीरणादिक से आकृष्ट करके भोगना समुद्घात है; वेदनादि निमित्तों से जीवन के प्रदेशों का शरीर के भीतर रहते हुए भी बाहर निकलना, वेदना आदि सात समुद्घात...—अर्धमागधी कोष (रतनचन्द्र), भाग ४, पृष्ठ ६३७

ये समुद्घात सात हैं—१ वेदना, २ कषाय, ३ मरण, ४ वैक्रिय, ५ तैजस्, ६ आहारक, ७ केवलिक। इनका उल्लेख ठाणांगसूत्र सटीक उत्तरार्द्ध ठाणा ७, उ० ३, सूत्र ५८६, पत्र ४०६-२; समवायांगसूत्र, समवाय ७; तथा प्रज्ञापनसूत्र सटीक (बाबू वाला) पत्र ७९३-१—७९४-२ में आया है।

भगवान् की भविष्यवाणी

इस पर भगवान् ने कहा—"हे गोशालक ! मैं तपोजन्य तेजोलेश्या के पराभव से ६ महीने में काल नहीं करूँगा; पर १६ वर्षों तक तीर्थंकर-रूप में गंधहस्ती की तरह विचरूँगा। परन्तु, हे गोशालक ! तू सात रात्रि में पित्तज्वर से पीड़ित होकर छद्मावस्था में ही काल कर जायेगा।"

गोशाला तेजहीन हो गया

फिर भगवान् ने निर्ग्रंथों को बुलाकर कहा—"हे आर्यो ! जैसे तृण राशि आदि जलकर निस्तेज हो जाती है, इसी प्रकार तेजोलेश्या निकाल देने से गोशाला तेजरहित और विनष्ट तेजवाला हो गया है।

उसके बाद गोशाला के पास जाकर भगवान् के अनागार नाना प्रकार के प्रश्न पूछने लगे। प्रश्नों से वह निरुत्तर होकर क्रोध करने लगा। अपने धर्माचार्य को निरुत्तर देख गोशाला के कितने ही आजीवक साधु भगवान् के भक्त हो गये।

गोशाला की बीमारी

हताश और पीड़ित गोशाला 'हाय मरा', 'हाय मरा' कहता हुआ हालाहला कुम्भकारिन के घर आया और आम्रफल-सहित मद्यपान करता हुआ, बारम्बार गाता हुआ, बारम्बार नृत्य करता हुआ, हालाहला कुम्भ-कारिन को अंजलि-कर्म करता हुआ शीतल मृत्तिका के पानी से अपने गात्रों को सींचता हुआ रहने लगा।

श्रमण भगवान् महावीर ने निर्ग्रंथों को बुलाकर कहा—"अहो आर्यो ! मंखलिपुत्र गोशाला ने मेरे वध के लिए जो तेजोलेश्या निकाली थी, वह यदि अपने पूर्णरूप में प्रकट होती तो १ अंग, २ वंग, ३ मगध, ४ मलय, ५ मालव ६ अच्छ, ७ वच्छ, ८ कोच्छ, ९ पाढ़, १० लाढ़, ११ वज्जी, १२ मोली (मल्ल), १३ काशी, १४ कोशल, १५ अबाध, १६ संभुत्तर (सुम्होत्तर)

इन सोलह देशों के घात के लिए, वध के लिए तथा भस्म करने के लिए समर्थ होती। आज वही गोशालक हाथ में आम्र सहित मद्यपान करता हुआ अंजलि कर्मकरता हुआ विचरता है। उस पाप को छिपाने के लिए वह आठ चरम[1] की प्ररूपणा करता है:—

"१—चरम पान

"२—चरम गान

"३—चरम नाटक

"४—चरम अंजलिकर्म

"५—चरम पुष्कलसंवर्त मेघ[2]

"६—चरम सेचनक गंधहस्ति

"७—चरम महाशिलाकंटक संग्राम

"८—इस अवसर्पिणी में चौबीस तीर्थंकरों में मैं (गोशाल) चरम तीर्थंकर-रूप में सिद्ध हूँ।

"हे आर्यो! मंखलिपुत्र गोशालक मिट्टी के पात्र में से ठंडा जल मिली मिट्टी का अपने शरीर पर लेप कर रहा है।

"अपने पाप को छिपाने के लिए वह चार प्रकार के पानक

१—'चरमे' त्ति न पुनरिदं भविष्यतीति कृत्वा चरमं

—भगवतीसूत्र सटीक, श० १५, सूत्र ५५३, पत्र १२५७

२—चत्तारि मेहा पं० तं०—पुक्खलसंवट्टते, पज्जुन्ने जीमूते जिम्हे पुक्खल वट्टए णं महामेहे एगेणं वासेणं दस वास सहस्साइं भावेति

—ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा ४, उद्देशा ४, सूत्र ३४७ पत्र २७०-२

महामेघ चार हैं

[१] पुष्कल संवर्त महामेघ—एक बार बरसे तो दस हजार वर्ष तक पृथ्वी अन्नोत्पादन करती रहे।

[२] प्रद्युम्न महामेघ—एक बार बरसे तो एक हजार वर्ष तक अन्नोत्पादन होता रहे।

[३] जीमूत महामेघ—एक बार बरसे तो १० वरस तक अन्नोत्पादन हो।

[४] जिम्ह महामेघ—एक बार बरसे तो एक वर्ष तक अन्नोत्पादन हो और न भी हो।

(पीने योग्य) और चार प्रकार के अपानक (न पीने योग्य) बताता है।

"चार पानक—

१—गौ की पीठ से पड़ा पानी

२—हाथ में मसला हुआ पानी

३—सूर्य के ताप से तपाया हुआ पानी

४—शिला से पड़ा पानी

"चार अपानक—

१—थाल पानी

२—त्वचा-पानी

३—सिंबलि-जल[1]

४—शुद्ध जल[2]

वह उनकी परिभाषा इस रूप में बताता है :—

"१—पानी से भींगा हुआ थाल, पानी से भींगा हुआ कुल्हड़, पानी से भींगा हुआ कुंभा और पानी से भींगा कलश उक्त पानी से भींगा हुआ मृत्तिकापात्र विशेष को हस्त से स्पर्श करना परन्तु पानी नहीं पीना। यह थाल पानी हुआ।

२—आम्र, अम्बड आदि का जैसा पन्नवना[3] के १६-वें पद में कहा

१—'सिंबलिः' त्ति मुद्गादीनां विध्वस्ता फलिः

—आचारांगसूत्र सटीक २, १, १०, २८१ पत्र ३२३-२। दशवैकालिकसूत्र हारिभद्रीय टीका सहित ५-१ गाथा ७३ पत्र १७३-२ में उसकी टीका दी है—

'वल्लादि फलि'

२—'देवहस्त स्पर्श इति'

—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२५८

३—जण्णं अंबाण वा अंबाडगाण वा माउलुंगाण वा बिल्लाण वा कविट्ठाण वा [भव्वाण वा] फणसाण वा दालिमाण वा पारेवताण वा अक्खोलाण वा चाराण वा बोराण वा तिंदुयाण वा पक्काणं परियागयाणं

के पास जाकर अपनी शंका मिटाने का निश्चय किया। ऐसा विचार कर उसने स्नान किया, उत्तम कपड़े पहने और पैदल चलकर हालाहला कुम्भकारिन की शाला में आया। वहाँ उसने गोशाला को आम्रफल लिए यावत् गात्र को शीतल जल से सिंचित करते और हालाहला को अंजलिकर्म करते देखा। देखकर वह लज्जित हो गया और पीछे लौटने लगा। उसे देखकर आजीवक-स्थविरों ने उसे बुलाया। अयंपुल उनके पास गया और उनसे उसने अपनी शंका कह दी।

उन आजीवक साधुओं[1] ने कहा—"अयंपुल! अपने धर्माचार्य ने ८ चरम, ४ पेय और ४ अपेय जलों की प्ररूपणा की है। ये चरम हैं, इनके बाद वह सिद्ध होने वाले हैं। तुम स्वयं जाकर उनसे अपना प्रश्न पूछ लो।"

अयंपुल जब गोशाला की ओर चला तो गोशाला के शिष्यों ने आम्रफल गिरा देने के लिए संकेत कर दिया। संकेत पाकर गोशाला ने आम्रफल गिरा दिया।

इसके बाद आकर अयंपुल ने तीन बार प्रदक्षिणा की। उसके बैठते ही गोशाला ने अयंपुल का प्रश्न उससे कह दिया और पूछा—"क्या यह सत्य है?" अयंपुल ने स्वीकार कर लिया।

तब गोशाला ने कहा—"यह आम्रफल गुठली सहित नहीं है। प्रत्येक को ग्रहण करने योग्य है। यह आम्र नहीं आम्र की छाल है। इसे केवल तीर्थंकर को निर्वाण-काल में कल्पता है। तुम्हारा प्रश्न है—"किस आकार का हल्ला होता है?" इसका उत्तर यह है कि वह बाँस के मूल के आकार का होता है।

फिर गोशाला उन्माद में बोला—"हे वीणक! वीणा बजा!! हे वीणक! वीणा बजा!!" इसके बाद मंखलिपुत्र गोशालक ने ऐसा उत्तर दिया जिससे संतुष्ट होकर अयंपुल अपने घर वापस चला गया।

गोशाला की मरणेच्छा

अपना मरण जानकर गोशाला ने आजीवक-स्थविरों को बुलाया और कहा—"अहो देवानुप्रियो! जब मुझे मृत्यु प्राप्त हुआ जानो, तब सुगंधित पानी से मुझे स्नान कराना, पक्ष्म समान सुकोमल कषाय रंग वाले वस्त्रों से गात्र को स्वच्छ करना, सरस गोशीर्ष चन्दन का गात्र पर लेपन करना, बहुमूल्य वाला हंस-सा श्वेत वस्त्र पहिनाना, सर्वालंकार से विभूषित करना, सहस्रपुरुष-वाहिनी शिविका पर बैठाना और श्रावस्ती नगर के मार्गों पर चिल्लाना—"मंखलिपुत्र गोशालक 'जिन' प्रलापी और 'जिन' शब्द पर प्रकाश करते हुए इस अवसर्पिणी के २४ तीर्थंकरों में चरम सिद्ध बुद्ध यावत् अंतकर्ता हुए।"

स्थविरों ने उसकी बात स्वीकार कर ली।

सात रात्रि बीतते हुए मंखलिपुत्र गोशालक को सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई और उसे ऐसा विचार हुआ—

"मैं जिन प्रलापी यावत् जिन शब्द का प्रलाप करके विचरने वाला नहीं हूँ। मैं श्रमणों का घात करने वाला, श्रमणों को मारने वाला, श्रमणों का प्रत्यनीक (विरोधी), आचार्य-उपाध्याय का अपयश करने वाला मंखलिपुत्र गोशाला हूँ यावत् छद्मावस्था में काल कर रहा हूँ श्रमण भगवान् महावीर जिन यावत् जिन शब्द पर प्रकाश करते विहरते हैं।"

अतः उसने फिर अपने स्थविरों को बुलाया और कहा—"इसलिए हे देवानुप्रियो? मुझे मरा जानकर मेरे बायें पैर में रस्सी बाँधकर तीन बार मेरे मुख में थूकना। उसके बाद श्रावस्ती नगरी के राजमार्गों पर मुझे घसीटना और यह उद्घोषणा करना—"हे देवानुप्रियो! मंखलिपुत्र गोशालक

जिन नहीं था लेकिन वह जिन कहता हुआ विचरता था। श्रमणों का घात करने वाला वह मंखलिपुत्र गोशालक छद्मावस्था में ही कालकर गया। श्रमण भगवान् महावीर जिन हैं। इस प्रकार ऋद्धि-सत्कार से हीन मेरा शव निकालना।"

गोशालक की मृत्यु

उसके बाद गोशालक मर गया। गोशाला के स्थविरों ने कमरे का द्वार बन्द कर दिया। उस कमरे में ही श्रावस्ती नगरी का आलेखन किया। उसीके चौराहों आदि में उसकी टाँग में रस्सी बाँधकर उसे खींचा और उसके मुख में थूका।

उसके पश्चात् हालाहला कुम्भकारिन के कमरे का दरवाजा खोला। सुगंधित जल से गोशालक को स्नान कराया तथा उसके पूर्व कहे के अनुसार बड़े धूमधाम से गोशालक का शव निकाला।

गोशालक देवता हुआ

मृत्यु को प्राप्त कर गोशालक—अच्युत-नामक १२-वें देवलोक में देव-रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी स्थिति २२ सागरोपम की होगी।[1]

भगवान् मेंढियग्राम में

श्रावस्ती के कोष्ठक-चैत्य से निकलकर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् मेंढियग्राम पहुँचे और उसके उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित साणकोष्ठक चैत्य (देव-स्थान) में ठहरे। उस चैत्य में पृथ्वीशिलापट्टक था। उस चैत्य के निकट ही मालुया[2]-कच्छ[3] था।

१—भगवतीसूत्र सटीक, श० १५, उ० १, सूत्र ५५६ पत्र १२६४।

२—'मालुया' शब्द पर टीका करते हुए भगवतीसूत्र के टीकाकार ने लिखा है—

उस मेंढिय ग्राम में रेवती नामक गाथापत्नी (गृहपति की पत्नी) रहती थी। वह बड़ी श्रद्धावाली थी।

भगवान जब साणकोष्ठक चैत्य में थे, उसी समय भगवान् को महान् पीड़ाकारी अत्यन्त दाह करने वाला पित्तज्वर हुआ, जिसकी पीड़ा सहन

(पृष्ठ १३१ की पादटिप्पणि का शेषांश)

मालुका नाम एकास्थिका वृक्षविशेषाः।

—पत्र १२६६

'मालुया कच्छ' शब्द ज्ञाताधर्मकथा सटीक में भी आया है। वहाँ 'मालुया' की टीका करते हुए लिखा है :—

एकास्थि फलाः वृक्ष विशेषाः मालुकाः प्रज्ञापनाभिहितास्तेषां कक्षो गहनं मालुका कक्षः, चिर्भटिका कच्छकः इति।

—२, ३७ पत्र ८४-१

प्रज्ञापनासूत्र सटीक [पत्र ३१-२] में लिखा है कि यह देश-विशेष का वृक्ष है—

"मालुको देश विशेष प्रतीतो।"

२—'कच्छ' पर टीका करते हुए भगवती के टीकाकार ने लिखा है—

यत्कक्षं गहनं तत्तथा

—पत्र १२६६

यह 'कच्छ' शब्द भगवतीसूत्र [शतक १,उ० ८] में भी आया है। वहाँ टीकाकार ने लिखा है—

'कच्छे' नदी जलपरिवेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे।

—पत्र १६२

दानशेखरगणि ने अपनी टीका में लिखा है—

"नदी जल परिवेष्टिते वल्ल्यादि मिति प्रदेशे"

—पत्र ३६

आचारांग सूत्र श्रु० २ अ० ३ में कच्छ की टीका इस प्रकार दी है :—

नद्यासन्न निम्नप्रदेशे मूलकवालुङ्कादिवाटिकायां।

करना कठिन था। उसीके साथ भगवान् को रक्तातिसार (खून की पेचिश) हो गया।

उनकी स्थिति देखकर चारो वर्णों के लोग कहने लगे—"मंखलिपुत्र गोशाला के तपःतेज से पराभव पाये हुए महावीर स्वामी पित्तज्वर तथा दाह से ६ मास में ही छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त होंगे।"

उस समय भगवान् महावीर के अंतेवासी भद्र प्रकृति के तथा विनीत सीह-नामक अनगार मालुयाकच्छ के पास निरन्तर छट्ठ-छट्ठ की तपस्या करते हुए बाँहों वे उर्ध्व किये हुए[1] विचरते थे।

ध्यान करते-करते एक दिन सीह को ऐसा अध्यवसाय हुआ कि मेरे धर्माचार्य के शरीर में विपुल रोग उत्पन्न हुआ है। वे काल कर जायेंगे तो अन्यतीर्थिक कहेंगे कि वे छद्मस्थावस्था में ही काल कर गये।

इस प्रकार मानसिक दुःख से पराभव पाये हुए सीह आतापना-भूमि से निकलकर मालुयाकच्छ में आये और रुदन करने लगे।

उस समय भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्गंथों को बुलाकर कहा—"भद्र प्रकृति वाला अंतेवासी सीह-नामक अनगार मालुयाकच्छ में रुदन कर रहा है। उसे तुम बुला लाओ।"

भगवान् का वंदन करके निर्गन्थ मालुयाकच्छ में गये और सीह को भगवान् द्वारा बुलाये जाने की सूचना दी। सीह साणकोट्ठक-चैत्य में आये।

भगवान् ने सीह को सम्बोधित करके कहा—"वत्स सीह, मेरे भावी अनिष्ट की कल्पना से तू रो पड़ा।"

सीह द्वारा स्वीकार कर लिये जाने पर भगवान् ने कहा—"सीह! यह बात पूर्णतः सत्य है कि मंखलिपुत्र गोशाला के तपःतेज के पराभव

१—इस सम्बन्ध में पूरा पाठ निरयावलिया [गोपाणी-चोकसी-सम्पादित] पृष्ठ ३९ पर आया है। उसका अंग्रेजी अनुवाद पृष्ठ ७९ पर दिया है।

मैं ६ मास में काल नहीं करूँगा। मैं गंधहस्ति के समान जिनरूप में अभी १६ वर्षों तक विचरूँगा।

"हे सीह! तुम मेंढियग्राम में रेवती गृहपत्नी के घर जाओ। उसने मेरे लिए दो कुम्हड़े का पाक तैयार किया है। मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। उसने अपने लिए[1] बिजौरे का पाक तैयार किया है। उसे ले आओ। मुझे उसकी आवश्यकता है।"

भगवान् की आज्ञा पाकर सीह उन्हें वन्दन-नमस्कार करके त्वरा-चपलता और उतावलापना-रहित होकर सीह ने मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना[2] की और प्रतिलेखना के बाद पुनः भगवान् की वन्दना की। वह रेवती के घर आये। साधु को आता देखकर गृहपत्नी खड़ी हो गयी और वंदन-नमस्कार करके उसने साधु से आने का प्रयोजन पूछा।

सीह ने कहा—"तुमने भगवान् के लिए कुम्हड़े की जो औषधी तैयार की है, उसकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु, जो बिजौरापाक है, उसकी भगवान् को आवश्यकता है।"

१—'नवभारत टाइम्स' [दैनिक] २६ मार्च १९६१ में मुनि महेन्द्रकुमार ने 'भगवान् महावीर के कुछ जीवन प्रसंग" लेख में लिखा है कि रेवती ने वह दवा अपने घोड़े के लिए बनायी थी पर किसी जैन-शास्त्र में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

२—यहाँ मूल पाठ है **'मुहपत्तियं पडिलेहेति पडिलेहेत्ता'** इसका अर्थ अमोलक ऋषि ने [भगवतीसूत्र, पत्र २१२४] किया है 'मुखपत्ति की प्रतिलेखना कर'। इससे स्पष्ट है कि सीह ने मुखपत्ति को मुँह में बाँध नहीं रखा था। मुखपत्ती की प्रतिलेखना सम्बन्धी पाठ भगवतीसूत्र सटीक शतक २, उ० ५, सूत्र ११०, पत्र २४६; उत्तराध्ययन [नेमिचन्द्र की टीका सहित] अ० २६, गाथा २३ पत्र ३११-१ उवासगदसाओ [पी० एल० वैद्य-सम्पादित] अ० १, सूत्र ७७ पृष्ठ १७ में भी है। उपासकदशांक घासीलाल जी ने भी वृत्तिसहित प्रकाशित कराया है। उसमें पृष्ठ ३७२ पर यह पाठ आया है। उसका अर्थ पृष्ठ ३७९ पर उन्होंने भी दिया है—"मुखवस्त्रिका की पडिलेहणा की।"

इसे सुनकर रेवती को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सीह से पूछा कि किस ज्ञानी-तपस्वी ने यह बात आपको बतायी।

भगवान् द्वारा बताये जाने की बात सुनकर रेवती बड़ी संतुष्ट हुई। वह रसोई घर में गयी और छीके से तपेली उतारकर खोला और मुनि के पात्र में सब बिजौरापाक रख दिया। उस शुभदान से रेवती का मनुष्य-जन्म सफल हुआ और उसने देवगति का आयुष्य बाँधा।

उसके प्रयोग से भगवान् के रोग का शमन हो गया और उनके स्वास्थ्य-लाभ से श्रम-श्रमणियों को कौन कहे देव-मनुष्य और असुरों सहित समग्र विश्व को सन्तोष प्राप्त हुआ।[1]

रेवती-दान

भगवान् की बीमारी और उस बीमारी के काल में सीह अनागार को बुलाने और रेवती के घर भेजने की बात हम पहले संक्षेप में लिख चुके हैं। सीह को रेवती के घर भेजने का उल्लेख भगवती-सूत्र में इस प्रकार है:—

तुमं सीहा! मेंढिय गामं नगरं रेवतीए गाहावतिणीए गिहे, तत्थ णं रेवतीए गाहावतिणीए ममं अट्टाए दुवे कवोय सरीरा उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठो, अत्थि से अन्ने परियासियाए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए तमाहराहि एएणं अट्ठो...[2]

१— भगवतीसूत्र सटीक शतक १५ उद्देशा १ [गोंडी जी, बम्बई]

२— भगवतीसूत्र सटीक, शतक १५, उद्देशा १, सूत्र ५५७, पत्र १२६१

इस सूत्र में आये 'कवोयसरीरा', 'मज्जार कडए', 'कुक्कुडमंसए' शब्दों को लेकर जैन परम्परा और इतिहास से अपरिचित लोग तरह-तरह की अनर्गल और असम्बद्ध बातें किया करते हैं। इन शब्दों पर अधिक विचार करने से पूर्व हम यह कह दें कि, ये 'औषधियाँ'[1] थीं। इनका साधारण रूप में अर्थ करना किंचित् मात्र उचित नहीं है।

रेवती ने दान में क्या दिया ?

और, रेवती ने औषधि-रूप में दान में क्या दिया, इसका भी बहुत स्पष्ट उल्लेख जैन ग्रन्थों में है। ऊपर के प्रसंगों के स्पष्टीकरण करने और उनके विवाद में जाने से पूर्व, हम यहाँ उन उद्धरणों को दे देना चाहेंगे, जिसमें रेवती के दान को स्पष्ट रूप में व्यक्त किया गया है।

(१) तत्र रेवत्याभिधानया गृहपति-पत्न्या मदर्थं द्वे कुष्माण्ड फलं शरीरे उपस्कृते, न च ताभ्यां प्रयोजनं, तथाऽन्यदस्ति तद्गृहे परिवासितं मार्जाराभिधानस्य वायोनिर्वृत्तिकारकं कुक्कुट मांसकं बीजपूरककटाह मित्यर्थः···

१—[अ] नेमिचन्द्र-रचित 'महावीर चरियं' [पत्र ८४-२, श्लोक १९३०, १९३२ १९३४ में 'ओसहं' शब्द आता है।

[आ] कल्पसूत्र [संदेह विषौषधि टीका, पत्र ११५] में रेवती-प्रकरण में आता है—
भगवतस्तथा विधौषधिदानेनारोग्यदात्

[इ] ऐसा ही उल्लेख कल्पसूत्र-किरणावलि, पत्र १२७-१ में भी है।

[ई] कल्पसूत्र सुबोधिका-टीका [व्याख्यान ६, सूत्र १३७, पत्र ३५८] में भी ऐसा ही उल्लेख है।

[उ] लोकप्रकाश, विभाग ४, सर्ग ३४, श्लोक ३८३ पत्र ५५५-२ में भी स्पष्ट 'औषध' शब्द है।

[ऊ] गुणचन्द्र के महावीर-चरियं [पत्र २८०-१] में 'ओसहं' लिखा है।

[ए] भरतेश्वर-बाहुबलि-वृत्ति (भाग २ पत्र ३२९-१) में भी ऐसा ही है।

[ऐ] उपदेशप्रासाद भाग ३, पत्र १९९-२ में भी 'औषध' शब्द आया है।

—ठाणांगसूत्र (उत्तरार्द्ध) सटीक, ठा० ९, उ० ३, सू० ६९२ पत्र ४५७-१

(२) ······ ······

पक्वः कुष्मांड कटाहो यो मह्यं तं तु मा ग्रही ॥५५०॥
बीजपूर कटाहोऽस्ति यः पक्वो गृह हेतवे।
तं गृहीत्वा समागच्छ करिष्ये तेन वो धृतिम् ॥५५१॥

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ८, पत्र ११८-१

(३) द्वे कूष्मांडफले ये च, मदर्थं संस्कृते तया ॥८१॥
ताभ्यां नार्थं किन्तु बीजपूर पाकः कृतस्तया।
स्वीकृते तं च निर्दोषमेषणीयं समाहार ॥८२॥

—लोकप्रकाश (काल-लोकप्रकाश) सर्ग ३४, पत्र ५५५

(४) यद्यस्य परमेश्वरस्यातीसार स्फेटन समर्थ बीजपूरकावलेह भेषजं दीयते तदाऽतीसार रोगः प्रशाम्यति। तया रेवत्या त्रिभुवनगुरो रोगोपशान्ति निमित्तं भावोल्लास पूर्वमौषधंदत्तम्।

—भरतेश्वर-बाहुबलि-वृत्ति, द्वितीय विभाग, पत्र ३२९-१

(५) ततो गच्छ त्वं नगर मध्ये, तत्र रेवत्यभिधानया गृहपतिपत्न्या मदर्थं द्वे कुष्माण्ड फल शरीरे उपस्कृते न च ताभ्यां प्रयोजनं, तथाऽन्यनिर्दोषमस्ति तद्गृहे परं पर्युषितं मार्जाराभिधानस्य वायोनिर्वृत्तिकारकं कुक्कुटमांसकं बीजपूरैक कटाह मित्यर्थः तदानय तेन प्रयोजनं

—उपदेशप्रासाद, भाग ३, पत्र १९९-१

एक भिन्न प्रसंग में रेवती-दान

जैन-शास्त्रों में एक भिन्न-प्रसंग में भी रेवती के दान का उल्लेख है। धर्मरत्नप्रकरण में दान तीन प्रकार के बताये गये हैं—(१) ज्ञान-दान (२)

अभयदान और (३) धर्मोपग्रहदान।[1] 'दानप्रदीप'[2] में धर्मोपग्रह दान के ८ प्रकार बताते हुए उपदेशमाला का निम्नलिखित पाठ दिया है:—

१ वसही २-३ सयणासण ४ भत्त ५ पाण ६ भेसज्ज ७ वत्थ ८ पत्ताई[3] ।

—१ वसति, २ शयन, ३ आसन, ४ भक्त, ५ पान, ६ भैषज्य, ७ वस्त्र और ८ पात्र।

मेरे पास किसी हस्तलिखित पोथी के कुछ पत्र हैं। उनका प्रारम्भ का पत्र साथ में न होने के कारण, उसका नाम बिल्कुल ज्ञात न हो सका। उसमें धर्मोपग्रह दानों का विवरण देते हुए भेषज दान के प्रकरण में निम्नलिखित पाठ दिया है। उससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि, रेवती ने दान में क्या दिया था। उक्त पाठ इस प्रकार है:—

भेषजं पुणदितो सुह पत्ते लहई उत्तमं लाहं जह तद्दाण वीरस्स रेवई सावई परमा। तथाहि भगवान् श्री महावीरो गोशालक तेजोलेश्या व्यतिकरानन्तरम् मेंढिक ग्रामे पानकोष्टकालि चैत्ये समवसृत। तत्र दाघज्वरातिसारेण पीड़ित दुर्बलो जातः। तत्र भगवन्तम् वन्दित्वा देवा गच्छन्तो परस्परम् इति वदन्ति— यथा भगवन् श्री महावीर स्तोक दिन मध्ये कालं करिष्यति यत् प्रतिकाराय भेषजं ना दत्ते। एवं श्रुत्वा मालुकाकच्छासन्न भुवि कायोत्सर्गं स्थितेन जिन शिष्येण सिंह साधुना चिन्तितम्।

१—दाणं च तत्थ तिविहं, नाणयदाणं च अभयदाणं च।
धम्मो वग्गह दाणं च, नाण दाणं इमं तत्थ॥
—धर्मरत्न प्रकरण, देवेन्द्र सूरि की टीका सहित, गाथा ५२, पत्र २२३-२

२—दानप्रदीप सटीक; पत्र ६४-२।

३—उपदेशमाला दोघट्टी-टीका सहित, गाथा २४० पत्र ४२०-२।

अहो सत्य एते वदन्ति। गोशालेन इति-उक्तमस्ति—यन्मम तेजोलेश्याद् छद्मस्थ एवं च मकाले कालं करिष्यति इति विचिन्त्य मालुकच्छान्तरे प्रविश्य उच्चैः स्वरे विललाप। भगवान् ज्ञानेन तद् ज्ञात्वा साधु स आहूतः। आगतश्च स्वामिनः पाद्योः शिर माढ़लगित्वा रोदितुं प्रवृत्त। स्वामिना उक्तं भद्र मा ताम्य! अह मत परम केवलि पर्यायेण षोडष वर्षाणि विचरिष्यामि। रोगोपि कालेन स्वयमेव निवर्तयिष्यते। तेनोक्तं तथापि रोगोपशमनोपाय कोप्यादिश्यतां। स्वाम्युक्तं यद्येवं ततो गच्छ। तत्रैव रेवती श्राविका गृहे। तयैकं कुष्मांडी फले कटाह औपधमनेक द्रव्य योजितमदर्थं कृतमस्ति। तत् त्वया नानेतव्यः। द्वितीयं बीजपूर कटाह औषधं कुटम्ब कार्य पक्तमस्ते। तत् प्राशुक मानयेथाः। इति तथेति प्रतिपद्य सिंहो गतवान् तद् गृहम्। तयाभ्युत्थानं कृतम्। वंदित्वा योजितकर संपुटा आगमन कारणम् पृष्टः। तेनोक्तं रोगोपशमनाय भेषजाय अहमाययो। परम प्रासुक बीजपूरकटाह औषधं दीयताम्। यत् भगवन् निमित्तं कृतं अस्ति तन्न देयम्। ततस्तया सविस्मयोक्तं— "भो मुने! कथमेतद् भवता ज्ञातम।" तेनोक्तं—"भगवत् मुखात्।" ततस्तया प्रचुर प्रमोदा प्रादुर्भूत पुलकया धन्याह मिति चिन्तयन्त्या तत् दत्तम्। तत पुण्यात् तीर्थंकर नाम कर्मार्जितम्। तदक्षणे सार्धद्वादश सुवर्ण कोटि वृष्टिर्जाता। दुंदुभि निनादः। चेलोत्क्षेप। अहोमहादान मिति प्रघोष कृत क्रमेण मृत्वा स्वर्ग गता। ततः च्युत्वा भरते उत्सर्पिण्यां सप्तदश तीर्थंकर समाधि नामा भविता। तस्मात् औषधात् श्री वीरो निरामयः जातः। इति भेषजदाने कथा।

संक्षेप रूप में हम यहाँ इस कथा वाले अंश का श्लोक ही दे रहे हैं।

भगवती के पाठ पर विचार

इन प्रसंगों को ध्यान में रखकर अब हम भगवतीसूत्र वाले पाठ पर विचार करेंगे। अभयदेव सूरि ने उक्त पाठ की टीका इस प्रकार की है :—

'दुवे कवोया' इत्यादेः श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यते, अन्ये त्वाहुः—कपोतकः—पक्षि विशेषस्तद्वद् ये फले वर्ण साधर्म्यात्ते कपोते, कूष्मांडे ह्रस्वे कपोते कपोतके ते च ते शरीरे वनस्पति-जीवदेहत्वात् कपोतकशरीरे अथवा कपोतकशरीरे इव धूसर-वर्णसाधर्म्यादेव कपोतक शरीरे–कूष्मांड फले.....'परिआसिए' त्ति परिवासितं ह्यस्तन मित्यर्थः, 'मज्जारकडए' इत्यादे-रपि केचित् श्रूयमाणमेवार्थं मन्यन्ते, अन्ये त्वाहुः—मार्जारो वायुविशेषस्तदुपशमनाय कृतं—संस्कृतं मार्जारकृतम्, अपरे त्वाहुः—मार्जारो विरालिकाभिधानो वनस्पति विशेषस्तेन कृतं-भावितं यत्तत्तथा किं तत् इति? आह 'कुर्कुटक मांसकं' बीजपूरक कटाहम्...[1]

लगभग इसी प्रकार की टीका दानशेखर गणि ने भी की है।[2]

अभयदेव को शंकाशील मानने वाले स्वयं भ्रम में

यहाँ टीकाकार ने भी 'कवोय' से 'कुष्माण्ड' और 'कुक्कुट' से 'बीज-पूरक' अर्थ लेने की बात कही है। टीका में 'श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते' पाठ आया है। इस पर जोर देकर कुछ लोग कहते हैं कि, इस अर्थ के सम्बन्ध में अभयदेव सूरि शंकाशील थे। पर, ऐसी शंका करना भी निर-र्थक है। भगवती सूत्र की टीका अभयदेव सूरि ने वि० सं० ११२८ में लिखी।[3] इससे पूर्व ११२० में ही वह तृतीय अंग ठाणांग की टीका लिख

१—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२७०

२—भगवतीसूत्र दानशेखर की टीका, पत्र २२३-१, २२३-२

३—जैन-ग्रन्थावलि (जैन श्वेताम्बर कानफरेंस, बम्बई) पृष्ठ ४

चुके थे।[1] और, वहाँ उन्होंने पूर्ण रूप से उक्त प्रसंग का स्पष्टीकरण कर दिया था। हमने उसका पाठ पृष्ठ १३६ पर दे दिया है।

तथाकथित 'जैन संस्कृति संशोधक मंडल, वाराणसी' द्वारा प्रकाशित (पत्रिका संख्या १४) 'निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय'—नामक पुस्तिका में उसके लेखक ने लिखा है—

"...जब कि चूर्णिकार, आचार्य हरिभद्र और आचार्य अभयदेव ने अमुक वाक्यों का मांस-मत्स्यादिपरक अर्थ भी अपनी आगमिक व्याख्याओं में लिखा है।[2]"

जैन-संस्कृति के इन संशोधकों को मैं क्या कहूँ, जो जैन होकर भी जैन-धर्म पर कीचड़ उछालने को उद्यत हैं; जब कि, अन्य धर्मावलम्बी धर्म-ग्रन्थों ने भी जैनियों की अहिंसा-प्रियता स्वीकार किया है।

और, यदि इन संशोधकों ने दोनों टीकाएँ और उनके काल पर विचार किया होता तो वे कदापि न तो स्वयं भ्रम के शिकार होते और न औरों को भ्रम में डालने का दुष्प्रयास करते।

श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते

हमने अभी 'श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते'[3] (कुछ लोग मानते हैं कि जो सुना जाता है, वही अर्थ है) का उल्लेख किया। इसी वाक्यांश को लेकर लोग नाना प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं।

यहाँ जिस रूप में टीका में यह वाक्यांश आया है। उससे भी अभयदेव सूरि का भाव स्पष्ट है। पहले 'श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते' कहकर उन्होंने दो-चार शब्द उपेक्षा से लिख दिये और फिर दूसरे मत को सविस्तार

१—जैन-ग्रन्थावलि, पृष्ठ ३

२—निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय, पृष्ठ १३। यह लेख सुखलाल के लेखों के संग्रह 'दर्शन और चिंतन' (हिन्दी) में पृष्ठ ६१ पर उद्धृत है।

३—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२७०

लिखा। इससे स्पष्ट है कि यहाँ भी उन्होंने अपनी ठाणांग की टीका की पुष्टि ही की है।

'शब्द' और 'अर्थ' भिन्न हैं

'जो सुना जाता है, वही अर्थ है' ऐसी धारणा वालों को मैं बता देना चाहता हूँ कि 'अर्थ' 'शब्द' से भिन्न है। 'शब्द' स्वयं अर्थ नहीं है। 'अर्थ' की टीका करते हुए नेमिचन्द्र सूरि ने लिखा है—

अर्थश्च—तस्यैवाभिधेयं

—उत्तराध्ययन सटीक, अ० १, गा० २३, पत्र ९-१

'राजेन्द्राभिधान' में 'अर्थ' की टीका इस प्रकार की गयी है—

ऋ-गतौ, अर्यते गम्यते ज्ञायते इत्यर्थः

—अभिधान राजेन्द्र, भाग १, पृष्ठ ५०६

इसी प्रकार की टीका ठाणांग में भी है :—

अर्यतेऽधिगम्यतेऽर्थ्यते वा याच्यते बुभुत्सुभिरित्यर्थः व्याख्याने—'जो सुत्तभिप्पाओ, सो अत्थो अज्जए जम्हति'''

—ठाणांग सूत्र सटीक, पूर्वार्द्ध, ठा० २, उ० १, सू० ७१ पत्र ५१-१

इन टीकाओं से स्पष्ट है कि, जो सुना जाता है, वही अर्थ कदापि नहीं होता है। और, बिना अर्थ के सुने हुए का कुछ भी प्रयोजन नहीं है। वैशेषिकों ने यह प्रश्न उठाया है —

"शब्द मुख में और अर्थ अन्यत्र होता है ?[1] जैसे ग्रंथ कहने से उसका रूप-गुण हमारी हृदय-बुद्धि में आता है और तब हम यथावश्यकता यथास्थान उसकी प्राप्ति उसके भौतिक रूप में करते हैं। इसीलिए

१—**मुखे हि शब्दमुपलभामहे भूयावर्थं**

मीमांसा दर्शन, वाल्यूम १, दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, कलकत्ता सन् १८७३

प्राचीन भाषाशास्त्री अर्थ को प्रधान और शब्द को गौण मानते हैं।[1] वाक्यपदीय में आता है :—

लोकेऽर्थरूपतां शब्दः प्रतिपन्न प्रवर्तते[2]

इसकी टीका करते हुए पुण्यराज लिखा है :—

अथ रूपतां प्रतिपन्नोऽर्थेन सहैकत्वमिव प्राप्तः शब्दः प्रवर्तते। अयं गौरित्यादि। तत्रार्थ एव बाह्यतया प्रधानमवसीयते[3]

शब्द का अर्थ भी सर्वत्र समान नहीं होता। वैशेषिक-दर्शन में आता है—

सामायिकः शब्दादर्थः प्रत्ययः[4]

इस पर उदाहरण देते हुए 'शब्द और अर्थ'[5] में लिखा है :—

संस्कृत और हिन्दी में 'राग' का अर्थ 'प्रेम' है; किन्तु बंगला और मराठी में 'क्रोध' के अर्थ में यह प्रयुक्त होता है। इस प्रकार 'शब्द' से अर्थ का बोध सामयिक मानना चाहिए। ऐसा प्राचीन उदाहरण भी है—

'शव' धातु कम्बोज देश में 'जाना' अर्थ में प्रयुक्त होता है; किन्तु आर्य 'विकार' के अर्थ में 'शव' का प्रयोग करते हैं।[6]

अर्थ किस रूप में लेना है, इस दृष्टि से स्वयं शब्द के भेद हो जाते हैं। हेमचन्द्राचार्य ने काव्यानुशासन (सटीक) में लिखा है—

१—अर्थो हि प्रधानं तद् गुणभूतः शब्दः

—निरुक्तम् आनंदाश्रम मुद्राणालय, पूना १९२१

२—वाक्यपदीयम्-२-१३२ (ब्रजविलास ऐंड कम्पनी) १८८७ ई०

३—वाक्यपदीय

४—७-२-२०

५—डा० शिवनाथ-लिखित 'शब्द और अर्थ' ना० प्र० प० ६३; ३-४ पृ० ३१३

६—एतस्मिंश्चाति महती शब्दस्य प्रयोग विषय ते ते शब्दास्तत्र तत्र नियत विषया दृश्यंते—तद्यथा शवतिर्गति कर्मा कम्बोजष्वेव भाषितो भवति विकार एवमार्या भाषन्ते शव इव

—पी० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री-लेक्चर्स आन पंतजलीज महाभाष्य, वाल्यूम १, पृष्ठ ६५

मुख्य गौण लक्ष्य व्यंगार्थ भेदात् मुख्य गौण लक्षक व्यञ्जकाः शब्दाः[1]

अर्थ लेने में क्या क्या ध्यान में रखना चाहिए, इस सम्बन्ध में कहा है—

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमा न कोशात वाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदंति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धा ॥

बिना इन सभी दृष्टियों को ध्यान में रखे जो भी अर्थ करने का प्रयास होता है, वह वस्तुतः अर्थ नहीं अनर्थ होता है। एक श्लोक है—

देवराजो[2] मया दृष्टो[3] वारिवारण मस्तके।
भक्षयित्वार्कपर्णानि[4] विषं[5] पीत्वा क्षयं[6] गतः ॥

यहाँ यदि 'विष' का अर्थ 'जहर' और 'क्षयं' का अर्थ 'नष्ट होना' किया जाये तो वस्तुतः अर्थ का अनर्थ हो जायेगा।

१—काव्यानुशासन सटीक [महावीर विद्यालय, बम्बई] १–१५ पृष्ठ ४२। ऐसा ही उल्लेख साहित्य-दर्पण में भी आता है—

अर्थो वाच्यश्च लक्ष्यश्च व्यङ्ग्यश्चेति त्रिधायतः
वाच्योर्थोऽभिधया बोध्योलक्ष्योलक्षणयामतः ॥
व्यङ्ग्योव्यजनयातास्तु तिस्त्रः शब्दस्य शक्तय। इति साहित्य दर्पण

शब्दार्थ-चिंतामणि, भाग १, पृष्ठ १८

२—हे देवरः ! मया जः मेषः वारिवारण
३—सेतुः तस्य मस्तके उदरिभागे दृष्टः
४—अर्को—वृक्ष विशेषः तस्य पर्णानि—पत्राणि
५—जलम्
६—स्थानम्—सुभाषित सुधारत्न भाण्डागार, पृष्ठ ५३५

साए तहेव मंसूर्मी'[1]। तथा 'विंटं मंसं कडाहं एयाइं हवंति एग जीवस्सेति' (६४)[2] सूत्रलेशः स्पष्ट एव, न चात्र वनस्पत्य-धिकारात्तथैवार्थः उपपद्यते नान्यत्रेति वाच्यम्, अन्यत्रापि यत्या हाराधिकारात् तथैव युक्तत्वात् यतीनामाहार विशेषणानि— 'अरसाहारे विरसाहारे अंताहारे पंताहारे'[3] इत्येव प्रवचने भण्यंते, घृतादि विकृतीनामपि परिभोगः कारणिकः तर्हि स्थानाङ्ग सूत्रे महाविकृतित्वेनोक्तस्य 'कुणिमाहारेण' त्यागमवचनेन नारकायुर्बन्ध हेतो सम्यक्त्वतोऽपि त्याज्यस्य सर्वांगद्यामय श्रीमन्मौनीन्द्र शासन प्रतिषिद्धस्य मुनीनां सर्वजगज्जीवहितानां मांसाहारस्य कदापि न युक्तियुक्ततेत्युत्तंभितहस्ता व्याचक्ष्महे, न च शुद्धाहार गवेषणावतां मांसस्यापि शुद्धत्वेनोपलम्भे तदाहृतिर्न विरुद्धेति चित्यं, द्रव्यस्यैव—

> आमासु य पक्कासु य विपच्चमाणासु मंसपेसीसु।
> उपज्जंति अणंता तव्वण्णा तत्थ जंतुणो ॥१॥[4]

इत्यागमादशुद्धत्वात्, तेन लाघवान्मद्यमांसादि शब्दस्य क्वचित् कथनेऽपि न भ्रमणीयं 'पिट्ठमंसं न खाइज्जा'[5] इति दशवैकालिके निन्दावाक्यस्य, तथा सरसाहारस्यापि मांस शब्दाभिधेयत्वात्, यद्गौडः "आमिषं भोज्यवस्तूनि" आस्ता-माहारः आस्तामाहारः 'सामिसं कुललं दिस्स वज्झमाणं

१—प्रज्ञापनासूत्र सटीक, गा० ३८, पत्र ३३-१

२—प्रज्ञापनासूत्र गाथा ९१, पत्र ३६-२

३—ठाणांगसूत्र सटीक, ठा० ५; उ० १, सूत्र ३९७ पत्र २९६-१

४—संबोधप्रकरण, गुजराती अनुवाद, गाथा ७५, पृष्ठ १९९

५—दशवैकालिक हारिभद्रीय टीका सहित, अ० ८, उ० २ गा० ४७ पत्र २३४-२

निरामिसं। आमिसं सव्वमुज्झित्ता विहरिस्सामो निरामिसा॥[1] इत्युत्तराध्ययने अभिष्वङ्गहेतोर्धनधान्यादेरपि आमिषत्वेन भणनं, तेन भ्रमस्यास्य भवभ्रमणहेतु तेत्यन्यत्र विस्तरः॥[2]

—यह मांस-प्रकरण भोले-भोले जीवों को ठगने मात्र के लिए है। 'दशवैकालिक' में आता है—'अमज्जमंसासिअऽमच्छरीया'। सूत्रकृतांग में लिखा है—अमज्जमंसासिणो' ऐसा आगम में है। मुनि का स्वरूप जहाँ वर्णित है, वहाँ उसका निषेध कहा गया है। फिर भी किसी ठिकाने मांसाहार दिखायी देता है। वहाँ दशवैकालिक में आये 'महु घयं व भुजिज्जा संजये' इत्यादि प्रकरण में 'मधु' शब्द से खांड आदि के समान सर्वत्र अर्थान्तर ही प्रतिपादित दिखलायी पड़ता है—ऐसा प्राचीन पंडितों ने कहा है। अर्थान्तर न करना असंगत है। 'रत्नमाला' ग्रन्थ में ज्योतिषियों ने भी अर्थान्तर करण किया है। वहाँ आता है—

अष्टम्यादिषु नद्यात् ऊर्ध्वगतीच्छुः कदाचिदपि विद्वान्।
शीर्षकपालान्त्राणि नखचर्म तिलऽथा क्रमशः॥

यहाँ 'शीर्ष' से अर्थ 'तुम्बी', 'अंत्राणि' से 'महती मुद्गरिका', 'नख' से 'वाल', 'चर्म' से 'सेल्लरक' (चिर्भटिका) अर्थ लेना ही समर्थित है।

आगम में भी प्रज्ञापना में आये 'एगट्ठिया य बहुबीयगा' में अस्थि का अर्थ बीज है।

तथा 'वत्थल पोरग मज्जार पोई बिल्ली य पालक्का दगपिप्पली य दव्वी मच्छिय (सोत्तिय) साए तहेव मडुंकी' तथा 'विंटं मंसं कडाहं एआइं हवन्ति एग जीवस्सेति' सूत्र के ये अंश बिलकुल स्पष्ट हैं। वनस्पति का अधिकार होने से यहाँ वैसा अर्थ नहीं है (जैसा कि प्रकटतः लगता है)।

१—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, अ० १४, गा० ४६, पत्र २१२-२
२—युक्तिप्रबोध पत्र १९९—२००

अन्य स्थल पर भी साधु के आहार का अधिकार होने से इसी प्रकार (वनस्पतिबोधक) अर्थ लगेगा। साधु के आहार के विशेषण हैं—'अरसाहारे, विरसाहारे, अंताहारे, पंताहारे' ऐसा प्रवचन है। घृतादि विकृतियों का परिभोग भी कारण से है। इस स्थिति में इसे स्थानांगसूत्र में महाविकृति के रूप में कहा गया है। ऐसा आगम में लिखा है—कुणिमाहार नरक का आयु बाँधने का हेतु है। सम्यक् वाले को उसका त्याग होने से श्रीयुत् मौनीन्द्र शासन में प्रतिषेध होने से मांसाहार कदापि युक्तियुक्त नहीं हो सकता—ऐसा हाथ ऊँचा करके हम कहते हैं। "शुद्ध आहार की गवेषणा करने वाले के लिए मांस की भी शुद्धता से उपालम्भ में हानि नहीं है"—इसमें भी विरोध नहीं आता—ऐसे लोग कहते हैं कि द्रव्य का भी

आमासु य पक्कासु य विपच्च माणासु मेसपेसीसु।
उप्पज्जन्ति अणंता तव्वण्णा तत्थ जंतुणो॥

आगम से शुद्ध होने के कारण। उस कारण से लाघव से मद्य-मांस आदि के सम्बन्ध में किसी के कहने पर भी भ्रम करने योग्य नहीं है।

'पिट्ठमंसं न खाइज्जा' दशवैकालिक में ऐसा निन्दा वाक्य है। तथा 'सरसाहार' से भी मांस शब्द के अभिधेय होने से जैसा कि गौड़ ने कहा है—"आमिप का अर्थ खाद्य-पदार्थ है।"

उत्तराध्ययन में आता है—

सामिसं कुललं दिस्स, वज्झमाणं निरामिसे।
आमिसं सव्वमुज्झित्ता, विहरिस्सामो निरामिसा॥

'आमिप' का अर्थ

शब्द को प्रसंगवश लेना चाहिए, इस सम्बन्ध में 'आमिप' शब्द ही लें। जिस प्रकार का उसका अर्थ गौड़ ने किया है, वैसा ही अर्थ अन्य

जैन-आचार्यों तथा ग्रन्थों ने भी किया है। हम यहाँ कुछ प्रमाण दे रहे हैं—

(१) योगशास्त्र (स्वोपज्ञटीका-सहित, प्रकाश ३, श्लोक १२३) में आये 'आमिष' की टीका हेमचन्द्राचार्य ने इस प्रकार की है—

आमिषं भक्ष्यं पेयं च, तच्च पक्वान्न फलाक्षत दीपजल-घृतपूर्णपात्रादि रूपं।

—पत्र २१०-२

(२) आमिषमाहार इहापि तथैव फलादि सकल नैवेद्य परिग्रहो दृश्यः

—पंचाशक सटीक, पं० ६, गा०२६, पत्र ११—१

(३) 'आमिषं' धनधान्यादि

—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका, अ० १४ गा ४८ पत्र २१३-१

(४) 'अमिषाद्'—विषयादेः :

—वही, अ० १४, गा ४१, पत्र २१२-२

(५) अब हम यहाँ संस्कृत-कोष[१] से भी 'आमिष' का अर्थ दे रहे हैं:—

(अ) डिजायर, लस्ट- यथा -

निरामिषो विनिर्मुक्तः प्रशान्तः सुसुखी भव

महाभारत १२-१७-२

निरपेक्षो निरामिषः[२]

—मनुस्मृति ६-४९

१—आप्टेज संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी, भाग १, पृष्ठ २४५-३४६।

२—इस पर कल्लूक भट्ट ने टीका में लिखा है—

निरामिषः आमिषं विषयस्तदभिलाप रहितः

—मनुस्मृति कल्लूक भट्ट की टीका सहित, पृष्ठ २२०

(आ) फल

(इ) [illegible] और [illegible] और अतिरिक्त आमिष [illegible] यथा

नामिषेषु प्रसंगोऽस्ति

—महाभारत १२, १५८, २३

(उ) क्रूर और [illegible]

(ई) लोभ और [illegible] यथा

आमिषं यच्च पूर्वेषां राजसं च मलं भृशम् ।
अनृतं नाम तद्भूतं क्षिप्तेन पृथ्वीतले ॥

—रामायण ७, ७४, १६

जैन-धर्म में हिंसा निंद्य है

इन प्रसंगों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि, प्रसंग तथा संदर्भ पर बिना विचार किये अर्थ करना वस्तुतः अनर्थ है। जो लोग जैन-ग्रंथों के पाठों का अनर्गल अर्थ करते हैं, उन्हें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जैन-धर्म में श्रावकों के लिए प्रथम व्रत स्थूलप्राणातिपातविरमण है। हमने उसका सविस्तार वर्णन श्रावकों के प्रसंग में किया है। जब श्रावक के लिए यह व्रत है, तो फिर साधु-साध्वी के सम्बन्ध में क्या कहना !

हिंसा की निन्दा स्थल-स्थल पर जैन-शास्त्रों में की गयी है। ह[illegible] उनमें से कुछ यहाँ दे रहे हैं।

(१) अमज्ज मंसासि अमच्छरीआ,
अभिक्खणं निव्विगइं गया य।
अभिक्खणं काउस्सग्गकारी,
सज्झाय जोगे पयओ हविज्जा ॥

—दशवैकालिक सूत्र सटीक, चू० २, गा० ७ पत्र २८०-[illegible]

[illegible] सच्चा साधु बनना है तो मद्य-मांस से घृणा करे, किसी से ईर्ष्या

न करे, बारम्बार पौष्टिक भोजन का परित्याग और कायोत्सर्ग करता रहे तथा स्वाध्याय-योग में प्रयत्नवान बने।

(२) हिंसे बाले मुसावई, माइल्ले पिसुणे सढे।
भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मन्नइ॥

—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, अ० ५, गा० ९, पत्र १०३-२

—हिंसा करनेवाला, झूठ बोलनेवाला, छल-कपट करनेवाला, चुगली करनेवाला और धूर्तता करनेवाला तथा मदिरा और मांस खाने वाला मूर्ख अज्ञानी जीव इन उक्त कामों को श्रेष्ठ समझता है।

(३)………………………………।
भुंजमाणे सुरं मंसं परिवूढे परंदमे॥
अयक्कर भोई य, तुंदिल्ले चिय लोहिए।
आउयं नरए कंखे, जहाऽऽएसं व एलए॥

—उत्तराध्ययन सटीक, अ० ७, गा० ६-७ पत्र ११७-१

—मदिरा और मांस का सेवन करने वाला, बलवान होकर दूसरे का दमन करता है। जैसे पुष्ट हुआ वह बकरा अतिथि को चाहता है; उसी प्रकार कर्कर करके बकरे के मांस के खाने वाला तथा जिसका पेट, रुधिर और मांस के उपचय से बढ़ा हुआ है, ऐसा जीव अपना वास नरक में चाहता है।

(४) तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणिय।
खाइओ मि समंसाइं अग्गिवण्णाइं णेगसो॥

—उत्तराध्ययन सटीक, अ० १९, गा० ६९, पत्र २६३-२

—मुझे मांस अत्यन्त प्रिय था, इस प्रकार कह कर उन यमपुरुषों ने मेरे शरीर के मांस को काटकर, भूनकर और अग्नि के समान लाल करके मुझे अनेक बार खिलाया।

(५)…………………।

ते मज्ज मंसं लसुणं च भोच्चा,
अन्नत्थ वासं परिकप्पयंति।

—सूत्रकृतांग (बाबू वाला) श्रु० १, अ० ७, गा० १३ पृष्ठ ३३७

—वे मूर्ख मद्य मांस तथा लहसुन का उपभोग करके मोक्ष नहीं वरन् अपना संसार बढ़ाते हैं। मोक्ष तो शील के बिना नहीं होता।

(६)............अमज्ज मंसासिणो.....[1]

—सूत्रकृतांग (बाबू वाला) श्रु० २, अ० २, सू० ७२ पृष्ठ ७४१

—वे मद्य मांस का प्रयोग नहीं करते।

(७) जे यावि भुंजंति तहप्पगारं सेवंति ते पावम जातमाणा।
मणं न एयं कुसला करेंति वायावि एसा वुइयाउ मिच्छा॥

—सूत्रकृतांग (बाबू वाला) श्रु० २, अ०६, गा० ३९ पृष्ठ ९३६

—जो रसगृद्ध होकर मांस का भोजन करता है, वह अज्ञानी पुरुष केवल पाप का सेवन करता है। जो कुशल पण्डित है, वह ऐसा नहीं करता। 'मांस-भक्षण मे दोष नहीं है', ऐसा वाणी पंडित नहीं बोलता।

'आचारांग-सूत्र' में तो साधु को उस स्थल पर आने का ही निषेध किया गया है, जहाँ मांसादि मिलने की आशंका हो। वहाँ पाठ आता है—

से भिक्खू वा० जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा मंसाइं। मच्छाइं मंस खलं वा मच्छखलं वा.....नो अभिसंधारिज्ज गमणाए

—आचारांगसूत्र सटीक, श्रु० २, अ० १, उ० ४, सूत्र २४५ पत्र ३०४-१

१—दे डू नाट ड्रिंक लिकर्स आर ईट मीट

—सेक्रेड बुक्स आव द' ईस्ट, वाल्यूम ४५, सूत्रकृतांग बुक २, लेक्चर २, सूत्र ७२, पृष्ठ ३७९

'प्रश्नव्याकरण' अभयदेव सूरि की टीकासहित पत्र १००-१ में भी 'अमज्ज-मंसासिएहिं' पाठ आता है।

—गृहस्थ के घर भिक्षा के लिए जाते हुए मुनि को यदि ज्ञात हो जाये कि यहाँ मांस वा मत्स्य अथवा मद्य वाले भोजन मिलेंगे तो······मुनि को उधर जाने का इरादा नहीं करना चाहिए।

हेमचन्द्राचार्य ने अपने योगशास्त्र में बड़े विस्तार से हिंसा की निंदा की है। विस्तारभय से हम यहाँ पूरा पाठ नहीं दे रहे हैं।[1]

मांसाहार से नरक-प्राप्ति

जैन-शास्त्रों में मांसाहार नरक-प्राप्ति का एक कारण बताया गया है। हम यहाँ तत्सम्बन्धी कुछ प्रमाण दे रहे हैं:—

(१) चउहिं ठाणेहिं णेरतियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा महारंभताते, महापरिग्गहयाते, पंचिंदिय वहेणं, कुणिमाहारेण

—ठाणांगसूत्र सटीक (पूर्वार्द्ध) ठा० ४, उ० ४ सूत्र ३७३ पत्र २८५-२

इन चार कारणों से जीव नारक योग्य कर्म बाँधता है—१ महारंभ २महापरिग्रह, ३ पंचेन्द्रियवध और ४ मांसाहार (कुणिम' मिति मांसं तदेवाहारो-भोजनंतेन—टीका)

(२) गोयमा ! महारंभायाए, महापरिग्गहयारा, कुणिमाहारेणं, पंचिंदिय वहेणं नेरइया उयकम्मा सरीरप्प योगनामाये कम्मस्स उदएणं नेरइयाउयकम्मा सरीर जाव पयोग बंधे

—भगवतीसूत्र सटीक, शतक ८, उद्देशा ९, सूत्र ३५० पत्र ७५२

(३) चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति णेरइत्ताए कम्मं पकरेत्ता णेरइएसु उववजंति तंजहा महारंभयाए, महापरिग्गहयाये, पंचदिय वहेणं, कुणिमाहारेणं

—औपपातिकसूत्र (सुरू-सम्पादित), सूत्र ५६, पृष्ठ ५४

१—योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका सहित, प्रकाश २ श्लोक १९-३८ पत्र ६९-२ से ८७-१ तथा प्रकाश ३, श्लोक १८-३३, पत्र १५९-१—१६४-१

ते मज्ज मंसं लसणं च भोच्चा,
अन्नत्थ वासं परिकप्पयंति ।

—सूत्रकृतांग (बाबू वाला) श्रु० १, अ० ७, गा० १३ पृष्ठ ३३७

—वे मूर्ख मद्य-मांस तथा लहसुन का उपभोग करके मोक्ष नहीं वरन् अपना संसार बढ़ाते हैं। मोक्ष तो शील के बिना नहीं होता।

(६)..............**अमज्ज मंसासिणो**.....[१]

—सूत्रकृतांग (बाबू वाला) श्रु० २, अ० २, सू० ७२ पृष्ठ ७५१

—वे मद्य-मांस का प्रयोग नहीं करते।

(७) जे यावि भुंजंति तहप्पगारं सेवंति ते पावम जाणमाणा ।
मणं न एयं कुसला करेंति वायावि एसा बुइयाउ मिच्छा ॥

—सूत्रकृतांग (बाबू वाला) श्रु० २, अ०६, गा० ३९ पृष्ठ ९३६

—जो रसगृद्ध होकर मांस का भोजन करता है, वह अज्ञानी पुरुष केवल पाप का सेवन करता है। जो कुशल पण्डित है, वह ऐसा नहीं करता। 'मांस-भक्षण में दोष नहीं है', ऐसा वाणी पंडित नहीं बोलता।

'आचारांग-सूत्र' में तो साधु को उस स्थल पर जाने का ही निषेध किया गया है, जहाँ मांसादि मिलने की आशंका हो। वहाँ पाठ आता है—

से भिक्खू वा० जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा मंसाइं वा मच्छाइं मंस खलं वा मच्छखलं वा.....नो अभिसंधारिज्ज गमणाए

—आचारांगसूत्र सटीक, श्रु० २, अ० १, उ० ४, सूत्र २४५ पत्र ३०४-१

—गृहस्थ के घर भिक्षा के लिए जाते हुए मुनि को यदि ज्ञात हो जाये कि यहाँ मांस वा मत्स्य अथवा मद्य वाले भोजन मिलेंगे तो······मुनि को उधर जाने का इरादा नहीं करना चाहिए।

हेमचन्द्राचार्य ने अपने योगशास्त्र में बड़े विस्तार से हिंसा की निंदा की है। विस्तारभय से हम यहाँ पूरा पाठ नहीं दे रहे हैं।[1]

मांसाहार से नरक-प्राप्ति

जैन-शास्त्रों में मांसाहार नरक-प्राप्ति का एक कारण बताया गया है। हम यहाँ तत्सम्बन्धी कुछ प्रमाण दे रहे हैं:—

(१) चउहिं ठाणेहिं णेरतियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा महारंभताते, महापरिग्गहयाते, पंचिंदिय वहेणं, कुणिमाहारेण

—ठाणांगसूत्र सटीक (पूर्वार्द्ध) ठा० ४, उ० ४ सूत्र ३७३ पत्र २८५–२

इन चार कारणों से जीव नारक योग्य कर्म बाँधता है—१ महारंभ २महापरिग्रह, ३ पंचेन्द्रियवध और ४ मांसाहार (कुणिम' मिति मांसं तद्‌वाहारो–भोजनंतेन—टीका)

(२) गोयमा ! महारंभायाए, महापरिग्गहयाए, कुणिमाहारेणं, पंचिंदिय वहेणं नेरइया उयकम्मा सरीरप्प योगनामाये कम्मस्स उदएणं नेरइयाउयकम्मा सरीर जाव पयोग वंधे

—भगवतीसूत्र सटीक, शतक ८, उद्‌देशा ९, सूत्र ३५० पत्र ७५२

(३) चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति णेरइत्ताए कम्मं पकरेत्ता णेरइएसु उववज्जंति तंजहा महारंभयाए, महापरिग्गहयाये, पंचदिय वहेणं, कुणिमाहारेणं

—औपपातिकसूत्र (सुरु–सम्पादित), सूत्र ५६, पृष्ठ ५४

१—योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका सहित, प्रकाश २ श्लोक १९–३८ पत्र ६९–२ से ६७–१ तथा प्रकाश ३, श्लोक १८–३३, पत्र १५६–१—१६४–१

नरक-प्राप्ति के कुछ उदाहरण

मांसाहार से नरक प्राप्त होती है, इसके कितने ही उदाहरण जैन-शास्त्रों में मिलते हैं। इस प्रसंग में कुछ यहाँ दे रहे हैं :—

(१) विपाकसूत्र (पी. एल. वैद्य-सम्पादित, १-८, पृष्ठ ६०) में उल्लेख है कि मत्स्यभोजी सौरिकदत्त मर कर छठें नरक में गया।

(२) सूक्तमुक्तावलि में मांसाहार सम्बन्धी श्लोकों में एक श्लोक इस प्रकार है :—

> मांसाच्छ्रेणिक भूपतिश्च नरकं चौर्याद्विनष्टानके
> वेश्यातः कृतपुण्यको गतधनोऽन्यस्त्री हृतो रावणः ॥[1]

—अर्थात् मांस के कारण श्रेणिक राजा नरक गया।

(३) सप्तव्यसन कथा में इसी प्रकार बककुमार का उदाहरण दिया है।[2]

(४) हेमचन्द्राचार्य ने योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका सहित में मांसाहार के सम्बन्ध में सुभूम और ब्रह्मदत्त का उदाहरण दिया है।[3] वहाँ पाठ है—

> श्रूयते प्राणिघातेन रौद्रध्यान परायणौ।
> सुभूमो ब्रह्मदत्तश्च सप्तमं नरकं गतौ ॥

अपनी टीका में उन्होंने सुभूम की कथा पत्र ७२-२ से ७५-२ तक तथा ब्रह्मदत्त की कथा पत्र ७५-२ से ९० २ तक बड़े विस्तार से दी है।

मांसाहार से किंचित् सम्बन्ध रखने वाला पाप का भोगी

हिंसा अथवा मांसाहार तो दूर रहा—उससे सम्बन्धित पुरुष भी

१—सूक्तमुक्तावलि, पत्र ८४-१

२—आचार्य सोमकीर्ति रचित सप्तव्यसनकथा, पत्र १३-२–१७-२

३—योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका सहित, प्रकाश २, श्लोक ३७ पत्र ७२-२

जैन-शास्त्रों में पाप का भोगी बताया गया है। हेमचन्द्राचार्य-रचित योगशास्त्र में एक श्लोक आता है—

हन्ता, पलस्य, विक्रेता, संस्कर्ता, भक्षकस्तथा।
क्रेताऽनुमन्ता दाता च घाता एव यन्मनुः॥[1]

—योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका-सहित, ३–२०, पत्र १६०–१

—मारने वाला, मांस का बेचने वाला, पकाने वाला, खाने वाला, खरीदने वाला, अनुमति देने वाला तथा दाता ये सभी घातक (मारने वाले) है—ऐसा मनु का वचन है।

अन्य धर्म-ग्रथों में जैनियों की अहिंसा

अहिंसा जैन-धर्म का मूल तत्त्व रहा है, ऐसा उल्लेख बौद्ध-ग्रन्थों में भी भरा पड़ा है। संयुक्तनिकाय में असिबन्धकपुत्र ग्रामणी का उल्लेख आता है। उससे बुद्ध ने पूछा कि, महावीर स्वामी श्रावकों को क्या उपदेश देते हैं। इसके उत्तर में असिवंधक ने भगवान् महावीर के जिन उपदेशों की सूचना बुद्ध को दी, उनमें प्रथम उपदेश का उल्लेख इस प्रकार है—

"जो कोई प्राणि-हिंसा करता है, वह नरक में पड़ता है।"[2]

मांसाहार से मृत्यु अच्छी

जैन-लोग मांसाहार से मृत्यु अच्छी समझते रहे हैं। इस सम्बन्ध में एक बड़ी अच्छी कथा आती है।

द्वारमती में अरहमित्त-नामक एक श्रेष्ठि रहता था। उसकी पत्नी

१—मनु का मूल श्लोक इस प्रकार है—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः।

—मनुस्मृति (हिन्दी-अनुवाद सहित) अ० ५, श्लोक ५१ पृष्ठ १२३

२—संयुक्तनिकाय (हिन्दी-अनुवाद), भाग २ पृष्ठ ५८४

का नाम अणुधर्मा था। वे दोनों श्रावक थे। उन्हें एक पुत्र था। उसका नाम जिनदत्त था। एक बार जिनदत्त बीमार पड़ा। वैद्य ने उससे कहा—"मांस खाओ तो अच्छे हो जाओगे।" इस पर जिनदत्त ने उत्तर दिया—

वरं प्रविष्टं ज्वलितं हुताशनं,
न चापि भग्नं चिरसंचितं व्रतम्।
वरं हि मृत्युः परिशुद्ध कर्मणा,
न शील वृत्तस्खलितस्य जीवितम्॥

—जलती आग में प्रवेश करना मुझे स्वीकार है; पर चिरसंचित व्रत भग्न करना मुझे स्वीकार नहीं है। परिशुद्ध कर्म करते हुए मर जाना मुझे स्वीकार्य है, पर शील व्रत का स्खलन करके जीना स्वीकार नहीं है।

इस प्रकार जिनदत्त ने मांसाहार पूर्णतः अस्वीकार कर दिया। बाद में जिनदत्त को ज्ञान उत्पन्न हुआ और वह सिद्ध हो गया।[1]

जैन अहिंसा-व्रत में खरे थे

आर्द्रककुमार की जो वार्ता बौद्धों[2] और हस्तितापसों[3] से हुई, उससे भी स्पष्ट है कि जैन-लोग अहिंसा-व्रत में कितने खरे थे।

१—आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र २०२ आवश्यककथा [राजेन्द्राभिधान, भाग १, पृष्ठ ५०३ 'अत्तदोसोवसंहार' शब्द देखिये] तथा आवश्यक की हारिभद्रीय टीका पत्र ७१४-१ में भी यह कथा आती है। हरिभद्र जब इस प्रकार की टीका करते हैं तो भला वह मांसपरक अर्थ कहीं अन्यत्र क्यों करने लगे? सुखलाल ने 'जैन-संस्कृति-मंडल' की पत्रिका संख्या १४ के पृष्ठ १३ पर हरिभद्र पर जो आरोप लगाया है, वह मनगढ़न्त तथा निराधार है। आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, भाग २, पत्र ११६-२ की १३०३-री गाथा है—

वारवइ अरहमित्ते अणुद्धरी चेव तहय जिणदेवो।
रोगस्स य उप्पत्ती पडिसेहो अत्तसंहारो॥

२—सूत्रकृतांग सटीक (गौड़ी जी, बम्बई) भाग २, पत्र १५१-१ (देखिए पृष्ठ [illegible]-५८)।

३—वही, पत्र १५६-२-(देखिए पष्ठ ६०)।

घी-दूध भी विकृतियाँ

मांस को कौन कहे, जैन-साधु के लिए तो घी-दूध आदि भी मना है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण हम यहाँ दे रहे हैं:—

(१) प्रश्नव्याकरण में पाठ आता है:—

अखीर महु सप्पिएहिं...

—प्रश्नव्याकरण अभयदेव की टीका सहित, संवरद्वार १, सूत्र २२ पत्र १००-१

इसकी टीका में स्पष्ट लिखा है—

अक्षीर मधुसर्प्पिष्कैः—दुग्ध क्षौद्र घृत वर्जकैः

—वही, पत्र १०७—१

(२) इसी प्रकार का उल्लेख सूत्रकृतांग में भी है। वहाँ भी 'विगइया' का निषेध किया गया है[१]। उसकी दीपिका में लिखा है—

निर्विकृत्तिकाः घृतादि विकृतित्यागिनः

—सूत्रकृतांग (बाबू वाला) पृष्ठ ७६५

(३) विकृतियों का बड़ा विस्तृत उल्लेख ठाणांगसूत्र में आता है।

णव विगतीतो पं० तं०—खीरं, दधिं, णवणीतं, सप्पिं, तेलं, गुलो, महुं, मज्जं, मंसं

— ठाणांगसूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध, ठा० ९, उ० ३, सूत्र ६७४ पत्र ४५०—२

—विगतियाँ ९ हैं—१ दूध, २ दही, ३ नवनीत, ४ घी, ५ तेल, ६ गुड़, ७ मधु, ८ मद्य और ९ मांस

ठाणांग में ही अन्यत्र आता है:—

चत्तारि गोरस विगतीओ पं० तं०—खीरं, दहिं, सप्पिं, णवणीतं, चत्तारि सिणेह विगतीओ पं० तं०—तेलं, घयं, वसा,

---

१—सूत्रकृतांग (बाबू वाला) श्रु० २, अ० २, सूत्र ७२, पृष्ठ ७५६

—इस प्रकार व्रतों में स्थित जो सप्त क्षेत्रों में धन को बोता है और दीनों पर दया करता है, उसे महाश्रावक कहते हैं।

सप्त क्षेत्रों के नाम हेमचन्द्राचार्य ने इस प्रकार गिनाये हैं:—जैन-बिम्ब १, भवन २, आगम ३, साधु ४, साध्वी ५, श्रावक ६, श्राविका ७[1]

हमने रेवती के लिए व्रतधारिणी श्राविका कहा है। अतः इसे भी यहाँ समझ लेना चाहिए।

श्रावक अथवा उपासक[2] के दो भेद जैन-शास्त्रों में बताये गये हैं। निशीथ में आता है—

उवासगो दुविहो–वती अवती वा? जो अवती सो परदंसण संपराणो। एक्के क्को पुणो दुविहो—नायगो अनायगो वा। अणु-वासगो पि नायगमनायगो य। एते चेव दो विकप्पा·····

—निशीथसूत्र सभाष्य चूर्णि, उद्देशा ११ (गा० ३५०२ की टीका, पृष्ठ २२९

रेवती के व्रतधारिणी श्राविका होने का उल्लेख उन समस्त स्थलों पर है, जहाँ उसका नाम आता है।

अतः रेवती से हिंसा की कल्पना करना एक बड़ी भारी भूल और जैन-साहित्य तथा परम्परा के प्रति अज्ञानता करना है।

रेवती तीर्थङ्कर होगी

हम ऊपर कह आये हैं कि, हिंसा नरक-प्राप्ति का कारण है। पर,

१—योगशास्त्र सटीक, पत्र २०४-२

२—उपासकाः श्रावकाः

—अभिधानचिंतामणि, स्वोपज्ञ टीका सहित, २ देवकांड, श्लोक १५८, पृष्ठ १०४

अपने दान के फलस्वरूप रेवती ने भावी तीर्थंकरों में आयुष्य बाँधा।[1] अतः उसके दान का मांसपरक अर्थ किया ही नहीं जा सकता।

भगवान् किस रोग से पीड़ित थे

एक दृष्टि से यह विचार कर लेने के बाद कि, वह दान मांस नहीं हो सकता, अन्य दृष्टियाँ भी हैं, जिनसे यह गुत्थी और अधिक स्पष्ट रूप में सुलझ सकती है। हम यह पहले कह चुके हैं कि रेवती ने भगवान् को औषधि दी। अब यहाँ समझ लेना चाहिए कि भगवान् किस रोग से पीड़ित थे। इस सम्बन्ध के कुछ उल्लेख हम यहाँ दे रहे हैं:—

(१) समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विपुले रोगायंके पाउब्भूए उज्जले जाव दुरहियासे पित्तज्जर परिगय सरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरति अवियाइं लोहियवच्चाइंपि पकरेइ

—भगवतीसूत्र सटीक, श० १५, उ० १, सूत्र ५५७, पत्र १२६०

इसकी टीका इस प्रकार दी गयी है—

'विउले' त्ति शरीरव्यापकत्वात् 'रोगायंके' त्ति रोगः—पीड़ाकारी स चासावातङ्कश्च व्याधिरिति रोगातङ्कः 'उज्जले' त्ति उज्ज्वलः पीड़ापोहलक्षणविपक्षलेशेनाप्यकलङ्कितः यावत्करणादिदं दृश्यः—'तिउले' त्ति त्रीन्—मनोवाक्कायलक्षणानर्थांस्तुलयति—जयतीति त्रितुलः 'पगाढे' प्रकर्षवान् 'कक्कसे' कर्कश द्रव्यमिवानिष्ट इत्यर्थः 'कडुए' तथैव 'चंडे' रौद्रः 'तिव्वे'

१—समवायांगसूत्र सटीक, समवाय १५९, पत्र १४३-१; ठाणांगसूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध, ठाणा ९, उद्देशा ३, सूत्र ६९१, पत्र ४५५ २; प्रवचनसारोद्धार, गाथा ४६६ पत्र ११९-१; विविध तीर्थकल्प (अपापावृहत्कल्प) पृष्ठ ४१; सप्ततिशतस्थानं सटीक गाथा ३३७ पत्र ८०-१; लोकप्रकाश (देवचंद लालभाई) भाग ४, सर्ग ३४, श्लोक ३७७ ३८५ पत्र ५५५-२—५५६-१

सामान्यस्य झगितिमरणहेतुः 'दुक्खे' त्ति दुःखो दुःखहेतुत्वात् 'दुग्गे' त्ति क्वचित् तत्र च दुर्गमिवानभिभवनीयत्वात्, किमुक्तं भवति ? 'दुरहियासे' त्ति दुरधिसह्यः सोढुमशक्यः इत्यर्थ 'दाहवक्कंतीए' त्ति दाहो व्युत्क्रान्तः–उत्पन्नो यस्य स स्वार्थिककप्रत्यये दाहव्युत्क्रान्तिकः 'अवियाइं' ति अपिचेत्यभ्युच्चये 'आइं' त्ति वाक्यालंकारे 'लोहियवच्चाइंपि' त्ति लोहित वर्चांस्यपि—रुधिरात्मकपुरीषाण्यपि करोति, किमन्येन पीडावर्णनेनेति भावः, तानि हि किलात्यन्तवेदनोत्पादके रोगे सति भवन्ति...

—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२६९–१२७०

(२) ठाणांगसूत्र की टीका में भगवान् के रोग का वर्णन इस प्रकार है—

मेण्डिक ग्राम नगरे विहरतः पित्तज्वरो दाह बहुलो बभूव लोहित वर्च्चश्च प्रावर्ततः।

—ठाणांगसूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध, पत्र ४५७–१।

(३) नेमिचन्द्रसूरि-रचित 'महावीर-चरियं' में पाठ आता है। (पत्र ८४-१)

सामिस्स तदा जाओ रोगायङ्को सकम्माओ ॥१६२२॥
तिव्वो उद्दरहियासो जिणस्स वीरस्स पित्तजर जुत्तो।
लोहिय वच्चायं पि य करेइ जायइ य अबलतणू ॥१६२३॥

(४) 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र' में हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है—

स्वामी तु रक्तातीसार पित्तज्वर वशात् कृशः

—पर्व १०, सर्ग ८, श्लोक ५४३, पत्र ११७–२

(५) गुणचन्द्र गणि-रचित 'महावीर-चरियं' में इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार है—

समुप्पन्नो पित्तजरो तव्वसेण य पाउब्भूओ रुहिराइसारो

—पत्र २८२–२

(६) 'भारतेश्वर-बाहुबलि-वृत्ति' में पाठ है—

ततः प्रभो षण्मासीं यावदतीसारोऽजनि। तस्मिन्नतीसारेऽत्यर्थं जायमाने।

—भारतेश्वर-बाहुबलि-वृत्ति, भाग २, पत्र ३२९–१

(७) 'दानप्रदीप' में भगवान् के रोग का उल्लेख इस प्रकार है—

गोशालक विनिर्मुक्त तेजोलेश्याऽतिसारिणः

—नवम् प्रकाश, श्लोक ४९९, पत्र १५३–१

इन प्रसंगों से भगवान् के रोग का बड़ा स्पष्ट ज्ञान हो जाता है—१ पित्तज्वर, २—दाह, ३—लोहू की टट्टी। लोहू की टट्टी का स्पष्टीकरण त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि ग्रन्थों में 'अतिसार' (डीसेंट्री[१]) कह कर किया गया है। वह अतिसार रक्त का था। अतः उसे रक्तातिसार कहना अधिक उपयुक्त होगा।

पित्तज्वर का निदान

अब हमें यह जान लेना चाहिए कि, पित्तज्वर में होता क्या है। निघण्टुरत्नाकर में पित्तज्वर के ये लक्षण बताये गये हैं।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः।
कण्ठोष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते॥
प्रलापो वक्त्र कटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्पैत्तिके भ्रम एव च॥

—निघण्टु रत्नाकर (निर्णय सागर प्रेस) भाग २, पृष्ठ ८

१—आप्टेज-संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी, भाग १ पष्ठ ४८।

इन रोगों के प्रसंग में हमें अब यह देखना चाहिए कि, क्या मांस उनकी दवा हो सकती है अथवा क्या मांस दिया जा सकता है।

मांस की प्रकृति

निघण्टु रत्नाकर[1], शब्दार्थ-चिन्तामणि-कोष[2], वैद्यक-शब्द-सिंधु[3] आदि ग्रन्थों में मांस को गरम, देर में हजम होने वाला, और वायुनाशक बताया गया है। उसका पित्तज्वर से कोई सम्बन्ध नहीं है और न वह पित्तज्वर में दिया जा सकता है।

इसी प्रकार मुर्गे का मांस भी भारी और गरम है।[4]

अतः वैद्यक की दृष्टि से भी पचने में भारी और उष्ण प्रकृति वाले पदार्थ को कोई अतिसार तथा दाह-प्रधान पित्तज्वर में देने की बात नहीं कर सकता।

'मांस' शब्द का अर्थ

'मांस' शब्द से भ्रम में न पड़ना चाहिए। मांस का एक अर्थ 'गूदा' भी होता है। आप्टेज संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी[5] में उसका एक अर्थ 'फ्लेशी पार्ट आव फ्रूट' भी दिया है।

१—निघण्टुरत्नाकर, भाग १, पृष्ठ १५२

२—शब्दार्थचिन्तामणि कोष, भाग ३, पृष्ठ ५७४

३—वैद्यक-शब्द-सिंधु कोष, पृष्ठ ७३६

४—सुश्रुत-संहिता (मुरलीधर-सम्पादित) पृष्ठ ४१४

५—आप्टेज संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी, भाग २, पृष्ठ १२५५। ऐसा ही अर्थ संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ (चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा-सम्पादित) ६५५ तथा बृहत् हिन्दी-कोश (ज्ञानमंडल, काशी) पृष्ठ १०२० में भी दिया है।

(२) विंट स मंस कडाहं एयाइं हवंति एग जीवस्स

—प्रज्ञापना सटीक ([illegible]), १, ५१ पत्र [illegible]; ([illegible]) पत्र ८०-२

इसकी टीका वहाँ इस प्रकार की है —

'समंसकडाहं' त्ति समांसं सगिरं यथा कटाहं एतानि त्रीण्येकस्य जीवस्य भवन्ति, एक जीवात्मकान्येतानि त्रीणि भवन्तीत्यर्थः —वही, पत्र ३७-२

'मांस' के समान ही जैन शास्त्रों में 'अट्ठि' का भी प्रयोग हुआ है— वहाँ 'अट्ठि' से तात्पर्य 'हड्डी' नहीं वरन् 'बीज' से है। हम यहाँ इस सम्बन्ध में कुछ उद्धरण दे रहे हैं :—

(१) से किं तं रुक्खा ? रुक्खा दुविहा पन्नता, तं जहा— एगट्ठिया य बहुबीयगा। से किं तं एगट्ठिया ? एगट्ठिया अणेग विहा पन्नत्ता।

—प्रज्ञापनासूत्र सटीक, पत्र ३१-१

(२) से किं तं रुक्खा ? दुविहा पण्णत्ता तंजहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य। से किं तं एगट्ठिया ?........

—जीवाजीवाभिगमसूत्र सटीक, पत्र २६-१

आयुर्वेद में 'मांस' का प्रयोग

जैन-शास्त्रों के अनुरूप ही आयुर्वेद में भी 'मांस' का प्रयोग फल के गूदे के लिए हुआ है। ऐसे कितने ही उदाहरण मिलेंगे। हम उनमें से छ यहाँ दे रहे हैं :—

(१) लघ्वम्लं दीपनं हृद्यं मातुलुंग मुदाहृतम् ।
त्वक् तिक्ता दुर्जरा तस्य वातकृमि कफापहा ॥
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं मांसं मारूत पित्तजित् ।
मेध्यं शूलानिलछर्दिकफारोचक नाशनम् ॥

—सुश्रुत्-संहिता, सूत्र स्थान, अ० ४६, श्लोक १९-२०, पृष्ठ ४२९

(२) चूत् फले परिपक्के केशर मांसास्थिमज्जानः पृथक्-पृथक दृश्यन्ते, काल प्रकर्षात् । तान्येव तरुणे नोपलभ्यन्ते सूक्ष्मत्वात् तेषां सूक्ष्माणं केशरादीनां कालः प्रव्यक्तां करोति ।

—सुश्रुत-संहिता

(३) खर्जूर मांसान्यथा नारिकेलम्

—चरक-संहिता

वैदिक-ग्रंथों का प्रमाण

वैदिक ग्रन्थों में भी इस प्रकार के प्रसंग मिलते हैं :—

यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा ।
तस्य लोमानि पर्णानि, त्वगस्योत्पाटिका वहिः ॥
त्वच एवास्य रुधिरं, प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः ।
तस्मात्तृणात्तदा प्रैति, रसो वृक्षादि वाहतात् ॥
मांसस्य शकराणि, किनाटं स्नावतत्स्थिरम् ।
अस्थीन्यन्तरतो दारुणि मज्जा मज्जोपमाकृता ॥
यद् वृक्षो वृक्णो रोहति मूलान्नवतरः पुनः ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् अ० ३, ब्रा० ९ मंत्र २८,
(ईशादिदशोपनिषद्भाष्यं, निर्णय सागर) पृष्ठ २०२,

—वनस्पति वृक्ष जैसा होता है, पुरुष भी वैसा ही होता है—यह बात बिलकुल सत्य है । वृक्ष के पत्ते होते हैं और पुरुष के शरीर में पत्तों की जगह रोम होते हैं; पुरुष के शरीर में जो त्वचा है, उसकी समता में

यदा पिष्टान्यथ लोमानि भवन्ति। यदाप आनयत्यथ त्वग् भवति। यदा स यौत्यथ मांसं भवति। संतत इव हि तर्हि भवति संततमिव हि मांसम्। यदा शृतोऽथास्थि भवति। दारुण इव तर्हि भवति। दारुण मित्यस्थि। अथ यदुद्वासयन्नभिघारयति तं मज्जानं ददाति। एषा सा संपद् यदाहुः। पाङ्क्तः पशुरिति।

—केवल पिसा हुआ सूखा आटा 'लोम' है। पानी मिलाने पर वह 'चर्म' कहलाता है। गूँथने पर उसकी संज्ञा 'मांस' होती है। तपाने पर

१—कल्याण (वर्ष २३, अंक १) उपनिषद् अंक, पृष्ठ १२५

उसे अस्थि कहते हैं। घी डालने पर उसी का नाम 'मज्जा' होता है। इस प्रकार पक कर जो पदार्थ बनता है, उसका नाम पाक्त पशु होता है।

ऐतरेय-ब्राह्मण में भी इसी प्रकार का स्पष्टीकरण मिलता है—

स वा एष पशुरेवालभ्यते यत्पुरोडाशस्तस्य यानि किंशारूपाणि तानि रोमाणि। ते तुषाः सा त्वक्। ये फलीकरणस्तद् असृग यत्पिष्टं सन्मांसम्। एष पशूनामेधेन यजते'''

—इस मंत्र में पुरोडाश के अन्तर्गत जो अन्न के दाने हैं, उन्हें अन्नमय पशु का रोम, भूसी को त्वचा, टुकड़ों को सींग और आटे को मांस नाम दिया गया है।

वनस्पतियों के प्राणिवाचक नाम

तथ्य यह है कि, उतावली प्रकृति के लोग प्रसंग में आयी वनस्पतियों के प्राणिवाचक-नामों से भ्रम में पड़ जाते हैं। पर, वैद्यक-ग्रंथों में और कोषों में ऐसी कितनी ही वनस्पतियाँ मिलेंगी, जिनके नाम प्राणिवाचक हैं। यह इतना लम्बा प्रकरण है कि, यदि सबको संग्रह करना हो तो वस्तुतः कोष-निर्माण-सरीखा काम हो जाये। पर, उदाहरण के रूप में हम कुछ नाम यहाँ दे रहे हैं:—

मार्जारि } = कस्तूरी[1]
मार्जारिका }

मृगनाभि = मुश्क[2]

हस्ति = अजमोद[3]

१—निघंटु-रत्नाकर (मराठी-अनुवाद सहित—निर्णयसागर प्रेस) शब्दकोष खंड पृष्ठ १५१

२—वही, पृष्ठ १५५

३—वही, पृष्ठ २१८

[illegible]	=	[illegible], कुम्हड़ी, अजमोद[1]
[illegible]	=	कुम्हड़ी[2]
[illegible]	=	कुम्हड़ी[3]

'कवोय' का अर्थ

'कवोय' का संस्कृत रूप 'कपोत' है। टीकाकार ने इसकी टीका इस प्रकार की है:—

'फले वर्णसाधर्म्यात्ते कपोते कुष्माण्डे ह्रस्वे कपोते कपोतके ते च शरीर वनस्पति जीव देहत्वात् कपोतक शरीरे अथवा कपोतकशरीरे इव धूसर वर्ण साधर्म्यादेव कपोतकशरीरे कुष्माण्ड फले...[4]'

हम पहले ही लिख चुके हैं कि, कुष्माण्ड के ही अर्थ में 'कपोत' चरित्र ग्रन्थों में भी लिया गया है। 'कपोत' शब्द वैद्यक-ग्रंथों में कितने ही अप्राणिवाचक अर्थों में आया है—जैसे नीला सुरमा, लाल सुरमा, साजीखार[5], एक प्रकार की वनस्पति[6], पारीस पीपर[7] आदि। और, कपोतिका का अर्थ वैद्यक-ग्रन्थों में कुष्माण्ड भी दिया है।[8] कुष्माण्ड का गुण सुश्रुत-संहिता में इस प्रकार दिया है।

पित्तघ्नं तेषु कुष्माण्डं बालं मध्यं कफाहरम्।
पक्वं लघूष्णं सक्षारं दीपनं वास्ति शोधनम्॥

१—वही, पृष्ठ १४५
२—वही, पृष्ठ १७६
३—वही, पृष्ठ १७२
४—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२७०
५—निघण्टु-रत्नाकर, कोष-खंड, पृष्ठ २७
६—वैद्यक शब्द सिंधु
७—सुश्रुत-संहिता
८—निघण्टु-रत्नाकर, कोष-खंड, पृष्ठ २७

सर्वं दोषहरं हृद्यं पथ्यं चेतो विकारिणाम् ।[1]

—उनमें छोटा पेठा पित्तनाशक है और मध्य (अधपका) कफ-कारक है तथा खूब पका हुआ गरम कुछ-कुछ खरोंहा होता है, दीपन है और वस्ति (मूत्रस्थान) को शोधन करता है और सब दोषों (वायु-पित्त-कफ) को शांत करता है। हृदय को हित है और पित्त के विकार को (मृगी, उन्माद आदि) के रोगवालों को पथ्य (सेवन करने योग्य) है।

कुक्कुट का अर्थ

भगवती के मूल पाठ में दूसरा शब्द 'कुक्कुट' है। वैद्यक-शब्द-सिंधु[2] मधुकुक्कुटी शब्द आता है। वहाँ उसका अर्थ मातुलिंग और बिजौरा दिया है। मधुकुक्कुटी का यह अर्थ बहुत-से कोषों में मिलेगा।

वैजयन्ती कोष में आता है :—

मातुलुंगे तु रुचको वराम्लः केसरी शठः ।
वीजपूरे मातुलुंगो लुंगस्सुफल पूरकौ ॥
देविकायां महाशल्का दूष्यांगी मधुकुक्कुटी
अथात्यमूला मातुलुंगी पूति पुष्पी वृकाम्लिका ॥[3]

इसके अतिरिक्त अब कुछ अन्य कोषकारों का मत देखिये—

(१) मधुकुक्कुटी = मातुलुंगायाम्[4]

(२) मधुकुक्कुटी = ए काइण्ड आव साइट्रन ट्री विथ इल स्मेलिंग ब्लासम[5]

१—सुश्रुत संहिता, सूत्र-स्थान, शाक-वर्ग, श्लोक ३, पृष्ठ ४३८

२—वैद्यक-शब्द-सिंधु

३—वैजयन्ती-कोष (मद्रास संस्कृत ऐंड वर्नाक्यूलर टेक्स्ट पब्लिकेशन सोसाइटी, १८९३ ई०) भूमिकांड, वनध्याय, श्लोक ३३-३४ पृष्ठ ४७

४—शब्दार्थ चिंतामणि कोष, भाग ३, पृष्ठ ५०६

५—मोन्योर-मोन्योर विलियम्स् संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी, पृष्ठ ७७९

वाग्भट्ट में उसका गुण इस प्रकार बताया गया है:—

त्वक्तिक्त कटुका स्निग्धा मातुलुंगस्य वातजित् ।
बृहणं मधुरं मांसं वात पित्त हरं गुरु ॥

—वाग्भट्ट

भाव-प्रकाश में उसका गुण इस प्रकार बताया गया है:—

बीजपुरो मातुलुंगो रुचकः फल पूरकः ।
बीजपुर फलं स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघु ॥ १३१ ॥
रक्त पित्त हरं कण्ठ जिह्वा हृदय शोधनम् ।
श्वास कासाऽरुचिहरं हृद्यं तृष्णा हरं स्मृतम् ॥ १६२ ॥
बीजपुरोऽपरः प्रोक्तो मधुरो मधु कर्कटी ।
मधुकर्कटिका स्वादी रोचनी शीतला गुरुः ॥ १३३ ॥
रक्त पित्त क्षय श्वास कास हिक्का भ्रमाऽपहा ॥ १३४ ॥

—भावप्रकाश-निघण्टु (व्यंकटेश्वर प्रेस, सं० १९८८) पृष्ठ १०३

—बिजौरा रक्त-पित्त नाशक है, कण्ठ-जिह्वा-हृदय शोधक है। श्वास, कास, अरुचि का दमन करता है और तृष्णाहारक है।

'मज्जार कडए'

भगवती के पाठ में तीसरा शब्द 'मज्जार कडए' है। इसका संस्कृत रूप 'मार्जार कृत' हुआ। 'कृत' से भ्रामक अर्थ लेकर कुछ लोग उसका अर्थ 'बिल्ली का मारा हुआ' करते हैं। पर पशु से कटा हुआ अथवा विधा हुआ मांस वैद्यक ग्रंथों में भी दूषित बताया गया है और मांसाहारियों के लिए भी निषिद्ध है।[1] फिर, इस प्रकार अर्थ करना सर्वथा भ्रामक न कहा जाये तो क्या कहा जाये। टीका की सर्वथा उपेक्षा करके 'मार्जार' से 'बिल्ली' और 'कृत' से मारा हुआ अर्थ करना मात्र उच्छृंखलता है।

१—सुश्रुत-संहिता, सूत्र स्थान, अ० ४६, श्लोक ७५, पृष्ठ ४२४

'मज्जार' शब्द भी अनेकार्थ-वाचक ही है। जैन शास्त्रों में उसका स्पष्टीकरण कितने ही स्थलों में हो आता है।

प्रज्ञापनासूत्र में 'हरित' वर्ग में उसका उल्लेख इस प्रकार है:—

मज्जारयाइ चिल्ली य पालक्का

—प्रज्ञापनासूत्र सटीक (समिति वाला) पत्र ३३-१ (गाथा ३७)

भगवती सूत्र में इसका इसी रूप में उल्लेख है—

(१)...वत्थुल चोरग मज्जारयाई

—भगवतीसूत्र सटीक श० २१, उ० ७, पत्र १४८०

(२) भगवतीसूत्र शतक १५ में जो 'मज्जार' आया है, उसकी टीका टीकाकार ने इस प्रकार की है—

विरालिकाभिधानो वनस्पति विशेषस्तेन कृतं

१ वृत्तादनी चर्मकषा, भू कुष्माण्डयश्व वल्लभा ।
विडालिका वृत्तपर्णा, महाश्वेता परा तु सा ॥[1]

(२) विडालिका अथवा विडाली = भुइकोइला[2]

(३) विडाली = भूमि कुष्माण्डे[3]

(४) विडाल = ए स्पिसीज आव प्लांट[4]

मार्जार के साथ जो 'कृत' शब्द लगा है, इससे अर्थ और भी स्पष्ट हो जाता है; क्योंकि हम पहले ही कह चुके हैं कि पशुविद्ध जंतु आयुर्वेद में भी अभक्ष्य कहा गया है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट हो गया कि भगवती वाले पाठ का मांसपरक अर्थ लग ही नहीं सकता।

'परियासिए'

भगवती के पाठ में 'परियासिए' शब्द आया है। इसका संस्कृत रूप 'परिवासित' हुआ। इसकी टीका अभयदेवसूरि ने 'ह्यस्तनमित्यर्थः' किया है: (भगवतीसूत्र सटीक, पत्र १२७०)। 'ह्यस्तन' शब्द का अर्थ शब्दार्थ—चिन्तामणिकोष में दिया है—

ह्योभूते अतीतेऽह्नि जाते

—भाग ४, पृष्ठ १०३७

ऐसा ही अर्थ आप्टेज संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी, भाग ३, पृष्ठ १७७६ में भी है। यह शब्द बृहत्कल्पसूत्र में भी आया है। वहाँ उसकी टीका इस प्रकार की गयी है :—

१—निघण्टशेष हेमचन्द्राचार्य-रचित (दे० ला० जै० ग्र० ९२,) श्लोक २०८ पृष्ठ २६६

२—निघण्टु-रत्नाकर, भाग ?, कोष खंड, पृष्ठ १७९

३—शब्दार्थ-चिंतामणि, भाग ४, पृष्ठ ३२२

४—मोन्योर-मोन्योर विलियम्स संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी, पृष्ठ ७३१

परिवासितस्य रजन्यां स्थापितस्याहारस्य

—बृहत्कल्पसूत्र सभाष्य सटीक, विभाग ५, पृष्ठ १५८८

ठाणांगसूत्र में आहार चार प्रकार का बताया गया है—

चउव्विहे आहारे पं० तं०—असणे, पाणे, खाइमे, साइमे

—ठाणांगसूत्र सटीक, ठा० ४, उ० २, सूत्र २९५ पत्र२१०-२

(१) **असण** शब्द की टीका करते हुए ठाणांग के टीकाकार ने लिखा है—

अश्यत इति अशनम्—ओदनादि

—ठाणांगसूत्र सटीक, पत्र २२०-१

बृहत्कल्प में उसकी टीका इस प्रकार की गयी है—

अशनं कूरः 'एकाङ्गिकः' शुद्ध एव क्षुद्धं नाशयति

—बृहत्कल्प सभाष्य सटीक, विभाग ५, पृष्ठ १५८८

प्रवचनसारोद्धार, 'असण' के सम्बन्ध में लिखा है—

असणं ओयणं सत्थुग मुग्ग जगाराइ खज्जगविही य ।
खीराइ सूरणाई मंडगपभिई य विन्नेयं ॥

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, द्वार ४, गाथा २०७, पत्र ५१-१

धर्मसंग्रह में उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—

भक्तं राद्धधान्यं सुखभक्षिकाऽपि

—धर्मसंग्रह, (यशोविजय की टिप्पन सहित) अधि० २, पत्र ८१-१

(२) **पाण** शब्द की टीका ठाणांग में इस प्रकार लिखी है—

पीयत इति पानं सौवीरादिक

—ठाणांगसूत्र सटीक, पूर्वार्द्ध, पत्र २२०-१

उदक के सम्बन्ध में बृहत्कल्पसूत्र में इस प्रकार आता है—

उदए कप्पूराई फलि सुत्ताईणि सिंगबेर गुले ।
न य ताणि खविंति खुहं उवगारित्ता उ आहारो ॥

और, उसकी टीका इस प्रकार दी गयी है—

उदके कर्पूरादिकमुपयुज्यते आम्रादिफलेषु सुत्तादीनि द्रव्याणि 'शृंगवेरे च' शुण्ठ्यां गुल उपज्यते। न चैतानि कर्पूरादीनि क्षुधां क्षपयन्ति, परमुपकारित्वादाहार उच्यते।

—बृहत्कल्पसूत्र सटीक सभाष्य, विभाग ५, पृष्ठ १५८४

(३) खाइम की टीका करते हुए ठाणांग सूत्र में लिखा है—

खादः प्रयोजनमस्येति खादिमं फल वर्गादि

—ठाणांग सूत्र सटीक, पूर्वार्द्ध, पत्र २२०–१

'खाइम्' का स्पष्टीकरण प्रवचनसारोद्धार में इस प्रकार किया गया है।

भत्तोसं दंताई खज्जूरग नालिकेर दक्खाई।
कक्कडि अंवग फणसाइ वहुविहं खाइयं ने यं ॥ २०६ ॥

इसकी टीका उक्त ग्रंथ में इस प्रकार दी है—

'भत्तोस' मित्यादि भक्तं च तद्भोजनमोषं च-दाह्यं भक्तोषं, रूढ़ितः परिभ्रष्टचनक गोधूमादि 'दन्त्यादि' दन्तेभ्यो हितं दन्त्यं-गुन्दादि आदि शब्दाच्चारु कुलिका खण्डेक्षु शर्करादि परिग्रहः यद्वा दन्तादि देश विशेष प्रसिद्धं गुड संस्कृत दन्त पचनादि तथा खर्जूरनालिकेर द्राक्षादिः आदि शब्दादक्षोटक वदामादि परिग्रहः तथा कर्कटिकाम्रपनसादि आदि शब्दात्कदल्यादि फल पटल परिग्रहः वहुविधं खादिम् ज्ञेयम्।

—प्रवचनसारोद्धार, पत्र ५१–१

इस 'खाइम्' के सम्बन्ध में बृहत्कल्पसूत्र में एक गाथा आती है—

अहवा जं भुक्खत्तो, कद्मउवमाइ पक्खिवइ कोट्ठे।
सव्वो सो आहारो, ओसहभाई पुणो भइतो ॥२९०२॥

—बृहत्कल्पसूत्र सभाष्य सटीक विभाग ५, पृष्ठ १५८४

इसमें ओषधि को भी 'खाइम्' में गिना है। वहाँ टीका में आता है—

………औषध्यादिकं पुनः 'सन्नः' विकल्पितम्, किं निराहारः किं निराहाराहारः इत्यर्थः । तत्र शर्करादिकमौषधमाहारः सर्पदष्टादिमृत्तिकादिकमौषधमनाहारः

—अर्थात् जो खाने वाली शक्कर आदि औषधि है, वह आहार है, जो खाद्य स्वादी नहीं वह अनाहार है।

(८) स्वादिम की टीका ठाणांगसूत्र (पत्र १२७-१) में ताम्बूल आदि की है। प्रवचनसारोद्धार में इसके सम्बन्ध में गाथा आती है—

> दंतवणं तंबोलं तुलसी कुहेडग माईयं।
> महुपिप्पलि सुंठाई अणेगहा साइमं नेयं ॥२१०॥

यहाँ यह जान लेना चाहिए कि बासी आहार साधु को नहीं कल्पता है। बृहत्कल्प में पाठ है—

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पारियासियस्स…

—बृहत्कल्प सभाष्य सटीक, विभाग ५, पृष्ठ १५८३

पर, यह नियम सब प्रकार के खाद्य के लिए नहीं है। पर्युषित भोजन दो प्रकार का होता है। उसमें एक प्रकार का पर्युषित साधु को कल्पता है और एक प्रकार का नहीं कल्पता।

जो राँधा हुआ हो, उसे साधु बासी नहीं खाता और जिसमें जल का अंश न हो, सूखा हो, चूर्ण हो, घृत में बना हो, वह बासी भी खाया जा सकता है।

पर्युषित भोजन के सम्बन्ध में कहा गया है—

> **वासासु पन्नर दिवसं, सि-उण्ह कालेसु मास दिण वीसं।**
> **उग्गहियं जोईणं, कप्पइ आरब्भ पढम दिण्णा ॥**

—धर्मसंग्रह यशोविजय की टिप्पण सहित, पत्र ७६-१

—पक्वानादि पकायी तथा तली हुई वस्तु उस दिन को गिनकर वर्षा काल में १५ दिन, शीतकाल में १ मास और उष्ण काल में २० दिवस साधु को कल्पता है।

—धर्मसंग्रह (गुजराती-अनुवाद) पृष्ठ २११-२१२

ऐसा ही उल्लेख श्राद्धविधि (गुजराती-अनुवादक, पृष्ठ ४४) में भी है।

पर्युषित के नियम का स्पष्ट उल्लेख धर्मसंग्रह (टिप्पणि-सहित) में है—

चलितो-विनष्टो रसः—स्वाद उपलक्षणत्वाद्वर्णादिर्यस्य तच्चलितरसं, कुथितान्नपर्युषितद्विदल पूपिकादि केवल जल-राद्ध कराद्यनेक जंतु संसक्तत्वात्.....

—धर्मसंग्रह (टिप्पन-सहित) पत्र ७६-१

—चलित रस की परिभाषा बताते हुए कहा गया है कि जिसका रस और स्वाद बिगड़ गया हो और उपलक्षण से रूप-रस-गंध-स्पर्श में बदल गया हो, वह सभी वस्तुएँ चलितरस कही जाती हैं। (पानी में) राँधा अन्न, बासी रखी दाल, नरम पूरी, पानी में राँधा चावल आदि में अनेक जीव उत्पन्न हो जाते हैं।

पर, यहाँ तो भोजन का प्रसंग ही नहीं है। हम पहले प्रमाण दे आये हैं कि, भगवान् ने दान में जो लिया वह तो औषधि थी। औषधि में ताजे-बासी का प्रश्न ही नहीं उठता।

भगवान् ने पर्युषित वस्तु ली, इससे भी स्पष्ट है कि वह पानी में पकायी वस्तु नहीं थी और मांस कदापि नहीं हो सकता।

पहली भिक्षा अग्राह्य क्यों ?

भगवान् ने पहली भिक्षा को मना क्यों किया और दूसरी वस्तु क्यों मँगवायी ? इस प्रश्न का उत्तर भगवती में ही दिया। पहली भिक्षा (कुष्मांड वाली) को भगवती में भगवान् ने कहा है—

मम अट्ठाए

अर्थात् वह मेरे निमित्त है। तो उसके लिए कहा कि—

तेहिं तो अट्ठो—[illegible] सटीक, पत्र [illegible]

अर्थात् [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में लिखा है—

बहुपापत्वात्

और, बहु पाप क्यों है इसका स्पष्टीकरण ठाणांगसूत्र में कि[illegible] है। वहाँ साधु की भिक्षा में तीन प्रकार के दोष बताये गये हैं:—

तिविहे उवघाते पं० तं०—उग्गमोवघाते, उप्पायण
एसणोवघाते एवं विसोही

—ठाणांगसूत्र सटीक पूर्वार्द्ध, ठा० ३, उ० ४, सू० १९४ पत्र

इसकी टीका में उद्गम के १६, उत्पादन के १६ और एष[illegible] १० भेद, इस प्रकार भिक्षा के कुल ४२ दोष बताये गये हैं। हेम[illegible] ने 'योगशास्त्र' में लिखा है—

द्विचत्वारिंशता भिक्षादोषैर्नित्यमदूषितम्।
मुनिर्यदन्नमादत्ते सैषणासमितिर्मता॥

—योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका सहित, प्रकाश १, श्लो० ३८ प

इसमें उद्गम-दोष का पहला दोष आधाकर्म है। इसकी टी[illegible] चन्द्राचार्य ने इस प्रकार दी है—

सचित्तस्या चित्तीकरणमचित्तस्यवापाको निरुक्तादा

—योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका सहित, पत्र

अर्थात् साधु के निमित्त बनायी गयी भिक्षा लेना आधाकर्म है।

साधु-धर्म में आधाधर्म कितना बड़ा पाप है, इसका वर्णन [illegible] निर्युक्ति में इस प्रकार है:—

आहाकम्मं भुंजइ न पडिक्कमए यतस्स ठाणस्स।
एमेव अडइ बोडो लुक्कविलुक्का जह कवोडो॥२१७॥

—पिंडनिर्युक्ति सटीक, पत्र ७९–२

—आधाकर्म ग्रहण करने से जिनाज्ञा भंग होती है और शिरोलुंचन आदि निष्फल हो जाते हैं।

याकोबी का स्पष्टीकरण

जैनियों के अहिंसा-प्रेम पर प्रथम प्रहार डाक्टर हर्मन याकोबी के आचारांग के अंग्रेजी-अनुवाद से हुआ, जो 'सेक्रेड-बुक्स आव द'ईस्ट' ग्रंथमाला में (सन् १८८४ ई०) प्रकाशित हुआ था। उस समय खीमजी हीरजी क्यानी ने उस पर आपत्ति उठायी और फिर सागरानंद सूरि तथा विजय नेमिसूरी ने उसका प्रतिवाद किया। इनके अतिरिक्त पूरा जैन-समाज याकोबी के अर्थ के विरुद्ध था। याकोबी के पास इतने प्रमाण और विरोध-पत्र पहुँचे कि उन्हें अपना मत परिवर्तन करना पड़ा। अपने १४-२-२८ के पत्र में याकोबी ने अपनी भूल स्वीकार की और अपनी नयी मान्यता की पुष्टि की। उक्त पत्र का उल्लेख 'हिस्ट्री आव कैनानिकल लिटरेचर आव जैनाज' में हीरालाल रसिकलाल कापड़िया ने इस रूप में किया है।

There he has said that 'बहुअट्ठिएण मंसेण वा मच्छेण वा बहुकण्टएण' has been used in the metaphorical sense as can be seen from the illustration of नान्तरीयकत्व given by Patanjali in discussing a vartika ad Panini (III, 3,9) and from Vachaspati's com. on Nyayasutra (iv, 1,54) He has concluded: "This meaning of the passage is therefore, that a monk should not accept in alms any substance of which only a part can be eaten and a greater part must be rejected.'[1]

---

१ पृष्ठ ११७, ११८

—"...[illegible] पतंजलि महाभाष्य और वाचस्पति के [illegible] के आधार पर नीचे दिये रूप में [illegible] की है :—

"पतंजलि और उसके पीछे [illegible] १००० वर्ष बाद हुए वाचस्पति ने जिसका अधिकांश भाग खाद्य हो, उसके साथ [illegible]-भाग धारण करनेवाले पदार्थ के रूप में मत्स्य का उदाहरण दिया है; क्योंकि मत्स्य ऐसा पदार्थ है कि जिसका मांस तो खाया जा सकता है, पर काँटा आदि खाया नहीं जा सकता।

"आचारांग के इस पाठ में इसी उदाहरण के रूप में प्रयोग हुआ है। इस पाठ को देखते हुए यहाँ यही अर्थ करना विशेष अनुकूल दिखायी देता है, क्योंकि जब गृहस्थ पूछता है कि—'बहुत अस्थि वाला मांस आप लेते हैं ?' तो साधु उत्तर देता है—'बहु अस्थि वाला मांस मुझे नहीं कल्पता।' यदि गृहस्थ प्रकट रूप में मांस ही देता होता तो साधु तो यही कहता कि, "मुझे नहीं चाहिए; क्योंकि मैं मांसाहारी नहीं हूँ।" परन्तु, ऐसा न कहकर वह कहता है कि, 'बहुत अस्थिमय मांस मुझे मत दो यदि तुम्हें मुझे वही देना ही हो तो मुझे पुद्गल मात्र दो। अस्थि मत दो।' यहाँ इस बात की ओर विशेष ध्यान देना उचित समझायी पड़ता है कि, गृहस्थ द्वारा दी जाती वस्तु का निषेध करते हुए साधु उदाहरण रूप प्रचलित 'बहु कंटकमय मांस का' प्रयोग नहीं करता है। परन्तु भिक्षा-रूप में वह क्या ग्रहण कर सकता है, इसे सूचित करते हुए वह अलंकारिक प्रयोग न करके वस्तुवाचक 'पुद्गल' शब्द का प्रयोग करता है। इस रूप में भिन्न शब्द का प्रयोग करने का तात्पर्य यह है कि, प्रथम प्रयोग अलंकारिक है और वह भ्रम उत्पन्न कर सकता है, यह बात वह जानता है।

"इस कारण इस विवादग्रस्त पाठ का अर्थ मैं यह करता हूँ कि जिव

पदार्थ का थोड़ा भाग खाया जा सके, और अधिक भाग त्याग कर देना पड़े, उस पदार्थ को साधु को भिक्षा-रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए।

"मेरे विचार से इस मांस और मत्स्य पाठ द्वारा गन्ने के समान अन्य पदार्थों का सूचन कराया गया है।"

स्टेन कोनो का मत

हर्मन याकोबी के स्पष्टीकरण के बाद ओस्लो के विद्वान् डाक्टर स्टेन कोनो ने मुझे एक पत्र भेजा। उक्त पत्र का पाठ इस प्रकार है :—

Prof. Jacobi has done a great service to scholars in clearing up the much discussed question about meat-eating among Jainas. On the face of it, it has always seemed incredible to me that it had at any time, been allowed in a relgion where ahima and also ascetism play such a prominent role...Prof Jacobi's short remarks on the other hand make the whole matter clear. My reason for mentioning it was that I wanted to bring his explanation to the knowledge of so many scholars as possible. But there will still, no doubt, be people who stick to the old theory. It is always difficult, to do away with false ditthi but in the end truth always prevails.

—"जैनों के मांस खाने की बहुविवादग्रस्त बात का स्पष्टीकरण करके प्रोफेसर याकोबी ने विद्वानों का बड़ा हित किया है। प्रकट रूप में यह बात मुझे कभी स्वीकार्य नहीं लगी कि जिस धर्म में अहिंसा और साधुत्व का इतना महत्वपूर्ण अंश हो, उसमें मांस खाना किसी काल में भी धर्म संगत माना जाता रहा होगा। प्रोफेसर याकोबी की छोटी-सी टिप्पणि से सभी

that must be rejected. The words of the Ayaranga are consequently tachnical terms and do not imply that meat and fish might be eaten.'

—"मैं केवल एक ही तफसील का उल्लेख करूँगा; क्योंकि यूरोपियनों के साधारण विचार का जैन लोग बड़ा विरोध करते हैं। 'बहु अट्ठिय मंस' और 'बहुकंटग मच्छ' का उल्लेख आचारांग में आया है। उससे लोग यह तात्पर्य निकालते हैं कि, पुराने समय में इनकी अनुमति थी। यह विचार पृष्ठ १३७ पर दिया है। 'रिव्यू आव फिलासफी ऐंड रेलिजन' वाल्यूम १४, संख्या २, पूना १९३३ में प्रोफेसर कापड़िया ने याकोबी का १४ फरवरी १९२८ का एक पत्र प्रकाशित किया है। मेरे विचार से उक्त पत्र से सारा मामला खतम हो गया। मछली में मांस ही खाया जा सकता है, उसका सेहरा और उसकी हड्डियाँ खायी नहीं जा सकतीं। यह एक प्रयोग है, जिससे व्यक्त होता है कि, जिसका अधिकांश भाग का परित्याग कर देना पड़े उसे नहीं लेना चाहिए। आचारांग के ये शब्द 'टेकनिकल' शब्द हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि, मांस अथवा मछली खाने की अनुमति थी।"

याकोबी के बाद इस प्रश्न को धर्मानंद कौसाम्बी ने उठाया। उन्होंने पुरातत्त्व (खंड ३ अंक ४, पृष्ठ ३२३, आश्विन सं० १९८१ वि०) में एक लेख लिखा, जिसमें आचारांग आदि का पाठ देकर उन्होंने जैनों पर मांसाहार का आरोप लगाया। उसका भी जैनों ने खुलकर विरोध किया। उस समय तो नहीं, पर जब कौशाम्बी ने 'भगवान् बुद्ध' पुस्तक लिखी तो उसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा कि—

"...वास्तव में इनकी खोज मैंने नहीं की थी। मांसाहार के विषय

१—देखिये 'लेटर्स टु विजयेन्द्र सूरि', पृष्ठ २६१।

में जानता न था। लेकिन जैन पंडितों ने ही उनकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया और मैंने उस लेख में उनका प्रयोग किया था।"

उस समय वहाँ कौन कौन था, इसका उल्लेख करते हुए काका कालेलकर ने 'भगवान बुद्ध' की भूमिका में लिखा है —

"गुजरात विद्यापीठ में पुरातत्त्व आने पर उन्होंने वहाँ आकर कई ग्रन्थ लिखे। और, पंडित सुखलाल, मुनि जिनविजय जी, श्री बेचरदास जी और रसिकलाल पारिख जैसे जैन विद्वानों के साथ सहयोग करके जैन और बौद्ध साहित्य का तुलनात्मक अभ्यास करने में बड़ी सहायता की।"

उस समय वहाँ कौन कौन था, इसकी जानकारी का साधन 'पुरातत्त्व' में प्रकाशित प्रबंध समिति के सदस्यों की नामावलि भी है। उसमें निम्नलिखित नाम दिये हैं —१ मुनि जिनविजय, २ ....३ सुखलाल,

हम यहाँ कुछ न कहेंगे। ये सूचियाँ स्वयं अपनी कहानी कहने में समर्थ हैं।

'जैन साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' द्वारा प्रकाशित श्री भगवतीसूत्र के चौथे भाग में बेचरदास ने एक लम्बी भूमिका लिखी है। उस भूमिका में एक शीर्षक है—'व्याख्याप्रज्ञप्ति माँ आवेला केटलाक विवादास्पद स्थानों।' उसमें (पृष्ठ २३) पर उन्होंने लिखा है—

"गोशालक ना १५—मा शतक भगवान् महावीर माटे सिंह अनगार ने आहार लाववानुं कहेवा माँ आव्युं छे। ते प्रसंगे बे-त्रण शब्दो घणा विवादास्पद छे—कवोय सरीरा—कपोत-शरीर—मज्जार कडए—मार्जार कृत-कुक्कुड मंसए—कुक्कुट-मांस। आ त्रण शब्द ना अर्थ माँ विशेष गोटाळो मालूम पड़े छे। कोई टीकाकारो अहिं 'कपोत' नो अर्थ 'कपोत पक्षी', 'मार्जार' नो अर्थ प्रसिद्ध 'मार्जार' अने कुक्कुट नो अर्थ प्रसिद्ध 'कूकड़ो' कहे छे। आ माँ कयो अर्थ बराबर छे ते कही शकात न थी'..."

व्याख्याप्रज्ञप्ति की दो टीकाएं हैं—अभयदेवसूरि की और दानशेखर गणि की। उन दो में से किसी में भी प्राणिवाचक टीका नहीं की गयी

है। अपने पांडित्य के भ्रम में डालने की बेचरदास की यह अनधिकार चेष्टा है। यदि बेचरदास ने कोई नयी टीका देखी हो तो उन्हें उसका नाम लिखना चाहिए था। और, तभी उनकी उक्ति विचारणीय मानी जा सकती थी।

यह सब वस्तुतः गुजरात-विद्यापीठ की फसल है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

उसके बाद तीसरी बार यह बावेला गोपालदास पटेल ने उठाया। गुजरात विद्यापीठ की जैन साहित्य-प्रकाशन-समिति से पटेल की पुस्तक 'भगवतीसार' (सन् १९३८ ई०) प्रकाशित हुई। उसी समय उन्होंने 'प्रस्थान' (वर्ष १४, अंक १ कार्तिक संवत् १९९५ वि०) में एक लेख भी लिखा। उस समय भी जैन-जगत ने उसका डट कर विरोध किया।

उस विरोध से पटेल का हृदय-परिवर्तन हुआ या नहीं, यह तो नहीं कह सकते, पर उससे वे प्रभावित अवश्य हुए। और, अगस्त १९४१ में प्रकाशित अपनी 'महावीर-कथा' में उन्होंने उक्त प्रसंग को इस प्रकार लिखा—

"......तेणे मारे माटे राँधी ने भोजन तैयार करेलूँ छे। तेने कहे जे के मारे ते भोजन नु काम नथी; परन्तु तेणे पोताने माटे जे भोजन तैयार करेलूँ छे ते मारे माटे लई आव......" (पृष्ठ ३८८)

मुलझाने के प्रयास में भी गोपालदास ने अपना विचार एक अति छद्म रूप में प्रकट किया। उन्होंने वहाँ 'भोजन' लिखा, जब कि वह औषधि थी।

मत्स्य-मांस परक अर्थ आगम-विरोधियों की देन

मत्स्य-मांस परक अर्थ की प्राचीनता की ओर ध्यान दिलाने के निमित्त सुखलाल ने बड़े छद्म रूप में एक नाम लिया है—और वह है, पूज्यपाद

पूज्यपाद देवनंदि पर इस तरह मत रखने वाले सुखलाल को उनका आश्रय लेने की क्या आवश्यकता थी! पूज्यपाद पर यह मत केवल सुखलाल का नहीं ही है।

हीरालाल रसिकलाल कापड़िया ने भी (देवचंद लालभाई ग्रंथांक ७६) तत्त्वार्थ की भूमिका में यह प्रश्न उठाया है कि, जब तत्त्वार्थसूत्र पर स्वोपज्ञ भाष्य पहले से वर्तमान था, तो पूज्यपाद ने उससे भिन्न रूप में टीका क्यों की। इसका उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा है :—

"......it should not be forgotten that not only do many statements therein not support the Digambar doctrine but they directly go aginst their very system. So as there was no alternative, he took an independent course and attempted to interpret the original sutras probably after alternating them at times so as to suit the Digambar stand point......"[1]

(यह भूल न जाना चाहिए कि भाष्य के कितने ही स्थल दिगम्बर-सिद्धान्तों का समर्थन नहीं करते थे और कितने ही स्थलों पर उनके विरुद्ध पड़ते थे। उनके पास और कोई चारा नहीं था। अतः उन्होंने स्वतंत्र रूप से टीका करने का प्रयास किया और जहाँ दिगम्बर-दृष्टि से उसका मेल नहीं बैठता था वहाँ परिवर्तन भी किये)

तत्त्वार्थ की जो सर्वार्थसिद्धि-टीका ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुई है, उसमें उसके सम्पादक फूलचंद सिद्धान्तशास्त्री ने लम्बी-चौड़ी भूमिका लिखी है। उस भूमिका के सम्बंध में उक्त ग्रंथमाला के सम्पादक हीरालाल तथा आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय ने लिखा है :—

१—तत्त्वार्थसूत्र, खंड २, भूमिका, पृष्ठ ४८

हम यहाँ यह कहना चाहेंगे कि, याकोबी ने जैन-आगमों की प्राचीनता तर्कों से और भाषा के परीक्षण से सिद्ध किया; जब कि सुखलाल को न तो भाषा का महत्त्व समझ पड़ा, न शैली का; उन्हें एक ऐसा तर्क समझ पड़ा जो तर्क ही नहीं है। हम लिख चुके हैं कि, न केवल जैनों के बल्कि अन्य धर्मों की पुस्तकों में भी जैनों की अहिंसा का उल्लेख मिलता है और मांसाहार का निषेध न केवल जैन-आगमों में आता है बल्कि अन्य मतावलम्बियों के ग्रंथों में भी आता है कि जैन मांसाहार को घृणित समझते थे। यदि जैनों के व्यवहार में जरा भी कचाई होती तो जब बुद्ध सिंह सेनापति के घर मांसाहार करने गये, तो जैन खुले आम उसका विरोध करने की हिम्मत न करते। (देखिए विनयापिटक, हिन्दी-अनुवाद, पृष्ठ २४४ वही पृष्ठ १२, १३ की पादटिप्पणि)।

हम यहाँ इतना मात्र कहेंगे कि, सुखलाल ने इन अनर्गल तर्कों को उपस्थित करके गैर जानकार लोगों में भ्रम फैलाने का प्रयास कर कुछ अच्छा नहीं किया।

सुखलाल के मन का मांसाहार वाला पाप काफी पुराना है। वस्तुतः तथ्य यह है कि, जिस समय उन्होंने तत्वार्थसूत्र का हिन्दी-अनुवाद संवत् २००० में प्रकाशित कराया, उस समय उन्होंने पूज्यपाद के श्रुतावर्ण में मांस-प्रकरण छोड़कर केवल अन्यों की ही गिनती करायी। यह वस्तुतः भूल नहीं थी; पर सुखलाल ने उसे जान बूझ कर छोड़ा था। तत्वार्थसूत्र जैन-संस्था प्रकाशित करने वाली थी। अतः सुखलाल की यह हिम्मत नहीं पड़ी कि वहाँ मांस-प्रकरण का कुछ उल्लेख करते। जब उन्हें अपनी स्वयं की संस्था मिली तो १९४७ में उन्होंने अपने मन का गलीज उलटा।

उनके मन का यह पाप पुराना है, यह १५ जुलाई १९४७ के प्रबुद्ध-जैन में प्रकाशित एक लेख से भी व्यक्त है। कौशाम्बी जी के मतके विरुद्ध

विहार करता हुआ श्रावस्ती पहुँचा और श्रावस्ती के निकट स्थित कोष्ठक-चैत्य[1] में ठहरा।

रुखा-सूखा आहार खाने से वहाँ जमालि पित्तज्वर से बीमार पड़ गया। उसे भयंकर कष्ट था। उसने अपने श्रमणों से बुला कर कहा—"मेरे लिए शय्या लगा दो।" उसके श्रमण शय्या लगाने लगे। वेदना से पीड़ित जमालि ने फिर पूछा—"मेरे लिए संस्तारक कर चुके या कर रहे हो?" शिष्यों ने कहा—"संस्तारक कर नहीं चुका कर रहा हूँ।" यह सुनकर जमालि को विचार हुआ—"श्रमण भगवान् महावीर कहते हैं—करेमाणे कड़े[2] (जो किया जाने लगा सो किया) ऐसा सिद्धान्त है; पर यह मिथ्या है। कारण यह है कि, मैं देखता हूँ कि जब तक 'शय्या की जा रही है, वह 'की जा चुकी है' नहीं है।" ऐसा विचार करके उसने अपने शिष्यों को बुलाकर कहा—"देवानुप्रियो! श्रमण भगवान् महावीर कहते हैं—'चलेमाणे चलिए,' पर मैं कहता हूँ कि जो निर्जरित होता हो, वह निर्जरित नहीं है 'अनिर्जरित' है। कुछ ने जमालि के तर्क को ठीक समझा, पर कितने ही स्थविरों ने उसका विरोध किया। और, वे जमालि से पृथक हो ग्रामानुग्राम विहार करते भगवान् महावीर के पास चले गये।

जिन साधुओं ने विरोध किया, उन्होंने तर्क उपस्थित किया—"भगवान् महावीर का 'करेमाणे कड़े' का कथन निश्चयनय की अपेक्षा से सत्य है।

१—ठाणांगसूत्र सटीक ठा० ७, उ० ३, पत्र ४१० में तेंदुक-चैत्य लिखा है, पर उत्तराध्ययन की शान्त्याचार्य की टीका पत्र १५३-२, नेमिचन्द्र की टीका पत्र ६६-१ तथा विशेषावश्यक गाथा २३०७ की टीका में तेंदुक-उद्यान और कोष्ठक-चैत्य लिखा है।

२—मूल पाठ भगवती सूत्र सटीक शतक १, उद्देशा १, सूत्र ८, पत्र २१-२२ में इस प्रकार है—"चलमाणे चलिए १ उदीरिज्जमाणे उदीरिए २ वेइज्जमाणे वेइए ३ पहिज्जमाणे पहीणे ४, छिज्जमाणे छिन्ने ५, भिज्जमाणे भिन्ने ६, दज्झमाणे दड्ढे ७, मिज्जमाणे मए ८ निज्जरिमाणे निज्जिन्ने ९।

टीका में पत्र २४ से २७ तक इस सिद्धान्त पर विशद् रूपसे विचार किया गया है।

निश्चयनय क्रियाकाल और निष्ठाकाल को अभिन्न मानता है। इसके मत से कोई भी क्रिया अपने समय में कुछ भी करके ही निवृत्त होती है। तात्पर्य यह कि, यदि क्रियाकाल में कार्य न होगा, तो उसकी निवृत्ति के बाद वह किस कारण होगा? अतः निश्चयनय का सिद्धान्त तर्कसंगत है और इसी निश्चयात्मकनय को लक्ष्य में रख कर भगवान् का 'करेमाणे कडे' का कथन सिद्ध हुआ है। जो तार्किक दृष्टि से बिल्कुल ठीक है।" दूसरी भी अनेक दृष्टियों से स्थविरों ने जमालि को समझाने का प्रयास किया पर वह अपने हठ पर दृढ़ रहा।

कुछ काल बाद रोगयुक्त होकर कोष्ठक-चैत्य से विहार कर जमालि चम्पा में भगवान् के पास आया। और, उनके सम्मुख खड़ा होकर बोला—"हे देवानुप्रिय! आपके बहुत से शिष्य छद्मस्थ विहार कर रहे हैं; पर मैं छद्मस्थ नहीं हूँ। मैं केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन धारण करने वाला हूँ और अर्हन्-केवली रूप में विचर रहा हूँ।'

यह सुनकर भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य इंद्रभूति गौतम जमालि को सम्बोधित करके बोले—"हे जमालि! यदि तुम्हें केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन उत्पन्न हुए हैं तो मेरे दो प्रश्नों का उत्तर दो। 'लोक शाश्वत है या अशाश्वत' 'जीव शाश्वत है या अशाश्वत'?" इन प्रश्नों को सुनकर जमालि शंकित, कांक्षित और कलुपित परिणाम वाला हो गया। वह उनका उत्तर न दे सका।

फिर भगवान् बोले—"मेरे बहुत-से शिष्य छद्मस्थ है; पर वह भी मेरे समान इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। तुम जो यह कहते हो कि 'मैं सर्वज्ञ हूँ' 'जिन हूँ', ऐसा कोई कहता नहीं फिरता।

"हे जमालि! लोक शाश्वत है, कारण कि 'लोक कदापि नहीं था', कभी नहीं था। 'लोक कदापि नहीं है, ऐसा भी नहीं है।

"पर, हे जमालि! लोक अशाश्वत है। कारण कि, अवसर्पिणी होकर उत्सर्पिणी होती है। उत्सर्पिणी होकर अवसर्पिणी होती है।

"इसी प्रकार जीव शाश्वत है। कारण कि, ऐसा कदापि नहीं था कि, 'जीव कदापि न रहा हो' और, वह अशाश्वत है कारण कि, वह नैरयिक तिर्यंच आदि का-रूप धारण करता है।"

भगवान् ने जमालि को समझाने का प्रयास किया; पर जमालि ने अपना कदाग्रह न छोड़ा और वर्षों तक अपने मत का प्रचार करता विचरता रहा। उसके ५०० साधुओं में से उसके कितने ही साधु तथा प्रियदर्शना और उसकी १००० साध्वियों में कितनी ही साध्वियाँ जमालि के साथ हो गयीं।

अंत में, १५ दिनों का निराहार व्रत करके मृत्यु को प्राप्त होकर जमालि लान्तक-देवलोक (६-वाँ देवलोक) में किल्विष[१]-नामक देव हुआ।[२]

विशेषावश्यक भाष्य में इस निह्नव का काल बताते हुए लिखा है—

चोद्दस वासाणि तया जिणेण उप्पडियस्स नाणस्स।
तो बहुरयाण दिट्ठी सावत्थीए समुप्पन्ना ॥२३०७॥

सुदर्शना वापस लौटी

जमालि के जीवन-काल में ही एक समय सुदर्शना साध्वी समुदाय के साथ विचरती हुई श्रावस्ती में ढंक कुम्हार की भाण्डशाला में ठहरी थी।

१—किल्विषिक देवों के सम्बन्ध में भगवतीसूत्र सटीक शतक ९, उद्देशा ६, सूत्र ३८९ पत्र ८९७-८९८ में प्रकाश डाला गया है।

२—भगवतीसूत्र सटीक शतक ९, उद्देशा ६ सूत्र ३८६-३८७ पत्र ८८९-८९६।

भगवान् के १४-वें वर्षावास में हम उन ग्रंथों का नाम दे चुके हैं, जहाँ जमालि का नाम आता है।

ढंक भगवान् महावीर का भक्त श्रावक था। जमालि के तर्क की गलती की ओर सुदर्शना का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ढंक ने सुदर्शना की संघाटी (चादर) पर अग्निकरण फेंका। संघाटी जलने लगी तो सुदर्शना बोली—"आर्य! यह क्या किया। मेरी चादर जला दी!" ढंक ने उत्तर दिया—"संघाटी जली नहीं अभी जल रही है। आपका मत जले हुए को जला कहना है, आप जलती हुई संघाटी को 'जली' क्यों कहती हैं?"

सुदर्शना ढंक का लक्ष्य समझ गयी और अपने समुदाय के साथ भगवान् के संघ में पुनः सम्मिलित हो गयी।[1]

भगवान् ने अपना वह वर्षावास मिथिला में बिताया।

२८-वाँ वर्षावास

केशी-गौतम संवाद

मिथिला से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् हस्तिनापुर की ओर चले।

इसी बीच गौतम-स्वामी अपने शिष्यों के साथ श्रावस्ती आये और उसके निकट स्थित कोष्ठक-उद्यान में ठहरे।

उसी नगर के बाहर तिंदुक-उद्यान में पार्श्व-संतानीय साधु केशी-कुमार अपने शिष्य समुदाय के साथ ठहरे हुए थे। वह केशी कुमार कुमारावस्था में ही साधु हो गये थे। ज्ञान तथा चरित्र के पारगामी थे तथा मति, श्रुति और अवधि तीन ज्ञानों से पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले थे।

दोनों के शिष्य-समूह में यह शंका उत्पन्न हुई कि, हमारा धर्म कैसा और इनका धर्म कैसा? आचार, धर्म, प्रणिधि हमारी कैसी और इनकी कैसी? महामुनि पार्श्वनाथ ने चतुर्याम धर्म का उपदेश किया है और वर्द्धमान स्वामी पाँच शिक्षारूप धर्म का उपदेश करते हैं। एक लक्ष्य वालों में यह भेद कैसा? एक ने चेलक-धर्म का उपदेश दिया और दूसरा अचेलक-भाव का उपदेश करता है।

अपने शिष्यों की शंकाएँ जानकर दोनों आचार्यों ने परस्पर मिलने का विचार किया। विनय-धर्म जानकर गौतम मुनि अपने शिष्य-मंडल के साथ तिंदुक-वन में, जहाँ केशीकुमार ठहरे हुए थे, पधारे। गौतम मुनि

को आते हुए देखकर, केशीकुमार श्रमण ने भक्ति-बहुमान पुरस्सर उनका स्वागत किया।

उस वन में जो प्रासुक निर्दोष पलाल, कुश और तृणादि[1] थे, वे गौतम स्वामी को बैठने के लिए शीघ्र ही प्रस्तुत कर दिये गये।

उस समय वहाँ बहुत-से पाखंडी और कुतूहली लोग भी उस वन एकत्र हो गये।

केशीकुमार ने गौतम-मुनि से कहा—"हे महाभाग्य! मैं तुम पूछता हूँ।" और, गौतम स्वामी की अनुमति मिल जाने पर केशी मुनि ने पूछा—"वर्द्धमान स्वामी ने पाँच शिक्षा रूप धर्म का कथन किया और महामुनि पार्श्वनाथ ने चातुर्यामधर्म का प्रतिपादन किया है। मेधाविन्! एक कार्य में प्रवृत्त होने वालों के धर्म में विशेष भेद होने का कारण क्या है? और, धर्म के दो भेद हो जाने पर आपको संशय क्यों नहीं होता?

केशीकुमार के प्रश्न को सुनकर गौतम स्वामी ने कहा—"जीवादि तत्त्वों का विनिश्चय जिसमें किया जाता है, ऐसे धर्मतत्त्व को प्रज्ञा ही देख सकती है।

"प्रथम तीर्थंकर के मुनि ऋजुजड़[2] और चरम तीर्थंकर के मुनि

१—तृण पाँच प्रकार के कहे गये हैं :—

तृण पंचकं पुनर्भणितं जिनैः कर्माष्टग्रन्थि मथनैः।
शालिर्व्रीहिः कोद्रवो रालकोऽरण्य तृणानि च ॥१॥

—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, पत्र २

२—श्री ऋषभ तीर्थ जीवा ऋजु जड़ास्तेषां धर्मस्य अवबोधो दुर्लभो जड़त्वा
कल्पसूत्र सुबोधिका टीका सहित, पत्र ६

वक्रजड़[1] हैं; किन्तु मध्यम तीर्थंकरों के मुनि ऋजुप्राज्ञ[2] होते हैं। इस कारण से धर्म के दो भेद किये गये। प्रथम तीर्थंकर के मुनियों का कल्प दुर्विशोध्य और चरम तीर्थंकर के मुनियों का कल्प (आचार) दुरनुपालक होता है; पर मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनियों का कल्प सुविशोध्य और नुपालक है।"

यह सुनकर केशीकुमार ने कहा—"आपने इस सम्बंध में मेरी शंका मिटा दी। अब आप से एक और प्रश्न पूछता हूँ। वर्द्धमान स्वामी ने अचेलक[3]-धर्म का उपदेश दिया और महामुनि पार्श्वनाथ ने सचेलक-धर्म[4] का प्रतिपादन किया। हे गौतम! एक कार्य में प्रवृत्त हुओं में विशेषता क्या है? इसमें हेतु क्या है? हे मेधाविन्! लिंग-वेष में दो भेद हो जाने पर क्या आप के मन में विप्रत्यय (संशय) उत्पन्न नहीं होता?"

गौतम स्वामी बोले—"लोक में प्रत्यय के लिए, वर्षादिकाल में संयम की रक्षा के लिए, संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए, ज्ञानादि ग्रहण के लिए

१—वीर तीर्थ साधूनां च धर्मस्य पालनं दुष्करं वक्रजड़त्वात—वही, पत्र ६

२—अजितादि जिन तीर्थ साधूनां तु धर्मस्य अवबोधः पालनं च द्वयं अपि सुकरं ऋजु प्राज्ञत्वात—वही, पत्र ६

३—श्वेतमानोपेत वस्त्रधारित्वेन अचेलकत्वमपि—वही, पत्र ३

'अ' शब्द का एक अर्थ 'अल्प' भी होता है।(देखिये आप्टेज संस्कृत इंगलिश-डिक्शनरी, भाग १, पृष्ठ १। वहाँ उसका उदाहरण भी दिया है जैसे अनुदरा।) इसी अर्थ में 'अचेलः' में 'अ' शब्द का प्रयोग हुआ है। आचारांग की टीका में आता है 'अचेलः'—'अल्पचेलः (पत्र २२१-२) ऐसा ही अर्थ उत्तराध्ययन में भी किया है। लघुत्व जीर्णत्वादिना चेलानि वस्त्राण्यस्येत्यचम चेलकः।

(उत्तराध्ययन बृहतवृत्ति, पत्र ३५६-१)

४—अजितादिद्वाविंशति जिनतीर्थ साधूनां ऋजु प्रज्ञानां बहुमूल्य विविधवर्ण वस्त्र परिभोगानुज्ञातत्वेन सचेलकत्वमेव—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, पत्र ३

अथवा 'यह साधु है', ऐसी पहचान के लिए लोक में लिंग का प्रयोजन है। हे भगवन्! वस्तुतः दोनों ही तीर्थंकरों की प्रतिज्ञा तो यही है कि निश्चय में मोक्ष के सद्भूत साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप ही हैं।"

फिर केशीकुमार ने पूछा—"हे गौतम! तू अनेक सहस्र शत्रुओं के मध्य में खड़ा है, वे शत्रु तुझे जीतने को तेरे सम्मुख आ रहे हैं। तूने किस प्रकार उन शत्रुओं को जीता है?"

गौतम स्वामी—"एक के जीतने पर पाँच जीते गये। पाँच के जीतने पर दस जीते गये तथा दस प्रकार के शत्रुओं को जीतकर मैंने सभी प्रकार के शत्रुओं को जीत लिया है।"

केशीकुमार—"वे शत्रु कौन कहे गये हैं?"

गौतम स्वामी—"हे महामुने! वशीभूत न किया हुआ एक आत्मा शत्रुरूप है एवं कषाय और इन्द्रियाएँ भी शत्रुरूप हैं। उनको जीतकर मैं विचरता हूँ।"

केशीकुमार—"हे मुने! लोक में बहुत-से जीव पाश से बँधे हुए देखे जाते हैं। परन्तु तुम कैसे पाश से मुक्त और लघुभूत होकर विचरते देखे जाते हो?"

गौतमस्वामी—"हे मुने! मैं उन पाशों को सर्वप्रकार से छेदन कर तथा उपाय से विनष्ट कर मुक्तपाश और लघुभूत होकर विचरता हूँ।"

केशीकुमार—"वह पाश कौन है?"

गौतम स्वामी—"हे भगवन्! रागद्वेषादि[1] और तीव्र स्नेह-रूप[2]

१—'आदि' शब्द से मोहपरिग्रह लेना चाहिए—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका, पत्र २९९-१

२—'नेह' त्ति स्नेहाः पुत्रादि सम्बन्धाः—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका पत्र २९९-१

पाश बड़े भयंकर हैं। इनको यथान्याय छेदन करके मैं यथाक्रम विचरता हूँ।"

केशीकुमार—"हे गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न हुई लता उसी स्थान पर ठहरती है, जिसका फल विष के समान (परिणाम दारुण) है। आपने उस लता को किस प्रकार उत्पाटित किया ?"

गौतम स्वामी—"मैंने उस लता को सर्व प्रकार से छेदन तथा खंड-खंड करके मूल सहित उखाड़ कर फेंक दिया है। अतः मैं न्यायपूर्वक विचरता हूँ। और, विषभक्षण (विष-रूप फलों के भक्षण) से मुक्त हो गया हूँ।"

केशीकुमार—"वह लता कौन-सी है ?"

गौतम स्वामी—"हे महामुने ! संसार में तृष्णा-रूप जो लता है, वह बड़ी भयंकर है और भयंकर फल उदय कराने वाली लता है। उसको न्यायपूर्वक उच्छेदन करके मैं विचरता हूँ।"

केशीकुमार—"शरीर में स्थित घोर तथा प्रचंड अग्नि, जो प्रज्वलित हो रही है और जो शरीर को भस्म करने वाली है, उसको आपने कैसे शान्त किया ? उसको आपने कैसे बुझाया है ?"

गौतम स्वामी—"महामेघ के प्रसूत से उत्तम और पवित्र जल का ग्रहण करके मैं उन अग्नियों को सींचता रहता हूँ। अतः सिंचित की गयी अग्नियाँ मुझे नहीं जलातीं।

केशी कुमार—हे गौतम ! वे अग्नियाँ कौन-सी कही गयी हैं ?"

गौतम स्वामी—"हे मुने ! कषाय अग्नियाँ हैं। श्रुत, शील और तप-रूप जल कहा जाता है तथा श्रुत-रूप जलधारा से ताडित किये जाने पर भेदन को प्राप्त हुई वे अग्नियाँ मुझे नहीं जलातीं।"

केशी कुमार—"हे गौतम ! यह साहसिक और भीम दुष्ट घोड़ा चारों ओर भाग रहा है। उस पर चढ़े हुए आप उसके द्वारा कैसे उन्मार्ग में नहीं ले जाये गये ?"

गौतम स्वामी—"हे मुने ! भागते हुए दुष्ट अश्व को प
श्रुत-रूप रस्सी से बाँध कर रखता हूँ। इसलिए मेरा अश्व उन
नहीं जाता; किन्तु सन्मार्ग को ग्रहण करता है।"

केशी कुमार—"हे गौतम ! आप अश्व किसको कहते हैं ?"

गौतम स्वामी—"हे मुने ! मन ही साहसी और रौद्र दु
वही चारों ओर भागता है। मैं कंथक-अश्व की तरह उसको ध
के द्वारा निग्रह करता हूँ।

केशी कुमार—हे गौतम ! संसार में ऐसे बहुत-से कुमार्ग हैं,
चलने से जीव सन्मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं, परन्तु आप सन्मार्ग मे
हुए उससे भ्रष्ट क्यों नहीं होते ?"

गौतम स्वामी—"हे महामुने ! सन्मार्ग से जो जाते हैं त
उन्मार्ग में प्रस्थान कर रहे हैं, उन सबको मैं जानता हूँ। अतः मैं
से च्युत नहीं होता।

केशीकुमार—"हे गौतम ! वह सन्मार्ग और कुमार्ग कौन

गौतम स्वामी—"कुप्रवचन के मानने वाले पाखंडी लो
उन्मार्ग में प्रस्थित हैं। सन्मार्ग तो जिनभाषित है। और,
निश्चय रूप में उत्तम है।

केशीकुमार—"हे मुने ? महान् उदक के वेग में बहते हुए
को शरणागति और प्रतिष्ठारूप द्वीप आप किसको कहते हैं।

गौतम स्वामी—"एक महाद्वीप है। वह बड़े विस्तार
जल के महान् वेग की वहाँ पर गति नहीं है।

केशीकुमार—"हे गौतम ? वह महाद्वीप कौन-सा कह

गौतम स्वामी—"जरा-मरण के वेग से डूबते हुए प्राणि
—द्वीप प्रतिष्ठा रूप है और उसमें जाना उत्तम शरणरूप है।'

केशीकुमार—"हे गौतम ? महाप्रवाह वाले समुद्र में

विपरीत रूप से चारों ओर भाग रही है, जिसमें आप आरूढ़ हो रहे हो तो फिर आप कैसे पार जा सकेंगे ?"

गौतम स्वामी—"जो नौका छिद्रों वाली होती है, वह पार ले जाने वाली नहीं होती; किन्तु जो नौका छिद्रों से रहित है वह पार ले जाने में समर्थ होती है।"

केशीकुमार—"वह नौका कौन-सी है ?"

गौतम स्वामी—"तीर्थंकर देव ने इस शरीर को नौका के समान कहा है। जीव नाविक है। यह संसार ही समुद्र है, जिसको महर्षि लोग पार कर जाते हैं।"

केशीकुमार—"हे गौतम ? बहुत से प्राणी घोर अंधकार में स्थित हैं। सो इन प्राणियों को लोक में कौन उद्योत करता है ?"

गौतम स्वामी—"हे भगवान् ? सर्वलोक में प्रकाश करने वाला उदय हुआ निर्मल सूर्य सर्व प्राणियों को प्रकाश करने वाला है।"

केशीकुमार—"वह सूर्य कौन सा है !"

गौतम स्वामी—क्षीण हो गया है संसार-जिनका—ऐसे सर्वज्ञ जिन-रूप भास्कर का उदय हुआ है। वही सर्व लोकों में प्राणियों का उद्योत करने वाले हैं।',

केशीकुमार—"हे मुने ! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिए क्षेम और शिवरूप तथा बाधाओं से रहित आप कौन-स्थान मानते हैं ?"

गौतम स्वामी—"लोक के अग्रभाग में एक ध्रुवस्थान है, जहाँ पर जरा, मृत्यु, व्याधि और वेदनाएँ नहीं है। परन्तु उस पर आरोहण करना नितांत कठिन है।"

केशीकुमार—"वह कौन-सा स्थान है ?"

गौतम स्वामी—"हे मुने ! जिस स्थान को महर्षि लोग प्राप्त करने

है, वह स्थान निर्वाण, अव्याबाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनाबाध इन नामों से विख्यात है।

"हे मुने! वह स्थान शाश्वत वासरूप है, लोकाग्र के अग्रभाग में स्थित है, परन्तु दुरारोह है तथा जिसको प्राप्त करके भव-परम्परा का अंत करने वाले मुनिजन सोच नहीं करते।"

केशीकुमार—"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा साधु है। आपने मेरे संशयों को नष्ट कर दिया। अतः हे संशयातीत! हे सर्वसूत्र के पारगामी! आपको नमस्कार है।

संशयों के दूर हो जाने पर केशीकुमार ने गौतम-स्वामी की वन्दना करके पंच महाव्रत रूप धर्म को भाव से ग्रहण किया।

उन दोनों मुनियों के संवाद को सुनकर पूरी परिषद् सन्मार्ग में प्रवृत्त हुई।[1]

शिव-राजर्षि की दीक्षा

भगवान् की हस्तिनापुर की इसी यात्रा में शिवराजर्षि को प्रतिबोध हुआ और उसने दीक्षा ग्रहण की। उसका सविस्तार वर्णन हमने राजाओं वाले प्रकरण में दिया है।

पोट्टिल की दीक्षा

भगवान् की इसी यात्रा में पोट्टिल ने भी साधु-व्रत ग्रहण किया। उसका जन्म हस्तिनापुर में हुआ था। उसकी माता का नाम भद्रा था। इसे ३२ पत्नियाँ थीं। वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर अंत में एक मास का अनशन कर उसने अनुत्तर-विमान में देवगति प्राप्त की।[2]

१—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, अध्ययन २३ पत्र २८५-१–३०२-१

२—अणुत्तरोववाइय (अंतगडअणुत्तरोववाइय-मोदी-सम्पादित) पृष्ठ ७०-८१

भगवान् मोका-नगरी में

वहाँ से विहार कर भगवान् मोका-नामक नगरी में पधारे। वहाँ नन्दन नामक चैत्य वर्ष था। भगवान् उसी चैत्य में ठहरे। वहाँ भगवान् के दूसरे शिष्य अग्निभूति ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! असुरराज चमर कितनी ऋद्धि, कान्ति, बल, कीर्ति, सुख, प्रभाव तथा विकुर्वण-शक्ति वाला है?"

इस पर भगवान् ने उत्तर दिया—"हे गौतम! वह ३४ लाख भवन वासी, ६४ हजार सामानिक देव, ३३ त्रायस्त्रिंशक देव, ४ लोकपाल, ५ पटरानी, ७ सेना तथा २लाख ५६ हजार आत्मरक्षकों और अन्य नगर वासी देवों के ऊपर सत्ताधीश के रूप में भोग भोगता हुआ विचरता है। वैक्रिय शरीर करने के लिए वह विशेष प्रयत्न करता है।

वह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप तो क्या पर इस तिरछे लोक में असंख्य द्वीपों और समुद्रों तक स्थल असुरकुमार देव और देवियों से भर जावे उतना रूप विकुर्वित कर सकता है।"

फिर, वायुभूति-नामक अनगार ने भगवान् से असुरराज बलि के सम्बंध में पूछा। भगवान् ने उन्हें बताया कि बलि को भवनवासी ३० लाख, सामानिक ६० हजार हैं और शेष सब चमर के सदृश ही हैं।

अग्निभूति ने नागराज के सम्बंध में पूछा तो भगवान् ने बताया कि, उसे भवनवासी ४८ लाख, सामानिक ६ हजार, त्रायस्त्रिंशक ३३, लोकपाल ४, पटरानी ६, आत्मरक्षक २४ हजार हैं और शेष पूर्ववत् ही है।

इसी प्रकार स्तनितकुमार, व्यन्तरदेव तथा ज्योतिष्कों के सम्बंध में किये गये प्रश्नों के भी उत्तर भगवान् ने दिये और बताया कि व्यन्तरों तथा ज्योतिष्कों के त्रायस्त्रिंश तथा लोकपाल नहीं होते। उन्हें ४ हजार

सामानिक तथा १६ हजार आत्मरक्षक होते हैं। हर एक को चार-चार पटरानियाँ होती हैं।[1]

भगवान् वहाँ से विहार करके वाणिज्यग्राम आये और उन्होंने अपना वर्षावास वहीं बिताया।

---

1. भगवती सूत्र सटीक, शतक ३ उद्देशा-१, पत्र २७०–२८३

२६-वाँ वर्षावास

गौतम-स्वामी के प्रश्नों का उत्तर

वर्षाकाल समाप्त होने के बाद, भगवान् ने विदेह-भूमि से राजगृह की ओर विहार किया और राजगृह में गुणशिलक-चैत्य में ठहरे।

यहाँ एक दिन गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! आजीविकों[1] के स्थविरों ने भगवान् से ऐसा प्रश्न किया कि श्रमण के उपाश्रय में सामायिक व्रत अंगीकार करके बैठे हुए श्रावक के भंडोपकरण कोई पुरुष ले जावे फिर सामायिक पूर्ण होने पर पीछे उस भंडोपकरण को वह खोजे तो क्या वह अपने भंडोपकरण को खोजता है, या दूसरे के भंडोपकरण को खोजता है?

भगवान्—"हे गौतम! वह सामायिक-व्रत वाला अपना भंडोपकरण खोजता है; अन्य का भंडोपकरण नहीं खोजता।

गौतम स्वामी—"शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, (रागादि विरतयः) प्रत्याख्यान और पौषधोपवास में श्रावक का भांड क्या अभांड नहीं होता?

भगवान्—"हे गौतम! वह अभांड हो जाता है।"

---

१ औपपातिकसूत्र सटीक, सूत्र ४१, पत्र १६६ में निम्नलिखित ७ प्रकार के आजीवकों का उल्लेख है—

१ दुघरंतरिया २ तिघरंतरिया, ३ सत्तघरंतरिया, ४ उप्पलबेंटिया, ५ घर समुदाणिया ६—विज्जु अंतरिया ७ उट्टिया समणा

गौतम स्वामी —"हे भगवन् ! फिर ऐसा किस कारण कहते हैं कि वह अपना भांड खोजता है ! दूसरे का भांड नहीं खोजता ?"

भगवान्—"हे गौतम ! सामायिक करने वाले उस श्रावक के मन में यह परिणाम होता है कि—'यह मेरा हिरण्य नहीं है; और मेरा स्वर्ण नहीं; मेरा कांसा नहीं है; मेरा वस्त्र नहीं है; और मेरा विपुल धन, कनक-रत्न, मणि, मोती, शंख, शील, प्रवाल, विद्रुम, स्फटिक और प्रधान द्रव्य मेरे नहीं है, फिर समायिक व्रत पूर्ण होने के बाद ममत्व भाव से अपरिज्ञात बनता है। इसलिए, अहो गौतम ! ऐसा कहा गया है कि, स्वकीय भंड की ही वह अनुगवेषणा करता है। परन्तु, परकीय भंड की अनुगवेशणा नहीं करता।

गौतम—"हे भगवन् ! उपाश्रय में सामायिकव्रत से बैठा हुआ श्रमणोपासक की स्त्री से कोई भोग भोगे तो क्या वह उसकी स्त्री से भोग भोगता है या अ-स्त्री से ?

भगवान्—"हे गौतम ! वह उसकी स्त्री से भोग करता है।

गौतम—"हे भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास के समय स्त्री अ-स्त्री हो जाती है ?

भगवान्—"हाँ ठीक है।"

गौतम—"हे भगवान् ! तो यह किस प्रकार कहते हैं कि, वह उसकी पत्नी का सेवन करता है और अ-स्त्री का सेवन नहीं करता ?

भगवान्—"शीलव्रत आदि के समय श्रावक के मन में यह विचार होता है कि यह मेरी माता नहीं है, यह मेरा पिता नहीं है, भाई नहीं है, बहन नहीं है, स्त्री नहीं है, पुत्र नहीं है, पुत्री नहीं है और पुत्रवधु नहीं है। परन्तु, उनका प्रेमबन्धन टूटा नहीं रहता। इस कारण वह उसकी स्त्री का सेवन करता है।"

गौतम—"हे भगवन् ! जिस श्रमणोपासक को पहिले स्थूल प्राणाति-

पात का अप्रत्याख्यान नहीं होता है फिर तो बाद में प्रत्याख्यान करते हुए वह क्या करता है ?

भगवान्—"हे गौतम ! अतीत काल में किये प्राणातिपात को प्रतिक्रमता (निन्दा करता) है, प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) काल को संवरता (रोध करता) है और अनागत काल का प्रत्याख्यान करता है।

गौतम—हे भगवान् ! अतीत काल के प्राणातिपात को प्रतिक्रमता हुआ, वह श्रावक क्या १ त्रिविध-त्रिविध प्रतिक्रमता है २ त्रिविध-द्विविध, ३ त्रिविध-एकविध, ४ द्विविध-त्रिविध ५ द्विविध-द्विविध, ६ द्विविध-एकविध ७ एकविध-त्रिविध ८ एकविध-द्विविध अथवा ९ एकविध-एकविध प्रतिक्रमता है ?

भगवान्—"हे गौतम ! १ त्रिविध-त्रिविध प्रतिक्रमता है, २ द्विविध-द्विविध प्रतिक्रमता है इत्यादि पूर्व कहे अनुसार यावत् एकविध-एकविध प्रतिक्रमता है। १–त्रिविध-त्रिविध प्रतिक्रमते हुए मन, वचन और काया से करता नहीं, कराता नहीं, और करने वाला का अनुमोदन नहीं करता।

२—"द्विविध-त्रिविध प्रतिक्रमता हुआ मन और वचन से करता नहीं, कराता नहीं और करने वाले का अनुमोदन नहीं करता।

३—"अथवा मन और काया से करता नहीं, कराता नहीं और करने वाले का अनुमोदन नहीं करता।

४—"अथवा वचन और काया से करता नहीं कराता नहीं, और करने वाले का अनुमोदन नहीं करता।

५—"त्रिविध-एकविध प्रतिक्रमता हुआ मन से करता नहीं, कराता नहीं और करने वाले का अनुमोदन नहीं करता।

६—"अथवा वचन से करता नहीं, कराता नहीं और करने वाले का अनुमोदन नहीं करता।

८—"द्विविध त्रिविध प्रतिक्रमते हुए मन वचन और काया से करता नहीं और कराता नहीं।

९—"अथवा मन-वचन और काया से करता नहीं और करने वाले का अनुमोदन नहीं करता।

१०—"मन-वचन और काया से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

११—"द्विविध-द्विविध प्रतिक्रमता हुआ मन और वचन से करता नहीं और कराता नहीं।

१२—"अथवा मन और काया से करता नहीं कराता नहीं।

१३—"अथवा वचन और काया से करता नहीं और कराता नहीं।

१४—"अथवा मन और वचन से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

१५—"अथवा मन और काया से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

१६—"अथवा वचन और काया से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

१७—"अथवा मन और वचन से कराता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

१८—"अथवा मन और काया से कराता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

१९—"अथवा वचन और काया से कराता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

२०—"द्विविध-एकविध प्रतिक्रमता मन से करता नहीं और कराता नहीं।

—"अथवा वचन से करता नहीं और कराता नहीं।

—"अथवा काय से करता नहीं और कराता नहीं।

२३—"अथवा मन से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

२४—"अथवा वचन से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

२५—"अथवा काया से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

२६—"अथवा मन से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

२७—"अथवा वचन से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

२८—"अथवा काया से करता नहीं और करने वाले को अनुमति नहीं देता।

२६—"एकविध-त्रिविध प्रतिक्रमता हुआ मन, वचन काया से करता नहीं।

३०—"अथवा मन-वचन-काया से कराता नहीं।

३१—"अथवा मन, वचन और काया से करने वाले को अनुमति नहीं देता।

४०—"अथवा वचन और काया से करने वालेको अनुमति नहीं देता।

४१—"एकविध-एकविध प्रतिक्रमता मन से करता नहीं।

४२—"अथवा वचन से करता नहीं।

४३—"अथवा काया से करता नहीं।

४४—"अथवा मन से कराता नहीं।

४५—"अथवा वचन से कराता नहीं।

४६—"अथवा काया से कराता नहीं।

४७—"अथवा मन से करने वाले को अनुमति नहीं देता।

४८—"अथवा वचन से करने वाले को अनुमति नहीं देता।

४९—"अथवा काया से करने वाले को अनुनति नहीं देता।

इसी प्रकार के ४९ भाँगे संवर करने वाले के भी हैं। इसी प्रकार के ४९ भाँगे अनागत काल के प्रत्याख्यान के भी हैं। अतः कुल १४७ भाँगे हुए।

"इसी प्रकार स्थूलमृषावाद, स्थूलअदत्तादान, स्थूल मैथुन[१], स्थूल परिग्रह सबके १४७-१४७ भाँगे समझ लेना चाहिए।

"इस अनुसार जो व्रत पालते हैं, वे ही श्रावक कहे जाते हैं। जैसे श्रमणोपासक के लक्षण कहे, वैसे ही लक्षण वाले आजीवक पंथ के श्रमणोपासक नहीं होते।

"आजीवकों के सिद्धान्तों का यह अर्थ है—"हर एक जीव अक्षीणपरिभोगी—सचित्ताहारी हैं। इस कारण उनको हन कर (तलवार आदि से), छेद कर (शूल आदि से), भेद कर (पंख आदि काट कर), लोप करके (चमड़ा उतारवा कर) और विलोप करके और विनाश करके खाते हैं। पर आजीवक मत में भी—१ ताल, २ ताल प्रलंब, ३ उद्विध, ४ संविध, ५ अवविध, ६ उदय, ७ नामोदय, ८ नर्मोदय, ९ अनुपालक १० शंख-

---

१ भाँगों का उल्लेख धर्मसंग्रह भाग १ (गुजराती-अनुवाद सहित) में पृष्ठ १५४ से १७० तक है। भगवती के भाँगों का इसमें पृष्ठ १६० पर उल्लेख है।

पालक, ११ अयंपुल, १२ कातर ये बारह आजीविकों के उपासक हैं। उनका देव अर्हत् गोशालक है। माता-पिता की सेवा करने वाले ये पाँच प्रकार का फल नहीं खाते—१ उदुम्बर (गूलर), २ वट, ३ बेर, ४ अंजीर, ५ पीपल का फल।

"वे प्याज, लहसुन, और कंदमूल के त्यागी हैं। वे अनिर्लांछित (खस्सी न किया हुआ), जिसकी नाक न विंधी हो, ऐसे बैल और त्रस प्राणि की हिंसा-विवर्जित व्यापार से आजीविका चलाते हैं।

"गोशालक के ये श्रावक जब इस प्रकार के धर्म के अभिलाषी हैं तब जो श्रमणोपासक हैं उनके सम्बंध में क्या कहें ?

"निम्नलिखित १५ कर्मादान न वे करते हैं, न कराते हैं और न करने वाले को अनुमति देते हैं:—

१—"इंगालकर्म—कोयला बना कर बेचना, ईंट बना कर बेचना, भाँडे-खिलौने पका करके बेचना, लोहार का काम, सोनार का काम, चाँगड़ी बनाने का काम, कलाल का व्यवसाय, भड़भूँजे का काम, हलवाई का काम, धातु गलाने का काम इत्यादि व्यापार जो अग्नि द्वारा होते हैं, उनको इङ्गालकर्म कहते हैं।

२—"वनकर्म—काटा हुआ तथा बिना काटा हुआ वन बेचना, बगीचे का फल-पत्र बेचना, फल-फूल-कन्दमूल-तृण-काष्ट-लकड़ी-वंशादि बेचना, हरी वनस्पति बेचना।

३—"साड़ीकर्म—गाड़ी, बहल, सवारी का रथ, नाव, जहाज, बनाना और बेचना तथा हल, दंताल, चरखा, घानी के अंग, चक्की, ऊखल, मूसल आदि बनाना साड़ी अथवा शकटकर्म है।

४—"भाड़ीकर्म—गाड़ी, बैल, ऊँट, भैंस, गधा, खच्चर, घोड़ा, नाव, रथ आदि से दूसरों का बोझ ढोना और भाड़े से आजीविका चलाना।

५—"फोड़ीकर्म—आजीविका के लिए कूप, बावड़ी, तालाब खोद-

वाए, हल चलावे, पत्थर तोड़ाए, खान खोदाये इत्यादि स्फोटिक कर्म हैं।

(ये ५ कर्म हैं। अब ५ वाणिज्य का उल्लेख करते हैं)

६—"दंतवाणिज्य—हाथी-दाँत तथा अन्य त्रस जीवों के शरीर के अवयव का व्यापार करना दंतवाणिज्य है।

७—"लक्खवाणिज्य—धव, नील, सज्जीखार आदि क्षार, मैनसिल, सोहागा तथा लाख आदि का व्यापार करना लक्खवाणिज्य है।

८—"रसवाणिज्य—मद्य, मांस, मक्खन, चर्बी, मज्जा, दूध, दही, घी, तेल आदि का व्यापार रसवाणिज्य है।

९—"केशवाणिज्य—यहाँ केश शब्द से केश वाले जीव समझना चाहिए। दास-दासी, गाय, घोड़ा, ऊँट, बकरा आदि का व्यापार केश-वाणिज्य है।

१०—"विषवाणिज्य—सभी प्रकार के विष तथा हिंसा के साधन-रूप शस्त्रास्त्र का व्यापार विषवाणिज्य है।

(अब ५ सामान्य कार्य कहते हैं)

(११) "यन्त्रपीडन-कर्म—तिल, सरसों इक्षु आदि पेर कर बेचना यन्त्रपीडन-कर्म है।

(१२) "निर्लांछन-कर्म—पशुओं को खसी करना, उन्हें दागना, तथा अन्य निर्दयपने के काम निर्लांछन-कर्म है।

(१३) "दावाग्नि-कर्म—जंगल ग्राम आदि में आग लगाना।

(१४) "शोषण-कर्म—तालाब, ह्रद, आदि से पानी निकाल कर उनको सुखाना।

(१५) "असती-पोषण—कुतूहल के लिए कुत्ते, बिल्ली, हिंसक

जीवों को पाले। दुष्ट भार्या तथा दुराचारी पुत्र का पोषण करना आदि असती पोषण है।[1]

"ये श्रमणोपासक शुक्ल—पवित्र–और पवित्रता-प्रधान होकर मृत्यु के समय काल करके देवलोक में देवता रूप में उत्पन्न होते हैं।"

गौतम स्वामी—"हे भगवन्! कितने प्रकार के देवलोक कहे गये हैं?

भगवान्—"हे गौतम ४ प्रकार के देवलोक कहे गये हैं—भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक।"[2]

इसी वर्ष राजगृह के विपुल पर्वत पर बहुत से अनगारों ने अनशन किया।

भगवान् ने अपना वर्षावास राजगृह में ही बिताया।

—:※:—
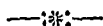
१—'कम्मादाणाइं' ति' ति कर्म्माणि–ज्ञानावरणादीन्यादीयन्ते यैस्तानि कर्मादानानि, अथवा कर्माणि च तान्यादानानि च कर्मादानानि—कर्महेतव इति विग्रहः—भगवतीसूत्र सटीक पत्र ६८२।१५ कर्मादानों का। उल्लेख भगवतीसूत्र सटीक पत्र ६८२–६८३। उवासगदसाओ (गोरे-सम्पादित) पृष्ठ ८, धर्मसंग्रह गुजराती-अनुवाद सहित, भाग १, पृष्ठ २९६–३०४, आत्मप्रबोध सटीक पत्र ८८–१, ८८–२, श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र (गुजराती अनुवाद सहित धर्मविजय गणि-सम्पादित) पृष्ठ २३९–२४२ आदि स्थलों पर आता है।

२—भगवती सटीक श० ८, उ० ५, पत्र ६७७–६८३

३०-वाँ वर्षावास

शाल-महाशाल की दीक्षा

राजगृह में वर्षावास बिताने के बाद भगवान् ने पृष्ठचम्पा की ओर विहार किया। यहाँ शाल-नामक राजा राज्य करता था। भगवान् का उपदेश सुनकर शाल और उसके भाई महाशाल ने दीक्षा ग्रहण कर ली। इनका वर्णन हमने राजाओं के प्रकरण में विस्तार से किया है।

पृष्ठचम्पा से भगवान् चम्पा गये और पूर्णभद्र-चैत्य में ठहरे।

कामदेव-प्रसंग

इस वाणिज्यग्राम में सोमिल-नामक ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा ही धनाढ्य और समर्थ था तथा ऋग्वेदादि ब्राह्मण-ग्रंथों में कुशल था। वह अपने कुटुम्ब का मालिक था। उसे ५०० शिष्य थे।

भगवान् महावीर के आगमन की बात सुनकर सोमिल का विचार भगवान् के निकट जा कर कुछ प्रश्न पूछने का हुआ। उसने सोचा—"यदि वह हमारे प्रश्नों का उत्तर दे सके तो मैं उनकी वंदना करके उनकी पर्युपासना करूँगा और नहीं तो मैं उन्हें निरुत्तर करके लौटूँगा।"

ऐसा विचार करके स्नान आदि करके वह १०० शिष्यों को साथ लेकर वाणिज्यग्राम के मध्य से निकल कर भगवान् के निकट गया।

भगवान् से थोड़ी दूर पर खड़े होकर उसने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! आपके सिद्धान्त में यात्रा, यापनीय, अव्याबाध, और प्रासुक विहार है?"

भगवान्—"हे सोमिल! मेरे यहाँ यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार भी है।"

सोमिल—"हे भगवान्! आपकी यात्रा क्या है?"

भगवान्—"हे सोमिल! तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यकादि योगोंमें जो हमारी प्रवृत्ति है, वह हमारी यात्रा है।"

सोमिल—"हे भगवन्! आपका यापनीय क्या है?"

भगवान्—"हे सोमिल! यापनीय दो प्रकारके हैं—१ इन्द्रिय यापनीय और २ नोइन्द्रिय यापनीय।"

सोमिल—"हे भगवन्! इन्द्रिय यापनीय क्या है?"

भगवन्—"हे सोमिल! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय—ये पाँचों उपघात रहित मेरे वशमें वर्तन करती हैं। यह मेरा इन्द्रियापन है।"

सोमिल—"हे भगवन्! नोइन्द्रिय-यापनीय क्या है?"

भगवन्—"हे सोमिल! मेरा क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार

इस वाणिज्यग्राम में सोमिल-नामक ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा ही धनाढ्य और समर्थ था तथा ऋग्वेदादि ब्राह्मण-ग्रंथों में कुशल था। वह अपने कुटुम्ब का मालिक था। उसे ५०० शिष्य थे।

भगवान् महावीर के आगमन की बात सुनकर सोमिल का विचार भगवान् के निकट जा कर कुछ प्रश्न पूछने का हुआ। उसने सोचा—"यदि वह हमारे प्रश्नों का उत्तर दे सके तो मैं उनकी वंदना करके उनकी पर्युपासना करूँगा और नहीं तो मैं उन्हें निरुत्तर करके लौटूँगा।"

ऐसा विचार करके स्नान आदि करके वह १०० शिष्यों को साथ लेकर वाणिज्यग्राम के मध्य से निकल कर भगवान् के निकट गया।

भगवान् से थोड़ी दूर पर खड़े होकर उसने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! आपके सिद्धान्त में यात्रा, यापनीय, अव्याबाध, और प्रासुक विहार है?"

भगवान्—"हे सोमिल! मेरे यहाँ यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार भी है।"

सोमिल—"हे भगवान्! आपकी यात्रा क्या है?"

भगवान्—"हे सोमिल! तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यकादि योगोंमें जो हमारी प्रवृत्ति है, वह हमारी यात्रा है।"

सोमिल—"हे भगवन्! आपका यापनीय क्या है?"

भगवान्—"हे सोमिल! यापनीय दो प्रकारके हैं—१ इन्द्रिय यापनीय और २ नोइन्द्रिय यापनीय।"

सोमिल—"हे भगवन्! इन्द्रिय यापनीय क्या है?"

भगवन्—"हे सोमिल! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय—ये पाँचों उपघात रहित मेरे वशमें वर्तन करती हैं। यह मेरा इन्द्रियापन है।"

सोमिल—"हे भगवन्! नोइन्द्रिय-यापनीय क्या है?"

भगवन्—"हे सोमिल! मेरा क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार

कषाय व्युच्छिन्न हो गये हैं और उदय में नहीं आते हैं। यह नोइन्द्रिय-यापनीय है।"

सोमिल—"हे भगवन्! आपका अव्याबाध क्या है?"

भगवान—"हे सोमिल! वात, पित्त, कफ और सन्निपात जन्य अनेक प्रकार के शरीर सम्बन्धी दोष हमारे उपशान्त हो गये हैं और उदय में नहीं आते। यह अव्याबाध है।"

सोमिल—"हे भगवान्! प्रासुक विहार क्या है?"

भगवान—"हे सोमिल! आराम, उद्यान, देवकुल, सभा, प्याऊ, स्त्री, पशु और नपुंसक-रहित वस्तियों में निर्दोष और एषणीय पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक प्राप्त करके मैं विहरता हूं। यह प्रासुक विहार है।"

सोमिल—"सरिसव आपको भक्ष्य है या अभक्ष्य?"

भगवान्—"सरिसव हमारे लिए भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी है।

सोमिल—"हे भगवन्! यह आप किस कारण कहते हैं कि, सरिसव भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है?"

भगवान्—"सोमिल! ब्राह्मण नय—शास्त्र—में सरिसव दो प्रकार का कहा गया है। एक तो मित्र-सरिसव (समानवयस्क) और दूसरा धान्य-सरिसव।

"मित्र-सरिसव तीन प्रकार के होते हैं—१सहजात (साथ में जन्मा हुआ), २ सहवर्द्धित (साथ में बड़ा हुआ) और ३ सहपांशुक्रीडित (साथ में धूल में खेला हुआ)। ये तीन प्रकार के सरिसव श्रमण-निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं।

"जो धान्य-सरिसव है वह दो प्रकार का कहा गया है—१ शस्त्र-परिणत और २ अशस्त्र-परिणत।

"उनमें अशस्त्र-परिणत श्रमणों को अभक्ष्य है।

"जो शस्त्र-परिणत है वह भी दो प्रकार का है—१ एपणीय, २ अनेपणीय! इनमें जो अनेपणीय है, वह निर्गन्थों को अभक्ष्य है।

"एपणीय-सरिसव दो प्रकार का कहा गया है—१ याचित और २ अयाचित। जो अयाचित सरिसव है, वह निर्गन्थों को अभक्ष्य है।

"जो याचित सरिसव है वह दो प्रकार है—१ लब्ध और २ अलब्ध। इनमें जो अलब्ध (न मिला हुआ) है, वह निर्गन्थों को अभक्ष्य है। जो लब्ध (मिला हुआ हो) है वह श्रमण-निर्गन्थों का भक्ष्य है।

इस कारण हे सोमिल सरिसव हमारे लिए भक्ष्य भी और अभक्ष्य भी।"

सोमिल—"हे भगवान्! मास[1] भक्ष्य है या अभक्ष्य है?

भगवान्—"हे सोमिल? मास हमारे लिए भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

सोमिल—"हे भगवान्! आपने भक्ष्य और अभक्ष्य दोनों क्यों कहा?"

भगवान्—"हे सोमिल? तुम्हारे ब्राह्मण-ग्रन्थों में मास दो प्रकार के हैं—१ द्रव्यमास, २ कालमास।

"इनमें जो कालमास श्रावण से लेकर आपाढ़ तक १२ मास—१ श्रावण, २ भाद्र, ३ आश्विन, ४ कार्तिक, ५ मार्गशीर्ष, ६ पोष, ७ माघ, ८ फाल्गुन, ९ चैत्र, १० वैशाख, ११ ज्येष्ठ, १२ आपाढ़—ये श्रावण-निर्गन्थों को अभक्ष्य हैं।

१—महावीर का (प्रथम संस्करण) पृष्ठ ३६६ में गोपालदास पीताभाई पटेल ने 'मास' का एक अर्थ मांस किया हैं। ऐसा अर्थ मूल पाठ में कहीं नहीं लगता।

उनकी ही नकल करके बेसमझे और बिना मूल पाठ देखे रतिलाल मफाभाई शाह ने 'भगवान् महावीर ने मांसाहार' पृष्ठ ३३–३४ में तद्रूप ही लिख डाला। पटेल की महावीर-कथा १९४१ में निकली। उनका भगवतीसार १९३८ में छप गया था। उसके पृष्ठ २४४ पर उन्होंने ठीक अर्थ किया है। अगर उन्होंने स्वयं अपनी पुस्तक देखी होती तो ऐसी गलती न करते।

"उनमें जो द्रव्यमास है वह भी दो प्रकार का है—१ अर्थमास और धान्य मास।

"अर्थमास दो प्रकार के—१ सुवर्णमास २ रौप्यमास। ये श्रमण-निर्ग्रंथों को अभक्ष्य हैं।

"जो धान्यमास है, वह दो प्रकार का—१ शस्त्रपरिणत और अशस्त्र-परिणत। आगे सरिसव के समान पूरा अर्थ ले लेना चाहिए।"

सोमिल—"कुलत्था भक्ष्य है या अभक्ष्य ?"

भगवान्—"सोमिल ? कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी ?"

सोमिल—"वह भक्ष्य और अभक्ष्य दोनों कैसे हैं ?"

भगवान्—"हे सोमिल ! ब्राह्मण-शास्त्रों में कुलत्था दो प्रकार का है—स्त्री-कुलत्था (कुलीन स्त्री) और धान्य-कुलत्था। स्त्री-कुलत्था तीन प्रकार की हैं—१ कुलकन्यका, २ कुलवधु और ३ कुलमाता। ये तीनों श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। और, जो धान्य-कुलत्थ है, उसके सम्बन्ध में सरिसव के समान जानना चाहिए।"

सोमिल—"आप एक हैं या दो हैं ? अक्षय हैं, अव्यय हैं, अवस्थित हैं कि अनेक भूत, वर्तमान और भावी परिणाम के योग्य हैं ?"

भगवान्—"मैं एक भी हूँ और दो भी हूँ। अक्षय-अव्यय-अवस्थित हूँ औरभूत-वर्तमान-भविष्य रूपधारी भी हूँ।"

सोमिल—"यह आप क्यों कहते हैं ?"

भगवान्—"हे सोमिल ! द्रव्यरूप में मैं एक हूँ। पर ज्ञानरूप और दर्शनरूप में दो भी हूँ।

"प्रदेश (आत्म-प्रदेश) रूप से अक्षय हूँ, अव्यय हूँ और अवस्थित हूँ। पर, उपयोग की दृष्टि से भूत-वर्तमान और भावी परिणाम के योग्य हूँ।"

प्रतिबोध पाकर सोमिल ने भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और बोला—"अनेक राजेश्वरों आदि ने जिस प्रकार साधु-धर्म

ग्रहण किया है, उस रूप में मैं साधु-धर्म ग्रहण कर सकने में असमर्थ हूँ। पर, श्रावकधर्म ग्रहण करना चाहता हूँ।"

और, श्रावक-धर्म स्वीकार करके वह अपने घर लौटा।

उसके चले जाने पर गौतम स्वामी ने पूछा—"क्या यह सोमिल ब्राह्मण देवानुप्रिय के पास अनगारपना स्वीकार करने में समर्थ है?"

इस प्रश्न पर भगवान् ने शंख श्रावक के समान वक्तव्यता दे देते हुए कहा कि अंत में सोमिल सर्व दुःखों का अन्त करके मोक्ष पायेगा।[1]

भगवान् ने अपना वर्षावास वाणिज्यग्राम में बिताया।

—:*:—

---

[1] भगवतीसूत्र सटीक, शतक १८१, उद्देशा १०, पत्र १३९९–१४०१

२१-वाँ वर्षावास

अम्बड परिव्राजक

चातुर्मास्य समाप्त होने के बाद भगवान् ने विहार किया और काम्पिल्यपुर नगर के बाहर सहस्राम्रवन में ठहरे।

काम्पिल्यपुर में अंबड-नामक परिव्राजक रहता था। उसे ७०० शिष्य थे। परिव्राजक का बाह्य वेश और आचार रखते हुए भी, वह जैन-श्रावकों के पालने योग्य व्रत-नियम पालता था।

भगवान् के काम्पिल्यपुर पहुँचने पर गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"हे भगवान्! बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, ज्ञापित करते हैं और प्ररूपित करते हैं कि, यह अम्बड परिव्राजक काम्पिल्यपुर-नगर में सौ घरों में आहार करता है एवं सौ घरों में निवास करता है। सो हे भंते! यह बात कैसे है?"

गौतम स्वामी का प्रश्न सुनकर भगवान् ने कहा—"हे गौतम! बहुत से लोग जो एक दूसरे से इस प्रकार कहते यावत् प्ररूपते हैं कि, यह अम्बड परिव्राजक काम्पिल्यपुर नगर में सौ घरों में भिक्षा लेता है और सौ घरों में निवास करता है सो यह बात बिलकुल ठीक है। गौतम! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ यावत् इसी प्रकार प्ररूपित करता हूँ कि, यह अम्बड परिव्राजक एक साथ सौ घरों में आहार लेता है और सौ घरों में निवास करता है।"

गौतम स्वामी—"यह आप किस आशय से कहते हैं कि अम्बड परिव्राजक सौ घरों में आहार लेता है और सौ घरों में निवास करता है?"

२१-वाँ वर्षावास

अम्बड परिव्राजक

चातुर्मास्य समाप्त होने के बाद भगवान् ने विहार किया और काम्पिल्यपुर नगर के बाहर सहस्राम्रवन में ठहरे।

काम्पिल्यपुर में अंबड-नामक परिव्राजक रहता था। उसे ७०० शिष्य थे। परिव्राजक का बाह्य वेश और आचार रखते हुए भी, वह जैन-श्रावकों के पालने योग्य व्रत-नियम पालता था।

भगवान् के काम्पिल्यपुर पहुँचने पर गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"हे भगवान्! बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, ज्ञापित करते हैं और प्ररूपित करते हैं कि, यह अम्बड परिव्राजक काम्पिल्यपुर-नगर में सौ घरों में आहार करता है एवं सौ घरों में निवास करता है। सो हे भंते! यह बात कैसे है?"

गौतम स्वामी का प्रश्न सुनकर भगवान् ने कहा—"हे गौतम! बहुत से लोग जो एक दूसरे से इस प्रकार कहते यावत् प्ररूपते हैं कि, यह अम्बड परिव्राजक काम्पिल्यपुर नगर में सौ घरों में भिक्षा लेता है और सौ घरों में निवास करता है सो यह बात बिलकुल ठीक है। गौतम! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ यावत् इसी प्रकार प्ररूपित करता हूँ कि, यह अम्बड परिव्राजक एक साथ सौ घरों में आहार लेता है और सौ घरों में निवास करता है।"

गौतम स्वामी—"यह आप किस आशय से कहते हैं कि अम्बड परिव्राजक सौ घरों में आहार लेता है और सौ घरों में निवास करता है?"

भगवान्—"हे गौतम ! यह अम्बड परिव्राजक प्रकृति से भद्र यावत् विनीत है। लगातार छठ-छठ की तपस्या करने वाला है एवं भुजाओं को ऊपर करके सूर्य के सम्मुख आतापना के योग्य स्थान में आतापना लेता है। अतः इस अम्बड परिव्राजक को शुभ परिणाम से, प्रशस्त अध्यवसानों से, प्रशस्त लेश्याओं की विशुद्धि होने से, किसी एक समय तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से ईहा[1], व्यूहा[2], मार्गण[3] एवं गवेषण[4] करने से वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि तथा अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया। इसके बाद उत्पन्न हुई उन वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि एवं अवधिज्ञान लब्धि द्वारा मनुष्यों को चकित करने के लिए, वह काम्पिल्यपुर में १०० घरों से भिक्षा करता है एवं उतने ही घरों में विश्राम करता है। इसी आशय से मैं कहता हूँ कि अम्बड परिव्राजक सौ घरों में अहार करता है और सौ घर में निवास करता है।"

१—'ईहा' शब्द की टीका औपपातिकसूत्र में इस प्रकार की गयी है—ईहा—किमिदमित्थमुतान्यथेत्येवं सदर्थालोचनाभिमुखा मतिः चेष्टासटीक पत्र १८८ सामान्यतः रूप स्पर्श आदि का प्रतिभास अवग्रह है। अवग्रह के पश्चात् वस्तु की विशेषता के बारे में सन्देह उत्पन्न होने पर उसके बारे में निर्णयोन्मुखी जो विशेष आलोचना होती है, वह ईहा है।

'ईहा' का वर्णन तत्वार्थाधिगमसूत्र सभाष्य सटीक (हीरालाल-सम्पादित) भाग १ पृष्ठ ८०-८१ में है।

२—व्यूहः—इदमित्थमेवंरूपो निश्चयः—औपपातिकसूत्र सटीक, पत्र १८८ निश्चय

३—अन्वयधर्मालोचनं यथा स्थाणौ निश्चेतव्ये इस वल्ल्युत्सर्पणादयः प्रायः स्थाणुधर्मा घटन्त इति—औपपातिकसूत्र सटीक पत्र १८८ अन्वय धर्म का शोधन जैसे पानी को देखकर उसके सहचार धर्म की खोज लगाना।

४—गवेषणं—व्यतिरेकधर्मालोचनं यथा स्थाणावेव निश्चेतव्ये इह शिरःकण्डूयनादायः प्रायः पुरुषधर्मा न घटन्त इति तत एषां समाहार द्वन्द्वः—औपपातिक सटीक पत्र १८८। मार्गण के बाद अनुपलभ्य जीवादिक-पदार्थों के सभी प्रकार से निर्णय करने का और तत्परता रूप गवेषण।

गौतम स्वामी —"हे भंते ! क्या यह अम्बड परिव्राजक आपके पास मुंडित होकर आगार अवस्था से अनागार-अवस्था को धारण करने के लिए समर्थ है?"

भगवान्—"हे गौतम ! इस अर्थ के लिए वह समर्थ नहीं है। यह अम्बड परिव्राजक श्रमणोपासक होकर जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष का ज्ञाता होता हुआ अपनी आत्मा को भावित करता विचर रहा है। परन्तु, इतना मैं अवश्य कहता हूँ कि अम्बड परिव्राजक स्फटिकमणि की राशि के समान निर्मल है और ऐसा है कि, उसके लिए सभी घरों का दरवाजा खुला रहता है। अति विश्वस्त होने के कारण राजा के अन्तःपुर में बेरोक-टोक आता-जाता है।

"इस अम्बड परिव्राजक ने स्थूलप्राणातिपात का यावज्जीव परित्याग किया है, इसी प्रकार स्थूलमृषावाद का, स्थूलअदत्तादान का, स्थूल परिग्रह का यावज्जीव परित्याग किया है। परन्तु, स्थूल रूप से ही मैथुन का परित्याग नहीं किया है; किन्तु इसका तो उसने समस्त प्रकार से जीवन पर्यन्त परित्याग किया है।

यदि अम्बड परिव्राजक को विहार करते हुए, मार्ग में अकस्मात् गाड़ी का धुरा प्रमाण जल आ जाये तो उसमें उसे उतरना नहीं कल्पता है; परन्तु विहार करते हुए यदि अन्य रास्ता ही न हो तो बात अलग। इसी प्रकार अम्बड परिव्राजक को शकट आदि पर चढ़ना भी नहीं कल्पता। उसे केवल गंगा की ही मिट्टी कल्पती है। इस अम्बड परिव्राजक के लिए आधाकर्मी[1] उद्देशिय, मिश्रजात, आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता। इसी प्रकार

---

१ आधाकर्म—'आधा' अर्थात् साधु को चित्त में धारण करके साधु के निमित्त किया कर्म-'कर्म' अर्थात् सचित्त को अचित्त करना और अचित्त को पकाना अर्थात् साधु के निमित्त बना भोजन—धर्मसंग्रह गुजराती-अनुवाद सहित, पृष्ठ १०७

अध्यवपूरत (साधु के लिए अधिक मात्रा में बनाया गया आहार), पूतिकर्म (आधाकर्मित आहार के अंश से मिश्रित आहार), (कीयगडे) मोल लाकर दिया हुआ आहार (पामिच्चे) उधार लेकर दिया हुआ आहार, अनिसृष्ट (जिस आहार पर अनेक का स्वामित्व हो), अभ्याहृत (साधु के सम्मुख लाकर दिया गया आहार), स्थापित (साधु के निमित्त रखा हुआ आहार), रचित (मोदक चूर्ण आदि तोड़ कर पुनः मोदक आदि के रूप में बनाया आहार), कान्तारभक्त (अटवी को उल्लंघन करने के लिए घर से पाथेय-रूप में लाया गया आहार), दुर्भिक्षभक्त (दुर्भिक्ष में भिक्षुकों को देने के लिए बनाया गया आहार), ग्लानभक्त (रोगी के लिए बनाया गया आहार), वार्दलिकाभक्त (वृष्टि में देने के लिए बनाया गया आहार), प्राघुणकभक्त (पाहुनों के लिए राँधा गया आहार) उस अम्बड परिव्राजक को नहीं कल्पता। इसी प्रकार अम्बड परिव्राजक को मूलभोजन, यावत् बीजभोजन तथा हरित सचित्त भोजन भी नहीं कल्पता।

"इस अम्बड परिव्राजक को चारों प्रकार के अनर्थ-दंडों का जीवन पर्यन्त परित्याग है। वे चार अनर्थ दण्ड इस प्रकार हैं:—अपध्यानाचरित, प्रमादाचरित, हिंसा प्रदान एवं पापकर्मोपदेश।

"अम्बडपरिव्राजक को मगध-देश प्रसिद्ध अर्द्ध माढक प्रमाण जल ग्रहण करना कल्पता है, जितना अर्द्ध माढक प्रमाण जल लेना इसे कल्पता से, वह भी बहता हुआ कल्पता है, अबहता हुआ नहीं। वह भी कर्दम से रहित, स्वच्छ, निर्मल यावत् परिपूत (छाना हुआ) कल्पता है; इससे अन्य नहीं। सावद्य समझ कर छाना हुआ ही कल्पता है, निरवद्य समझ कर नहीं। सावद्य भी उसे वह जीव सहित समझकर ही मानता है, अजीव

(पृष्ठ २२२ की पादटिप्पणि का शेषांश)

२ औद्देशिक—भोजन बनाते समय, इस ध्यान में रखकर कि इतना भिक्षा साधु के लिए है, भोजन बढ़ा देना—वही, पृष्ठ १०८

गाढ़ा कर नहीं। यह भी दिया हुआ ही कल्पता है, बिना दिया हुआ नहीं। दिया हुआ भी यह जल हाथ, पाद, चरु एवं चमस के प्रक्षालन के लिए अथवा पीने के लिए ही कल्पता है—स्नान के लिए नहीं। इस अम्बड परिव्राजक को मगध-देश सम्बन्धी आढ़क प्रमाण जल ग्रहण करना कल्पता है—यह भी बहता हुआ यावत् दिया हुआ ही कल्पता है, बिना दिया हुआ नहीं। यह भी स्नान के लिए ही कल्पता है, हाथ, पैर, चरु एवं चमस धोने के लिए नहीं और न पीने के लिए।

"यह अर्हन्तों और उनकी मूर्तियों को छोड़कर अन्यतीर्थिकों और और उनके देवों तथा अन्यतीर्थिक परिगृहीत अर्हत-चैत्यों को वंदन नमस्कार नहीं करता।"

गौतम स्वामी—"हे भंते ! यह अम्बड परिव्राजक काल के अवसर में काल करके कहां जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?"

भगवान्—"हे गौतम ! यह अम्बड परिव्राजक अनेक प्रकार के शील, व्रत, गुण, (मिथ्यात्व) विरमण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास, आदि व्रतों से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ अनेक वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन करेगा और अंत में १ मास की संलेखना से अपनी आत्मा को मुक्त कर साठ भक्तों को अनशन से छेद कर, पाप-कर्मों की आलोचना करके, समाधि को प्राप्त करेगा। पश्चात् काल के अवसर पर काल करके ब्रह्मलोक-नामक पाँचवें देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ देवों की स्थिति १० सागरोपम की है। वहाँ अम्बड १० सागरोपम रहेगा।"

गौतम स्वामी—"हे भंते ! उस देवलोक से च्यव कर अम्बड कहाँ उत्पन्न होगा ?"

भगवान्—"हे गौतम ! महाविदेह-क्षेत्र में आढ्य, उज्ज्वल तथा प्रशंसित, एवं वित्त-प्रसिद्ध, कुल हैं, जो कि विस्तृत एवं विपुल भवनों के अधिपति हैं, जिनके पास अनेक प्रकार के शयन, आसन एवं यान-वाहनादिक है, जो बहुत धन के स्वामी हैं; आदान-प्रदान अर्थात्

लाभ के लिए लेन-देन का काम करते हैं, याचक आदि जनों के लिये जो प्रचुर मात्रा में भक्त-पान आदि देते हैं, जिनकी सेवा में अनेक दास-दासी उपस्थित रहते हैं; तथा जिनके पास गौ-महिष आदि हैं; ऐसे ही एक कुल में अम्बड उत्पन्न होगा।

"उस लड़के के गर्भ में आते ही उसके पुण्य-प्रभाव से उसके माता-पिता को धर्म में आस्था होगी। ९ मास ७॥ दिन बाद उसका जन्म होगा। उसके माता-पिता उसका नाम दृढ़प्रतिज्ञ रखेंगे।

"यौवन को प्राप्त होने पर उसके माता-पिता उसके लिये समस्त भोगों की व्यवस्था करेंगे, पर वह उनमें गृद्ध नहीं होगा। और, अंत में साधु हो जायेगा।[1]

'चैत्य' शब्द पर विचार

औपपातिक-सूत्र में एक पाठ है:—

...वा चेइयाइं वंदित्तए...[2]

ऐसा ही पाठ बाबू वाले संस्करण[3] में तथा सुरू-सम्पादित औपपातिक सूत्र[4] में भी है।

१—औपपातिकसूत्र सटीक सूत्र ४० पत्र १८२—१९५। इस अम्बड का उल्लेख भगवतीसूत्र सटीक शतक १४ उद्देश्य ८ सूत्र ५२९ पत्र ११९८ में भी आया है।

जैन-साहित्य में एक और अम्बड का उल्लेख मिलता है जो भावी चौबीसी में तीर्थंकर होगा। ठाणांगसूत्र सटीक ठा० ९ उ० ३ सूत्र ६९२ की टीका में आता है—

यश्चौपपातिकोपाङ्गे महाविदेहे सेत्स्यतीत्यभिधीयते सोऽन्य इति सम्भाव्यते (पत्र ४५८-२)

२—औपपातिकसूत्र सटीक (दयाविमल जैन-ग्रन्थमाला, नं० २६) सूत्र ४० पत्र १८४।

३—पत्र २९७

४—पृष्ठ ७४

यहाँ 'श्रमणं' का अर्थ न समझ पाने से साधु अर्थ बैठाने का प्रयास किया गया है।

यहाँ 'श्रमण' शब्द साधु के लिए नहीं भगवान् महावीर के लिए प्रयुक्त हुआ है। हम इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण दे रहे हैं:—

(१) कल्पसूत्र में भगवान् के ३ नामों के उल्लेख हैं।

(अ) वर्द्धमान (आ) श्रमण (इ) महावीर। और, 'श्रमण' नाम पड़ने का कारण बताते हुए लिखा है:—

सहसमुइयाणे समणे[1]

इसकी टीका इस प्रकार की गयी है:—

सहस मुदिता—सहभाविनी तपः करणादिशक्तिः तया श्रमण इति द्वितीय नाम[2]

(२) आचारांग में भी इसी प्रकार का पाठ है।

सहसंमइए समणे[3]

(३) ऐसा उल्लेख आवश्यकचूर्णि में भी है।[4]

(४) सूत्रकृतांग में भी श्रमण शब्द की टीका करते हुए टीकाकार ने 'श्रमणो' भवत्तीर्थकरः लिखा है—अर्थात् आर्द्रककुमार के तीर्थंकर भगवान् महावीर[5]

(५) योगशास्त्र की टीका में हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है—

श्रमणो देवार्य इति च जनपदेन[6]

१—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका पत्र २५४

२—वही, पत्र २५३

३—आचारांगसूत्र सटीक २, ३, २३, सूत्र ४००, पत्र ३८९-१

४—आवश्यक चूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र २४५

५—सूत्रकृतांग २, ६, १५-पत्र १४४-१, १४५-१

६—योगशास्त्र, स्वोपज्ञ टीका सहित, पत्र १-२

'श्रमण' शब्द का अर्थ ही भगवान् महावीर है। इस बात से स्वयं स्थानकवासी विद्वान् भी अवगत हैं। रतनचन्द ने अपने कोष में 'श्रमण' शब्द का एक अर्थ 'भगवान् महावीर स्वामी का एक उपनाम' भी दिया है।[1]

ठाणांग की टीका में जो श्रमण शब्द आया, वहाँ उससे तात्पर्य भगवान् महावीर से है न कि साधु से।

भगवती वाले पाठ पर विचार

अमोलक ऋषि ने भगवती वाले पाठ का अनुवाद इस प्रकार किया है—

अरिहंत, अरिहंत चैत्य सो छद्मस्थ, अनगार...[2]

चैत्य का अर्थ 'छद्मस्थ' किसी कोष में नहीं मिलता। स्वयं स्थानकवासी साधु रतनचन्द्र ने अपने कोष में 'चैत्य' का एक अर्थ 'तीर्थंकर का ज्ञान—केवलज्ञान' दिया है।[3] उपाध्याय अमरचंद्र ने भी चेतित का का अर्थ ज्ञान किया है (सामायिक सूत्र, पृष्ठ १७३)। छद्मास्थावस्था में केवलज्ञान तो होता ही नहीं।

और, फिर छद्मस्थ कौन ? छद्मस्थ तो जब तक केवलज्ञान नहीं होता सभी साधु रहते हैं और यदि सूत्रकार का तात्पर्य साधु से होता तो आगे अणगार न लिखता और यदि अमोलक ऋषि का तात्पर्य तीर्थंकर से हो तो अरिहंत होने के बाद छद्मावस्था नहीं रहती—या इस प्रकार कहें कि छद्मावस्था समाप्त होने पर ही अर्हंत होते हैं। भगवान् को केवलज्ञान जब हुआ, तब का वर्णन कल्पसूत्र में इस प्रकार आया है :—

१—अर्द्धमागधी कोष, भाग ४. पृष्ठ ६२१

२—अर्द्धमागधी कोष, भाग २, पृष्ठ ७३८

३—भगवती सूत्र (अमोलक ऋषि वाला) पत्र ४६६

तएणं समणं भगवं महावीरे अरहा जाये, जिणे केवली सवन्नू सव्व दरिसी.....

उपासकदशांग वाले प्रकरण पर हम मुख्य श्रावकों वाले प्रसंग में विचार करेंगे।

इसका स्पष्टीकरण 'विचार-रत्नाकर' में कीर्तिविजय उपाध्याय ने इस प्रकार किया है :—

पुनरपि जिन प्रतिमारिपु प्रतिबोधाय अम्मडेन यथा अन्य तीर्थिकदेवान्यतार्थिक परिगृहीतर्हत्प्रतिमा निषेध पूर्वक मर्हत्प्रतिमावन्दनाद्यङ्गीकृतं, तथा लिख्यते—

'अम्मडस्स णो कप्पइ अन्नउत्थियया वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि अरिहंत चेइयाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा जाव पज्जुवासित्तए वा णन्नत्य अरिहंते वा अरिहंतचेइयाणि वा इति वृत्तिर्यथा—'अन्न उत्थिए व' त्ति अन्य यूथिका-आर्हतसङ्घापेक्षयाऽन्ये शाक्यादयः 'चेइयाइं' ति, अर्हच्चैत्यानि—जिन प्रतिमा इत्यर्थः। 'णन्नत्थ अरिहंतेहिं वं' त्ति न कल्पते इह योऽयं नेति निषेधः सोऽन्यत्रार्हद्भ्यः अर्हतो वर्जयित्वेत्यर्थः"

—पत्र ८२-१, ८२-२

कुछ अन्य सदाचारी परिव्राजक

औपपातिकसूत्र में ही कुछ अन्य सदाचारी परिव्राजकों का उल्लेख आया है। उनमें ८ परिव्राजक ब्राह्मण-वंश के थे—१ कृष्ण, २ करकंड, ३ अंबड, ४ पारासर, ५ कृष्ण, ६ द्वैपायन, ७ देवगुप्त और ८ नारद। और ८ परिव्राजक क्षत्रिय-वंश के थे—१ शीलधी, २ शशिधर, ३ नग्नजित, ४ भग्नजि ५ विदेह, ६ राजा, ७ राम और ८ बल

४—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका सहित, सूत्र १२१, पत्र ३२१

ये १६ परिव्राजक ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास-पुराण, निघंटु (नामकोश) इन ६ शास्त्रों का तथा सांगोपांग सरहस्य चारों वेदों का पाठन द्वारा प्रचार करते थे। स्वयं भी इन शास्त्रों के ज्ञाता थे, और इन सब को धारण करने में समर्थ थे। इसलिए, वे षडंगवेदविद् कहे जाते थे। वे षष्टितंत्र[1]—कापिल शास्त्र के भी वेत्ता थे। गणित शास्त्र,[2] शिक्षा-शास्त्र[3] कल्प[4], व्याकरण[5], छंद शास्त्र, निरुक्त[6] एवं ज्योतिष-शास्त्र तथा अन्य बहुत से ब्राह्मण शास्त्रों में ये परिपक्व ज्ञान वाले थे।

ये समस्त परिव्राजक दानधर्म की, शौचधर्म की, तीर्थाभिषेक की, पुष्टि करते हुए, सब को भली भाँति समझाते हुए, तथा युक्ति पूर्वक उनकी प्ररूपणा करते हुए विचरते थे। उनका कहना था कि जो कुछ भी उनकी दृष्टि में अपवित्र होता है, वह जब पानी से अथवा मिट्टी से प्रक्षालित होता है, तो पवित्र हो जाता है। इस रूप में वे अपने को तथा अपने आचार-विचार को योग्य समझते थे। और, उनका मत था कि इस प्रकार पवित्र होने के कारण वे निर्विघ्न स्वर्ग जाने वाले थे।

इन परिव्राजकों को इतनी बातें नहीं कल्पतीं—कुएँ[7] में प्रवेश करना, तालाब में प्रवेश करना, नदी में प्रवेश करना, बावड़ी[8] में प्रवेश करना

१—कापिलीय तंत्र पंडिताः—औपपातिक सटीक, पत्र १७५

२—'संखाणे' त्ति संङ्ख्याने—गणितस्कंधे—वही, पत्र १७५

३—'सिक्खाकप्पे' त्ति शिक्षा च अक्षरस्वरूप निरूपकं शास्त्रं—वही; पत्र १७५

४—कल्पश्च—तथाविध समाचार निरूपकं शास्त्रं—वही, पत्र १७५

५—वागरणे' त्ति शब्दलक्षण शास्त्रे—वही, पत्र १७५,

६—निरुत्ते त्ति शब्द निरुक्तिप्रतिपादके—वही, पत्र १७५

७—'अगडं व' त्ति अवटं कूपं—औपपातिकसूत्र सटीक पत्र १७६।

८—'वावि व' त्ति वापी—चतुरस्र जलाशय विशेषः, वही, पत्र १७६।

चाँदी के बंधन से युक्त, स्वर्ण के बंधन से युक्त पात्र तथा अन्य बहुमूल्य बंधन के पात्र उन्हें नहीं कल्पते थे। अनेक प्रकार के रंगों से रंगा कपड़ा भी उन्हें नहीं कल्पता था। वे केवल गैरिक रंग से रंगा वस्त्र पहनते थे। हार[1], अर्द्धहार[2], एकावलि[3], मुक्तावलि[4], कनकावलि[5], रत्नावलि[6], मुरवि[7], कण्ठ मुरवि[8], प्रालंबक[9], त्रिसर[10], कटिसूत्र[11], मुद्रिका[12], कटक[13], त्रुटित[14], अंगद[15], केयूर[16], कुंडल, मुकुट, चूड़ामणि, आदि आभूषण उन्हें नहीं कल्पते थे।

वे केवल ताँबे की पवित्रक (मुद्रिका) पहनते थे। उन परिव्राजकों

१—हारः—अष्टादश सारिकः—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका पत्र १६५

२—अर्धहारो—नवसारिकस्त्रिसरिकं—वही, पत्र १६५

३—विचित्र मणियुक्त

४—मोतियों की माला,

५—सोने के दानों की माला

६—रत्नों के दानों की माला,

७—जंतर

८—कंठी

९—गले का एक आभूषण जो व्यक्ति के कद इतना लम्बा होता है। प्रलम्बमानः प्रालम्बो—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, पत्र १६६

१०–तीन लड़ी की माला

११–कमर का आभूषण—वही पत्र, १६६

१२–अंगूठी

१३–कड़ा

१४–बाहु का एक आभरण—कल्पसूत्र सटीक, पत्र १६६

१५–बाजूबंद

१६–भुजा का एक आभरण

को चारों प्रकार की मालाएं[1] धारण करना नहीं कल्पता था; केवल कर्ण-पूर रखना कल्पता था। उनको अगर, लोध, चंदन, कुंकुम, इत्यादि सुगन्धित द्रव्य शरीर पर विलेपन करना नहीं कल्पता था; वे गंगा के किनारे की मातृका-गोपी चंदन लगाते थे। उनको अपने उपयोग में लाने के लिए मगध देश में प्रचलित एक प्रस्थ[2] मात्र जल लेना कल्पता था, वह जल भी बहती हुई नदी का होना आवश्यक था, बिना बहता पानी उन्हें नहीं कल्पता था। वह भी जब स्वच्छ हो तभी उन्हें ग्राह्य होता था, कर्दम से मिश्रित नहीं। स्वच्छ होने पर भी जब निर्मल हो, तभी ग्राह्य होता था। निर्मल होने पर भी जब छना हुआ होता था, तभी कल्पता था, अन्यथा नहीं। छना होने पर भी दाता द्वारा दिया हुआ ही उन्हें कल्पता था—बिना दिया हुआ नहीं। उस १ प्रस्थ दिए जल का उपयोग वे पीने के लिए ही करते थे, हाथ-पाँव, चरु चमस आदि धोने के लिए नहीं। उसका उपयोग स्नान के लिए वे नहीं कर सकते थे।

उन साधुओं को एक आढक जल जो पूर्व लक्षणों वाला हो हाथ, पाद, चरु एवं चमसा आदि धोने के काम में लेना कल्पता था।

१– मालाओं के चार प्रकार टीका में इस प्रकार दिये हैं:—गंथिम वेढिम पूरीम संघाइमे' त्ति ग्रन्थिमं—ग्रन्थेन निर्वत्तं माला रूपं (जो गूंथकर बनायी गयी हो) वेष्टिमं—पुष्पलम्बूसकादि (लपेटी हुई), पूरिमं—पूरण निर्वत्तं वंशशलाका जालक पूरणमयतीति (जो बाँस की शलाका पर बनी हो) संघातिमं—संघातेन निर्वृत्तम् इतरेतरस्य नाल प्रवेशनेन (समूह करके बनायी हुई)

—औपपातिक सूत्र सटीक, पत्र १७७

२—अणुयोगद्वार सटीक सूत्र १३२ में पाठ आता है—दो असईओ पसई, दो पसइओ सेत्तिआ, चत्तारिसेइआओ कुडओ, चत्तारि कुडया पत्थो, चत्तारि पत्थया आढगं, चत्तारि आढगाई दोणो,— (पत्र १५१-२) आप्टे की संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी' भाग २, पृष्ठ ११२० में आता है—१ प्रस्थ = ३२ पल। पृष्ठ ६९७ में एक पल = ४ कर्ष दिया है। और, भाग १ के पृष्ठ ५४३ में १ कर्ष = १६ माषक दिया है

अम्बड परिव्राजक का अन्तिम जीवन

एक बार अम्बड परिव्राजक अपने ७०० शिष्यों के साथ ग्रीष्म काल के समय ज्येष्ठ मास में गंगा नदी के दोनों तटों से होकर काम्पिल्यपुर नगर से पुरिमताल (प्रयाग) के लिए निकले। विहार करते करते वे एक ऐसी अटवी में जा पहुंचे जो निर्जन थी और जिसके मार्ग अत्यन्त विकट थे। इस अटवी का थोड़ा सा ही भाग वे तय कर पाये थे कि अपने स्थान से लाया हुआ उनका जल समाप्त हो गया। पानी समाप्त हुआ जानकर तृषा से अत्यंत व्याकुल होते हुए पास में पानी का दाता न देखकर वे परस्पर बोले—"हे देवानुप्रियो ! यह बात बिलकुल ठीक है कि इस अग्रामिक अटवी में जिसे हम अभी थोड़ा ही पार कर सके हैं, हम लोगों का अपने स्थान से लाया जल समाप्त हो गया। अतः कल्याणकारक यही है कि हम इस अग्रामिक निर्जन अटवी में सब प्रकार से चारों ओर किसी दाता की मार्गणा अथवा गवेषणा करें।" वे पानी दाता खोजने निकले, पर उन्हें कोई भी दाता न दिखा।

फिर एक ने कहा—"देवानुप्रियो ! प्रथम तो इस अटवी में एक भी उदकदाता नहीं है, दूसरे हम लोगों को अदत्त जल ग्रहण करना उचित नहीं है; कारण कि अदत्त जल का पान करना हम सब की मर्यादा से सर्वथा विरुद्ध है। हम लोगों का यह भी दृढ़ निश्चय है कि आगामी काल में भी हम अदत्त जल न ग्रहण करें, न पियें; क्योंकि ऐसा करने से हमारा आचरण लुप्त हो जायेगा। अतः उसकी रक्षा के अभिप्राय से हमें अदत्त जल न लेना चाहिए और न पीना चाहिए।

"इसलिए हे देवानुप्रियो हम सब १ त्रिदंड[1] कमण्डल,[2] रुद्राक्ष की माला,[3] ४ मृत्तिका के पात्र,[4] ५ बैठने की पटिया[5] ६ छण्णालय[6]

१—'तिदंडए' त्ति त्रयाणां दंडकानां समाहार त्रिदंडकानि—औपपातिक सटीक

७ देवपूजा के लिए पुष्प-पत्र तोड़ने के काम में आने वाला अंकुश[1] ८ केशरिका–प्रमार्जन के काम आने वाला वस्त्र-खंड[2], ९ पवित्री-तांबे की अंगूठी[3] १० गणेत्रिका[4]-हाथ का कड़ा, ११ छत्र १२ उपानह् १३ पादुका १४ गेरुए रंग का वस्त्र आदि उपकरणों को छोड़कर महानदी गंगा को पारकर उसके तट पर बालुका का संथारा बिछाएँ और उस पर भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर, छिन्न वृक्ष की तरह निश्चेष्ट होते हुए, मरण की इच्छा से रहित होकर संलेखना पूर्वक मरण को प्रेम के साथ सेवन करें।"

इस बात को सभी ने स्वीकार कर लिया और त्रिदंड आदि उपकरणों का परित्याग करके वे सब महानदी गंगा में प्रविष्ट हुए और उसे पार कर उन लोगोंने बालू का संथारा बिछाया और उस पर चढ़कर पूर्व की ओर मुख कर पर्यंकासन बैठ गये और इस प्रकार कहने लगे

'णमोत्थु णं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं'

—मुक्ति को प्राप्त हुए श्रीअर्हत प्रभु को नमस्कार हो

(पृष्ठ २३४ की पादटिप्पणि का शेषांश)

२—'कुंडियाओ य' त्ति कमण्डलवः—वही पत्र १८०

३—'कंचणियाओ य' त्ति काञ्चनिका–रुद्राक्षमयमालिका, वही पत्र १८०

४—'करोडियाओ य' त्ति करोटिकाः मृण्मयभाजनविशेषः, वही पत्र १००

५—'भिसियाओ' य त्ति वृषिकाः उपवेशन पट्टिकाः—वही पत्र १८०

६—'छण्णालए य' त्ति षण्नालकानि त्रिकाष्ठिकाः=आधारी अधारी, अधारी शब्द सूरसागर के भ्रमरगीत में प्रयुक्त हुआ है। कबीर ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है। बौद्ध तथा नाथ-सिद्धों के प्राचीन चित्रों में आधारी देखने को मिलता है।

१—'अंकुसाए' य त्ति अंकुशकाः—देवार्चनार्थं वृक्षपल्लवाकर्षणार्थं अंकुशकाः—वही, पत्र १८०

२—'केसरियाओ य' त्ति केशरिकाः–प्रमार्जनार्थानि चीवर खण्डानि—वही, पत्र १८०

३—'पविराए य' त्ति पवित्रकाणि–ताम्रमयान्यङ्गुलीयकानि–वही, पत्र १८०

४—'गणेत्रिका' हस्ताभरण विशेषः–वही, पत्र १८०

इस प्रकार करके संलेखना में तथा शरीर को कृश करने में प्रीति से युक्त वे सबके सब भक्त-पान का प्रत्याख्यान करके वृक्ष के समान निःचेष्ट होकर मरण की इच्छा न करते हुए स्थित हो गये।

इसके बाद उन समस्त परिव्राजकों ने चारों प्रकार के आहार को अनशन द्वारा छेद कर, छेद करने के बाद अतिचारों की आलोचना की और फिर उनसे वे परावृत्त हुए। और, काल के अवसर पर काल करके ब्रह्मलोक-कल्प में देव-रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ उनका आयुष्य १० सागरोपम-प्रमाण है।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् वैशाली आये और अपना वर्षावास भगवान् ने वैशाली में बिताया।

—: ० :—

३२–वाँ वर्षावास

गांगेय की शंकाओं का समाधान

भगवान् वाणिज्यग्राम के निकट स्थित द्विपलाश-चैत्य में ठहरे हुए थे। भगवान् का धर्मोपदेश हुआ।

उस समय पार्श्वसंतानीय साधु गांगेय ने द्विपलाश-चैत्य में भगवान् से थोड़ी दूर पर खड़े होकर पूछा—"हे भगवन्? नैरयिक सान्तर[1] उत्पन्न होते हैं या निरन्तर?"

भगवान्—"हे गांगेय? नैरयिकसान्तर भी उत्पन्न होता है और निरन्तर भी!"

गांगेय—"हे भगवन्! असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर?"

भगवान्—"गांगेय! असुरकुमार सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी। इसी प्रकार स्तनितकुमार आदि के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए।"

गांगेय—"भगवन्? पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर?"

भगवान्—"हे गांगेय? पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते। वे निरन्तर उत्पन्न होते हैं। इसी रूप में यावत् वनस्पतिकायिक जीव तक जान लेना चाहिए। द्वि इंद्रिय जीव से लेकर वैमानिकों और नैरयिकों तक सभी के साथ इसी प्रकार समझना चाहिए।"

१—जिसकी उत्पत्ति में समयादि काल काल का अंतर-व्यवधान हो वह सान्तर कहलाता है।

गांगेय—"हे भगवन्? नैरयिक सान्तर च्यवता है कि निरन्तर च्यवता है ?"

भगवान्—"हे गांगेय ? नैरयिक सान्तर च्यवता है और निरन्तर च्यवत है। इसी प्रमाण स्तनितकुमार तक जान लेना चाहिए।"

गांगेय—"हे भगवन्! क्या पृथ्वीकायिक जीव सान्तर च्यवते हैं ?"

भगवान्—"हे गांगेय! पृथ्वीकायिक जीव निरन्तर च्यवता है और वह सान्तर नहीं च्यवता है। इसी रूप में वनस्पतिकायिक जीव-सान्तर नहीं च्यवता निरन्तर च्यवता है।"

गांगेय—"हे भगवान्! द्वि इन्द्रिय जीवसान्तर च्यवते हैं या निरन्तर?"

भगवान्—"हे गांगेय! द्विइन्द्रिय जीव सान्तर भी च्यवता है और निरन्तर भी। इसी प्रकार यावत् वानव्यन्तर तक जानना चाहिए।"

गांगेय—"हे भगवन्! ज्योतिष्क देव सान्तर च्यवते हैं या निरन्तर?"

भगवान्—"ज्योतिष्क देव सान्तर भी च्यवते हैं और निरन्तर थी। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक समझ लेनी चाहिए।"

गांगेय—"हे भगवन्! प्रवेशनक कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

भगवान्—"हे गांगेय! प्रवेशनक चार प्रकार का कहा गया है। वे चार ये हैं—१ नैरयिक[1] प्रवेशनक २—तिर्यंचयोनिक प्रवेशनक ३—मनुष्य प्रवेशनक ४—देव प्रवेशनक। उसके बाद भगवान् ने विभिन्न नैरयिकों के प्रवेशनक के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएँ दी।

गांगेय—"हे भगवन्! तिर्यंचयोनिक प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?"

भगवान्—"हे गांगेय! पांच प्रकार का कहा गया है—एकेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक यावत् पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिक प्रवेशनक!" उसके बाद गांगेय के प्रश्न पर भगवान् ने उसके सम्बन्ध में विशेष सूचनाएँ दी।

१—नरक बताये गये हैं—" १-रयणप्पभा २ सक्करप्पभा ३ वालुकप्पभा ४ पंकप्पभा, ५ धूमप्पभा, ६ तमप्पभा, ७ तमतम्पभा-प्रज्ञापना

गांगेय—"हे भगवन्! मनुष्यप्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है?"

भगवान्—"दो प्रकार का—१ संमूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशनक और २ गर्भजमनुष्य प्रवेशनक।" उसके बाद भगवान् ने उनके सम्बन्ध में विस्तृत रूप में वर्णन किया।

गांगेय—"हे भगवन्! देवप्रवेशनक कितने प्रकार का है?

भगवान्—"हे गांगेय! देवप्रवेशनक चार प्रकार के हैं–१ भवनवासीदेव प्रवेशक, २ वानव्यंतर, ३ ज्योतिष्क, ४ वैमानिक।"

फिर भगवान् ने इनके सम्बंध में भी विशेष सूचनाएँ दीं।

गांगेय—"हे भगवन्! 'सत्' नारक उत्पन्न होते हैं या असत्! इसी तरह 'सत्' तिर्यंच, मनुष्य और देव उत्पन्न होते हैं 'असत्'?"

भगवान् "हे गांगेय सभी सत् उत्पन्न होते हैं असत् कोई उत्पन्न नहीं होता?"

गांगेय—"हे भगवन्! नारक, तिर्यंच, और मनुष्य 'सत्' मरते हैं या 'असत्'। इसी प्रकार देव भी 'सत्' च्युत् होते हैं या 'असत्?"

भगवान्—"सभी सत्च्यवते हैं असत् कोई नहीं च्यवता?"

गांगेय—"भगवान्! यह कैसे? सत् की उत्पत्ति कैसी? और मरे हुए की सत्ता कैसी?"

भगवान्—"गांगेय! पुरुषादानीय पार्श्वनाथ ने लोक को शाश्वत, अनादि और अनन्त कहा है। इसलिए मैं कहता हूँ कि वैमानिक सत् च्यवते हैं असत् नहीं।"

गांगेय—"हे भगवन्! आप इस रूप में स्वयं जानते हैं या अस्वयं जानते हैं?"

भगवान्—"मैं इनको स्वयं जानता हूँ। अस्वयं नहीं जानता।"

गांगेय—"आप यह किस कारण कहते हैं कि मैं स्वयं जानता हूँ?"

भगवान्—"केवल ज्ञानी का ज्ञान निरावरण होता है। वह सभी वस्तुओं को पूर्णरूप से जानता है।"

गांगेय—"हे भगवन्! नैरयिक नरक में स्वयं उत्पन्न होता है या अस्वयं?"

भगवान्—"नरक में नैरयिक स्वयं उत्पन्न होता है, अस्वयं नहीं।"

गांगेय—"ऐसा आप किस कारण कह रहे हैं?"

भगवान्—"हे गांगेय! कर्म के उदय से कर्म के गुरुपने से, कर्म के भारीपने से, कर्म के अत्यन्त भारीपने से, अशुभ कर्म के उदय से, अशुभ कर्मों के विपाक से, और अशुभ कर्मों के फल-विपाक से नैरयिक नरक में उत्पन्न होता है। नैरयिक नरक में अस्वयं उत्पन्न नहीं होता।"

इसी प्रकार अन्यों के विषय में भी भगवान् ने सूचनाएं दीं।

उसके बाद भगवान् को सर्वज्ञ-रूप में स्वीकार करके गांगेय ने भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की और वंदन किया तथा पार्श्वनाथ भगवान् के चार महाव्रत के स्थान पर पंचमहाव्रत स्वीकार कर लिया।[1]

उसके बाद भगवान् वैशाली आये और अपना चातुर्मास भगवान् ने वैशाली में बिताया।

---

१ भगवतीसूत्र सटीक शतक ९, उद्देशा ५, पत्र ८०४–८३७।

—:*:—

२३–वाँ वर्षावास

चार प्रकार के पुरुष

वर्षावास के बाद भगवान् ने मगध-भूमि की ओर विहार किया और राजगृह के गुणशिलक–नामक चैत्य में ठहरे।

वहाँ अन्यतीर्थकों के मत के सम्बन्ध में प्रश्न पूछते हुए गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन् कुछ अन्य तीर्थक कहते हैं (१) शील श्रेय है। कुछ कहते हैं श्रुत श्रेय है। और, कुछ कहते हैं [शील निरपेक्ष] श्रुत श्रेय है अथवा [श्रुत निरपेक्ष] शील श्रेय है? हे भगवन्! यह कैसे?"

भगवान्—"गौतम! अन्यतीर्थिकों का कहना मिथ्या है। इस सम्बन्ध में मेरा कथन इस प्रकार है। पुरुष चार प्रकार के होते हैं। (१) पुरुष जो शीलसम्पन्न है; पर श्रुतसम्पन्न नहीं है (२) पुरुष जो श्रुतसम्पन्न है; पर शीलसम्पन्न नहीं है (३) पुरुष जो शीलसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है (४) पुरुष जो न शीलसम्पन्न है और न श्रुतसम्पन्न है।

"प्रथम प्रकार का पुरुष जो शीलवान है पर श्रुतवान नहीं है, वह उपरत (पापादि से निवृत्त) है। पर, वह धर्म नहीं जानता। हे गौतम! उस पुरुष को मैं देशाराधक (धर्म के अंश का आराधक) कहता हूँ।

"दूसरे प्रकार का पुरुष श्रुत वाला है, पर शील वाला नहीं है। वह पुरुष अनुपरत (पाप से अनिवृत्त) होता हुआ भी धर्म को जानता है। हे गौतम! उस पुरुष को मैं देशविरोधक कहता हूँ।

स्पष्टीकरण किया। उसके बाद गौतम स्वामी ने पूछा—"हे भगवन्! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना का आराधक कितने भवों के बाद सिद्ध होता है?"

भगवान्—"हे गौतम! कितने ही जीव उसी भव में सिद्ध होते हैं, कितने दो भवों में सिद्ध होते हैं और कितने जीव कल्पोपपन्न (बारहवें देवलोकवासी देव अथवा कल्पातीत[1] (ग्रैवेयक और अनुत्तरविमान के वासी देव) देवलोक में उत्पन्न होते हैं।"

गौतम स्वामी—"उत्कृष्ट दर्शनाराधना का आराधी कितने भावों में सिद्ध होता है?"

भगवान्—"इसका उत्तर भी पूर्ववत् जान लेना चाहिए।"

गौतम स्वामी—"चरित्राधारना का आराधी कितने भवों में सिद्ध होता है?"

भगवान्—"इसका उत्तर भी पूर्ववत् जान लेना चाहिए; परन्तु कितने ही जीव कल्पातीत देवों में उत्पन्न होते हैं।"

गौतम स्वामी—"हे भगवन्! ज्ञान की मध्यम आराधना का आराधी कितने भवों को ग्रहण करने के पश्चात् सिद्ध होता है।"

भगवान्—"वह दो भव ग्रहण करने के पश्चात् सिद्ध होता है। पर, तीसरा भव अतिक्रम करेगा ही नहीं।"

भगवान् ने इसी प्रकार मध्यम दर्शनाराधक और ज्ञानाराधक के बारे में भी अपना मत प्रकट किया।

---

१ वैमानिकाः ।१७। कल्पोपपन्ना : कल्पातीताश्च ।१८। उपर्युपरि ।१९। सौधर्मैशान सानत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्मलोकलान्तक महा शुक्र सहस्रारेष्वानत प्राणतयोरारणाच्युत योर्नवसु—ग्रैवेयकेषु विजय वैजयन्त जयन्ताऽपराजितेषु सर्वार्थसिर्वार्थसिद्धे 'च ॥२०॥ तत्त्वार्थसूत्र ४–१ सटीक सिद्धसेनगणि की टीका सहित भाग १, पृष्ठ २९८–२९९

पुद्गल-परिणाम

गौतम स्वामी—"पुद्गल का परिणाम कितने प्रकार का कहा जाता है ?"

भगवान्—"हे गौतम ! वह पाँच प्रकार का कहा गया है।"

१ वर्णपरिणाम २ गंधपरिणाम, ३ रसपरिणाम, ४ स्पर्शपरिणाम और ५ संस्थानपरिणाम।

गौतम स्वामी—"हे भगवन् ! वर्णपरिणाम कितने प्रकार का है ?"

भगवान्—"१ कृष्णवर्णपरिणाम, २ नीलवर्णपरिणाम ३ लोहितवर्ण-परिणाम, ४ हरिद्रावर्णपरिणाम ५ शुक्लवर्णपरिणाम[1]। इस प्रकार २ प्रकार का गंध-परिणाम[2], ५ प्रकार का रसपरिणाम[3] और ८ प्रकार का स्पर्श-परिणाम जानना चाहिए।[4]"

गौतम स्वामी—"हे भगवन् ! संस्थानपरिणाम कितने प्रकार का है ?"

भगवान्—"संस्थान परिणाम पाँच प्रकार का गया है–"१ परिमंडल-संस्थानपरिणाम २ वट्टसंप, ३ तंससंप, ४ चउरंससंप और ५ आयतसंप।"

इसके बाद भगवान् के पुद्गलों के सम्बन्ध में अन्य कितने ही प्रश्नों के उत्तर दिये।[5]

१—इनका उल्लेख समवायांगसूत्र सटीक समवाय २२, पत्र ३९–१ में भी है।

२— सुब्भिगंध परिणामे १२, दुब्भिगंधपरिणामे—समवायांग सूत्र स० २२

३—१ तित्तरसपरिणामे २ कडुयरसपरिणाम ३ कसायरसपरिणामे, ४ अंबिल-रसपरिणामे, ५ महुररसपरिणामे—समवायांग सूत्र समवाय २२

४—१ कक्खडफासपरिणामे, २ मउयफासपरिणामे, ३ गुरुफासपरिणामे, ४ लहुफासपरिणामे, ५ सीतफासपरिणामे, ६ उसिणफासपरिणामे, ७ णिद्धफास-परिणामे, ८ लुक्खफासपरिणामे, ९ अगुरुलहुफासपरिणामे, १० गुरुलहुफास-परिणामे।

५—भगवतीसूत्र सटीक शतक ८, उ० १० पत्र ७६४–७७८

उसके बाद गौतम स्वामी ने पूछा—"अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं कि प्राणातिपात मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य में स्थित प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य ?

"इसी प्रकार दुष्ट भावों का त्याग करके धर्म मार्ग में चलने वाले प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य ?" इस प्रकार जीव और जीवात्मा की अन्यता सम्बंधी कितने ही प्रश्न गौतम स्वामी ने पूछे।

भगवान् ने अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहा—"अन्यतीर्थकों का यह मत मिथ्या है। जीव और जीवात्मा एक ही पदार्थ है।[1]

फिर गौतम स्वामी ने पूछा—"अन्यतीर्थिक कहते हैं यक्ष के आवेश से आविष्ट केवली भी मृषा अथवा सत्य-मृषा भाषा बोलते हैं ?

भगवान्—"अन्यतीर्थकों का यह कहना मिथ्या है। केवल ज्ञानी यक्ष के आवेश से आविष्ट होता ही नहीं। और यक्ष के आवेश से आविष्ट केवली असत्य और सत्यासत्य भाषा नहीं बोलता। केवली पाप-व्यापार हीन और जो दूसरे को उपघात न करे, ऐसी भाषा बोलता है। वह दो भाषा में बोलता है—सत्य और असत्यामृषा[2] (जो सत्य न हो तो असत्य भी न हो)।

राजगृह से भगवान् ने चम्पा की ओर विहार किया और पृष्ठचम्पा पहुँचे। भगवान् की इसी यात्रा में पिठर, गागलि आदि की दीक्षाएँ हुईं।[3]

१—भगवतीसूत्र सटीक श० १७ उद्देशा २, पत्र १३२२–१३२३

२—भगवतीसूत्र सटीक श० १८ उ० ७ पत्र १३७९—

३—त्रिषष्टिशलाका पुरुष-चरित्र पर्व १०, सर्ग ९, श्लोक १७४ पत्र १२४–२

उत्तराध्ययन सटीक, अ० १०, पत्र १५४–१

विस्तृत वर्णन राजाओं वाले प्रकरण में है।

मद्दुक और अन्यतीर्थिक

वहाँ से भगवान् फिर राजगृह आकर गुणशिलक-चैत्य में ठहरे। चैत्य के आसपास कालोदयी-शैलोदायी इत्यादि अन्यतीर्थक रहते थे।[1]

उसी राजगृह नगर में मद्दुक-नामक एक आढ्य[2] रहता था। भगवान् महावीर के आगमन की बात सुनकर मद्दुक भगवान् का वंदन करने राजगृह नगर के बीच में होता हुआ चला। अन्यतीर्थिकों ने मद्दुक को बुला कर पूछा—"हे मद्दुक! तुम्हारे धर्माचार्य श्रमण ज्ञातपुत्र पाँच अस्तिकाय बताते हैं—हे मद्दुक यह किस प्रकार स्वीकार्य हो सकता है ?"

"जो वस्तु कार्य करे तो उसे हम उसके कार्यों से जान सकते हैं। पर, जो वस्तु अपना कार्य न करे उसे हम जान नहीं सकते।"

"हे मद्दुक! तुम कैसे श्रमणोपासक हो जो तुम पंचास्तिकाय नहीं जानते ?"

"हे आयुष्मन्! पवन है, यह बात ठीक है न ?"

"हाँ! पवन है।"

"आपने पवन का रूप देखा है ?"

"नहीं! हम पवन का रूप देख नहीं सकते।"

"हे आयुष्मन! गंध गुण वाला पुद्गल है ?"

"हाँ, है।"

"हे आयुष्मन! गंध गुण वाला पुद्गल तुमने देखा है ?"

"इसके लिए हम समर्थ नहीं हैं।"

"हे आयुष्मन! अरणि-काष्ठ के साथ अग्नि है ?"

१—अन्यतीर्थिकों के पूरे नाम भगवतीसूत्र सटीक श० ७ उ० १० पत्र ५९२ में इस प्रकार दिये हैं १-कालोदायी, शैलीदायी, सेवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलोपालक, शंखपालक, सुहस्ती, गृहपति।

२—सम्पन्न, वैभवशाली।

"हाँ, है।"

"इस अरणि में रही आग को तुमने देखा है?"

"नहीं, हम उसे देख नहीं सकते।"

"आयुष्मन! समुद्र पार पदार्थ है?"

"हाँ! समुद्र पार भी पदार्थ है।"

"क्या आपने समुद्र पार का पदार्थ देखा है?"

"नहीं, हमने उसे नहीं देखा है।"

"हे आयुष्मन! देवलोक में रूप है?"

"हाँ है।"

"हे आयुष्मन! देवलोक में रहा पदार्थ तुमने देखा है?"

"नहीं, इसके लिए हम समर्थ नहीं हैं।"

"हे आयुष्मन! इसी प्रकार, मैं या तुम या कोई छद्मस्थ जीव जिस वस्तु को देख नहीं सकते, वह वस्तु है ही नहीं ऐसा नहीं हो सकता। दृष्टिगत न होने वाले पदार्थों को तुम न मानोगे तो तुम्हें बहुत-से पदार्थों को ही अस्वीकार करना पड़ा है।

अन्यतीर्थकों को निरुत्तर करके मद्दुक गुणशिलक चैत्य में आया।

उसे सम्बोधित करके भगवान् बोले—"हे मद्दुक! तुमने उन अन्य-तीर्थकों से ठीक कहा। तुमने उन्हें ठीक उत्तर दिया। जो कोई बिना जाने अथवा देखे अदृष्ट, अश्रुत, अन्वेषण से परे अथवा अविज्ञात अर्थ का, हेतु का अथवा प्रश्न का उत्तर अन्य व्यक्तियों के बीच कहता है अथवा जनाता है, वह अर्हतों का, अर्हत के कहे धर्म का, केवल ज्ञानी का और केवली के कहे धर्म की आशातना करता है! हे मद्दुक तुमने अन्यतीर्थकों से ठीक कहा।"

भगवान् के इस कथन से मद्दुक बड़ा संतुष्ट हुआ और भगवान् से न अधिक दूर और न अधिक निकट रहकर उसने भगवान् का वंदन किया, नमस्कार किया और पर्युपासना की।

उसके बाद भगवान् ने मद्दुक श्रमणोपासक और पर्षदा को धर्मोपदेश किया। धर्मोपदेश सुनकर सभी उपस्थित लोग और मद्दुक वापस लौट गये।

सबके चले जाने के बाद गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"भगवन्! मद्दुक श्रमणोपासक क्या आपके पास प्रव्रज्या लेने के लिए समर्थ है?"

भगवान् ने कहा—"वह समर्थ नहीं है। वह गृहस्थाश्रम में ही रहकर व्रतों का पालन करेगा और मृत्यु के बाद अरुणाभ विमान[1] में देवता-रूप से उत्पन्न होगा और अंत में सर्व दुःखों का अन्त करेगा।"[2]

भगवान् ने अपना वह वर्षावास राजगृह में बिताया।

१—पाँचवें देवलोक का एक विमान।

२—भगवतीसूत्र सटीक श० १८ उद्देशा ७, सूत्र ६३५ पत्र १३८१-१३

३४-वाँ वर्षावास

कालोदयी की शंका का समाधान

निकटवर्ती प्रदेशोंमें विहार·कर भगवान् पुनः राजगृह के गुणशिलक चैत्य में आकर ठहरे।

उस गुणशिलक के निकट ही कालोदायी, शैलोदायी, सेवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शंखपालक, और सुहस्ती-नामक अन्यतीर्थिकोपासक रहते थे। एक समय वे सभी अन्यतीर्थिक सुख पूर्वक बैठे हुए परस्पर वार्तालाप कर रहे थे—"श्रमण ज्ञात-पुत्र (महावीर) पाँच अस्तिकायों की प्ररूपणा करते हैं—धर्मास्तिकाय यावत् आकाशास्तिकाय।[1] उनमें श्रमण ज्ञातपुत्र चार अस्तिकाय—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय–को आजीवकाय कहते हैं और एक जीवास्तिकाय को वह जीवकाय कहते हैं। उन पाँच अस्तिकायों में चार अस्तिकायों को श्रमण ज्ञातपुत्र अरूपिकाय कहते हैं और एक पुद्गलस्तिकाय को श्रमण ज्ञातपुत्र रूपिकाय और अजीव-काय बताते हैं। इसे कैसे स्वीकार किया जा सकता है?"

गुणशिलक-चैत्य में भगवान् का समवसरण हुआ और अंत में परिषदा वापस लौटी। उसके बाद भगवान् के शिष्य इन्द्रभूति गौतम भिक्षा के लिए नगर में गये। अन्यतीर्थिकों ने गौतम स्वामी को थोड़ी दूर से जाते हुए देखा। उन्हें देखकर वे परस्पर वार्ता करने लगे—"हे देवानुप्रियो!

१—ठाणांगसूत्र सटीक ठा० ५ उ० २, सूत्र ४४१ पत्र ३३२-२—३३४-१। समवायांगसूत्र सटीक समवाय ५, पत्र १०-१

अपने को धर्मास्तिकाय की बात अज्ञात और अप्रकट है। गौतम स्वामी थोड़ी दूर से जा रहे हैं। अतः उनसे इस सम्बन्ध में पूछना श्रेयस्कर है।" सभी ने बात स्वीकार की और वे सभी उस स्थान पर आये जहाँ गौतम स्वामी थे।

वहाँ आकर उन लोगों ने गौतम स्वामी से पूछा—"हे गौतम, तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पाँच अस्तिकायों की प्ररूपणा करते हैं। वे उनमें रूपिकाय यावत् अजीवकाय बताते हैं। हे गौतम ! यह कैसे ?"

इस प्रश्न पर गौतम स्वामी ने उनसे कहा—"हे देवानुप्रियो ? हम 'अस्तिभाव' में नास्ति नहीं कहते और नास्तिभाव को अस्ति नहीं कहते। हे देवानुप्रियो ? अस्तिभाव में सर्वथा 'अस्ति' ही कहना चाहिए और नास्ति-भाव में 'नास्ति' ही करना चाहिए। अतः हे देवानुप्रियो ? तुम स्वयं इस प्रश्न पर विचार करो।"

अन्यतीर्थिकों को इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी गुणशिलक-चैत्य में लौटे।

इसके बाद जब भगवान् महावीर विशाल जनसमूह के समक्ष उपदेश देने में व्यस्त थे, कालोदायी भी वहाँ आया। भगवान् महावीर ने कालोदायी को सम्बोधन करके कहा—"हे कालोदायी ! तुम्हारी मंडली में मेरे पंचास्तिकाय-प्ररूपणा की चर्चा चल रही थी। पर, हे कालोदायी मैं पंच अस्तिकायों की प्ररूपणा करता हूँ—धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय। उनमें से चार अस्तिकायों को अजीवास्तिकाय और अजीवरूप कहता हूँ। और पुद्गलास्तिकाय को रूपिकाय कहता हूँ।"

इसे सुन कर कालोदायी ने कहा—"हे भगवन् ! इस अरूपी अजीवकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और अकाशास्तिकाय पर कोई बैठने, लेटने, खड़े रहने अथवा नीचे बैठने आदि में समर्थ है !"

भगवान्—"कालोदायी ! केवल एक रूपी अजीवकाय पुद्गलास्तिकाय पर ही बैठने आदि की क्रिया हो सकती है। अन्य पर नहीं।"

कालोदायी—पुद्गलास्तिकाय में जीवों के दुष्ट विपाक कर्म लगते हैं ?"

भगवान्—"नहीं कालोदायिन् ! ऐसा नहीं हो सकता। परन्तु अरूपी जीवास्तिकाय के विषय में पाप फल-विपाक सहित पापकर्म लगता है।"

इस प्रकार भगवान् से उत्तर पाकर कालोदायी को बोध हो गया। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन और नमस्कार किया और बोला—"भगवन् ! मैं आपसे विशेष धर्म-चर्चा सुनना चाहता हूँ।"

भगवान् का उपदेश सुनकर कालोदायी स्कंदक की तरह प्रव्रजित हो गया और ११ अंग आदि का अध्ययन करके वह विचरने लगा।[१]

उदक को उत्तर

राजगृह-नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिशा में नालंदा[२] नाम की बाहिरिका (उपनगर) थी। उसमें अनेक भवन थे। उस नालंदा-नगर में लेप-नामक एक धनवान गाथापति रहता था। वह श्रमणोपासक था। नालंदा के ईशान कोण में शेषद्रव्या-नामक उसकी एक मनोहर उदकशाला[३] थी। उसमें कई सौ खंभे थे और वह बड़ी सुन्दर थी। उस उदकशाला के उत्तर-पूर्व में हस्तियाम[४]-नामक वनखंड था। उस वनखंड के आरामागार में गौतम स्वामी (इन्द्रभूति) विहार कर रहे थे। उसी उपवन में पार्श्वनाथ का अनुयायी निगंथ पार्श्वसंतानीय पेढालपुत्र उदक-नामक निगंथ ठहरा था।

१—भगवती सूत्र शतक ७, उद्देशा १०

२—यह नालंदा राजगृह से १ योजन की दूरी पर बतायी गयी है (सुमंगल विलासिनी १, पृष्ठ ३५) वर्तमान नालंदा राजगृह से ७ मील की दूरी पर है (प्राचीन तीर्थमाला संग्रह, भाग १, भूमिका, पृष्ठ १८,१९) यह स्थान बिहार शरीफ से ७ मील दक्षिण-पश्चिम है। (नालंदा ऐण्ड इट्स एपीग्राफिक मिटीरियल मेमायर्स आव आर्क्योलाजिकल सर्वे आव इंडिया—नं० ६६ पृष्ठ १)

एक बार गौतम स्वामी के पास आकर पेढालपुत्र उदक ने कहा—"हे आयुष्मान गौतम! निश्चय ही कुमारपुत्र-नामके श्रमण-निर्ग्रंथ हैं। वे तुम्हारे प्रवचन को प्ररूपित करने वाले हैं। व्रत-नियम लेने के लिए आये हुए गृहपति श्रमणोपासकों को वह इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हैं—"त्रस प्राणियों को दंड—अर्थात् विनाश—उनका त्याग करे।" इस प्रकार वे प्राणातिपात से विरति कराते हैं। राजादिक के अभियोग के कारण जिन प्राणियों का उपघात होता हो, उनको छोड़कर

(पृष्ठ २५२ का शेषांक पाद टीप्पणी)

३—यहाँ प्राकृत में 'उदगसाला' का प्रयोग हुआ है। जैकोवी ने 'सेक्रेड बुक्स आव द ईस्ट' वाल्यूम ४५ सूत्रकृतांग (पृष्ठ ४२०) में तथा गोपालदास जीवाभाई पटेल ने 'महावीर तो संयम धर्म (सूत्रकृतांग का छायानुवाद ८२, गुजराती पृष्ठ २३२ तथा हिन्दी पृष्ठ १२७) में उदकशाला का अर्थ स्नानगृह किया है। अभिधान चिंतामणि सटीक भूमिकांड श्लोक ६७-पृष्ठ ३६६ में 'प्रपा पानीयशाला स्यात्' लिखा है। अर्थात् प्रपा और पानीयशाला समानार्थी है। ऐसा ही उल्लेख अमर-कोष सटीक (व्यंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ ६५ श्लोक ७ में भी है। रतनचन्द ने अर्द्ध-मागधी कोष (भाग २, पृष्ठ २१८) पर उसका अर्थ प्याऊ लिखा है। यही अर्थ ठीक है।

४—गोपालदास जीवाभाई पटेल ने प्राकृत शब्द 'हत्थिजामे' से अपने हिन्दी अनुवाद (पृष्ठ १२७) पर 'हस्तिकाम' कर दिया है। 'हस्तिजाम' से हस्तियाम शब्द बनेगा हस्तिकाम नहीं।

भगवान्—"कालोदायी ! केवल एक रूपी अजीवकाय पुद्गलास्तिकाय पर ही बैठने आदि की क्रिया हो सकती है। अन्य पर नहीं।"

कालोदायी—पुद्गलास्तिकाय में जीवों के दुष्ट विपाक कर्म लगते हैं ?"

भगवान्—"नहीं कालोदायिन् ! ऐसा नहीं हो सकता। परन्तु अरुपी जीवस्तिकाय के विषय में पाप फल-विपाक सहित पापकर्म लगता है।"

इस प्रकार भगवान् से उत्तर पाकर कालोदायी को बोध हो गया। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन और नमस्कार किया और बोला—"भगवन् ! मैं आपसे विशेष धर्म-चर्चा सुनना चाहता हूँ।"

भगवान् का उपदेश सुनकर कालोदायी स्कंदक की तरह प्रव्रजित हो गया और ११ अंग आदि का अध्याय करके वह विचरने लगा।[1]

उदक को उत्तर

राजगृह-नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिशा में नालंदा[1] नाम की बाहिरिका (उपनगर) थी। उसनें अनेक भवन थे। उस नालंदा-नगर में लेप-नामक एक धनवान गाथापति रहता था। वह श्रमणोपासक था। नालंदा के

एक बार गौतम स्वामी के पास आकर पेढालपुत्र उदक ने कहा—"हे आयुष्मान गौतम! निश्चय ही कुमारपुत्र[1]-नामके श्रमण-निर्ग्रंथ हैं। वे तुम्हारे प्रवचन को प्ररूपित करने वाले हैं। व्रत-नियम[2] लेने के लिए आये हुए गृहपति श्रमणोपासकों को वह इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हैं—"त्रस प्राणियों को दंड—अर्थात् विनाश—उनका त्याग करे।" इस प्रकार वे प्राणातिपात से विरति कराते हैं। राजादिक के अभियोग के कारण जिन प्राणियों का उपघात होता हो, उनको छोड़कर

(पृष्ठ २५२ का शेषांक पाद टीप्पणी)

३—यहाँ प्राकृत में 'उदगसाला' का प्रयोग हुआ है। जैकोबी ने 'सेक्रेड बुक्स आव द ईस्ट' वाल्यूम ४५ सूत्रकृतांग (पृष्ठ ४२०) में तथा गोपालदास जीवाभाई पटेल ने 'महावीर तो संयम धर्म (सूत्रकृतांग का छायानुवाद ८२, गुजराती पृष्ठ २३२ तथा हिन्दी पृष्ठ १२७) में उदकशाला का अर्थ स्नानगृह किया हैं। अभिधान चिंतामणि सटीक भूमिकांड श्लोक ६७ पृष्ठ ३९९ में 'प्रपा पानीयशाला स्यात्' लिखा है। अर्थात् प्रपा और पानीयशाला समानार्थी है। ऐसा ही उल्लेख अमर-कोष सटीक (व्यंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ ६५ श्लोक ७ में भी है। रतनचन्द ने अर्द्ध-मागधी कोष (भाग २, पृष्ठ २१८) पर उसका अर्थ प्याऊ लिखा है। यही अर्थ ठीक है।

४—गोपालदास जीवाभाई पटेल ने प्राकृत शब्द 'हत्थिजामे' से अपने हिन्दी अनुवाद (पृष्ठ १२७) पर 'हस्तिकाम' कर दिया है। 'हस्तिजाम' से हस्तियाम शब्द बनेगा हस्तिकाम नहीं।

१—इस पर टीकाकार ने लिखा है—'निर्गंथायुष्मदीय' तुम्हारे निर्गंथ (सूत्र-कृतांग बाबूवाला पृष्ठ ९९६) भगवान् महावीर के साधु

२—यहाँ मूल शब्द 'उवसंपन्नं' है। इसका अर्थ जैकोबी ने 'सेक्रेड बुक आफ द ईस्ट' वाल्यूम ४५ सूत्रकृतांग पृष्ठ ४२१ में 'जीलस' लिखा है। टीकाकार ने 'नियम-योत्थित' इसकी टीका की है और दीपिका में 'नियमग्रहणोद्यतं' लिखा है (सूत्रकृतांग बाबूवाला, पृष्ठ ९९६,९९५)

वह अन्य सब की विरति कराते हैं। तो इस प्रकार स्थूलप्राणातिपात की विरति करते हुए अन्य जीव को उपघात की अनुमति का दोष लगता है ?

"अहो गौतम ! इस प्रकार वाक्यालंकार से त्रस प्राणियों को दंड का निषेध करके प्रत्याख्यान करते हुए दुष्ट प्रत्याख्यान होता है। इस प्रकार प्रत्याख्यान करनेवाले दुष्ट प्रत्याख्यान कराते हैं। इस रूप में प्रत्याख्यान करने वाला श्रावक और प्रत्याख्यान कराने वाले साधु दोनों ही अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन करते हैं। किस कारण के वशीभूत होकर वह प्रतिज्ञा भंग करते हैं ? अब मैं कारण बताता हूँ। निश्चय ही संसारी जीव जो पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति-रूप स्थावर जीव हैं, वे कर्म के उदय से त्रस-रूप में उत्पन्न होते हैं। तथा त्रस जो द्विइंद्रियादिक जीव हैं, वे स्थावर-रूप से उत्पन्न होते हैं। स्थावर की काया के बाद त्रस-रूप में और त्रस-काया के बाद स्थावर-रूप में उत्पन्न होते हैं। इस कारण से त्रसजीव स्थावर-रूप में उत्पन्न होने के बाद उन स्थानक त्रसकाय का हनन प्रतिज्ञाभंग है।

"यदि प्रतिज्ञा इस रूप में हो तो हनन न हो—राजाज्ञा आदि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बाँधने-छोड़ने के अतिरिक्त मैं त्रसभूत जीवों की हिंसा नहीं करूँगा।"

"इस प्रकार 'भूत' इस विशेषण के सामर्थ्य से उक्त दोषापत्ति टल जाती है। इस पर भी जो क्रोध अथवा लोभ से दूसरों को निर्विशेषण प्रत्याख्यान कराते हैं, वह न्याय नहीं है। क्यों गौतम ? मेरी यह बात तुमको ठीक जँचती है न ?"

पेढालपुत्र उदक के प्रश्न को सुनकर गौतम स्वामी ने कहा—"हे आयुष्मान् उदक ! तुमने जो बात कही वह मुझे जँचती नहीं है। जो श्रमण-ब्राह्मण 'भूत' शब्द जोड़कर त्रस जीवों का प्रत्याख्यान करें', ऐसा कहते

और प्ररूपते हैं, वह निश्चय ही श्रमण–निर्गंथ नहीं हैं; कारण कि, वह यह निरति भाषा बोलते हैं–वह अनुतापित भाषा बोलते हैं। और, श्रमण-ब्राह्मणों पर झूठा आरोप लगाते हैं। यही नहीं, बल्कि प्राणी-विशेष की हिंसा को छोड़ने वाले को भी वे दोषी ठहराते हैं; क्योंकि प्राणी संसारी है। और, वे त्रस मिटकर स्थावर होते हैं तथा स्थावरकाय त्रस होते हैं। संसारी जीवों की यही स्थिति है। इस कारण जब वे त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं तब त्रस कहलाते हैं और तभी त्रस-हिंसाका जिसने प्रत्याख्यान किया है, उसके लिए वे अघात्य होते हैं।"

फिर उद्क ने पूछा—"हे आयुष्मान् गौतम! आप प्राणी किसे कहते हैं?"

गौतम—"आयुष्मान उद्क! त्रस-जीव उसको कहते हैं जिनको त्रस-रूप पैदा होनेके कर्मफल भोगने के लिए लगे होते हैं। इसी कारण उनको वह नामकर्म लगा होता है। ऐसा ही स्थावर-जीवों के सम्बन्ध में समझा जाना चाहिए। जिसे तुम त्रसभूत प्राण कहते हो उसे मैं 'त्रसप्राण' कहता हूँ और जिसे हम 'त्रसप्राण' कहते हैं, उसे ही तुम त्रसभूत प्राण कह रहे हो। तुम एक को ठीक कहते हो और दूसरे को गलत, यह न्याय-मार्ग नहीं है?"

"कोई एक हल्के कर्म वाला मनुष्य हो, और वह प्रव्रज्या पालने में असमर्थ है, उसने पहले कहा हो कि मैं मुंडित होने में समर्थ नहीं हूँ। गृहवास त्याग कर मैं अनगारपना स्वीकार नहीं कर सकता। पर, वह गृह-वास से थक कर प्रव्रज्या लेकर साधुपना पालता है। पहले तो देशविरति-रूप श्रावक के धर्म का वह पालन करता है और अनुक्रम से पीछे श्रमण-धर्म का पालन करता है। वह इस प्रकार का प्रत्याख्यान करता है और कहता है कि, राजादिक के अभियोग करी त्रस-प्राणी को घात से हमारा व्रत भंग नहीं होगा।

"त्रस मर कर स्थावर होते हैं। अतः त्रस-हिंसा के प्रत्याख्यानी के

हाथ से उनकी हिंसा होने पर उसके प्रत्याख्यान का भंग हो जाता है, तुम्हारा ऐसा कथन ठीक नहीं है; क्योंकि त्रसनामकर्म के उदय से जीव 'त्रस' कहलाते हैं, परन्तु जब उनका 'त्रस' गति का आयुष्य क्षीण हो जाता है और त्रसकाय की स्थिति छोड़कर वे स्थावर-काय में उत्पन्न होते हैं। तब उनमें स्थावर नामकर्म का उदय होता है और वे स्थावरकायिक कहलाते हैं। इसी तरह स्थावरकाय का आयुष्य पूर्ण कर जब वे त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं, तब वे त्रस भी कहलाते हैं, प्राण भी कहलाते हैं। उनका शरीर बड़ा होता है और आयुष्य भी लम्बी होती है।"

उदक—"हे आयुष्मान गौतम ? ऐसा भी कोई समय आ ही सकता है जब सब के सब त्रस-जीव स्थावररूप ही उत्पन्न हों और त्रस-जीवों की हिंसा न करने की इच्छा वाले श्रमणोपासक को ऐसा नियम लेने और हिंसा करने को ही न रहे !"

गौतम स्वामी—"नहीं। हमारे मत के अनुसार ऐसा कभी नहीं हो सकता; क्योंकि सब जीवों की मति, गति और कृति ऐसी ही एक साथ हो जावें कि वे सब स्थावर-रूप हो उत्पन्न हो, ऐसा सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि, प्रत्येक समय भिन्न-भिन्न शक्ति और पुरुषार्थ वाले जीव अपने-अपने लिए भिन्न-भिन्न गति तैयार करते हैं, कि जैसे कितने ही श्रमणोपासक प्रव्रज्या लेने की शक्ति न होने से पौषध, अणुव्रत आदि नियमों से अपने लिए शुभ ऐसी देवगति अथवा सुन्दर कुलवाली मनुष्यगति तैयार करते हैं और कितने ही बड़ी इच्छा प्रवृत्ति और परिग्रह से युक्त अधार्मिक मनुष्य अपने लिए नरकादि गति तैयार करते हैं।

"दूसरे अनेक अल्प इच्छा, प्रवृत्ति और परिग्रह से मुक्त धार्मिक मनुष्य देवगति अथवा मनुष्यगति तैयार करते हैं; दूसरे अनेक अरण्य में, आश्रमों में, गाँव के बाहर रहने वाले तथा गुप्त क्रियादि साधन करने वाले तापस आदि संयम और विरति को स्वीकार न करके कर्मयोगों में आसक्त और

मूर्छित रहकर अपने लिए आसुरी और पातकी के स्थान में जन्म लेने और वहाँ से छूटने पर भी अंधे, बहरे या गूँगे होकर दुर्गति प्राप्त करते हैं।

"और भी कितने ही श्रमणोपासक जिनसे पोपधव्रत या मरणान्तिक संलेखना जैसे कठिन व्रत नहीं पाले जा सकते, वे अपनी प्रवृत्ति के स्थान की मर्यादा घटाने के लिए सामायिक देशावकाशिव व्रत-धारण करते हैं। इस प्रकार के मर्यादा के बाहर सब जीवों की हिंसा का त्याग करते हैं और मर्यादा में त्रस-जीवों की हिंसा न करने का व्रत लेते हैं। वे मरने के बाद उस मर्यादा में जो भी त्रस-जीव होते हैं, उनमें फिर जन्म धारण करते हैं अथवा उस मर्यादा में के स्थावर-जीव होते हैं। उस मर्यादा में के त्रस-स्थावर जीव भी आयुष्य पूर्ण होने पर उस मर्यादा में त्रस-रूप जन्म लेते हैं अथवा मर्यादा में के स्थावर जीव होते हैं अथवा उस मर्यादा के बाहर के त्रस-स्तावर जीव उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मर्यादा के बाहर के त्रस और स्थावर जीव भी जन्म लेते हैं।

"इस रूप में जहाँ विभिन्न जीव अपने-अपने विभिन्न कर्मों के अनुसार विभिन्न गति को प्राप्त करते रहते हैं, वहाँ ऐसा कैसे हो सकता है कि सब जीव एक समान ही गति को प्राप्त हों? और, विभिन्न जीव विभिन्न आयुष्य वाले होते हैं इससे वे विभिन्न समय पर मर कर विभिन्न गति प्राप्त करते हैं। इस कारण ऐसा कभी नहीं हो सकता कि, सब एक ही साथ मर कर एक समान ही गति प्राप्त करें और ऐसा अवसर आये कि जिसके कारण किसी को व्रत लेना और हिंसा करना ही न रहे।"

इस प्रकार कहने के पश्चात् गौतम स्वामी ने कहा—"हे आयुष्मान उदक! जो मनुष्य पापकर्म को त्यागने के लिए ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्राप्त करके भी किसी दूसरे श्रमण-ब्राह्मण की झूठी निंदा करता है और वह भले ही उनको अपना मित्र मानता हो, तो भी वह अपना परलोक बिगाड़ता है।"

इसके बाद पेढालपुत्र उदक गौतम स्वामी को नमस्कार आदि आदर

दिये बिना जाने लगा। इस पर गौतम स्वामी ने फिर उससे कहा—"हे आयुष्मान्! किसी भी शिष्ट श्रमण या ब्राह्मण के पास से धर्मयुक्त एक भी वाक्य सुनने या सीखने को मिलने पर अपने को अपनी बुद्धि से विचार करने पर यदि ऐसा लगे कि आज मुझे जो उत्तम योग-क्षेम के स्थान पर पहुँचाया है, तो उस मनुष्य को उस श्रमण-ब्राह्मण का आदर करना चाहिए, उनका सम्मान करना चाहिए, तथा कल्याणकारी मंगलमय देवता के समान उसकी उपासना करनी चाहिए।

गौतम स्वामी का उपदेश सुनकर पेढालपुत्र उदक बोला—"इसके पूर्व मैंने ऐसे वचन न सुने थे और न जाने थे। इन शब्दों को सुनकर अब मुझे विश्वास हो गया। मैं स्वीकार करता हूँ कि आपका कथन यथार्थ है।"

तब गौतम स्वामी ने कहा—"हे आर्य! इन शब्दों पर श्रद्धा, विश्वास और रुचि कर; क्योंकि जो मैंने कहा है वह यथार्थ है।"

इस पर पेढालपुत्र ने कहा कि चतुर्यामधर्म के स्थान पर मैं पंच-महाव्रत स्वीकार करना चाहता हूँ। गौतम स्वामी ने उस उदक से कहा—"जिसमें सुख हो, वह करो।"

तब पेढालपुत्र उदक ने भगवान् के पास जाकर उनकी वंदना की और परिक्रमा किया तथा उनका पंचमहाव्रत स्वीकार करके प्रव्रजित हो गया।[1]

इसी वर्ष जालि, मयालि, आदि अनेक अनगारों ने विपुलाचल पर अनशन करके देह छोड़ा।

अपना यह वर्षावास भगवान् ने नालंदा में बिताया।

१—सूत्रकृतांग (सटीक बाबूवाला) श्रुतस्कंध २, नालंदीयाध्ययन ७, पृष्ठ ९५४–१०२०

३५-वाँ वर्षावास

काल चार प्रकार के

वर्षा ऋतु पूरी होने पर भगवान् फिर विदेह की ओर चले और वाणिज्य ग्राम में पहुँचे। वाणिज्य ग्राम के निकट द्विपलाश-चैत्य था। उसमें पृथिवीशिलापट्टक था। उस वाणिज्यग्राम-नगर में सुदर्शन-नामक एक श्रेष्ठि रहता था। सुदर्शन बड़ा धनी व्यक्ति था। और, जीवतत्व का जानकार श्रमणोपासक था।

भगवान् महावीर के आगमन का समाचार सुनकर जन समुदाय भगवान् का दर्शन करने चला। भगवान् के आगमन की बात सुनकर सुदर्शन श्रेष्ठि स्नान आदि करके और अलंकारों से विभूषित होकर नगर के मध्य में होता हुआ पाँव-पाँव द्विपलास की ओर चला। द्विपलास-चैत्य के निकट पहुँच कर उसने पाँचो अभिगमों का त्याग किया और भगवान् के निकट जाकर ऋषभदत्त के समान[१] भगवान् की पर्युपासना की। भगवान् का धर्मोपदेश समाप्त हो जाने पर सुदर्शन सेठ ने भगवान् से पूछा-"हे भगवान् काल कितने प्रकार का है?"

भगवान्—"काल चार प्रकार का है। उनके नाम है—१प्रमाणकाल[२] यथायुर्निर्वृत्ति काल[३], ३ मरणकाल[४], ४ अद्धा काल[५]।

---

१ भगवती सूत्र श०६ उ०३३

२—प्रमाण काल की टीका अभयदेव सूरि ने इस प्रकार की है—'प्रमाणकाले' त्ति' प्रमीयते—परिच्छिद्यते येन वर्षशतादि तत् प्रमाणं स चासौ कालश्चेति प्रमाण

सुदर्शन—"हे भगवान् प्रमाणकाल कितने प्रकार का है ?"

भगवान्—"हे सुदर्शन ! प्रमाणकाल दो प्रकार का है—दिवसप्र काल और रात्रिप्रमाणकाल। चार पौरुपी का दिन होता है और : पौरुपी की रात्रि होती है। और, अधिक से अधिक साढ़े चार मुहूर्त पौरुपी दिन की और ऐसी ही रात्रि की होती है। और, कम से कम त मुहूर्त की पौरुपी दिन और रात्रि की होती है।

सुदर्शन—"जब अधिक-से-अधिक ४।। मुहूर्त की पौरुपी दिन अथ रात की होती है, तो मुहूर्त का कितना भाग घटते-घटते दिन अथवा रा की ३ मुहूर्त की पौरुपी होती है ? और, जब दिन अथवा रात्रि की ३ मुहू की पौरुपी होती है तो मुहूर्त का कितना भाग बढ़ता-बढ़ता, ४।। मुहूर्त क पौरुपी दिन अथवा रात्रि की होती है।

भगवान्—"हे सुदर्शन ! जब दिन अथवा रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुपी होती है, तब मुहूर्त का १२२-वाँ भाग घटते-घटते दिन अथवा रात्रि की तीन मुहूर्त की पौरुपी होती है। और, जब ३ मुहूर्त की पौरुपी होती है तो उसी क्रम से बढ़ते-बढ़ते ४।। मुहूर्त की पौरुपी होती है।

सुदर्शन—"हे भगवन् ! किस दिवस अथवा रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त

(पृष्ठ २५९ की पादटिप्पणि का शेषांश)

कालः प्रमाणं वा परिच्छेदनं वर्षादिस्तत्प्रधानस्तदर्थो वा कालः प्रमाणकालः—अद्धा-कालस्य विशेषो दिवसादि लक्षणः पत्र ९७८

३—अहाउनिव्वत्तिकाले—त्ति यथा—येन प्रकारेण आयुषो निवृत्तिः बन्धनं तथा यः कालः—अवस्थितिरसौ यथानिर्वृत्तिकालो-नारकाद्यायुष्कलक्षणः, अयं चाद्धाकाल एवायुः कर्मानुभव विशिष्टः सर्वेषामेव संसारि जीवानां स्यात्

४—'मरणकाले' त्ति मरणेन विशिष्टः कालः मरणकालः—अद्धाकाल एव, मरणमेव वा कालो मरणस्य काल पर्याय त्वान्मरण कालः

५—'अद्धाकाले' त्ति अद्धा समयादयो विशेषास्तद्रूपः कालोऽद्धाकालः चन्द्रादि क्रिया विशिष्टोऽर्द्धतृतीयद्वीप समुद्रान्तवर्ती समयादिः पत्र ९७९

की उत्कृष्ट पौरुषी होती है ? और, किस दिवस अथवा रात्रि में तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है ?"

भगवान्—"हे सुदर्शन ! जब १८ मुहूर्त का बड़ा दिन और १२ मुहूर्त की छोटी रात्रि होती है, तब ४॥ मुहूर्त की पौरुषी दिन में होती है और ३ मुहूर्त की जघन्य पौरुषी रात्रि में होती है। जब १८ मुहूर्त की रात्रि और १२ मुहूर्त का दिन होता है तो ४॥ मुहूर्त की पौरुषी रात्रि में और ३ मुहूर्त की पौरुषी दिन में होती है।

सुदर्शन—"हे भगवान् ! १८ मुहूर्त का बड़ा दिन और १२ मुहूर्त की रात्रि कब होती है ? और १८ मुहूर्त की रात और १२ मुहूर्त का दिन कब होता है।

भगवान्—"आषाढ़ पूर्णिमा को १८ मुहूर्त का दिन होता है और १२ मुहूर्त की रात्रि होती है तथा पौष मास की पूर्णिमा को १८ मुहूर्त की रात्रि और १२ मुहूर्त का दिन होता है।

सुदर्शन—"हे भगवान् ! दिन और रात्रि क्या दोनों बराबर होते हैं ?"

भगवान्—"हाँ !"

सुदर्शन—"दिन और रात्रि कब बराबर होते हैं ?"

भगवान्—"चैत्र पूर्णिमा और आश्विन मास की पूर्णिमा को दिन और रात बराबर होते हैं। तब १५ मुहूर्त का दिन और १५ मुहूर्त की रात्रि होती है। उसी समय ४ मुहूर्त में चौथाई मुहूर्त कम की एक पौरुषी दिन की और उतने की ही रात्रि की होती है।"

सुदर्शन—"भगवान्! मरणकाल क्या है?"

भगवान्—"शरीर से जीव को अथवा जीव से शरीर का वियोग हो तो उसे मरणकाल कहते हैं।"

सुदर्शन—"हे भगवान्! अद्धाकाल कितने प्रकार का है?"

भगवान्—"अद्धाकाल अनेक प्रकार का कहा गया है। समयरूप, आवलिकारूप, यावत् अवसर्पिणीरूप।" (इन सबका सविस्तार वर्णन हम तीर्थंकर महावीर भाग १ पृष्ठ ६–२० तक कर चुके हैं।)

सुदर्शन—"हे भगवन्! पल्योपम अथवा सागरोपम की क्या आवश्यकता है?"

भगवान्—हे सुदर्शन! नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य तथा देवों के आयुष्य के माप के लिए इस पल्योपम अथवा सागरोपम की आवश्यकता पड़ती है।"

सुदर्शन—"हे भगवन्! नैरयिक की स्थिति कितने काल तक की है?" भगवान् ने इस प्रश्न का विस्तार से उत्तर दिया।[1]

उसके बाद भगवान् ने सुदर्शन श्रेष्ठि के पूर्वभव का वृतांत कहना प्रारम्भ किया—

"हे सुदर्शन! हस्तिनापुर-नामक नगर में बल–नामका एक राजा था। उसकी पत्नी का नाम प्रभावती था। एक बार रात में सोते हुए उसने महास्वप्न देखा कि, एक सिंह आकाश से उतर कर मुँह पर प्रवेश कर रहा है। उसके बाद वह जगी और उसने राजा से अपना स्वप्न बताया। राजा ने उसके स्वप्न की बड़ी प्रशंसा की। फिर राजा ने स्वप्नपाठकों को बुलाया। उन लोगों ने स्वप्न का फल बताया। उचित समय पर पुत्र का जन्म हुआ उसका नाम यह महब्बलनाम पड़ा। (उसके पालन-पोषण

१—प्रज्ञा० पद ४ प० १६८—१७८

शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था तथा आठ श्रेष्ठ कन्याओं के साथ उसके विवाह का विस्तृत विरण भगवती सूत्र में आता है।)

"उस समय विमलनाथ तीर्थंकर के प्रपौत्र-प्रशिष्य धर्मघोष नामक अनगार थे। वे जाति सम्पन्न[1] थे। यह सब वर्णन केशीकुमार के समान जान लेना चाहिए धर्मघोष पूजा शिष्यों के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए हस्तिनापुर-नामक नगर में आये और सहस्राम्रवन में ठहरे।

"धर्मघोष–मुनि के आगमन का समाचार सुनकर, लोग उनका दर्शन करने गये।

"लोगों को जाते देखकर जमालि के समान महब्बल ने बुलाकर भीड़ का कारण पूछा और धर्मघोष मुनि के आगमन का समाचार सुनकर महब्बल भी धर्मघोष के निकट गया। धर्मोपदेश की समाप्ति के बाद महब्बल ने दीक्षा लेने का विचार प्रकट किया।

"घर आकर जब उसने अपने पिता से अनुमति माँगी तो उसके पिता ने पहले तो मना किया पर बाद में उसका एक दिन के लिए राज्याभिषेक किया। उसके बाद महब्बल ने दीक्षा ले ली।

"महब्बल ने धर्मघोष के निकट १४ पूर्व पढ़े। चतुर्थ भक्त यावत् विचित्र तपकर्म किये। १२ वर्षों तक श्रमण-पर्याय पालकर, मासिक संलेखना करके साठ भक्तों का त्याग करके आलोचना-प्रतिक्रमण करके समाधि पूर्व मृत्यु को प्राप्त कर ब्रह्मलोक कल्प में देवरूप में उत्पन्न हुआ। दस सागरोपम वहाँ बिताकर तुम यहाँ वाणिज्यग्राम में श्रेष्ठि कुल में उत्पन्न हुए।"

यह सब सुनकर सुदर्शन ने दीक्षा ले ली और भगवान् के निकट रहकर १२ वर्षों तक श्रमण पर्याय पाला।[2]

१—राजप्रश्नीय, प ११८—१

२—भगवतीसूत्र सटीक शतक ११, उद्देशा ११ पत्र ९७७

उसी समय की कथा कि भगवान् के गणधर इन्द्रभूति भिक्षा के लिए जब बाहर निकले और आनन्द श्रावक को देखने गये। उस समय मरणांतक अनशन स्वीकार करके आनन्द दर्भ की पथारी पर लेटा हुआ। इन्द्रभूति को आनन्द ने अपने अवधिज्ञान की सूचना दी। इन्द्रभूति को इस पर शंका हुई। उन्होंने भगवान् से पूछा। सबका विस्तृत विवरण हमने मुख्य श्रावकों के प्रसंग में है। अपना वह वर्षावास भगवान् ने वैशाली में बिताया।

—:*:—

३६-वाँ वर्षावास

चिलात् साधु हुआ

उस समय कोशलभूमि में साकेत-नामक नगर था। वहाँ शत्रुञ्जय-नाम का राजा राज्य करता था। उस नगर में जिनदेव-नाम का एक श्रावक रहता था। दिग्यात्रा करता हुआ वह कोटिवर्ष-नामक नगर में जा पहुँचता। उन दिनों वहाँ चिलात् नाम का राजा राज्य करता था। जिनदेव ने चिलात् को विचित्र मणि-रत्न तथा वस्त्र भेंट किये। उन बहुमूल्य वस्तुओं को देखकर चिलात् ने पूछा—"ऐसे रत्न कहाँ उत्पन्न होते हैं ?"

जिनदेव ने कहा—"ये हमारे देश में उत्पन्न होते हैं ?"

चिलात् ने कहा—"मुझे उस देश के राजा का भय है, अथवा मैं चलकर उस स्थान पर स्वयं रत्नों को देखता।"

जिनदेव ने अपने राजा की अनुमति मँगा दी। अतः चिलात साकेत आया।

इसी अवसर पर भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साकेत आये। भगवान् के आगमन का समाचार सुनकर सभी दर्शन करने चल पड़े।

शत्रुंजय-राजा भी बड़ी धूमधाम से सपरिवार भगवान् की वंदना करने गया।

भीड़भाड़ देखकर चिलात् ने पूछा—"जिनदेव, ये लोग कहाँ जा रहे हैं।"

जिनदेव—"रत्नों का व्यापारी आया है।"

चिलात् भी जिनदेव के साथ भगवान् का दर्शन करने गया और उसने रत्नों के सम्बन्ध में भगवान् से प्रश्न पूछे।

भगवान् ने कहा—"रत्न दो प्रकार के हैं—१ भावरत्न और द्रव्यरत्न।

फिर चिलात् ने भगवान् से भावरत्न माँगे। और, भगवान् ने उसे रजोहरण आदि दिखलाये।

इस प्रकार चिलात् प्रव्रजित हो गया।[1]

अपना वह वर्षावास भगवान् वैशाली में बिताया।

—:*:—

१—आवश्यक चूर्णि उत्तरार्द्ध पत्र २०३-२०४
आवश्यक हारिभद्रीय ७१५-२—७१६-१
आवश्यक निर्युक्ति दीपिका–द्वितीय भाग गा० १३०५ पत्र १०६-२

कोटिवर्ष लाढ़ देश की राजधानी थी। इसके सम्बन्ध में हम सविस्तार तीर्थङ्कर महावीर भाग १ पृष्ठ २०२, २११-२१३ पर लिख चुके हैं। यह आर्यदेश में था। इसका उल्लेख जैन-शास्त्रों में जहाँ-जहाँ आता है, उसे भी हम तीर्थङ्कर महावीर भाग १ पृष्ठ ४२-४६ लिख चुके है। श्रमण भगवान् में कल्याण विजयजी ने लिखा है कि महावीर के काल में कोटिवर्ष में किरात जाति का राज्य था। किरात लोग किरात देश में रहते थे (देखिये ज्ञाताधर्म कथा सटीक भाग १, अ० १, पत्र ४१-१-४५-१ यह किरात देश लाढ़ देश से भिन्न था, ऐसा उल्लेख जैन-शास्त्रों में मिलता है। जैन-शास्त्रों में जहाँ कोटिवर्ष को आर्यदेशों में गिना है, वहाँ किरात अनार्य देश बताया गया है (प्रवचन सारोद्धार सटीक उत्तरार्द्ध गाथा १५८६ पत्र ४४५-२ प्रश्न व्याकरण सटीक पत्र १३-२ सूत्रकृतांग सटीक पत्र १२२-१)

किरातों का उल्लेख महाभारत में भी आता है (XII, २०७, ४७) इनका उल्लेख यवन, काम्बोज, गांधार और बर्बरों के साथ किया गया है। वहाँ यह पाठ आता है :—

पुण्ड्रा भर्गा किरातश्च सुदृष्टा यमुनास्तथा।
शका निषादा निषधास्तथैवानर्तनै कृताः॥

(भीष्मपर्व अ० ६, श्लोक ४१, पृष्ठ १५)

श्रीमद्भागवत (ii, ५, १८) में भी इसे आर्य क्षेत्र के बाहर बताया गया है। किरात हूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कासा आभीरकङ्का यवनाःखसादयं (भाग १, पृष्ठ १६१)

३७-वाँ वर्षावास

अन्यतीर्थिकों का शंका समाधान

वर्षावास समाप्त करके भगवान् विहार करते हुए राजगृह पहुँचे और गुणशिलक चैत्य में ठहरे। उस गुणशिलक चैत्य से थोड़ी ही दूर पर अन्यतीर्थिक रहते थे।

भगवान् महावीर के समवसरण के बाद जब परिषदा विसर्जित हुई तो उन अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवंतों से कहा—"हे आर्यो ! तुम त्रिविध-त्रिविध से असंयत, अविरत और अप्रतिहत पाप कर्म वाले हो।[1]"

तब स्थविर भगवंतों ने पूछा—"आर्यो ? आप ऐसा क्यों कहते हैं ?"

अन्य तीर्थिकों ने कहा—"तुम लोग अदत्त ग्रहण करते हो, अदत्त भोजन करते हो, अदत्त वस्तु का स्वाद लेते हो। अतः अदत्त ग्रहण करने से, अदत्त का भोजन करने से, अदत्त की अनुमति देने से तुमलोग त्रिविध-त्रिविध असंयत और अविरत यावत् एकान्त बाल समान हो।"

तब स्थविर भगवंतों ने पूछा—"आर्यो किस कारण से तुम कहते हो कि हम अदत्त लेते खाते हैं अथवा उसका स्वाद लेते हैं।

अन्यतीर्थिकों ने कहा—"आर्यो तुम्हारे धर्म में है—जो वस्तु दी जाती हो वह दी हुई नहीं है (दिज्जमाणे अदिन्ने), ग्रहण करायी जाती हो वह ग्रहण करायी गयी नहीं है (पडिग्गहेज्ज माणे अपडिग्गहिए), पात्र

१—जैसा कि भगवतीसूत्र सटीक शतक ७, उद्देसा २, सूत्र १ में वर्णित है।

में डाली जाती हो, वह डाली हुई नहीं है (निस्सरिज्जमाणे अणिसिट्ठे)। हे आर्यो ! तुम्हे दी जाती वस्तु जब तक तुम्हारे पात्र में नहीं पड़ जाती, और बीच में से ही कोई उस पदार्थ का अपहरण करले, तो वह गृहपति का पदार्थ ग्रहण करता है, ऐसा कहा जाता है। वह अपहरण करने वाला तुम्हारे पदार्थ का अपहरण नहीं करता, ऐसा माना जाता है। अतः इस रूप में तुम अदत्त ग्रहण करते हो, यावत् अदत्त की अनुमति देते हो। और इस प्रकार अदत्त ग्रहण करने से तुम यावत् एकान्त अज्ञ हो।

तब भगवंतों ने कहा—"हे आर्यो, हम अदत्त ग्रहण नहीं करते, अदत्त का भोजन नहीं करते, और अदत्त की अनुमति नहीं देते। हे आर्यो! हम लोग केवल दत्त पदार्थ को ग्रहण करते हैं, दत्त पदार्थ का ही भोजन करते हैं और दत्त की अनुमति देते हैं। इस रूप में हम त्रिविध-त्रिविध संयत विरत और पापकर्म का नाश करने वाले यावत् एकान्त पंडित हैं।[1]

अन्यतीर्थिकों ने कहा—"हे आर्यो! तुम लोग किस कारण से दत्त को ग्रहण करते हो यावत् दत्त की अनुमति देते हो और दत्त को ग्रहण करते यावत् एकान्त पंडित हो?"

स्थविर भगवंतों ने कहा—"हे आर्यो! हमारे मत में जो दिया जा रहा है, वह दिया हुआ है (दिज्जमाणे दिन्ने) जो ग्रहण कराया जा रहा है, वह ग्रहण किया हुआ है (पडिग्गहिज्जमाणे पडिग्गाहिए) जो वस्तु डाली जाती है, वह डाली हुई है (निस्सरिज्जमाणे निसिट्ठे)। हे आर्यो! दिया जाता हुआ पदार्थ जब तक पात्र में पड़ा न हो, और बीच में कोई अपहरण करे तो वह हमारे पदार्थ का अपहरण कहा जायेगा, गृहपति की वस्तु का अपहरण न कहा जायेगा, इस प्रकार हम दत्त का ग्रहण करते

१—जैसा कि शतक ७ उद्देशा ७ सूत्र १ में कहा गया है।

हैं, दत्त का ही भोजन करते हैं और दत्त की ही अनुमति देते हैं। इस प्रकार हम लोग त्रिविध-त्रिविध संयत् यावत् एकान्त पंडित हैं। पर हे आर्यो ! तुम लोग त्रिविध–त्रिविध असंयत् यावत् एकान्त बाल हो।"

अन्यतीर्थिकों ने पूछा—"हम लोगों को आप क्यों त्रिविध-त्रिविध यावत् एकान्त बाल कहते हैं ?"

स्थविर भगवन्तों ने कहा—"हे आर्यो ! तुम लोग अदत्त ग्रहण करते हो, अदत्त का भोजन करते हो और अदत्त की अनुमति देते हो। अदत्त को ग्रहण करते हुए यावत् एकान्त बाल हो।"

फिर अन्यतीर्थिकों ने पूछा—"ऐसा आप क्यों कहते हो ?"

स्थविर भगवन्तों ने कहा—"हे आर्यो ! तुम्हारे मत में दी जाती वस्तु दी हुई नहीं है (दिज्जमाणे अदिन्ने)। अतः वह वस्तु देने वाले की होगी, तुम्हारी नहीं। इस प्रकार तुम लोग अदत्त ग्रहण करने वाले यावत् एकान्त बाल हो।"

फिर अन्यतीर्थिकों ने कहा—"आप लोग त्रिविध–त्रिविध असंयत यावत् एकान्त बाल हैं ?"

स्थविर भगवन्तों ने कारण पूछा तो उन लोगों ने कहा—"आर्यो ! चलते हुए तुम जीव को दबाते हो, हनते हो पदाभिघात करते हो, और श्लिष्ट (संघार्पित) करते हो, संवहित (स्पर्शित) करते हो, परितापित करते हो, क्लान्त करते हो, इस प्रकार पृथ्वी के जीव को दबाते हुए यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत अविरत और यावत् एकान्त बाल समान हो।

तब स्थविर भगवंतों ने अन्यतीर्थिकों से कहा—"हे आर्यो ! गति करते हुए हम पृथ्वी के जीव को दबाते नहीं हैं, हनन नहीं करते हैं यावत् मारते नहीं है। हे आर्यो ! गति करते हम शरीर के कार्य के आश्रयी, योग

के आश्रयी और सत्य के आश्रयी एक स्थल से दूसरे स्थल पर जाते हैं। एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाते हैं। एक स्थल से दूसरे स्थल पर जाते हुए हम पृथ्वी के जीवों को दबाते अथवा हनन नहीं करते हैं। इस प्रकार हम त्रिविध-त्रिविध संयत् यावत् एकान्त पंडित हैं। पर, आप लोग त्रिविध-त्रिविध असंयत् यावत् एकान्त बाल हैं।"

ऐसा कहे जाने का कारण पूछने पर स्थविर भगवन्तों ने कहा—"तुम लोग पृथ्वी के जीवों को दबाते ही यावत् मारते हो। इस प्रकार भ्रमण करने से तुम लोग त्रिविध-त्रिविध यावत् एकान्त बाल हो।

अन्यतीर्थिकों ने कहा—"तुम्हारे मत से गम्यमान अगत, व्यतिक्रम्य माण अव्यतिक्रान्त और राजगृह को संप्रात होने का इच्छुक असंप्रात है।

इस पर स्थविर भगवन्तों ने कहा—"हमारे मत से गम्यमान अगत, व्यतिक्रम्यमाण अव्यतिक्रान्त और राजगृह को संप्रात करने की इच्छा वाला, असंप्रात नहीं कहे जाते। बल्कि, हमारे मत के अनुसार जो गम्यमाण वह गत (गएभाणे गए), व्यतिक्रम्यमाण वह व्यतिक्रान्त (वीतिक्कसिज्जमाने वीविक्कंते) और राजगृह प्रात करने की इच्छावाला संप्रात कहलाता है। तुम्हारे मत के अनुसार गम्यमान वह अगत (गम्ममाणे अगए), व्यतिक्रम्यमाण वह अव्यतिक्रान्त (वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिकंते) और राजगृह पहुँचने की इच्छावाले को असंप्रात कहते हैं।"

इस प्रकार अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर करके उन लोगों ने गतिप्रपा-नामक अध्ययन रचा।

गतिप्रपात कितने प्रकार का

गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! गतिप्रपात कितने प्रकार का है?" इस पर भगवान् ने उत्तर दिया—

"गतिप्रपात पाँच प्रकार का कहा गया है।"

१—प्रयोगगति, २ ततगति, ३ बंधनछेदनगति, ४ उपपातगति, ५ विहायोगगति[1]

यहाँ से प्रारम्भ करके सम्पूर्ण प्रयोगपद भगवान् ने इसी अवसर पर कहा ।[2]

कालोदायी की शंका का समाधान

उसी समय एक दिन जब भगवान् का धर्मोपदेश समाप्त हो गया और परिषदा वापस चली गयी तो कालोदायी अनगार ने भगवान् के निकट आकर उन्हें वंदन-नमस्कार किया और पूछा—"हे भगवन् ! जीवों ने पापकर्म पापविपाक (अशुभ फल) सहित होता है ?"

भगवान्—"हाँ !"

कालोदायी—"हे भगवन् ! पापकर्म अशुभ फल विपाक किस प्रकार होता है ?"

भगवान्—"हे कालोदायी जैसे कोई पुरुष सुन्दर थाली में राँधे हुए परिपक्व अठारह प्रकार के व्यंजनों से युक्त विष मिश्रित भोजन करे,

---

१—यहाँ भगवती सूत्र १०८ उ॰ ७ सूत्र ३३७ पत्र ६९७ में पाठ है-विहायोगती एत्तो आरब्भ पयोगपयं निरवसेसं भाणियव्व जाव सत्तं विहायगई । यह पूरा पाठ प्रज्ञापना सूत्र सटीक १६ प्रयोग पद सूत्र २०५, पत्र ३२५-२ से ३२७-२ में आता है । प्रज्ञापन में के प्रथम भेद प्रयोगगति १५ के भेद बताये गये हैं । उन १५ भेदों का उल्लेख समवायांगसूत्र सटीक, समवाय १५ पत्र २७-२ में भी आता है। पूर्व प्रयोग का अर्थ है—"पूर्वबद्ध कर्म के छूट जाने के बाद भी उससे प्राप्त वेग ।" 'गतिप्रपात' की टीका करते हुए भगवती की टीका में अभयदेव सूरि ने लिखा है—"गतिः प्रोच्यते—प्ररूप्यते यत्र तद् गतिप्रवादं-गतेर्वा प्रवृत्तेः क्रियायाः प्रपातः प्रपतनं सम्भवः प्रयोगादिष्वर्थेषु वर्त्तनं गतिप्रपात स्तत्प्रतिपादकमध्ययन गतिप्रपातं तत प्रज्ञापित-वन्तो प्रस्तावादिति ।

२—भगवती सूत्र सटीक शतक ८ उद्देश्य ७

तो वह भोजन प्रारम्भ में अच्छा लगता है पर उसके बाद उसका परि॰
बुरा होता है। इसी प्रकार हे कालोदायी ! जीवों का पापकर्म अशु
संयुक्त होता है !"

कालोदायी—"हे भगवन् ! जीवों का शुभकर्म क्या कल्या
विपाक संयुक्त होता है।"

भगवान्—"हाँ !"

कालोदायी—"जीवों के शुभकर्म कल्याणफलविपाक किस
होते हैं ?

भगवान्—"कालोदायी। जैसे कोई पुरुष सुन्दर थाली में
अठारह प्रकार के व्यंजन औषधि मिश्रित करे तो प्रारम्भ में व
अच्छा नहीं लगता पर उसका फल अच्छा होता है। उसी प्रका

कालोदायी—"हे भगवन्! ऐसा आप किस प्रकार कह रहे हैं?"

भगवान्—"हे कालोदायी! जो पुरुष अग्नि प्रदीप्त करता है, वह पुरुष बहुत से पृथिवीकाय का समारंभ करता है थोड़ा अग्निकाय का समारंभ करता है, बहुत से वायुकाय का समारंभ करता है, बहुत से वनस्पति काय का समारंभ करता है और बहुत से त्रसकाय का समारंभ करता है। और, जो आग को बुझाता है, वह थोड़े पृथ्वीकाय यावत् थोड़ा त्रसकाय का समारंभ करता है। इस कारण मैं कहता हूँ कि आग बुझाने वाला अल्पवेदना वाला होता है।

कालोदायी—"हे भगवान्! क्या उचित पुद्गल अवभास करता है, उद्योत करता है, तपता है और प्रकाश करता है?"

भगवान्—"हे कालोदायी! हाँ इस प्रकार है।

कालोदायी—"हे भगवन्! अचित्त होकर भी पुद्गल कैसे अवभास करता है यावत् प्रकाश करता है?"

भगवान्—"हे कालोदायी! क्रुद्ध हुए साधु की तेजोलेश्या निकल कर दूर पड़ती है। जहाँ-जहाँ वह पड़ती है, वहाँ-वहाँ वह अचित्त पुद्गल अवभास करे यावत् प्रकाश करे। इस प्रकार यह अचित्त पुद्गल अवभास करता है यावत् प्रकाश करता है।"

कालोदायी ने भगवान् का विवेचन स्वीकार कर लिया। बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम उपवास करते हुए अपनी आत्मा को वासित करते हुए अंत में कालोदायी कालासवेसियपुत्र की तरह सर्व दुःख रहित हुआ।[1]

इसी वर्ष प्रभास गणधर ने गुणशिलक चैत्र में एक मास का अनशन करके निर्वाण प्राप्त किया।

यह वर्षावास भगवान् ने राजगृह में बिताया।

१—भगवतीसूत्र सटीक शतक ७, उ० १० सूत्र

३८-वाँ वर्षावास

पुद्गल-परिणामों के सम्बन्ध में

वर्षावास के पश्चात् भगवान् गुणशिलक चैत्य में ही ठहरे थे कि, एक दिन गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! अन्यतीर्थिक कहते हैं कि, (**'एवं खलु चलमाणे अचलिए' यावत् 'निज्जरिज्जमाणे अणिज्जिने'**) जो चलता है, वह चला हुआ नहीं कहलाता और जो निर्जराता हो वह निर्जरित नहीं कहलाता है।

"दो परमाणु-पुद्गल परस्पर चिमटते नहीं; क्योंकि उनमें स्निग्धता का अभाव होता है।

"तीन परमाणु-पुद्गल परस्पर एक-दूसरे से चिमटे हैं क्योंकि उनमें स्निग्धता है। यदि उन तीन परमाणु-पुद्गलों का भाग करना हो तो उसका दो या तीन भाग हो सकता है। यदि उनका दो भाग किया जाये तो एक ओर डेढ़ और दूसरी ओर डेढ़ परमाणु होंगे और यदि तीन भाग किया जाये तो हर भाग में एक-एक परमाणु होगा। इसी प्रकार ४ परमाणु पुद्गल के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।

"पाँच परमाणु-पुद्गल एक दूसरे से चिमटते हैं और दुःख का रूप धारण करते हैं। वह दुःख शाश्वत है और सदा पूर्णरूप से उपचय प्राप्त करता है तथा अपचय प्राप्त करता है।

"बोलने के समय से पूर्व जो भाषा का पुद्गल है वह भाषा है। बोलने के समय की जो भाषा है, वह अभाषा है। बोलने के समय के पश्चात् जो (भाषा) बोली जा चुकी है, वह भाषा है।

"अतः बोलने से पूर्व की भाषा भाषा है, बोले जाने के समय की भाषा अभाषा है और बोले जाने के पश्चात् की भाषा भाषा है।

"जिस प्रकार पूर्व की भाषा भाषा है, बोली जाती भाषा अभाषा है, और बोली गयी भाषा भाषा है, तो क्या बोलते पुरुष की भाषा है या अनबोलते पुरुष की भाषा है। इसका उत्तर अन्यतीर्थिक देते हैं कि अन-बोलते की भाषा भाषा है पर बोलते पुरुष की भाषा भाषा नहीं है।

"जो पूर्व की क्रिया है, वह दुःखहेतु है। जो क्रिया की जा रही है, वह दुःख हेतु नहीं है। की गयी क्रिया अकारण से दुःख हेतु है, कारण से वह दुःख हेतु नहीं है।

"अकृत्य दुःख है, अस्पृश्य दुःख है और अक्रियमाणकृत दुःख है। उनको न करके प्राण का, भूत का, जीव का और सत्व वेदना का वेद है। अन्यतीर्थिकों का इस प्रकार का मत है।"

प्रश्नों को सुनकर भगवान् बोले—"हे गौतम! अन्यतीर्थिकों की बात ठीक नहीं है। मैं कहता हूँ **'चले माणे चलिए जाव निज्जरिज्ज-माणे निज्जिन्ने'** जो चलता है वह चला हुआ है यावत् जो निर्जरित होता है, वह निर्जरित है।

"दो परमाणु-पुद्गल एक-एक परस्पर चिमट जाते हैं। इसका कारण यह है कि दोनों में स्निग्धता होती है। उनका दो भाग हो सकता है। यदि उसका दो भाग किया जाये तो एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और दूसरी ओर एक परमाणु-पुद्गल आयेगा।

"तीन परमाणु-पुद्गल एक-एक परस्पर चिमट जाते हैं। इसका कारण है कि उनमें स्निग्धता होती है। उन तीन पुद्गलों के दो या तीन भाग हो सकते हैं। यदि उनका दो भाग किया जाये तो एक ओर एक परमाणु-पुद्गल होगा और दूसरी ओर दो प्रदेश वाला एक स्कंध होगा। और, यदि उसका तीन भाग किया जाये तो एक-एक परमाणु पुद्गल पृथक-पृथक हो

जायेगा। इसी प्रकार चार परमाणु-पुद्गलों के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए।

"पाँच परमाणु-पुद्गल परस्पर चिपट कर एक स्कन्ध रूप बन जाता है। पर वह स्कंध अशाश्वत है और सदा भली प्रकार उपचय प्राप्त करता है।

भाषा सम्बन्धी स्पष्टीकरण

"पूर्व की भाषा अभाषा है। बोलती भाषा ही भाषा है और बोली जाने के पश्चात्[१] भाषा अभाषा है। बोलते पुरुष की भाषा ही भाषा है। अनबोलते की भाषा भाषा नहीं है।

"पूर्व की क्रिया दुःख हेतु नहीं है। उसे भी भाषा के समान जान लेना चाहिए।

"कृत्य दुःख है, स्पृश्य दुःख है, क्रियमाणकृत्य दुःख है, उसे करके प्राण, भूत, जीव और सत्व वेदना का वेद है। ऐसा कहा जाता है। जीव एक ही क्रिया करता है।

फिर, गौतम स्वामी ने पूछा—"हे भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं कि, एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करता है। वह ऐर्यापथिकी और सांपरायिकी दोनों करता है। जिस समय वह ऐर्यापथिकी करता है उसी समय सांपरायिकी भी करता है। जिस समय सांपरायिकी क्रिया करता है उसी समय वह ऐर्यापथिकी भी करता है। हे भगवान् यह किस प्रकार है?"

भगवान्—"हे गौतम! अन्यतीर्थिकों का इस प्रकार कहना मिथ्या

---

१ भाष्यते प्रोच्यते इति भाषा वचने 'भाष' व्यक्तायां वाचि इति वचनात्—
गवती १३-४

है। मैं ऐसा कहता हूँ कि जीव एक समय में एक ही क्रिया करता है ऐर्यापथिकी अथवा सांपरायिकी क्रिया।[1]

फिर गौतम स्वामी ने पूछा—"हे भगवन्! अन्यतीर्थिक कहते हैं कि कोई निर्गंथ मरने के बाद देव होता है। वह देव अन्य देवों के साथ कि अन्य देवों की देवियों के साथ परिचारण (विषय सेवन) नहीं करता है। वह अपनी देवियों को वश में करके उनके साथ भी परिचारण नहीं करता। पर, वह देव अपना ही दो रूप धारण करता है—उसमें एक रूप देवता का और दूसरा रूप देवी का होता है। इस प्रकार वह (कृत्रिम) देवी के साथ परिचारण करता है। इस प्रकार एक जीव एक ही काल में दो वेदों का अनुभव करता है। वह इस प्रकार है—पुरुष वेद[2] और स्त्रीवेद। हे भगवन् यह कैसे?"

इस पर भगवान् ने कहा—"अन्यतीर्थिकों का इस प्रकार कहना मिथ्या है। हे गौतम! मैं इस प्रकार कहता हूँ, भाषता हूँ, जनाता हूँ और प्ररूपता हूँ कि कोई निर्गन्थ मरने के बाद एक देवलोक में उत्पन्न होता है। वह देवलोक बड़ी ऋद्धिवाला यावत् बड़े प्रभाववाला होता है। ऐसे देवलोक में जाकर वह निर्गंथ बड़ी ऋद्धिवाला, दशों दिशाओं में शोभा पाने वाला होता है। वह देव वहाँ देवों के साथ तथा अन्य देवों की देवियों के साथ (उनको वश में करके) परिचारण करता है। अपनी देवी को वश में करके उसके साथ परिचारण करता है। अपना ही दो रूप बनाकर परिचारण नहीं करता (कारण कि) एक जीव एक समय में एक ही वेद का अनुभव करता है—स्त्रीवेद का या पुरुषवेद का। जिस समय वह स्त्रीवेद का अनुभव करता है, उस समय पुरुषवेद

---

१ भगवतीसूत्र शतक १ उद्देश १० सूत्र ८१—८२ पत्र १८१—१८६

२ कइविहे णं भंते। वेए प०। गोयमाः तिविहे वेए प० त० इत्थीवेए पुरिसवेए नपुंसवेए...—समवायांग स० १५३ पत्र १३६—१

का अनुभव नहीं करता और जिस समय पुरुषवेद का अनुभव करता है, उस समय स्त्रीवेद का अनुभव नहीं करता।'

"पुरुषवेद के उदयकाल में पुरुष स्त्री की और स्त्रीवेद के उदयकाल में स्त्री पुरुष की प्रार्थना करता है।

इसी वर्ष अचलभ्राता और मेतार्य ने गुणशिलक चैत्य में अनशन करके निर्वाण प्राप्त किया।

इस वर्ष का वर्षावास भगवान् ने नालंदा में बिताया।

३६–वाँ वर्षावास

ज्योतिष-सम्बंधी प्रश्न

नालंदा में चातुर्मास समाप्त होने के बाद, ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् विदेह पहुँचे। वहाँ जितशत्रु-नामक राजा राज्य करता था।

मिथिला-नगर के बाहर मणिभद्र-चैत्य था।[1] वहीं भगवान् का समवसरण हुआ। राजा जितशत्रु और उसकी रानी धारिणी भगवान् की वंदना करने गये।[2]

सभा-विसर्जन के बाद इन्द्रभूति गौतम ने भगवान् से ज्योतिष सम्बंधी प्रश्न पूछे—

(१) सूर्य प्रतिवर्ष कितने मंडलों का भ्रमण करता है ?
(२) सूर्य तिर्यग्भ्रमण कैसे करता है ?
(३) सूर्य तथा चन्द्र कितने क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ?
(४) प्रकाशक का अवस्थान कैसा है ?
(५) सूर्य का प्रकाश कहाँ रुकता है ?
(६) ओजस् (प्रकाश) की स्थिति कितने काल की है ?
(७) कौन से पुद्गल सूर्य के प्रकाश का स्पर्श करते हैं ?
(८) सूर्योदय की स्थिति कैसी है ?

१—तीसे णं मिहिलाए नयरीस बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थं णं मणि. भद्दं णामं चेइए—सूर्यप्रज्ञप्ति सटीक पत्र १–२

२—तीसे णं मिहिलाए जियसत्तू राया, धारिणी देवी—वही पत्र १–२

(९) पौरुषी छाया का क्या परिणाम है ?

(१०) योग किसे कहते हैं ?

(११) संवत्सरों का प्रारम्भ कहाँ से होता है ?

(१२) संवत्सर कितने कहे गये हैं ?

(१३) चंद्रमा की वृद्धि-हानि क्यों दिखती है ?

(१४) किस समय चाँद की चाँदनी बढ़ती है ?

(१५) सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा इनमें शीघ्र गति कौन है ?

(१६) चाँद की चाँदनी का लक्षण क्या है ?

(१७) चन्द्रादि ग्रहों का च्यवन और उपपात कैसे होता है ?

(१८) भूतल से चन्द्र आदि ग्रह कितने ऊँचे हैं ?

(१९) चन्द्र सूर्यादि कितने हैं ?

(२०) चन्द्र सूर्यादि क्या हैं ?

भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी के इन प्रश्नों का सविस्तार उत्तर दिया उसका पूरा उल्लेख सूर्यप्रज्ञप्ति तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति में है।

अपना वह वर्षावास भगवान् ने मिथिला में बिताया।

४०-वाँ चातुर्मास

भगवान् विदेह-भूमि में

चातुर्मास के बाद भगवान् विदेह-भूमि में ही विचरते रहे। और अपना वह वर्षावास भी भगवान् ने मिथिला में ही बिताया।

४१-वाँ वर्षावास

महाशतक का अनशन

चातुर्मास्य की समाप्ति के बाद ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् राजगृह पधारे और गुणशिलक-नामक चैत्य में ठहरे।

राजगृह निवासी श्रमणोपासक महाशतक इस समय अपनी अंतिम आराधना करके अनशन किये हुए था। उसकी स्त्री रेवती उसका वचन भंग करने गयी। इसकी सारी कथा विस्तार से हमने श्रावकों के प्रकरण में लिखा है।

गरम पानी का ह्रद

उसी समय गौतम इन्द्रभूति ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! अन्यतीर्थिक कहते हैं कि राजगृह-नगर से बाहर वैभार-पर्वत के नीचे एक पानी का विशाल ह्रद है। वह अनेक योजन लम्बा तथा चौड़ा है। उस ह्रद का सम्मुख भाग अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित है। उस ह्रद में अनेक उदार मेघ सस्वेद करते हैं, संमूर्छित होते हैं और बरसते हैं। इसके अतिरिक्त उसमें जो अधिक जलसमूह होता है, वही उष्ण जलस्रोतों के रूप में निरन्तर बहता रहता है। क्या अन्यतीर्थिकों का कहना सत्य है?

भगवान्—"गौतम! अन्यतीर्थिकों का कहना सत्य नहीं है।

वैभारगिरि के निकट 'महातपोप तीर प्रभव'-नामक प्रस्रवण (झरना) है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई ५०० धनुष है। उसके आगे का भाग अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित है। उस झरने में अनेक उष्णयोनिवाले जीव और पुद्गल पानी-रूप में उत्पन्न होते हैं, नाश को प्राप्त होते हैं, च्यवते हैं और उपचन प्राप्त करते हैं। उसके उपरान्त उस झरने में से सदा गरम पानी का झरना गिरा करता है। हे गौतम! यह महातपोपतीर-प्रभव-नामक झरना है।

गौतम स्वामी ने यह सुनकर कहा—"भगवन्! वह इस प्रकार है।" और उनकी वन्दना की।[1]

१—भगवतीसूत्र सटीक शतक २, उद्देशा ५, सूत्र ११२, पत्र २५०। वैभारगिरि के निकट गरम पानी का उल्लेख ह्वायानच्वांग ने अपनी यात्रा में भी किया है (देखिए टामस वार्टस-लिखित 'आन युवान् च्यांग्स ट्रैवेल्स इन इंडिया, भाग २, पृष्ठ १४७-१४८) बौद्ध-ग्रंथों में तपोदाराम का उल्लेख आता है। बुद्धघोष ने लिखा है कि यह शब्द तपोद (गरम पानी) से बना है, जिसके तट पर वह आराम था (राजगृह इन ऐंशेंट लिटरेचर, ला-लिखित, पृष्ठ ५) डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स भाग १ पृष्ठ ९९२-९९३ पर भी इनका वर्णन है। ये गरम पानी के झरने अब तक हैं (देखिए गदाधर प्रसाद अम्बष्ट-लिखित 'विहार-दर्पण, पृष्ठ २३९)

आयुष्य कर्म-सम्बन्धी स्पष्टीकरण

एक बार गौतम स्वामी ने पूछा—"हे भगवन्! अन्यतीर्थिक कहते हैं कि जैसे कोई एक जाल हो, उस जाल में एक क्रमपूर्वक गाँठें लगी हों, उसी के समान अनेक जीवों को अनेक भव-संचित आयुष्यों की रचना होती है। जिस प्रकार जालमें सब गाँठें नियत अंतर पर रहती हैं और एक दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं, उसी तरह सब आयुष्य एक दूसरे से नियत अंतर पर होते हैं। इनमें से एक जीव एक समय में दो आयुष्यों को अनुभव करता है—इहभविक और पारभविक! जिस समय वह इस भव का आयुष्य का अनुभव करता है, उसी समय वह पारभविक का भी अनुभव करता है। अन्यतीर्थिकों का कथन क्या ठीक है?"

भगवान्—"गौतम! अन्यतीर्थिक जो कहते हैं, वह असत्य है। इस सम्बन्ध में मैं कहता हूँ कि, जैसे कोई जाल यावत् अन्योन्य समुदायपने रहता है, इस प्रकार क्रम करके अनेक जन्मों के साथ सम्बन्ध धारण करने वाला एक-एक जीव ऊपर की शृंखला की कड़ी के समान परस्पर क्रम करके गुँथा हुआ होता है और ऐसा होने से एक जीव एक समय एक आयुष्य का अनुभव करता है। वह इस प्रकार है—वह जीव इस भव के आयुष्य का अनुभव करता है, अथवा परभव के आयुष्य का अनुभव करता है। जिस समय वह इस भव के आयुष्य का अनुभव करता है, उस समय वह परभव के आयुष्य का अनुभव नहीं करता और जिस समय वह परभव के आयुष्य का अनुभव करता है, उस समय वह इस भव के आयुष्य का अनुभव नहीं करता। इस भव का आयुष्य वेदने के समय परभव का आयुष्य वह नहीं वेदता।"[1]

मनुष्यलोक में मानव-बस्ती

गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! अन्य तीर्थिक

१—भगवतीसूत्र सटीक, शतक ५, उद्देशा ३ पत्र ३८५

कहते हैं कि जैसे कोई युवा किसी युवती का हाथ अपने हाथ में ग्रहण करके खड़ा हो अथवा आरों से भिड़ी हुई जिस प्रकार चक्र-नाभि हो वैसे यह मनुष्य-लोक ४००-५०० योजन तक मनुष्यों से भरा हुआ है। भगवान् ! अन्यतीर्थिकों का कथन क्या सत्य है ?"

भगवान्—"गौतम ! अन्यतीर्थिकों की मान्यता ठीक नहीं है। ४००-५०० योजन पर्यन्त नरक लोक-नारक जीवों से भरा है।"

गौतम स्वामी—"हे भगवन् ! नैरयिक एक रूप विकुर्वता है या बहुरूप विकुर्वन में समर्थ है ?"

भगवान्—"इस सम्बन्ध में जैसा जीवाभिगम[1] सूत्र में कहा है, उस रूप में जान लेना चाहिए।[2]

सुख-दुःख परिणाम

गौतम स्वामी—"हे भगवान् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं कि, इस राजगृह-नगर में जितने जीव हैं, उन सबके सुखों और दुःखों को इकट्ठा करके, बेर की गुठली, बाल कलम (चावल)[3] उड़द, मूँग, जूँ अथवा लीख जितने परिणाम में भी कोई बताने में समर्थ नहीं है।

भगवान्—"गौतम ! अन्य तीर्थिकों का उक्त कथन ठीक नहीं है। मैं तो कहता हूँ सम्पूर्ण लोक में सब जीवों का सुख-दुःख कोई दिखला सकने में समर्थ नहीं है ?"

गौतम—"ऐसा किस कारण ?"

१—जीवाभिगम सूत्र सटीक सूत्र ८९ पत्र ११६-२, ११७-१

२—भगवतीसूत्र सटीक श० ५, उ० ६, सूत्र २०८ पत्र ४१६

३—यहाँ मूलपाठ है—'कलमायवि'—कलम चावल है। भगवती के अपने अनुवाद में बेचरदास ने [भाग २, पृष्ठ २४३] कलाय के चोखा लिखा है। भगवान् महावीर में कल्याणविजय ने भी कलाय लिखा है। कलम चावल है पर कलाय गोलचना है। इस पर अन्नों वाले विवरण में हम विचार कर चुके हैं।

गौतम स्वामी—"यह किस प्रकार ?"

भगवान्—"हे गौतम ! नैरयिक एकांत दुःख भोगते हैं और कदाचित् सुख भोगते हैं। भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक एकान्त सुख भोगते हैं और कदाचित दुःख भोगते हैं। पृथ्वीकाय से लेकर मनुष्य तक जीव विविध प्रकार की वेदना का भोग करते हैं। ये कभी सुख और कभी दुःख का भोग करते हैं।"

इस वर्ष का वर्षावास भगवान् ने राजगृह में बिताया।[1]

१—भगवतीसूत्र, शतक ६, उद्देशा १० सूत्र २५६ पत्र ५२०—५२१

४२-वाँ वर्षावास

छठें आरे का विवरण

वर्षा चातुर्मास्य के बाद भी भगवान् कुछ समय तक राजगृह में ठहरे रहे। इस बीच अव्यक्त, मण्डिक, मौर्यपुत्र और अकम्पित मासिक अनशन-पूर्वक गुणशिलक चैत्य में निर्वाण को प्राप्त हुए।

इसी बीच एक दिन इन्द्रभूति गौतम ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्! जम्बूद्वीप-नामक द्वीप में स्थित भारतवर्ष को इस अवसर्पिणी में दुःखम-दुःखम नामक छठे आरे के अन्त में क्या दशा होगी?"

भगवान्—"हे गौतम! हाहाभूत (जिस काल में दुःखी लोग 'हा-हा' शब्द करें), भंभाभूत (जिस काल में दुःखार्त पशु 'भाँ-भाँ' शब्द करें); कोलाहलभूत (जिस काल में दुःखपीड़ित पक्षी कोलाहल करें) वह काल होगा। काल के प्रभाव से अति कठोर, धूल मिली हुई, असह्य, अनुचित और भयंकर वायु तेमज संवर्तक वायु बहेगी। इस काल में चारों ओर धूल उड़ती होने से, रज से मलीन और अन्धकारयुक्त प्रकाशरहित दिशाएँ होंगी। काल की रुक्षता से चन्द्र अधिक शीतलता प्रदान करेगा और सूर्य अत्यन्त तपेगा। बारम्बार अरसमेघ, विरसमेघ, क्षारमेघ, खट्टमेघ, अग्निमेघ, विज्जुमेघ, विषमेघ, अशनिमेघ, बरसेंगे[1]। अपेय जलकी वर्षा होगी तथा व्याधि-रोग वेदना उत्पन्न करनेवाले पानी वाला, मन को जो न रुचे ऐसे जलवाला, मेघ बरसेगा।

---

१ भगवतीसूत्र की टीका में इन मेघों के सम्बन्ध में इस प्रकार टीका की गयी है:—

'अरसमेह' त्ति अरस—अमनोज्ञा मनोज्ञरसवर्जितजला ये मेघास्ते

इससे भारतवर्ष के ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मंडव, द्रोणमुख, पट्टन, और आश्रम में रहने वाले मनुष्य, चौपाये तथा आकाश में गमन करनेवाले पक्षियों के झुण्ड, ग्राम्य और अरण्य में रहनेवाले त्रस जीव, तथा बहुत प्रकार के रुक्ख[1], गुच्छ[2], गुल्म[3], लता[4], वल्लि[5], तृण[6],

(पृष्ठ २८७ की पादटिप्पणि का शेषांश)

तथा 'विरसमेह' त्ति विरुद्धरसा मेघाः, एतदेवाभिव्यज्यते 'खारमेह' त्ति सर्जादिक्षारसमानरसजलोपेतमेघाः 'खत्तमेह' त्ति करीप समानरस जलोपेतमेघाः, 'खट्टमेह' त्ति क्वचिद् दृश्यते तत्राम्लजला इत्यर्थः, 'अग्निमेह' त्ति अग्निवद्दाहकारिजला इत्यर्थः, विज्जुमेह, त्ति विद्युत्प्रधाना एवं जलवर्जिता इत्यर्थः विद्युन्निपातवन्तो वा विद्युन्निपात कार्यकारिजलनिपातवन्तो वा 'विसमेह' त्ति जनमरणहेतुजला इत्यर्थः, 'असणिमेह' त्ति करकादिनिपातवन्तः पर्वतादिदारणसमर्थ जलत्वेन वा, वज्रमेघाः 'अपियणिज्जोदग' ति अपातव्यजलाः 'अजवणिज्जोदए' ति क्वचिद् दृश्यते तत्रायापनीयं—न यापन प्रयोजनमुदकं येषां ते अयापनीयोदकाः 'वाहिरोगवेदणोदीरणा परिणामसलिल' त्ति व्याधयः—स्थिराः कुष्ठादयो रोगाः—सद्योघातिनः शूलादयस्तज्जन्याया वेदनाया योदीरणा सैव परिणामो यस्य सलिलस्य तत्तथा तदेवं विधं सलिलं येषां ते तथाऽत एवामनोज्ञपानीयकाः 'चंडालनिलपहयतिक्खधारानिवायपउरं' ति चण्डानिलेन प्रहतानां तीक्ष्णानां—वेगवतीनां धाराणां यो निपातः स प्रचुरो यत्र वर्षे स तथाऽतस्तं ।

—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ५५६.

१—रुक्खे त्यादि तत्र वृक्षाः—चूतादयः

वृक्षों के नाम जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में भी आते हैं। तीर्थङ्कर महावीर भाग १ पृष्ठ ७ पादटिप्पणि में हम उनका उल्लेख कर चुके हैं।

२—गुच्छाः—वृन्तकी प्रभृतयः

पव्वग[1], हरित,[2] औषधि[3], प्रवाल[4], अंकुरादि तथा तृण-वनस्पतियाँ[5] नाश को प्राप्त होंगी।

वैताढ्य के अतिरिक्त अन्य पर्वत, गिरि, तथा धूल के टीले आदि नाश को प्राप्त होंगे। गंगा और सिंधु के बिना पानी के झरने, खाड़ी आदि ऊँचे-नीचे स्थल समथल हो जायेंगे।

गौतम स्वामी—"हे भगवन्! तब भारत भूमि की क्या दशा होगी?"

भगवान्—"उस समय भारत की भूमि अंगार-स्वरूप, मुर्मुर-स्वरूप, भस्मीभूत और तपी कड़ाही के समान, अग्नि के समान ताप वाली, बहुत धूल वाली, बहुत कीचड़ वाली, बहुत से बाल वाली, बहुत कार्दव वाली होगी। उस पर लोगों का चलना कठिन होगा।

गौतम स्वामी—"उस समय मनुष्य किस आकार प्रकार के होंगे?

भगवान्—"हे गौतम! खराब रूप वाले, खराब वर्ण वाले, दुर्गंध वाले, दुष्ट रस वाले, खराब स्पर्शवाले, अनिष्ट, अमनोज्ञ, हीन स्वर वाले

(पृष्ठ २८८ की पादटिप्पणि का शेषांश)

४—गुल्मा—नवमालिका प्रभृतयः

विशेष विवरण के लिए देखिए—तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ ७

५—लता—अशोकलतादयः

६—वल्ल्यो—वालुङ्की प्रभृतयः

७—तृण—वीरणादीनि

१—पर्वगा—इक्षु प्रभृतयः

२—हरितानि—दूर्वादीनि

३—औषधयः—शाल्यादयः

४—प्रवालाः—पल्लवांकुरा

५—तणवणस्सइकाइए—त्ति बादर वनस्पतीनीत्यर्थः

मुहूर्त के अंदर और सूर्यास्त के पश्चात् एक मुहूर्त के अंदर बिल में से निकल कर मछली, कछुए आदि को जल से निकाल कर भूमि पर डालेंगे और धूप में पके-भुने उन जलचरों का आहार करेंगे। इस प्रकार २१ हजार वर्षों तक उनकी आजीविका रहेगी।

गौतम स्वामी—"शीलरहित, निर्गुण, मर्यादा रहित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास हीन प्रायः मांसाहारी, मत्स्याहारी, मधु का आहार करने वाले, मृत शरीर का आहार करने वाले मनुष्य मर कर कहाँ जायेंगे ?

भगवान्—"वे नरक और तिर्यंच योनि में उत्पन्न होंगे।"[1]

बस्तियों का वर्गीकरण

बस्तियों के वर्गीकरण के उल्लेख जैन-शास्त्रों में कितने ही स्थलों पर हैं। आचारांगसूत्र (राजकोट वाला, श्रु० १, अ०८, उ०६) में निम्नलिखित के उल्लेख आये हैं :—

गामं वा १, णगरं वा २, खेडं वा ३, कब्बडं वा ४, मडंबं वा ५, पट्टणं वा ६ दोणमुहं वा ७, आगरं वा ८, आसमं वा ९, सण्णिवेसं वा १०, णिगमं वा ११, रायहाणिं वा १२

सूत्रकृतांग में उनकी सूची इस प्रकार है :—

गाम १, णगर २, खेड ३, कब्बड ४, मडंब ५, दोणमुह ६, पट्टण ७, आसम ८, सन्निवेस ९, निगम १०, रायहाणि ११

—श्रु० २, अ० २, सूत्र २१

कल्पसूत्र में सूची इस प्रकार है :—

गाम १, आगर २, नगर ३, खेड ४, कब्बड ५, मडंब ६, दोणमुह ७, पट्टणा ८, आसम ९, संबाह १०, संन्निवेह ११

(सूत्र ८८)

१—भगवतीसूत्र सटीक, शतक ७, उ० ६, सूत्र २८६–२८७, पत्र ५५७–५६५

बृहत्कल्पसूत्र उ० १ सू० ६ में उनके नाम इस प्रकार दिये हैं :—

गामंसि वा १, नगरंसि वा२, खेडंसि वा ३, कव्वडंसिवा ४, मडम्बंसि वा ५, पट्टणंसि वा ६, आगरंसि वा ७, दोणमुहंसि वा ८, निगमंसि वा ९, रायहाणिंसि वा १०, आसमंसि वा ११, संनिवेसंसि वा १२, संवाहंसि १३ वा, घोसंसि वा १४, अंसियंसि वा १५ पुडभेयणंसि वा १६

ओववाइयसूत्र में उनकी दो सूचियाँ आती हैं

(१) गाम १, आगर २, णयर ३, खेड ४, कव्वड ५, मडंब, ६, दोणमुह ७, पट्टण ८, आसम ९, निगम १०, संवाह ११, संनिवेस १२ (सूत्र ३२)

(२) गाम १, आगर २, णयर ३, णिगम ४, रायहाणि ५, खेड ६, कव्वड ७, मडंब ८, दोणमुह ९, पट्टण १०, समम ११, संवाह १२, संन्निवेस १३ (सूत्र ३८)

उत्तराध्ययन (अ० ३०, गाथा १६–१७) में इतने नाम आते हैं:—

गामे १, नगरे २ तह रायहाणि ३ णिगमे ४ य आगरे ५, पल्ली ६। खेडे ७, कव्वड ८, दोणमुह ९, पट्टण १०, मडंब ११, संवाहे १२॥१६॥ आसम १३, पए विहारे १४, सन्निवेसे १५, समाय १६, घोस १७। थलि १८, सेणाखंधारे १९, सत्थे संवाह कोट्टे य ॥ १७ ॥

भगवान् अपापापुरी में

राजगृह में विहार करके भगवान् अपापापुरी पहुँचे। यहाँ देवताओं ने तीन वप्रोंसे विभूषित रमणीक समवसरण की रचना की। अपने आयुष्य का अन्त जान कर प्रभु अपना अन्तिम धर्मोपदेश देने बैठे।

प्रभु के समवसरण में अपापापुरी का राजा हस्तिपाल भी आया और प्रभु की धर्मदेशना सुनने बैठा। भगवान् की धर्मदेशना सुनने देवता लोग भी आये। इस समय इन्द्र ने भगवान् की स्तुति की—

"हे प्रभु! धर्माधर्म पाप-पुण्य बिना शरीर प्राप्त नहीं होता। शरीर के बिना मुख नहीं होता और मुख के बिना वाचकत्व नहीं होती। इस कारण अन्य ईश्वरादिक देव दूसरों को किस प्रकार शिक्षा दे सकते हैं? देह से हीन होने पर भी ईश्वर की जगत रचने की प्रवृत्ति घटती नहीं है। जगत रचने की प्रवृत्ति में उसे अपने स्वतंत्रपने की अथवा किसी दूसरे की आज्ञा की आवश्यकता नहीं है। यदि वह ईश्वर क्रीड़ा के कारण, जगत के सृजन में प्रवृत्तिवान् हो तो वह बालक के समान रागवान् ठहरे। और, यदि वह कृपा-पूर्वक सृष्टि का सृजन करे तो सब को सुखी बनाना चाहिए। हे नाथ! दुःख, दरिद्रता, और दुष्ट योनि में जन्म इत्यादि क्लेश से व्याकुल लोक के सृजन से कृपालु ईश्वर की कृपालुता कहाँ रही? अर्थात् उसकी स्थापना नहीं हो सकती। ईश्वर कर्म की अपेक्षा से, दुःखी अथवा सुखी करता है यदि ऐसा है तो ऐसा सिद्ध होता है कि, हमारे समान ही वह भी स्वतंत्र नहीं है।

यदि जगत् में कर्म की विचित्रता है, तो फिर विश्वकर्ता नाम धारण करने वाले नपुंसक ईश्वर का काम क्या है? अथवा महेश्वर की इस जगत के रचने में यदि स्वभावतः प्रवृति हो, और कहें कि वह उस सम्बंध में कुछ विचार नहीं करता, तो उसे परीक्षकों की परीक्षा के लिए डंका समझना चाहिए। अर्थात् इस सम्बंध में उसकी परीक्षा करनी ही नहीं, ऐसा कथन सिद्ध होगा। यदि सर्वभाव के सम्बंध में ज्ञातृत्व-रूप कर्तृत्व कहें तो मुझे मान्य है; कारण कि सर्वज्ञ दो प्रकार के होते हैं—एक मुक्त और दूसरा शरीरधारी। हे नाथ! आप जिस पर प्रसन्न होते हैं, वह पूर्वकथित अप्रमाणिक कर्तृत्ववाद को तज कर आपके शासन में रमण करता है।"

इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र बैठ गया तब आपापापुरी के राजा हस्तिपाल राजा ने भगवान् की स्तुति की—

"हे स्वामिन्! विशेषज्ञ के समान अपना कोमल विज्ञापन करना नहीं है। अंतःकरण की विशुद्धि के निमित्त से कुछ कठोर विज्ञापन करता हूँ। हे नाथ! आप पक्षी, पशु, अथवा सिंहादि वाहन के ऊपर जिसका देह बैठा हो, ऐसे नहीं हैं। आपके नेत्र, मुख और गात्र विकार के द्वारा विकृत नहीं किये गये हैं। आप त्रिशूल, धनुष, और चक्रादि शस्त्रयुक्त करपल्लव वाले नहीं हैं। स्त्री के मनोहर अंग के आलिंगन देने में आप तत्पर नहीं हैं। निंदनिक आचरणों द्वारा शिष्ट लोगों के हृदय को जिसने कम्पायमान करा दिया है, ऐसे आप नहीं हैं। कोप और प्रसाद के निमित्त नर-अमर को विडंवित कर दिया हो, ऐसे आप नहीं हैं।

इस जगत की उत्पत्ति, पालन अथवा नाश करने वाले आप नहीं हैं। नृत्य, हास्य, गायनादि और उपद्रव के लिए उपद्रवित स्थितिवाले आप नहीं हैं।

इस प्रकार का होने के कारण, परीक्षक आप के देवपने की प्रतिष्ठा किस प्रकार करें! कारण कि, आप तो सर्व देवों से विलक्षण हैं। हे नाथ! जल के प्रवाह के साथ पत्र, तृण, अथवा काष्ठादि बहे, यह बात तो युक्ति वाली है, पर यदि कहें कि वह विरुद्ध बहे, तो क्या कोई इसे युक्तियुक्त मानेगा? परन्तु, हे स्वामिन्! मंदबुद्धि परीक्षकों की परीक्षा से अलम्! मेरी निर्लज्जता के कारण आप मेरी समझ में आ गये। सभी संसारी जीवों से विलक्षण आपका रूप है। बुद्धिमान प्राणी ही आप की परीक्षा कर सकता है। यह सारा जगत क्रोध, लोभ और भय से आक्रान्त है, पर आप उससे विलक्षण हैं। परन्तु, हे वीतराग प्रभो! आप कोमल बुद्धि वालों को ग्राह्य नहीं हो सकते, तीक्ष्ण बुद्धिवाले ही आप के देवपने को समझ सकते हैं।"

ऐसी स्तुति कर हस्तिपाल बैठा, तो चरम तीर्थंकर ने इस प्रकार अपनी चरम देशना दी :—

"इस जगत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं। उनमें काम का 'अर्थ' तो नाम मात्र के ही लिए 'अर्थ' रूप है, परमार्थ-दृष्टि से वह अनर्थरूप है। चार पुरुषार्थों में पूर्ण रूप में 'अर्थ'-रूप तो एक मोक्ष ही है। उसका कारण धर्म है। वह धर्म संयम आदि दस प्रकार[1] का है। वह संसार सागर से तारने वाला है। अनन्त दुखरूप संसार है। और, अनंत सुखरूप मोक्ष है। इसलिए, संसार का त्याग और मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्म के अतिरिक्त और अन्य कोई उपाय नहीं है। पंगु मनुष्य वाहन के आश्रय से दूर जा सकता है। घनकर्मी भी धर्म में स्थित होकर मोक्ष प्राप्त करता है।"

इस प्रकार धर्म-देशना देकर भगवान् ने विराम लिया। इस समय पुण्यपाल राजा ने प्रभु की वंदना करके पूछा—"हे स्वामिन्! मैंने आज स्वप्न में, १ हाथी, २ बंदर, ३ क्षीर वाला वृक्ष, ४ काकपक्षी, ५ सिंह, ६ कमल, ७ बीज और ८ कुंभ ये आठ स्वप्न देखे। उनका फल क्या है? भगवान्? ऐसे स्वप्न देखने से मेरे मन में भय लगता है!"

इस पर भगवान् ने हस्तिपाल को उन स्वप्नों का फल बताते हुए कहा—"हे राजन्! प्रथम हाथी वाले स्वप्न का फल यह है कि, अब से भविष्य में क्षणिक समृद्धि के सुख में लुब्ध हुआ श्रावक विवेक बिना, [illegible] के कारण, हाथी के समान घर में पड़ा रहेगा। महादुःखों की स्थिति और

"छठें कमल वाले स्वप्न का फल यह है कि, जैसे स्वच्छ सरोवर में होने वाले कमल सभी सुगन्ध वाले होते हैं, वैसे ही उत्तम कुल में पैदा होने वाले सभी धर्मात्मा होते रहे हैं; परन्तु भविष्य में ऐसा नहीं होगा। वे धर्मपरायण होकर भी, कुसंगति में पड़ कर भ्रष्ट होंगे। लेकिन, जैसे गंदे पानी के गड्ढे में भी कभी-कभी कमल उग आते हैं, वैसे ही कुकुल और कुदेशों में जन्मे हुए होने पर भी, कोई-कोई मनुष्य धर्मात्मा होंगे। परन्तु, वे हीन जाति के होने से अनुपादेय होंगे।

"बीज वाले स्वप्न का यह फल है कि, जैसे ऊसर भूमि में बीज डालने से फल नहीं मिलता, वैसे ही कुपात्र को धर्मोपदेश दिया जायेगा; परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकलेगा। हाँ कभी-कभी ऐसा होगा कि, जैसे किसी आशय के बिना किसान घुणाक्षर-न्याय से अच्छे खेत में बुरे बीज के साथ उत्तम बीज भी डाल देता है, वैसे ही श्रावक सुपात्रदान भी कर देंगे।

"अंतिम स्वप्न का यह फल है कि, क्षमादि गुणरूपी कमलों से अंकित और सुचरित्र रूपी जल से पूरित, एकान्त में रखे हुए कुम्भ के समान महर्षि विरले ही होंगे। मगर, मलिन कलश के समान शिथिलाचारी लिंगी (साधु) यत्र-तत्र दिखलायी देंगे। वे ईर्ष्यावश महर्षियों से झगड़ा करेंगे और लोग (अज्ञानतावश) दोनों को समान समझेंगे। गीतार्थ मुनि अंतरंग में उक्त स्थिति की प्रतीक्षा करते हुए और संयम को पालते हुए बाहर से दूसरों के समान बन कर रहेंगे।"[1]

इस प्रकार प्रतिबोध पाकर पुण्यपाल ने दीक्षा ले ली और कालान्तर में मोक्ष को पाया।

इसके बाद इन्द्रभूति गौतम ने भगवान् से पाँचवे आरे के सम्बन्ध में पूछा और भगवान् ने बताया कि उनके निर्वाण के बाद तीन वर्ष साढ़े आठ

---

१ इन स्वप्नों और उनके फलों का उल्लेख 'श्रीसौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथा-संग्रह' के दीपमालिकाव्याख्यान पत्र ९१-९२ में भी है।

मास बीतने पर, पाँचवा आरा प्रवेश करेगा। और, भगवान् ने फिर सविस्तार उसका विवरण भी सुनाया।

भगवान् ने कहा—"उत्सर्पिणी में दुःषमा काल के अंत में इस भारत वर्ष में सात कुलकर होंगे। १ विमलवाहन, २ सुदामा, ३ संगम, ४ सुपार्श्व, ५ दत्त, ६ सुमुख और ७ संमुचि।[1]

"उनमें विमलवाहन को जातिस्मरण-ज्ञान होगा और वे गाँव तथा शहर बसायेंगे, राज्य कायम करेंगे, हाथी, घोड़े, गाय-बैल आदि पशुओं का संग्रह करेंगे और शिल्प, लिपि, गणितादि का व्यवहार लोगों में चलायेंगे। बाद में जब दूध, दही, अग्नि आदि पैदा होंगे, तो राजा उसे खाने का उपदेश करेंगे।

"इस तरह दुःषम काल व्यतीत होने के बाद तीसरे आरे में ८९ पक्ष बीतने के बाद शतद्वार-नामक नगर में संमुचि-नामक सातवें कुलकर राजा की भद्रा देवी नामक रानी के गर्भ से श्रेणिक का जीव उत्पन्न होगा। उसका नाम पद्मनाभ होगा।[2]

"सुपार्श्व का जीव सूरदेव नामक दूसरा तीर्थंकर होगा। पोट्टिल का जीव सुपार्श्व-नामक तीसरा तीर्थंकर होगा। द्रढ़ायु का जीव स्वयंप्रभ-नामक चौथा तीर्थंकर, कार्तिक सेठ का जीव सर्वानुभूति-नामक पाँचवा तीर्थंकर शंख श्रावक का जीव देवश्रुत-नामक छठाँ तीर्थंकर, नंद का जीव उदय नामक ७-वाँ तीर्थंकर, सुनंदका जीव पेढाल-नामक ८-वाँ तीर्थंकर, कैकसी

१—आगामी उत्सर्पिणी के कुलकरों के नाम ठाणांगसूत्र सटीक, ठा० ७, उ० ३, सूत्र ५५६ पत्र ५५४-१ में इस रूप में दिये हैं :—

जंबुद्दीवे भारहेवासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्संति–मित्तवाहण, सुभोमे य सुप्पभे य सयंपभे। दत्ते, सुहुमे [दुहे सुत्त्वे य] सुबंधू य आगमेस्सिण होक्खती।

ऐसा ही समवायांगसूत्र सटीक, समवाय १५८, गा० ७१, पत्र १४२-२ में भी है।

२—काललोकप्रकाश, पृष्ठ ६२६।

का जीव पोट्टिल-नामक ९-वाँ तीर्थंकर, रेवती का जीव शतकीर्ति-नामक १०-वाँ तीर्थंकर, सत्यकी का जीव सुव्रत-नामक ११-वाँ तीर्थंकर, कृष्ण-वासुदेव का जीव अमम-नामक १२-वाँ तीर्थंकर, बलदेव का जीव अकषाय-नामक १३-वाँ तीर्थंकर, रोहिणी का जीव निष्पुलाक-नामक १४-वाँ तीर्थंकर, सुलसा का जीव निर्मम-नामक १५-वाँ तीर्थंकर, रेवती का जीव चित्रगुप्त-नामक १६-वाँ तीर्थंकर, गवाली का जीव समाधि-नामक १७-वाँ तीर्थंकर, गार्गुलि का जीव संवर-नामक १८-वाँ तीर्थंकर, द्वीपायन का जीव यशोधर-नामक १९-वाँ तीर्थंकर, कर्ण का जीव विजय-नामक २०-वाँ तीर्थंकर, नारद का जीव मल्ल-नामक २१-वाँ तीर्थंकर, अंबड का जीव देव-नामक २२-वाँ तीर्थंकर, बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त का जीव अनन्त-वीर्य-नामक २३-वाँ तीर्थंकर, स्वाती का जीव भद्र-नामक २४-वाँ तीर्थंकर होगा।[1]

इस चौबीसी में दीर्घदन्त, गूढ़दन्त, शुद्धदन्त, श्रीचंद्र, श्रीभूति, श्रीसोम, पद्म, दशम, विमल, विमलवाहन और अरिष्ट नाम के बारह चक्रवर्ती; नंदी, नंदिमित्र, सुन्दरबाहु, महाबाहु, अतिबल, महाबल, बल, द्विपृष्ट, और त्रिपृष्ट-नामक ९ वासुदेव; जयन्त, अजित, धर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नंदन, पद्म और संकर्षण नाम के ९ बलराम और तिलक, लोहजंघ, वज्रजंघ, केशरी, बली, प्रह्लाद, अपराजित, भीम, और सुग्रीव-नामक ९ प्रतिवासुदेव होंगे।"

इसके बाद सुधर्मा स्वामी ने भगवान् से पूछा—"केवलज्ञान रूपी सूर्य किसके बाद उच्छेद को प्राप्त होगा ?"

१—भावी तीर्थंकरों के उल्लेखों के सम्बंध में विशेष जानकारी के लिए पृष्ठ २६० की पादटिप्पणि देखें। काललोकप्रकाश (जैनधर्म-प्रसारक-सभा, भावनगर) अनुवाद-सहित में श्लोक २६७-३४० पृष्ठ ६२७-६३२ में भी भावी तीर्थंकरों का उल्लेख है।

इसी स्थान पर, अपापापुरी में, कार्तिक मास की पिछली रात्रि में, जब चन्द्रमा स्वाति नक्षत्र में आया, छट्ठ का तप किये हुए, भगवान् ने ५५ अध्ययन पुण्यफलविपाक सम्बन्धी और ५५ अध्ययन पापफल विपाक सम्बन्धी कहे।[1] उसके बाद ३६ अध्ययन अप्रश्नव्याकरण—बिना किसी के पूछे कहे।[2] उसके बाद अंतिम प्रधान-नाम का अध्ययन कहने लगे।

१—समणे भगवं महावीरे अंतिमराइयंसि पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाणफल विवागाइं पणपन्नं अज्झयणाइं पावफल विवागाइं वागरित्ता सिद्धे बुद्धे-समवायांग-सूत्र सटीक, समवाय ५५, पत्र ६८–२

भगवान् की अंतिम देशना १६ प्रहर की थी। विविधतीर्थकल्प के अपापापुरी बृहत्कल्प, (पृष्ठ ३४) में लिखा है—'सोलस पहराइ देसणं करेइ'। इसे नेमिचन्द्र के महावीरचरित्र में इस प्रकार लिखा है:—

छट्ठय भत्तस्सन्ते दिवसं रयणिं च सव्वं पि ॥ २२०७ ॥

—पत्र ९९–२

२—कल्पसूत्र में पाठ आता है :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं आगारवास मज्झे वसित्ता, साइरेगाइं दुवालस वासाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, देसूणाइं तीसं वासाइं केवलि परियागं पाउवित्ता, बयालीस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, बावत्तरि वासाइं सव्वाउय पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जा-उय-नाम-गुत्ते, इमीसे ओसप्पणीए दुसम सुसमाए समाए बहुविइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्ध नवमेहि ए मासेहिं सेसेहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जगसभाए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकाल समयंसि संपलियंकनिसण्णे पणपन्नं अज्झायणइं कल्लाणफल विवागाइं—पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं छत्तीसं च अपुट्ठवागारणाइं वागरित्ता पहाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे विभावेमाणे कालगए, विइक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइ-जरा-मरण बंधणे सिद्धे बुद्धे, मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे—सूत्र १४७

'छत्तीसं अपुट्ठ वागरणाइं' की टीका सुबोधिका टीका में इस प्रकार दी है:—'षट्त्रिंशत् अपृष्ठ व्याकरणानि—अपृष्ठान्युत्तराणि (पत्र ३६५)

उस समय आसन कंपित होने से, प्रभु के मोक्ष का समय जान कर सभी सुरों-असुरों के इन्द्र परिवार सहित वहाँ आये। फिर, शक्रेन्द्र साश्रु हाथ जोड़ कर बोला—"हे नाथ! आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवल-ज्ञान में हस्तोत्तरा-नक्षत्र था। इस समय उसमें भस्मक-ग्रह संक्रान्त होने वाला है। आपके जन्म-नक्षत्र में संक्रमित वह ग्रह २ हजार वर्षों तक आपकी संतान (साधु-साध्वी) को बाधा उत्पन्न करेगा। इसलिए, वह भस्मक ग्रह आपके जन्म-नक्षत्र से संक्रमण करे, तब तक आप प्रतीक्षा करें। आपके सामने वह संक्रमण कर जाये, तो आपके प्रभाव से वह निष्फल हो

(पृष्ठ ३०२ पादटिप्पणि का शेषांश)

भगवान् महावीर का यह अंतिम उपदेश ही उत्तराध्ययन है। उसके ३६-वें अध्ययन की अंतिम गाथा है—

इति पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुए।
छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धी संभए॥

—शान्त्याचार्य की टीका सहित, पत्र ७१२-१

—इस प्रकार छत्तीस उत्तराध्ययन के अध्ययनों को जो भव्यसिद्धिक जीवों को सम्मत हैं, प्रकट करके बुद्ध ज्ञातपुत्र वर्द्धमान स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए। इस प्रकार कहता हूँ।

इस गाथा पर उत्तराध्ययन चूर्णि में पाठ आता है—

इति परिसमाप्तौ उपप्रदर्शने च प्रादुः प्रकाशे, प्रकाशीकृत्य प्रज्ञापयित्वा बुद्धः अवगतार्थः ज्ञातकः ज्ञातकुल समुद्भवः वर्द्धमान स्वामी, ततः परिनिर्वाण गतः, किं प्रज्ञपयित्वा? षट्त्रिंशदुत्तराध्ययनानि भवसिद्धिक संमतानि—भवसिद्धिकानामेव संमतानि, नाभवसिद्धिकानामिति, ब्रवीम्याचार्योपदेशात्, न स्वमनीपिकया, नयाः पूर्ववत।

—उत्तराध्ययन चूर्णि, पत्र २८३

इसी आशय का समर्थन शान्त्याचार्य की टीका भाग २, पत्र ७१२-१ नेमिचन्द्र की टीका पत्र ३६१-२ तथा उत्तराध्ययन की अन्य टीकाओं में भी है।

जायेगा। जब आपके स्मरण मात्र से ही कुस्वप्न, बुरे शकुन और बुरे ग्रह श्रेष्ठ फल देने वाले हो जाते हैं, तब जहाँ आप साक्षात् विराजते हों, वहाँ का कहना ही क्या ? इसलिए हे प्रभो ! एक क्षण के लिए अपना जीवन टिका कर रखिये कि, जिससे इस दुष्ट ग्रह का उपशम हो जाये।"

इन्द्र की इस प्रार्थना पर भगवान् ने कहा—"हे इन्द्र ! तुम जानते हो कि, आयु बढ़ाने की शक्ति किसी में नहीं है। फिर तुम शासन-प्रेम में मुग्ध होकर ऐसी अनहोनी बात कैसे कहते हो ? आगामी दुषमा काल की प्रवृत्ति से तीर्थ को हानि पहुँचने वाली है। उसमें भावी के अनुसार यह भस्मक-ग्रह भी अपना फल दिखायेगा।"

उस दिन भगवान् को केवलज्ञान हुए २९ वर्ष ६ महीना १५ दिन व्यतीत हुआ था। उस समय पर्यंक आसन पर बैठे, प्रभु ने बादरकाययोग में स्थित होकर, बादर मनोयोग और वचनयोग को रोका। फिर सूक्ष्मकाय में स्थित होकर, योगविचक्षण प्रभु ने वचनकाययोग को रोका। तब उन्होंने वाणी और मन के सूक्ष्मयोग को रोका। इस तरह सूक्ष्म क्रिया वाला तीसरा शुक्ल ध्यान प्राप्त किया। फिर, सूक्ष्मकाययोग को रोक कर समुच्छिन्नक्रिया नामक चौथा शुक्ल ध्यान प्राप्त किया। फिर, पाँच ह्रस्व अक्षरों का उच्चारण किया जा सके, इतने कालमान वाले, अव्यभिचारी ऐसे शुक्ल ध्यान के चौथे पाये द्वारा कर्म-बंध से रहित होकर यथास्वभाव ऋजुगति द्वारा ऊर्द्ध गमन कर मोक्ष में गये।[1] जिनको लव मात्र के लिए

---

१ मोक्ष जाने का समय कल्पसूत्र में लिखा है 'पच्चूस काल समयंमि (सूत्र १४७) इसकी टीका सुबोधिका में दी है:—

'चतुर्घटिका व शेषायां रात्रायां' रात्रि समाप्त होने में चार घड़ी शेष रहने पर भगवान् निर्वाण को गये। समवायांग सूत्र, समवाय ५५ की टीका में 'अंतिमरायंसि' की टीका दी है।

सर्वायु : काल पर्यवसानरात्रौ रात्रेरन्तिमे भागे...प्रत्युपत्ति पत्र—६९-१

भी सुख नहीं होता, उस समय ऐसे नारकी-जीवों को भी एक क्षण के लिए सुख हुआ ।

उस समय 'चन्द्र'-नामका संवत्सर, प्रीतिवर्द्धन[1] नाम का महीना, नन्दिवर्द्धन नाम का पक्ष, अग्निवेश-नामका दिन था। उसका दूसरा नाम उपशम था। रात्रि का नाम देवानंदा[2] था। उस समय अर्च-नामका लव, शुल्क-नामका प्राण, सिद्ध-नामका स्तोक, सर्वार्थसिद्ध नाम का मुहूर्त और नाग-नामका करण था ।

जिस रात्रि में भगवान् का निर्वाण हुआ, उस रात्रि में बहुत से देवी-देवता स्वर्ग से आये। अतः उनके प्रकाश से सर्वत्र प्रकाश हो गया।

उस समय नव मल्लकी नवलिच्छिवी कासी-कोशलग १८ गण राजाओं ने भावज्योति के अभाव में द्रव्य-ज्योति से प्रकाश किया! उसकी स्मृति में तब से आज तक दीपोत्सव पर्व चला आ रहा है।[3]

भगवान् का निर्वाण-कल्याणक

उस समय जगत्-गुरू के शरीर को साश्रु नेत्र देवताओं ने प्रणाम किया और जैसे अनाथ हो गये हों, उस रूप में खड़े रहे।

शक्रेन्द्र ने धैर्य धारण करके नंदनवन आदि स्थानों से गोशीर्ष चन्दन मँगा कर चिता बनायी। क्षीरसागर के जल से प्रभु के शरीर को स्नान कराया। अपने हाथ से इन्द्र ने अंगराग लगाया। उन्हें दिव्य वस्त्र

१—कार्तिकस्य हि प्रीतिवर्धन इति संज्ञा सूर्यप्रज्ञप्तौ।

—संदेहविषौषधि, पत्र १११

२—देवानंदा नाम सा रजनी सा अमावस्या रजनिरित्यप्युच्यते—वही, पत्र १११

४ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग १३ श्लोक २४८, पत्र १८१

ओढ़ाया। शक्रेन्द्र तथा सुरासुरों ने साश्रु उनका शरीर एक श्रेष्ठ विमान-सरीखी शिविका में रखा।

इन्द्रों ने वह शिविका उठायी। उस समय बंदीजनों के समान जय-जय करते हुए देवताओं ने पुष्प-वृष्टि प्रारम्भ की। गंधर्व-देव उस समय गान करने लगे। सैकड़ों देवता मृदंग और पणव आदि वाद्य बजाने लगे।

प्रभु की शिविका के आगे शोक से स्खलित देवांगनाएँ अभिनव नर्तकियों के समान नृत्य करती चलने लगीं। चतुर्विध देवतागण दिव्य रेशमी वस्त्रों से, हारादि आभूषणों से और पुष्पमालाओं से शिविका का पूजन करने लगे। श्रावक-श्राविकाएं भक्ति और शोक से व्याकुल होकर रासक-गीत गाते हुए रुदन करने लगे।

शोक-संतप्त इन्द्र ने प्रभु के शरीर को चिता के ऊपर रखा। अग्नि-कुमार देवों ने उसमें अग्नि प्रज्वलित की। अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए वायु-कुमारों ने वायु चलाया। देवताओं ने सुगंधित पदार्थों के और घी तथा मधु के सैकड़ों घड़े आग में डाले।

जब प्रभु का सम्पूर्ण शरीर दग्ध हो गया, तो मेघ-कुमारों ने क्षीर-सागर के जल से चिता बुझा दी।

शक्र तथा ईशान इन्द्रों ने ऊपर के दाहिने और बायें दाढ़ों के ले लिया। चमरेन्द्र और बलीन्द्र ने नीचे की दाढ़ें ले लीं। अन्य देवतागण अन्य दाँत और अस्थि ले गये। कल्याण के लिए मनुष्य चिता का भस्म ले गये। बाद में देवताओं ने उस स्थान पर रत्नमय स्तूप की रचना की।[1]

नन्दिवर्द्धन को सूचना

नन्दिवर्द्धन राजा को भगवान् के मोक्ष-गमन का समाचार मिला।

---

१ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग १३, श्लोक २६६, पत्र १८२-२

शोकार्त अपनी बहिन सुदर्शना के घर उन्होंने द्वितीया को भोजन किया। तब से भ्रातृ-द्वितीया पर्व चला।[1]

इन्द्रभूति को केवलज्ञान

गौतम स्वामी देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध कराके लौट रहे थे तो देवताओं की वार्ता से उन्होंने प्रभु के निर्वाण की खबर जानी। इस पर गौतम स्वामी चित्त में विचारने लगे—"निर्वाण के दिन प्रभु आपने मुझे किस कारण दूर भेज दिया? अरे जगत्पति! इतने काल तक मैं आप की सेवा करता रहा, पर अंतिम समय में आपका दर्शन नहीं कर सका। उस समय जो लोग आप की सेवा में उपस्थित थे, वे धन्य थे। हे गौतम! तू पूरी तरह वज्र से भी अधिक कठिन है; जो प्रभु के निर्वाण को सुनकर भी तुम्हारा हृदय खण्ड-खण्ड नहीं हो जा रहा है। हे प्रभु! अब तक मैं भ्रान्ति में था, जो आप-सरीखे निरागी और निर्मम में राग और ममता रखता था। यह राग-द्वेष आदि संसार का हेतु है। उसे त्याग कराने के लिए परमेष्ठी ने हमारा त्याग किया।"

इस प्रकार शुभ ध्यान करते हुए, गौतमस्वामी को क्षपक-श्रेणी प्राप्त हुई। उससे तत्काल घाती कर्म के क्षय होने से, उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

उसके बाद १२ वर्षों तक केवल ज्ञानी गौतम स्वामी पृथ्वी पर विचरण करते रहे और भव्य प्राणियों को प्रतिबोधित करते रहे। वे भी प्रभु के समान ही देवताओं से पूजित थे।

अन्त में गौतम स्वामी राजगृह आये और वहाँ एक मास का अनशन करके उन्होंने अक्षय सुखवाला मोक्षपद प्राप्त किया।

---

१ कल्पसूत्र सुबोधिका, टीका-सहित, पत्र ३५१
दीपमालिका व्याख्यान, पत्र ११५

—तप-संयम आदि में लगे हुए साधु यदि प्रमाद आदि के कारण सम्यग् वर्तन न करते हों, तो जो उचित उपायों से उनको स्थिर करे, दृढ़ करे, उस (गुण रूपी) सुंदर सामर्थ्य वाले को जिन-मत में 'स्थविर' कहते हैं।

ये साधु-स्थविर तीन प्रकार के कहे गये हैं:—

व्यवहार-भाष्य की टीका में बताया गया है—

'षष्टिवर्ष जातो जाति स्थविरः'—६० वर्ष की उम्र वाला जाति-स्थविर। 'स्थान समवायधरः श्रुति-स्थविरः'—स्थानांग, समवाय आदि को धारण करने वाला श्रुति-स्थविर।

विंशति वर्ष पर्यायः पर्याय-स्थविरस्तथा—बीस वर्ष जो पर्याय (संयम) पाले हो वह पर्याय-स्थविर—

(व्यवहारभाष्य सटीक, उ० १०, सूत्र १५ पत्र १०–१)

ठाणांगसूत्र (ठा० १०, उ० ३, सूत्र ७६१ पत्र ५१६–१) में १० प्रकार के स्थविर बताये गये हैं:—

दस थेरा पं० तं०—गाम थेरा १, नगर थेरा २, रट्ठ थेरा ३, पसत्थार थेरा ४, कुल थेरा ५, गण थेरा ६, संघ थेरा ७, जाति थेरा ८, सुअ थेरा ९, परियाय थेरा १०।

ठाणांग की टीका में भी आया है।

जाति-स्थविरा : षष्ठि वर्ष प्रमाण जन्म पर्याय

श्रुति-स्थविरा : समवायाद्यङ्गधारिणः

पर्याय-स्थविरा : विंशति वर्ष प्रमाण प्रव्रज्यापर्यायवन्तः

सुधर्मा स्वामी पाट पर

भगवान् के निर्वाण के पश्चात् उनके प्रथम पाट पर भगवान् के पाँचवें गणधर सुधर्मा स्वामी बैठे। जब भगवान् ने तीर्थस्थापना की थी, उसी समय वासक्षेप डालते हुए भगवान् ने कहा था—

चिरंजीवी चिरं धर्मं द्योतयिष्यत्यसाविति ।
धुरि कृत्वा सुधर्माणमन्वज्ञासीद्गणं प्रभुः ॥[1]

—यह चिरंजीव होकर धर्म का चिरकाल तक उद्योत करेगा। ऐसा कहते हुए प्रभु ने सुधर्मा गणधर को सर्व मुनियों में मुख्य करके गण की अनुज्ञा दी।

ऐसा ही उल्लेख कल्पसूत्र की सुबोधिका टीका[2] में तथा तपागच्छ-पट्टावलि[3] में भी है।

केवल-ज्ञान प्राप्ति के ४२-वें वर्ष में, जिस रात्रि में भगवान् का मोक्ष-गमन हुआ, उसके दूसरे ही दिन प्रातः इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञान हो गया, और तब तक अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त[4] निर्वाण प्राप्त कर चुके थे।

अतः ज्येष्ठ होने के कारण सुधर्मा स्वामी भगवान् के प्रथम पट्टधर हुए। कल्पसूत्र में पाठ आता है :—

समणे भगवं महावीरे कासवगुत्तेणं समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासवगुत्तस्स अज्ज सुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गि-वेसायणसगुत्ते।[5]

सुधर्मा स्वामी से परिपाटी चलाने का कारण बताते हुए तपागच्छ पट्टावलि की टीका में आता है :—

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०; सर्ग ५, श्लोक १८० पत्र ७०—२

२—गणं च भगवान् सुधर्म स्वामिनं धुरि व्यवस्थाप्यानु जानाति

—पत्र ३४१

३—श्री वीरेण श्रीसुधर्मास्वामिनं पुरस्कृत्य गणोऽनुज्ञातः

—श्री तपागच्छपट्टावलि अनुवाद सहित, पष्ठ २

४—तीर्थंकर महावीर भाग १, पृष्ठ ३६७-३६८

५—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, व्याख्यान ८, पत्र ४८०-४८१

गुरुपरिपाट्या मूलमाद्यं कारणं वर्धमान नाम्ना तीर्थंकरः। तीर्थंकृतो हि आचार्य परिपाट्या उत्पत्ति हेतवो भवंति न पुनस्त-दंतर्गता। तेषां स्वयमेव तीर्थ प्रवर्तनेन कस्यापि पट्टधर-त्वाभावात्।[१]

—गुरुपरम्परा के मूल कारणरूप श्री वर्द्धमान नाम के अंतिम तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर महाराज गुरुपरम्परा के कारण-रूप होते हैं; पर गुरुपरम्परा में उनकी गणना नहीं होती। अपनी ही जात से तीर्थ की प्रवर्तना करने वाले होने के कारण उनकी गणना पाट पर नहीं की जाती।

भगवान् महावीर की सर्वायु

जिस समय भगवान् महावीर मोक्ष को गये, उस समय उनकी उम्र क्या थी, इस सम्बन्ध में जैन-सूत्रों में कितने ही स्थलों पर उल्लेख मिलते हैं। उनमें से हम कुछ यहाँ दे रहे हैं :—

(१) ठाणांगसूत्र, ठाणा ९, उद्देशा ३, सूत्र ६९३ में भावी तीर्थंकर महापद्म का चरित्र है। उसका चरित्र भी भगवान् महावीर-सा ही होगा। वहाँ पाठ आता है :—

से जहा नामते अज्जो ! अहं तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वतिते दुवालस संवच्छराइं तेरस पक्खा छउमत्थपरियागं पाउणित्ता तेरसहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता बावत्तरि वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिस्सं जात सव्वदुक्खाणमंतं...

—ठाणांगसूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध पत्र ४६१-१

—जैसे मैंने तीस वर्ष गृहस्थ-पर्याय पालकर, केवलज्ञान-दर्शन

१—तपागच्छपट्टावलि सटीक सानुवाद, पृष्ठ २

प्राप्त किया और ३० वर्ष में ६।। मास कम केवली-रूप रहा[1], इस प्रकार कुल ४२ वर्ष श्रमण-पर्याय भोग कर, सब मिलाकर ७२ वर्ष की आयु भोग कर मैं सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर होकर सब दुःखों का नाश करूँगा''''

(२) समणे भगवं महावीरे वावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव प्पहीणे...

—समवायांगसूत्र सटीक, समवाय ७२, पत्र ७०-१

(३) तीसा य वद्धमाणे बयालीसा उ परियाओ

—आवश्यकनिर्युक्ति (अपूर्ण-अप्रकाशित) गा० ७७, पृष्ठ ५।

(४) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तीस वासाइं आगार वासमज्झे वसित्ता, साइरेगाइं दुवालस वासाइं छउमत्थ परियागं पाउणित्ता, देसूणाइं तीसं वासाइं केवलि-परियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्ण परियागं पाउणित्ता, वावत्तरि वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जा।

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, सूत्र १४७, पत्र ३६३

—इसकी टीका सुबोधिका में इस प्रकार दी है:—

[तेणं कालेणं] तस्मिन् काले [तेणं समएणं] तस्मिन् समये [समणे भगवं महावीरे] श्रमणो भगवान् महावीरः [तीसं वासाइं] त्रिंशद्वर्षाणि [आगार वासमज्झे वसित्ता] गृहस्थावस्थामध्ये उषित्वा [साइरेगाइं दुवालस वासाइं] समधिकानि द्वादश वर्षाणि [छउमत्थपरियागं पाउणित्ता] छद्मस्थ पर्यायं पालयित्वा [देसूणाइं तीसं वासाइं] किञ्चिदूनानि त्रिंशद्वर्षाणि [केवलिपरियागं पाउणित्ता] केवलिपर्यायं

१—धवल-सिद्धान्त (भगवान् महावीर और उनका समय, युगलकिशोर मुख्तार-लिखित, पृष्ठ १२) में भगवान् का केवलि काल २६ वर्ष ५ मास २० दिन लिखा है।

पालयित्वा [बयालीसं वासाइं] द्विचत्वारिंशद्वर्षाणि [सामण्ण परियागं पाउणित्ता] चरित्र पर्यायं पालयित्वा [बावत्तरि वासाइ सव्वाउयं पालइत्ता] द्विसप्तति वर्षाणि सर्वायु पालयित्वा.....

निर्वाण-तिथि

दिगम्बर-ग्रन्थों में भगवान् महावीर का निर्वाण कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को लिखा है:—

क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहर वनान्तरे ।
बहूनां सरसां मध्ये महामणि शिलातले ॥ ५०९ ॥
स्थित्वा दिनद्वयं वीत विहारो वृद्ध निर्जरः ।
कृष्ण कार्तिक पक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये ॥ ५१० ॥
स्वाति योगे तृतीयेद्ध शुक्लध्यान परायणः ।
कृतत्रियोगसंरोधः समुच्छिन्न क्रियं श्रितः ॥ ५११ ॥
हता घाति चतुष्कः सन्नशरीरो गुणात्मकः ।
गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम् ॥ ५१२ ॥

—उत्तरपुराण, सर्ग ७६, पृष्ठ ५६३

—अंत में वे पावापुर नगर में पहुँचेंगे। वहाँ के मनोहर नाम के वन के भीतर अनेक सरोवरों के बीच में मणिमय शिला पर विराजमान होंगे। विहार छोड़कर निर्जरा को बढ़ाते हुए, वे दो दिन तक वहाँ विराजमान रहेंगे और फिर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन रात्रिके अंतिम समय स्वाति-नक्षत्र में अतिशय देदीप्यमान तीसरे शुक्लध्यान में तत्पर होंगे। तदनन्तर तीनों योगों का निरोध कर समुच्छिन्न क्रिया प्रतिपाति नामक चतुर्थ शुक्लध्यान को धारण कर चारों अघातिया कर्मों का क्षय कर देंगे और शरीररहित केवल गुणरूप होकर एक हजार मुनियों के साथ सब के द्वारा वाञ्छनीय मोक्षपद प्राप्त करेंगे।

तिलोयपण्णति में भी भगवान् का निर्वाण चतुर्दशी को ही बताया गया है। पर, अंतर इतना मात्र है कि, जहाँ उत्तर पुराण में एक हजार साधुओं के साथ मोक्षपद प्राप्ति की बात है, वहाँ तिलोयपण्णति में उन्हें अकेले मोक्ष जाने की बात कही गयी है। वहाँ पाठ है—

कत्तियकिण्हे चोद्दसि पच्चूसे सादिणामणक्खत्ते
पावाए णयरीए एक्को वीरेसरो सिद्धो।

—तिलोयपण्णति भाग १, महाधिकार ४, श्लोक १२०८, पृष्ठ ३०२

—भगवान् वीरेश्वर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रत्यूषकाल में स्वाति नामक नक्षत्र के रहते पावापुरी से अकेले सिद्ध हुए।

धवल-सिद्धान्त में भी ऐसा ही लिखा है :—

पच्छा पावा णयरे कत्तियमासे य किण्ह चोद्दसिए सादीए रत्तीए सेसरयं छेत्तुं णिव्वाओ

पर, दिगम्बर स्रोतों में ही भगवान् का निर्वाण अमावस्या को होना भी मिलता है। पूज्यपाद ने निर्वाणभक्ति में लिखा है—

पद्मवन दीर्घिकाकुल विविधद्रुमखंडमंडिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः ॥१६॥
कार्तिक कृष्णस्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद् व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् ॥१७॥

—क्रियाकलाप, पृष्ठ २२१,

यहाँ दीपावलि की भी एक बात बता दूँ। दक्षिण में दीपावलि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को होती है, पर उत्तर में कार्तिक कृष्ण अमावस्या को होती है।

१८ गणराजे

वैशाली के अंतर्गत १८ गणराजे थे। इसका उल्लेख जैन-शास्त्रों में विभिन्न रूपों में आया है।

(१) भगवान् महावीर के निधन के समय १८ गणराजे उपस्थित थे। उसका पाठ कल्पसूत्र में इस प्रकार है :—

नवमल्लई नवलेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारसवि गण-रायाणो……

—कल्पसूत्र सुबोधिका-टीका-सहित, व्याख्यान ६, सूत्र १२८ पत्र ३५०

इसकी टीका सन्देहविषौषधि में इस प्रकार दी है :—

'नवमल्लई' इत्यादि काशीदेशस्य राजानो मल्लकी जातीया नव कोशल देशस्य राजानो, लेच्छकी जातीया नव……

(२) भगवतीसूत्र श० ७,उ०९, सूत्र २९९ पत्र ५७६–२ में युद्ध-प्रसंग में पाठ आया है :—

नवमल्लई नवलेच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो

अभयदेव सूरि ने इसकी टीका इस प्रकार की है :—

'नव मल्लई' त्ति मल्लकि नामानो राजविशेषाः, 'नव लेच्छइ' त्ति लेच्छकीनामानो राजविशेषाः एव 'कासीकोसलग' त्ति काशी—वाराणसी तज्जनपदोऽपि काशी तत्सम्बन्धिन आद्या नव, कोशला अयोध्या तज्जनपदोऽपि कोशला तत्सम्बन्धिनः नव द्वितीयाः। 'गणरायाणो' त्ति समुत्पन्ने प्रयोजने ये गणं कुर्वन्ति ते गणप्रधाना राजानो गणराजाः इत्यर्थः, ते च तदानीं चेटक राजस्य वैशालीनगरी नायकस्य साहाय्याय गण कृतवंत इति……

—पत्र ५७९–५८०

(३) निरयावलिका में भी इसी प्रकार का पाठ है :—

नवमल्लई नवलेच्छई कासीकोसलका अट्ठारस वि गणरायाणो……

—निरयावलिका सटीक, पत्र १७–२

इन पाठों से स्पष्ट है, कि वैशाली के आधीन १८ गणराजे थे। काशी-कोशल को भी इन्हीं १८ में ही मानना चाहिए। टीका से यह गणना स्पष्ट हो जाती है।

इसकी पुष्टि निरयावलिका के एक अन्य प्रसंग से भी होती है।

चेटक जब सेना लेकर लड़ने के लिए चलता है तो उसका वर्णन है—

तते णं ते चेडए राया तिहि दंति सहस्सेहिं जहा कूणिए जाव वेसालि नगरि मज्झमज्झेण निग्गच्छति' निग्गच्छित्ता जेणवे नवमल्लई, नवलेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो तेणवे उवागच्छति .....

फिर १८ गणराजाओं के साथ संयुक्त चेटक की सेना की संख्या निरयावलिका में इस प्रकार दी है :—

तते णं चेडए राया सत्तावन्नाए दंतिसहस्सेहिं सत्तावन्नाए आससहस्सेहिं सत्तावन्नाए रहसहस्सेहिं सत्तावन्नाए मणुस्स कोडीएहिं.....

इस पाठ से भी स्पष्ट है कि चेटक और १८ गणराजाओं की सेनाएँ वहाँ थी।

(४)चेटक के १८ गणराजे थे, यह बात आवश्यकचूर्णि (उत्तरार्द्ध) पत्र १७३ से भी स्पष्ट है। उसमें पाठ है—

चेडएणवि गणरायाणो मेलिता देसप्पंते ठिता, तेसिंपि अट्ठारसण्हं रायीणं समं चेडएणं तओ हत्थिसहस्सा रह सहस्सा मणुस्स कोडीओ तहा चेव, नवरि संखेवो सत्तावण्णो सत्तावण्णो......

इसी प्रकार का पाठ आवश्यक की हरिभद्र की टीका में भी है:—

......तत् श्रुत्वा चेटकेनाष्टादश गणराजा मेलिता...

(५) उत्तराध्ययन, की टीका में भावविजयगणि ने लिखा है:—

ततो युतोऽष्टादशभिर्भूपैर्मुकुट धारिभिः

... ... ॥ ५४ ॥

—पत्र ४–२

(६) विचार-रत्नाकर में भी ऐसा ही उल्लेख है:—

चेटके नाऽप्यष्टादश गणराजानो मेलिताः

—पत्र १११–१

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि, गणराजाओं की संख्या १८ ही मात्र थी। पर, कुछ आधुनिक विद्वान

नव मल्लई, नवलेच्छई कासी कोसलागा अट्ठारसवि गणरायाणो

पाठ से बड़े विचित्र-विचित्र अर्थ करते हैं। उदाहरण के लिए हम यहाँ कुछ भ्रामक अर्थों का उल्लेख कर रहे हैं—

(१)...ऐंड द' जैन बुक्स स्पीक आव नाइन लिच्छिवीज एज हैविंग फार्म्ड ए कंफेडेरेसी विथ नाइन मल्लाज ऐंड एटीन गणराजाज आव कासी-कोसल

—द' एज आव इम्पीरीयल यूनिटी (हिस्ट्री ऐंड कलचर आव द' इंडियन पीपुल, वाल्यूम २, भारतीय विद्याभवन—नार्थ इंडिया इन द' सिक्सथ सेंचुरी बी. सी., विमल चरण ला, पृष्ठ ७)

—जैन-ग्रंथों में वर्णन है कि ९ लिच्छिवियों ने ९ मल्लों और कासी कोसल के १८ गणराजाओं के साथ गणराज्य स्थापित कर लिया था।

यहाँ ला-महोदय के हिसाब से ९ मल्ल+९लिच्छिवि+१८ कासी-कोशल के गणराजे कुल ३६ राजे हुए।

(२)......उनके वैदेशिक सम्बन्ध की देखभाल ९ लिच्छिवियों की एक समिति करती थी, जिन्होंने ९ मल्लिक और कासी-कोसल के १८

गणराजाओं से मिलकर महावीर के मामा चेटक के नेतृत्व में एक संघटन बनाया था......

—'हिन्दू-सभ्यता' राधाकुमुद मुकर्जी (अनु० वासुदेवशरण अग्रवाल) पृष्ठ २०० ।

राधाकुमुद मुखर्जी की गणना भी ३६ होती है। यह भी ला-के समान ही भ्रामक है।

(३) द 'जैन कल्पसूत्र रेफर्स टु द' नाइन लिच्छवीज एज फार्म्ड ए लीग विथ नाइन मल्लकीज ऐंड एटीन आर्कस आव कासी-कोसल।

—हेमचन्द्रराय चौधरी-लिखित 'पोलिटिकल हिस्ट्री आव ऐंशेंट इंडिया' पाँचवाँ संस्करण) पृष्ठ १२५

रायचौधरी की गणना भी ३६ हुई। इसके प्रमाण में रायचौधरी ने हर्मन याकोबी के कल्पसूत्र का संदर्भ दिया है। पर, याकोबी ने अपने अनुवाद में इस रूप में नहीं लिखा है, जैसा कि रायचौधरी ने समझा। पाठकों की सुविधा के लिए हम याकोबी के अनुवाद का उद्धरण ही यहाँ दे रहे हैं:—एटीन कन्फेडेरेट किंग्स आव कासी ऐंड कोशल।
—नाइन लिच्छवीज ऐंड नाइन मल्लकीज

—सेक्रेड बुक आव द ईस्ट, वाल्यूम २२, पृष्ठ २६

रायचौधरी ने अपनी पादटिप्पणि में इन लिच्छिवियों और मल्लों को कासी-कोसल का होने में सन्देह प्रकट किया है। विस्तार में महावीर स्वामी के वंश का वर्णन करते हुए हम यह लिख चुके हैं कि लिच्छिवि क्षत्रिय थे और अयोध्या से वैशाली आये थे। भगवान् महावीर स्वामी का गोत्र काश्यप था, और काश्यप गोत्र ऋषभदेव भगवान् से प्रारम्भ हुआ, इसकी भी कथा हम लिख चुके हैं। जैन और हिंदू दोनों स्रोतों से यह सिद्ध है। परमत्थजोतिका का यह लिखना कि, लिच्छिवि काशी के थे वस्तुतः स्वयं भ्रामक है।
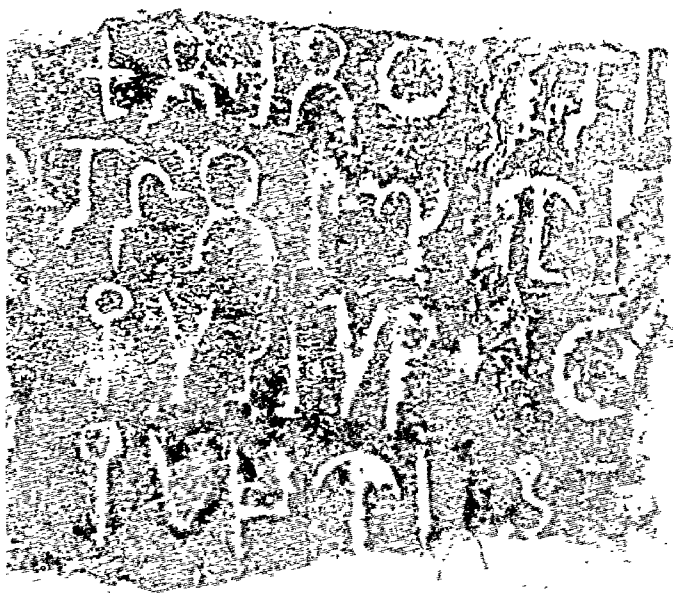
···विरय भगवत (त)···थ···चतुरासि तिव (स)···(का) ये
सालिमालिनि···र नि त्रिठमाझिमि के

—भगवान् वीर के लिए···८४-वें वर्ष में मध्यमिकाके···

[यह शिलालेख महावीर-संवत् ८४ का है। आज कल यह अजमेर-संग्राहालय में है। अजमेर से २६ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित वरली से यह प्राप्त हुआ था। शिलालेख में उल्लिखित माध्यमिका चित्तौड़ से ८ मील उत्तर स्थित नगरी-नामक स्थान है। यह भारत का प्राचीनतम शिलालेख है]

महावीर-निर्माण-संवत्

भगवान् महावीर का निर्वाण कब हुआ, इस संबंध में जैनों में गणना की एक अभेद्य परम्परा विद्यमान है और वह श्वेताम्बरों तथा दिगम्बरों में समान ही है। 'तित्थोगालीपयन्ना' में निर्वाणकाल का उल्लेख करते हुए लिखा है—

जं रयणि सिद्धिगओ, अरहा तित्थकरो महावीरो।
तं रयणिमवंतीए, अभिसित्तो पालओ राया ॥६२०॥
पालग रएणो सट्ठी, पुण पण्णसयं वियाणि णंदाणम्।
मुरियाणं सट्ठिसयं, पणतीसा पूस मित्ताणम् (त्तस्स) ॥६२१॥
बलमित्त-भाणुमित्ता, सट्ठा चत्ताय होंति नहसेणे
गद्दभसयमेगं पुण, पडिवन्नो तो सगो राया ॥६२२॥
पंच य मासा पंच य, वासा छच्चेव होंति वाससया।
परिनिव्वुअस्सऽरिहतो, तो उप्पन्नो (पडिवन्नो) सगो राया ॥६२३॥

—जिस रात में अर्हन् महावीर तीर्थंकर का निर्वाण हुआ, उसी रात (दिन) में अवन्ति में पालक का राज्याभिषेक हुआ।

६० वर्ष पालक के, १५० नंदों के, १६० मौर्यों के, ३५ पुष्यमित्र के, ६० बलमित्र-भानुमित्र के, ४० नभःसेन के और १०० वर्ष गर्दभिल्लों के बीतने पर शक राजा का शासन हुआ।

अर्हन् महावीर को निर्वाण हुए ६०५ वर्ष और ५ मास बीतने पर शक राजा उत्पन्न हुआ।

यही गणना अन्य जैन-ग्रंथों में भी मिलती है। हम उनमें से कुछ नीचे दे रहे हैं :—

(१) श्री वीरनिर्वृतेर्वर्षैः षड्भिः पञ्चोत्तरैः शतैः।
शाक संवत्सरस्यैषा प्रवृत्तिर्भरतेऽभवत्॥

—मेरुतुंगाचार्य-रचित 'विचार-श्रेणी' (जैन-साहित्य-संशोधक, खंड २, अंक ३-४ पृष्ठ ४)

(२) छहिं वासाण सएहिं पञ्चहिं वासेहिं पञ्चमासेहिं
मम निव्वाण गयस्स उ उपाज्जिस्सइ सगो राया ॥

—नेमिचंद्र-रचित 'महावीर-चरियं' श्लोक २१६९, पत्र ९४-१

६०५ वर्ष ५ मास का यही अंतर दिगम्बरों में भी मान्य है। हम यहाँ तत्संबंधी कुछ प्रमाण दे रहे हैं :—

(१) पणछस्सयवस्सं पणमासजुदं गमिय वीरणिव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहिय सगमासं ॥८५०॥

—नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती-रचित 'त्रिलोकसार'

(२) वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पंचाग्रां मासपंचकम्।
मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत् ॥६०-५४९॥

—जिनसेनाचार्य-रचित 'हरिवंशपुराण'

(३) णिव्वाणे वीरजिणे छव्वास सदेसु पंचवरिसेसु।
पणमासेसु गदेसु संजादो सगणिओ अहवा ॥

—तिलोयपण्णत्ति, भाग १, पृष्ठ ३४१

(४) पंच य मासा पंच य वासा छच्चेव होंति वाससया।
सगकालेण य सहिया थावेयव्वो तदो रासी ॥

—धवला (जैनसिद्धान्त भवन, आरा), पत्र ५३७

वर्तमान ईसवी सन् १९६१ में शक-संवत १८८२ है। इस प्रकार ईसवी सन् और शक संवत् में ७९ वर्ष का अंतर हुआ। भगवान् महावीर का निर्वाण शक संवत से ६०५ वर्ष ५ मास पूर्व हुआ। इस प्रकार ६०६ में से ७९ घटा देने पर महावीर का निर्वाण ईसवी पूर्व ५२७ में सिद्ध होता है।

केवल शक-संवत् से ही नहीं, विक्रम-संवत् से भी महावीर-निर्वाण का अंतर जैन-साहित्य में वर्णित है।

तपागच्छ—पट्टावलि में पाठ आता है—

जं रयणिं कालगओ, अरिहा तित्थंकरो महावीरो।
तं रयणिं अवणिवई, अहिसित्तो पालओ राया ॥ १ ॥
सट्ठी पालयरण्णो ६०, पणवण्णसयं तु होइ नंदाणं १५५,
अट्ठसयं मुरियाणं १०८, तीस च्चिअ पूसमित्तस्स ३० ॥२॥
बलमित्त-भाणुमित्त सट्ठी ६० वरिसाणि चत्त नहवाणे ४०
तह गद्दभिल्लरज्जं तेरस १३ वरिस-सगस्स चउ (वरिसा) ॥३॥
श्री विक्रमादित्यश्च प्रतिबोधितस्तद्राज्यं तु श्री वीर सप्तति चतुष्ये ४७० संजातं।

—६० वर्ष पालक राजा, १५५ वर्ष नव नंद, १०८ वर्ष मौर्यवंशका, ३० वर्ष पुष्यमित्र, बलमित्र-भानुमित्र ६०, नहपान ४० वर्ष। गर्दभिल्ल १३ वर्ष, शक ४ वर्ष कुल मिलकर ४७० वर्ष (उन्होंने विक्रमादित्य राजा को प्रति बोधित किया) जिसका राज्य वीर-निर्वाण के ४७० वर्ष बाद हुआ।

—धर्मसागर उपाध्याय-रचित तपागच्छ-पट्टावली (सटीक सानुवाद पन्यास कल्याण विजय जी) पृष्ठ ५०–५२

ऐसा ही उल्लेख अन्य स्थलों पर भी है।

(१) विक्कमरज्जारंभा परओ सिरि वीर निव्वुई भणिया।
सुन्न मुणि वेय जुत्तो विक्कम कालउ जिण कालो।

—विक्रम कालाज्जिनस्य वीरस्य कालो जिन कालः शून्य (०) मुनि (७) वेद (४) युक्तः। चत्वारिंशतानि सप्तत्यधिक वर्षाणि श्री महावीर विक्रमादित्ययोरन्तर मित्यर्थः। नन्वयं कालः श्री वीर-विक्रमयोः कथं गण्यते; इत्याह विक्रम राज्या

रम्भात् परतः पश्चात् श्री वीर निर्वतिरत्र भणिता। को भावः-श्री वीर निर्वाणदिनादनु ४७० वर्षेर्विक्रमादित्यस्य राज्यारम्भ दिन मिति

—विचारश्रेणी (पृष्ठ ३,४)

(३) पुनर्मन्निर्वाणात् सपत्यधिक चतुः शत वर्षे (४७०) उज्जयिन्यां श्री विक्रमादित्योराजा भविष्यति...स्वनाम्ना च संवत्सर प्रवृत्तिं करिष्यसि

—श्री सौभाग्यपंचम्यादि पर्वकथासंग्रह, दीपमालिका व्याख्यान, पत्र ९६–९७

(४) महामुक्खगमणाओ पालय-नंद-चंदगुत्ताइराईसु वोलीणेसु चउसय सत्तरेहिं विक्कमाइच्चो राया होहि। तत्थ सट्ठी वरिसाणं पालगस्स रज्जं; पणपण्णं सयं नंदाणं, अट्ठोत्तर सयं मोरिय वंसाणं, तीसं पूसमित्तस्स, सट्ठी बलमित्त-भाणु मित्ताणं, चालीसं नरवाहणस्य, तेरस गद्दभिल्लस्स, चत्तारि सगस्स। तओ विक्कमाइच्चो......

—विविध तीर्थकल्प (अपापावृहत्कल्प) पृष्ठ ३८,३९

(५) चउसय सत्तरि वरिसे (४७०), वीराओ विक्कमो जाओ

—पंचवस्तुक

विक्रम-संवत् और ईसवी सन् में ५७ वर्ष का अतंर है। इस प्रकार ४७० में ५७ जोड़ने से भी महावीर-निर्वाण ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व आता है।

कुछ लोग परिशिष्ट-पर्व में आये एक श्लोक के आधार पर, यह अनुमान लगाते हैं कि, हेमचन्द्राचार्य महावीर-निर्वाण-संवत् ६० वर्ष बाद मानते हैं। पर, यह उनकी भूल है। उन लेखकों ने अपना मत हेमचन्द्राचार्य की सभी उक्तियों पर बिना विचार किये निर्धारित कर रखा है।

कुमारपाल के सम्बन्ध में हेमचन्द्राचार्य ने त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र में लिखा है :—

अस्मिन्निर्वाणितो वर्ष शत्या [ता] न्यभय पोडश ।
नव पष्टिश्च यास्यन्ति यदा तत्र पुरे तदा ॥ ४५ ॥
कुमारपाल भूपालो लुक्य कुल चन्द्रमा ।
भविष्यति महाबाहुः प्रचण्डाखण्डशासनः ॥ ४६ ॥

—त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग १२, पत्र १५९–२

अर्थात् भगवान् के निर्वाण के १६६९ वर्ष बाद कुमारपाल राजा होगा।

हम पहले कह आये हैं, वीर-निर्वाण के ४७० वर्ष बाद विक्रम-संवत् आरम्भ हुआ। अतः १६६९ में से ४७० घटाने पर ११९९ विक्रम संवत् निकलता है। इसी विक्रम-संवत् में कुमारपाल गद्दी पर बैठा[1]। इस दृष्टि से भी महावीर-निर्वाण ५२७ ई० पू० में ही सिद्ध होता है। और, ६० वर्षों का अंतर बताने वालों का मत हेमचन्द्राचार्य की ही उक्ति से खंडित हो जाता है।

पुण्णे वाससहस्से सयम्मि वरिसाण नवनवइअ अहिए
होही कुमर नरिन्दो तुह विक्कमराय! सारिच्छो

—प्रबंधचिंतामणि, कुमारपालादि प्रबंध, पृष्ठ ७८

अथ संवन्नवनत्र—शंकरे मार्गशीर्षके
तिथौ चतुर्थ्यां श्यामायां वारे पुण्यान्विते खौ

---

१ सं० ११९९ वर्षे कार्तिक सुदी ३ निरुद्धं दिन ३ पादुका राज्यं। तत्रैव वर्षे मार्ग सुदी ४ उपविष्ट भीमदेव सुत-खेमराजसुत,—देवराज सुत-त्रिभुवनपाल सुत-श्री कुमारपालस्य सं० १२२९ पौष सुदी १२ निरुद्धं राज्यं....

—विचारश्रेणी (जै० सा० सं०) पृष्ठ ९

ऐसा ही उल्लेख स्थविरावलि (मेरुतुंग-रचित) (जैन० सा० सं० वर्ष २ अंक २, पृष्ठ १४१) में भी है।

—जयसिंहसूरि-प्रणीति कुमारपालचरित्र सर्ग ३, श्लोक ४६२ पत्र ६०—१

बौद्ध-ग्रन्थों का एक भ्रामक उल्लेख

दीघनिकाय के पासादिक-सुत्त में उल्लेख है—

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश) में वेधञ्ञा-नामक शाक्यों के आम्रवन-प्रासाद में विहार कर रहे थे।

उस समय निगण्ठ नाथपुत्त (तीर्थंकर महावीर) की पावा में हाल ही में मृत्यु हुई थी। उनके मरने पर निगण्ठों में फूट हो गयी थी, दो पक्ष हो गये थे, लड़ाई चल रही थी, कलह हो रहा था। वे लोग एक दूसरे को वचन रूपी बाणों से वेधते हुए विवाद करते थे—तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते, मैं इस धर्मविनय को जानता हूँ। तुम भला इस धर्मविनय को क्या जानोगे? तुम मिथ्याप्रतिपन्न हो, मैं सम्यक्-प्रतिपन्न हूँ। मेरा कहना सार्थक है और तुम्हारा कहना निरर्थक। जो (बात) पहले कहनी चाहिए थी, वह तुमने पीछे कही, और जो पीछे कहनी चाहिए थी, वह तुमने पहले कही। तुम्हारा वाद बिना विचार का उल्टा है। तुमने वाद रोपा, तुम निग्रहस्थान में आ गये। इस आक्षेप से बचने के लिए यत्न करो, यदि शक्ति है तो इसे सुलझाओ। मानों निगण्ठों में युद्ध हो रहा था।

"निगण्ठ नाथपुत्त के जो श्वेत-वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य थे, वे भी निगण्ठ के वैसे दुराख्यात (= ठीक से न कहे गये) दुष्प्रवेदित (= ठीक से न साक्षात्कार किये गये), अ-नैर्याणिक (= पार न लगाने वाले), अन्-उपशम-संवर्तनिक (= न शान्तिगामी), अ-सम्यक् संबुद्ध-प्रवेदित (= किसी बुद्ध द्वारा न साक्षात् किया गया), प्रतिष्ठा (= नींव)-रहित = भिन्न स्तूप आश्रय रहित धर्म में अन्यमनस्क हो खिन्न और विरक्त हो रहे थे।

तब, चुन्द समणुद्देस पावा में वर्षावास कर जहाँ सामगाम था और जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गये। ०बैठ गये। ०बोले—"भँते! निगण्ठों में फूट०।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द बोले—"आवुस चुन्द! यह कथा भेंट रूप है। आओ आवुस चुन्द! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ चलें। चलकर यह बात भगवान् से कहें।"

"बहुत अच्छा" कह चुन्द ने उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द० श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे वहाँ गये।० एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द बोले—"भंते! चुद० ऐसा निगण्ठ नाथ पुत्र की अभी हाल में पावा में मृत्यु हुई है। उनके मरने पर कहता है—'निगण्ठ० पावा में०।"[1]

इसी से मिलती-जुलती कथाएँ दीघनिकाय के संगीतसुत्तन्त[2] और मज्झिमनिकाय के सामगाम सुतंत[3] में भी आती हैं।

बौद्ध-साहित्य में महावीर-निर्वाण का यह उल्लेख सर्वथा भ्रामक है—इस ओर सबसे पहले डाक्टर हरमन याकोबी का ध्यान गया और उन्होंने इस सम्बन्ध में एक लेख लिखा जिसका गुजराती-अनुवाद 'भारतीय विद्या, (हिन्दी) के सिंघी-स्मारक-अंक में छपा है।[4]

इस सूचना के सम्बन्ध में डाक्टर ए० एल० बाशम ने अपनी पुस्तक 'आजीवक' में लिखा है—"मेरा विचार है कि पाली-ग्रंथों के इस संदर्भ में महावीर के पावा में निर्वाण का उल्लेख नहीं है, पर सावत्थी में गोशाला

१—दीघनिकाय (हिन्दी-अनुवाद) पासादिक सुत्त पृष्ठ २५२, २५३

२—दीघनिकाय (हिन्दी-अनुवाद) पृष्ठ २८२

३—मज्झिमनिकाय (हिन्दी-अनुवाद) पृष्ठ ४४१

४—पृष्ठ १७७—१९०

की मृत्यु का उल्लेख है। भगवतीसूत्र में भी इस संदर्भ में झगड़े आदि का उल्लेख आया है।''[1]

बुद्ध का निधन ५४४ ई०[2] पूर्व० में हुआ और महावीर स्वामी का निर्वाण ५२७ ई० पूर्व में हुआ। महावीर स्वामी के निर्वाण के सम्बंध में हम विस्तार से तिथि पर विचार कर चुके हैं।

बुद्ध भगवान् महावीर से लगभग १६ वर्ष पहले मरे। भगवान् के विहार-क्रम में हम विस्तार से लिख चुके हैं कि, भगवान् महावीर के निर्वाण से १६ वर्ष पूर्व किस प्रकार गोशाला का देहावसान हुआ था और जमालि प्रथम निह्नव हुआ था। यह झगड़े का जो उल्लेख बौद्ध-ग्रंथों में है, वह वस्तुतः जमालि के निह्नव होने का उल्लेख है।

याकोबी का कथन है कि, बौद्ध-ग्रन्थों के जिन सूत्रों में यह उल्लेख है, वे (सूत्र) वस्तुतः निर्वाण के दो-तीन शताब्दि बात लिखे गये हैं।[3] अतः सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि २-३ सौ वर्षों के अंतर के बाद सुनी-सुनायी बातों को संग्रह के कारण यह भूल हो गयी होगी।

१—आजीवक, पृष्ठ ७५

२—द थाउजेंड फाइव हंड्रेड इयर्स आव बुद्धिज्म, फोरवार्ड, पृष्ठ ५

३—भारतीय विद्या, पृष्ठ १८१

रोइअ नायपुत्त-वयणे, अप्पसमे मन्नेज्ज छप्पि काए।
पंच य फासे महव्वयाइं, पंचासवसंवरे जे स भिक्खू॥

—दशवैकालिकसूत्र, अ० १०, गा० ५

जो ज्ञातपुत्र—भगवान् महावीर—के प्रवचनों पर श्रद्धा रखकर छहकाय के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानता है, जो अहिंसा आदि पाँच महाव्रतों का पूर्णरूप से पालन करता है, जो पाँच आस्रवों का संवरण अर्थात् निरोध करता है, वही भिक्षु है।

श्रमण-श्रमणी

१. अकम्पित—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ ३१०–३१२, ३६९।

२. अग्निभूति—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २७०–२७५, ३६७।

३. अचलभ्राता—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ ३१३–३१८, ३६९।

४. अतिमुक्तक—राजाओं वाले प्रकरण में विजय-राजा के प्रसंग में देखिए।

५. अनाथी मुनि—ये कौशाम्बी के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम धनसंचय था।[1] एक बार बचपन में इनके नेत्रों में पीड़ा हुई। उससे उनको विपुल दाह उत्पन्न हुआ। उसके पश्चात् उनके कटिभाग, हृदय और मस्तक में भयंकर वेदना उठी। वैद्यों ने उनकी चतुष्पाद[2] चिकित्सा की पर वे सभी विफल रहे। उनके माता, पिता, पत्नी, भाई-बंधु सभी लाचार होकर रह गये। कोई उनके दुःख को न हर सका। उसी बीमारी

१—कोसंबी नाम नयरी, पुराणपुर भेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्झं पभूयधणसंचाओ॥
—उत्तराध्ययन नेमिचंद्र की टीका सहित, अ० २०, श्लोक १८, पत्र २६८-२

२—'चाउप्पायं' ति चतुष्पादां भिषग्भेषजातुरप्रतिचारकात्मक चतुर्भाग चतुष्टयात्मिका—वही पत्र २६९-२।

और चिकित्सा के प्रकार बताते हुए लिखा है कि, इतने तरह के लोग चिकित्सा करते थे—आचार्य, विद्या, मंत्र, चिकित्सक, शस्त्रकुशल, मंत्रमूलविशारद—गा० २२।

में उन्हें विचार हुआ—"यदि मैं वेदना से मुक्त हो जाऊँ तो क्षमावान, दान्तेन्द्रिय और सर्व प्रकार के आरम्भ से रहित होकर प्रव्रजित हो जाऊँ।" यह चिंतन करते-करते उन्हें नींद आ गयी और उनकी पीड़ा जाती रही। सबसे अनुमति लेकर वे प्रव्रजित हो गये।

राजगृह के निकट मंडिकुक्षि में इन्होंने ही श्रेणिक को जैन-धर्म की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया था।

६. **अभय**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

७. **अर्जुन माली**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४८-४९।

८. **अलक्ष्य**—राजाओं वाले प्रकरण में देखिए।

९. **आनंद**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९३

१०—**आनन्द थेर**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ११३–११५।

११. **आर्द्रक**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४-६५

१२. **इन्द्रभूति**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २६०–२६९, ३६७ भाग २, पृष्ठ ३०७

जब गौतम स्वामी के शिष्य साल-महासाल आदि को केवलज्ञान हुआ तो उस समय गौतम स्वामी को यह विचार हुआ कि, मेरे शिष्यों को तो केवलज्ञान हो गया; पर मैं मोक्ष में जाऊँगा कि नहीं, यह शंका की बात है। गौतम स्वामी यह विचार ही कर रहे थे कि, गौतम स्वामी ने देवताओं को परस्पर बात करते सुना—"आज श्री जिनेश्वर देशना में कह रहे थे कि, जो भूचर मनुष्य अपनी लब्धि से अष्टापद पर्वत पर जाकर जिनेश्वरों की वंदना करता है, वह मनुष्य उसी भव में सिद्धि प्राप्त करता है।"

यह सुनकर गौतम स्वामी अष्टापद पर जाने को उत्सुक हुए और वहाँ जाने के लिए उन्होंने भगवान् से अनुमति माँगी। आज्ञा मिल जाने पर गौतम स्वामी ने तीर्थंकर की वंदना की और अष्टापद की ओर चले।

उसी अवसर पर कोडिन्न, दिन्न और सेवाल—नामक तीन तापस

अपना ५००–५०० का शिष्य-परिवार लेकर पहले से ही अष्टापद की ओर चले। कोडिन्न-सपरिवार अष्टापद की पहली मेखला तक पहुँचा। आगे जाने की उनमें शक्ति नहीं थी। दूसरा दिन्न-नामक तापस सपरिवार दूसरी मेखला तक पहुँचा। सेवाल-नामक तापस अपने शिष्यों के साथ तीसरी मेखला तक पहुँचा। अष्टापद में एक-एक योजन प्रमाण की आठ मेखलाएँ हैं।

इतने में गौतम स्वामी को आता देखकर उन्हें विचार हुआ कि "तप से हम लोग तो इतने कृश हो गये हैं, तो भी हम ऊपर चढ़ नहीं सके' तो यह क्या चढ़ पायेगा?"

वे यह विचार ही कर रहे थे कि, गौतम स्वामी जंघाचरण की लब्धि से सूर्य की किरणों का आलंबन करके शीघ्र चढ़ने लगे। उनकी गति देखकर उन तीनों तपस्वियों के मन में विचार हुआ कि, जब गौतम स्वामी ऊपर से उतरें तो मैं उनका शिष्य हो जाऊँ?"

उधर गौतम स्वामी ने अष्टापद पर्वत पर जाकर भरत चक्री द्वारा निर्मित ऋषभादिक प्रतिमाओं की वंदना और स्तुति की।

जब गौतम स्वामी लौटे तो उन तापसों ने कहा—"आप मेरे गुरु हैं और मैं आप का शिष्य हूँ।" यह सुनकर गौतम स्वामी ने कहा—"तुम्हारे-हमारे सबके गुरु जिनेश्वर देव हैं।" उन लोगों ने पूछा—"क्या आप के भी गुरु है?" गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—"हाँ! सुर-असुर द्वारा पूजित महावीर स्वामी हमारे गुरु हैं।"

उनके साथ लौटते हुए गोचरी के समय गौतम स्वामी ने उनसे पूछा—"भोजन के लिए क्या लाऊँ?" उन सबने परमान्न कहा। गौतम स्वामी अपने पात्र में परमान्न लेकर लौट रहे थे तो १५०३ साधुओं को शंका हुई कि इसमें मुझे क्या मिलेगा? पर, गौतम स्वामी ने सबको उसी में से भर पेट भोजन कराया।

उस समय सेवालभक्षी ५०० साधुओं को विचार हुआ कि, यह मेरा

में तत्पर हुए और दुःखों के अंत के गवेषक बने। अर्हत्-शासन में पूर्व जन्म की भावना से भावित हुए वे ६ अंत में मुक्त हुए।[1]

१६. ऋषभदत्त—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ २०–२४

१७. ऋषिदास—यह राजगृह के निवासी थे।[2] इनकी माता का नाम भद्रा था और ३२ पत्नियाँ थीं। थावच्चापुत्र के समान गृह-त्याग किया। मासिक संलेखना करके मर कर सर्वार्थसिद्ध में गये। अंत में महाविदेह में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।[3]

१८. कपिल—कौशाम्बी-नगरी में जितशत्रु-नामक राजा राज्य करता था। उसकी राजधानी में चतुर्दश विद्याओं का ज्ञाता काश्यप-नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह अपने यहाँ के पंडितों में अग्रणी था। राज्य की ओर से उसे वृत्ति नियत थी। उसे एक पतिपरायणा भार्या थी। उसे पुत्र था। उसका नाम कपिलदेव था। कुछ काल बाद काश्यप ब्राह्मण का देहान्त हो गया। उसके बाद एक अन्य व्यक्ति राजपंडित के स्थान पर नियुक्त हुआ। वह राजपंडित छत्र-चमरादिक से युक्त होकर नगर में भ्रमण करने लगा। एक दिन वह बड़े धूम-धाम से जा रहा था कि, उसे देख कर काश्यप ब्राह्मण की पत्नी रो पड़ी। कपिल ने रोने का कारण पूछा तो उसकी माता ने कहा—"तुम्हारे पिता पहले राजपंडित थे। उनके निधन के बाद तुम राजपंडित होते; पर विद्यार्जन न किये होने के कारण तुम उस पद पर नियुक्त नहीं हुए।" माता के कहने पर कपिल श्रावस्ती-नगरी में अपने पिता के मित्र इन्द्रदत्त के घर विद्या पढ़ने गया। इन्द्रदत्त ने शालिभद्र-नामक एक धनी के घर उसके भोजन की व्यवस्था

१—उत्तराध्ययन नेमिचंद्र की टीका सहित अ० १४ पत्र २०४-२—२१४-१।

२—अणुत्तरोववाइयदसाओ (अंतगडदसाओ-अणुत्तरोववाइयदसाओ) एन० वी० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ ५६।

३—वही पृष्ठ ५१–५९।

कर दी। शालिभद्र के घर की एक दासी कपिल की देखरेख करती थी। उससे शालिभद्र का प्रेम हो गया। उसके साथ भोग-भोगते उस दासी को गर्भ रह गया। अब उस दासी ने अपने भरण-पोषण की माँग की। दासी ने उससे कहा—"नगर में एकधन नामक सेठ रहता है। प्रातःकाल तुम उससे जाकर दान माँगो वह देगा।" रात भर कपिल इसी चिन्ता में पड़ा रहा और रात रहते ही सेठ से दान लेने चल पड़ा। चोर समझ कर वह पकड़ लिया गया। प्रातःकाल राजा प्रसेनजित के समक्ष उपस्थित किया गया, तो उसने सारी बात सच-सच बता दी। राजा उसके सत्य-भाषण से बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने मन चाहा माँगने को कहा। कपिल ने उसके लिए समय माँगा और एकान्त में वाटिका में बैठ कर विचार करने लगा। उसने सोचा—"दो स्वर्ण मासक माँगू तो मुश्किल से धोती होगी। हजार माँगू तो आभूषण ही बन सकेंगे। दस हजार माँगू तो निर्वाह मात्र होगा; पर हाथी-घोड़ा नहीं होग। एक लाख माँगू तो भी कम होगा।" ऐसा विचार करते हुए कपिल को ज्ञान हुआ कि, इस तृष्णा का अन्त नहीं है। अतः उसने लोभ करके साधुवृत्ति स्वीकार कर ली और दूसरे दिन राजा के समक्ष उपस्थित होकर कपिल ने अपना निर्णय बता दिया।

छः मास साधु-जीवन व्यतीत करने के बाद, घाति कर्मों के क्षय होने पर कपिल को केवलज्ञान हुआ और वह कपिलकेवली के नाम से विख्यात हुए।

श्रावस्ती-नगरी के अंतराल में बसने वाले ५०० चोरों को प्रतिबोध दिलाने के लिए एक बार कपिलकेवली ने श्रावस्ती-नगरी से विहार किया। चोरों ने कपिलकेवली को त्रास देना प्रारम्भ किया। चोरों के सरदार बल-भद्र ने चोरों को रोका और कपिलकेवली से कोई गीत गाने को कहा। कपिलकेवली ने जो गीत सुनाया वह उत्तराध्ययन का आठवाँ अध्ययन है। उनकी गाथाओं को सुन कर वे सभी चोर प्रतिबोधित हो गये।[1]

१—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र सूरि की टीका सहित, अ०८, पत्र १२४-१—१२२-२।

१९. **कमलावती**—देखिए उसुयार का वर्णन (पृष्ठ ३३२)

२०. **काली**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५

२१. **कालोदायी**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ २५०–२५२, २७१–२७३

२२. **काश्यप (कासव)**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४९।

२३. **किंकम**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४८।

२३. **केलास**—यह कैलाश गृहपति साकेत नगर के निवासी थे। १२ वर्षों तक पर्याय पाल कर विपुल-पर्वत पर सिद्ध हुए।[1]

२४. **केसीकुमार**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ १९५—२०२।

२५. **कृष्णा**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५।

२६. **खेमक**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९४।

२७. **गग्गथेर**—गर्ग गोत्रवाला—गर्गाचार्य नाम के स्थविर गणधर सर्व शास्त्रों में कुशल, गुणों से आकीर्ण, गणिभाव में स्थित और त्रुटित समाधि को जोड़ने वाले मुनि थे। इनके शिष्य अविनीत थे। अतः इन्होंने उनका त्याग कर दिया और दृढ़ता के साथ तप ग्रहण करके पृथ्वी पर विचरने लगे।[2]

२८. **गूढ़दंत**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३

२९. **चंदना**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ २३७-२४२ : भाग २, पृष्ठ ३-४

३०. **चंदिमा**—इनका उल्लेख अंतगडदसाओ में आता है। यह

१—अंतगडदसाओ (अंतगडदसाओ—अणुत्तरोववाइयदसाओ एन. वी. वैद्य-सम्पादित) पृष्ठ २५, ३४

२—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र [illegible]

साकेत के रहने वाले थे, इनकी माँ का नाम भद्रा था। इन्हें ३२ पत्नियाँ थीं। और थावच्चा-पुत्र के समान इन्होंने दीक्षा ग्रहण की।[1]

३१. चिलात—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २६५–२६६

३२. जमालि—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २४–२७, २८, १९०–१९३

३३. जयघोष—ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए जयघोष-नामक एक मुनि ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वाराणसी-नगरी में आये। वे मुनि वाराणसी के बाहर मनोरम-नामक उद्यान में प्रासुक शय्या और संस्तारक पर विराजमान होते हुए वहाँ रहने लगे। उसी नगरी में विजयघोष-नामक एक विख्यात ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था। उस समय अनगार जयघोष मासोपवास की पारणा के लिए विजयघोष के यज्ञ में भिक्षार्थ उपस्थित हुए। भिक्षा माँगने पर विजयघोष ने भिक्षा देने से इनकार करते हुए कहा—"हे भिक्षो! जो वेदों के जानने वाले विप्र हैं तथा जो यज्ञ करने वाले द्विज हैं और जो ज्योतिषांग के ज्ञाता हैं तथा धर्मशास्त्रों में पारगामी हैं, उनके लिए यहाँ भोजन तैयार है।"

ऐसा सुनकर भी जयघोष मुनि किंचित् मात्र रुष्ट नहीं हुए। सन्मार्ग बताने के लिए जयघोष मुनि ने कहा—"न तो तुम वेदों के मुख को जानते हो, न यज्ञों के मुख को। नक्षत्रों तथा धर्म को भी तुम नहीं समझते। जो अपने तथा पर के आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं, उनको भी तुम नहीं जानते। यदि जानते हो तो कहो?"

१—अंतगडदसाओ (अंतगडदसाओ-अणुत्तरोववाइयदसाओ) पृष्ठ ५१, ५६

ऐसा सुनकर विजयघोष ने हाथ जोड़कर पूछा—"हे साधो ! के मुख को कहो । यज्ञों के मुख को कहो । नक्षत्रों के मुख को कहो धर्मों के मुख को कहो । पर और अपनी आत्मा के उद्धार करने सफल हैं, उनके बारे में कहो ।"

यह सुनकर जयघोष ने कहा—"अग्निहोत्र वेदों का मुख है । य द्वारा कर्मों का क्षय करना यज्ञ का मुख है । चन्द्रमा नक्षत्रों का मुख और धर्मों के मुख काश्यप भगवान् ऋषभदेव हैं । जिस प्रकार सर्वप्र चन्द्रमा की, मनोहर नक्षत्रादि तारागण, हाथ जोड़ कर वंदना-नमस्त करते स्थित हैं, उसी प्रकार इन्द्रादि देव भगवान् काश्यय ऋषभदेव सेवा करते हैं । हे यज्ञवादी ब्राह्मण लोगों ! तुम ब्राह्मण की विद्या सम्पदा से अनभिज्ञ हो । स्वाध्याय और तप के विषय में भी अनभिज्ञ ह स्वाध्याय और तप के विषय में भी मूढ़ हो । अतः तुम भस्म से आच्छा दित की हुई अग्नि के समान हो । तात्पर्य यह है कि, जैसे भस्म से आच्छा दित की हुई अग्नि ऊपर से शांत दिखती है और उसके अंदर त बराबर बना रहता है, इसी प्रकार तुम बाहर से तो शांत प्रतीत होते परन्तु तुम्हारे अंतःकरण में कषाय-रूप अग्नि प्रज्वलित हो रही है । कुशलों द्वारा संदिष्ट अर्थात् जिसको कुशलों ने ब्राह्मण कहा है और लोक में अग्नि के समान पूजनीय है, उसको हम ब्राह्मण कहते हैं । स्वजनादि में आसक्त नहीं होता और दीक्षित होता हुआ सोच नहीं करता; किन्तु आर्य-वचनों में रमण करता है, उसको हम ब्राह्मण कहते हैं जैसे अग्नि के द्वारा शुद्ध किया हुआ स्वर्ण तेजस्वी और निर्मल हो जात है, तद्वत् रागद्वेष और भय से जो रहित है, उसको हम ब्राह्मण कहते हैं ।" इस प्रकार ब्राह्मण के सम्बंध में अपनी मान्यता बताते हुए जयघोष कहा—"सर्व वेद पशुओं के वध-बन्धन के लिए हैं और यज्ञ पाप-कर्म क हेतु है । वे वेद या यज्ञ वेदपाठी अथवा यज्ञकर्ता के रक्षक नहीं हो सकते वे तो पाप-कर्मों को बलवान बना कर दुर्गति में पहुँचा देते हैं । केवल

सिर मुँडाने से कोई श्रमण नहीं हो सकता, केवल ॐकार[1] मात्र कहने से कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता, जंगल में रहने से कोई मुनि तथा कुशा आदि के वस्त्र धारण कर लेने से कोई तापस नहीं हो सकता। समभाव से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है।[2]

इस प्रकार कहने के बाद , उन्होंने श्रमण-धर्म का प्रतिपादन किया। संशय के छेदन हो जाने पर विजयघोष ने विचार करके जयघोष मुनि को पहचान लिया कि जयघोष मुनि उनके भाई हैं। विजयघोष ने जयघोष की प्रशंसा की। जयघोष मुनि ने विजयघोष से कहा दीक्षा लेकर संसार-सागर में वृद्धि रोको।" विजयघोष ने धर्म सुन कर दीक्षा ले ली। और, अंत में दोनों ही ने सिद्धि प्राप्त की।[3]

३४. जयंति—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २८–३२

३५. जाली—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३

१—न ॐकारेणोपलक्षणत्वाद् 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इत्यादिना ब्राह्मणः।

—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित पत्र ३०८–१

२—समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥ ३२ ॥
कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तीओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो होइ कम्मुणो ॥ ३३ ॥

इसकी टीका करते हुए नेमिचन्द्राचार्य ने लिखा है—....'कर्मणा' क्रियया ब्राह्मणो भवति। उक्तं हि—'क्षमा दानं दमो ध्यानं, सत्यं शौच धृतिर्घृणा। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मण लक्षणम् ॥ १ ॥ तथा 'कर्मणा' क्षतत्राणलक्षणेन भवति क्षत्रियः। वैश्यः—'कर्मणा' कृषि पाशुपाल्यादिना भवति। शूद्रो भवति तु 'कर्मणा' शोचनादिहेतु प्रेषणादि सम्पादन रूपेण। कर्माभावे हि ब्राह्मणादिव्यपदेशानाम सत्त्वेति। ब्राह्मग प्रक्रमे य यच्छेषाभिधानं तद्व्याप्तिदर्शनार्थम् ॥ किमिदं स्वमनीषिकयैवोच्यते ?' :

—वही, पत्र ३०८–१

३—उत्तराध्ययन नेमिचंद्र की टीका सहित, अध्ययन २५, पत्र ३०५-२–३०६-१

३६. जिणदास—सौगंधिका-नगरी में नीलाशोक उद्यान था। उसमें सुकाल-यक्ष था। अप्रतिहत राजा था। उसकी रानी का नाम सुकन्या था। महच्चंद्र कुमार था। उसकी पत्नी का नाम अरहदत्ता था। उसके पुत्र का नाम जिनदास था। भगवान् उस नगर में आये। भगवान् ने उसके पूर्व भव की कथा कही। उसने साधु-व्रत स्वीकार कर लिया।[1]

३७. जिनपालित—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९३

३८. तेतलीपुत्र—तेतलीपुर-नामक नगर था। उसके ईशान कोण में प्रमदवन था। उस नगर में कनकरथ (कणागरह)[2] नामक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम पद्मावती था। तेतलिपुत्र नाम का उनका आमात्य था। वह साम-दाम-दंड-भेद चारों प्रकार की नीतियों में निपुण था।

उस तेतलिपुर-नामक नगर में मूपिकारदारक-नामक एक स्वर्णकार रहता था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था और रूप-यौवन तथा लावण्य में उत्कृष्ट पोट्टिला-नामक एक पुत्री थी।

एक वार पोट्टिला सर्व अलंकारों से विभूषित होकर अपनी चेटिकाओं के समूह से प्रासाद के ऊपर अगासी पर सोने के गेंद से खेल रही थी। उस समय बड़े परिवार के साथ तेतलीपुत्र अश्ववाहिनी सेना लेकर निकला था। उसने दूर से पोट्टिला को देखा। पोट्टिला के रूप पर मुग्ध होकर उसने पोट्टिला-सम्बंधी तथ्यों की जानकारी अपने आदमियों से प्राप्त की और घर आने के पश्चात् अपने आदमियों को पोट्टिला की माँग करने के लिए स्वर्णकार के घर भेजा। उसने कहलाया कि, चाहे जो शुल्क चाहो, लेकर अपनी कन्या का विवाह मुझ से कर दो।

उस स्वर्णकार ने आये मनुष्यों का स्वागत-सत्कार किया। मंत्री की

१—विपाकसूत्र (मोदी-चौकसी-सम्पादित) २-५, पृष्ठ ८१।

२—उपदेशमाला दोघट्टी-टीका पत्र ३३० में राजा का नाम कनककेतु लिखा है।

बात उसने स्वीकार कर ली और इसकी सूचना देने वह मंत्री के घर गया। दोनों का विवाह हो गया और विवाह के बाद तेतलीपुत्र पोट्टिला के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

राजा कनकरथ अपने राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, कोष्ठागार तथा अंतःपुर के विषय में ऐसा मूर्च्छा वाला (आसक्त) था कि उसे जो पुत्र उत्पन्न होता, उसको वह विकलांग कर देता।

एक बार मध्यरात्रि के समय पद्मावती देवी को इस प्रकार अध्यवसाय हुआ—"सचमुच कनकरथ राजा राज्य आदि में आसक्त हो गया है और (उसकी आसक्ति इतनी अधिक हो गयी है कि) वह अपने पुत्रों को विकलांग करा डालता है। अतः मुझे जो पुत्र हो कनकरथ राजा से उसे गुप्त रखकर मुझे उसका रक्षण करना चाहिए।" ऐसा विचार कर उसने तेतलीपुत्र आमात्य को बुलाया और कहा—"हे देवानुप्रिय! यदि मुझे पुत्र हो तो उसे कनकरथ राजा से छिपा कर उसका लालन-पालन करो। जब तक वह बाल्यावस्था पार कर यौवन न प्राप्त करले तब तक आप उसका पालन-पोषण करें।" तेतलीपुत्र ने रानी की बात स्वीकार कर ली।

उसके बाद पद्मावती देवी और आमात्य की पत्नी पोट्टिला दोनों ने गर्भ-धारण किया। अनुक्रम से नव मास पूर्ण होने के बाद पद्मावती देवी ने बड़े सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। जिस रात्रि को पद्मावती देवी ने पुत्र को जन्म दिया, उसी रात्रि में पोट्टिला को भी मरी हुई पुत्री हुई।

पद्मावती ने गुप्त रूप से तेतलीपुत्र को घर बुलाया और अपना नव-जात पुत्र मंत्री को सौंप दिया। तेतलीपुत्र उस बच्चे को लेकर घर आया तथा सारी बातें अपनी पत्नी को समझा कर उसने बच्चे का लालन-पालन करने के लिए उसे सौंप दिया और अपनी मृत पुत्री को रानी पद्मावती को दे आया।

तेतलीपुत्र ने घर लौट कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा—"हे देवानुप्रियो! तुम लोग शीघ्र चारक-शोधन (जेलखाने से कैदियों

को मुक्त) कराओ और दस दिनों की स्थितिपतिका (उत्सव) का आयोजन करो। कनकरथ राजा के राज्य में मुझे पुत्र हुआ है, अतः इसका नाम कनकध्वज होगा। अनुक्रम से वह शिशु बड़ा हुआ कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया और युवा हुआ।

कुछ समय बाद तेतलीपुत्र और पोट्टिला में अरुचि हो गयी। तेतलीपुत्र को पोट्टिला का नाम और गोत्र सुनने की भी इच्छा न होती। पोट्टिला को शोक-संतप्त देखकर तेतलीपुत्र ने एक बार कहा—हे देवानुप्रिय ! तुम खेद मत करो। मेरी भोजनशाला में विपुल अशन-पान-खादिम और स्वादिम तैयार कराओ। तैयार कराकर श्रमण, ब्राह्मण यावत् वणीमगों को दान दिया करो।"

उसके बाद वह पोट्टिला इस प्रकार दान देने लगी।

उस समय सुव्रता-नामक ब्रह्मचारिणी, बहुश्रुत और बहुत परिवार वाली अनुक्रम से विहार करती हुई तेतलीपुर नामक नगर में आयी।

सुव्रता आर्या का एक संघाटक (दो साध्वियाँ) पहली पोरसी में स्वाध्याय करके यावत् भिक्षा के लिए वे दोनों साध्वियाँ तेतलीपुत्र के घर में आयीं। उन्हें आते देखकर पोट्टिला खड़ी हो गयी और वंदना करने के बाद नाना प्रकार के भोजन देकर बोली—"हे आर्याओ ! पहले मैं तेतलीपुत्र की इष्ट थी; अब अनिष्ट हो गयी हूँ। आप लोग बहुशिक्षिता हैं और बहुत से ग्राम, आकर, नगर, आदि में विचरण करती रहती हैं, बहुत से राजा यावत् गृहियों के घर में जाती रहती हैं, तो हे आर्याओ ! क्या कोई चूर्णयोग (द्रव्य चूर्णानां योगः स्तम्भनादिकर्मकारी), कर्मणयोग (कुष्ठादि रोग हेतुः), कर्मयोग (काम्यः योगः—कमनीयता हेतुः), हृदयोड्डापन (हृदयोड्डापन चित्ताकर्षण हेतुः), कायोड्डापन (कार्याकर्षणहेतुः), अभियोग (पराभिभवनहेतुः), वशीकरण, कौतुककर्म, भूतिकर्म अथवा मूल, कंद, छाल, बेल, शिलिका, गुटिका, औषध अथवा भेषज पहले से आपने प्राप्त किया है, जिसके द्वारा मैं पुनः तेतलीपुत्र की इष्ट हो जाऊँ ?"

उन आर्याओं ने अपने कान ढँक लिये और बोलीं—"हम साध्वियाँ निर्ग्रंथपरिग्रहरहित यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणियाँ हैं। इस प्रकार के वचन सुनना हमें कल्पता नहीं तो इस सम्बंध में उपदेश देना अथवा आचरण करना क्या कल्पेगा? हम तो केवलि-प्ररूपित धर्म अच्छी प्रकार से कह सकते हैं।"

इस पर पोट्टिला ने केवलि-प्ररूपित धर्म सुनने की इच्छा की। आर्याओं ने पोट्टिला को धर्मोपदेश दिया।

धर्मोपदेश सुनकर पोट्टिला ने श्रावक-धर्म अंगीकार करने की इच्छा प्रकट की और पाँच अणु व्रत आदि व्रत लिये।

उसके बाद पोट्टिला श्राविका होकर रहने लगी।

एक दिन पोट्टिला रात को जग रही थी तो उसे विचार हुआ—"सुव्रता आर्या के पास दीक्षा लेना ही कल्याणकारक है।"

दूसरे दिन पोट्टिला तेतलिपुत्र के पास जाकर हाथ जोड़ कर बोली—"हे देवानुप्रिय! मैं सुव्रता आर्या के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ। इसके लिए मुझे आप आज्ञा दें!"

तेतलिपुत्र ने कहा—"हे देवानुप्रिय! प्रव्रज्या लेने के बाद काल के समय काल करके जब देवलोक में उत्पन्न होना, तो हे देवानुप्रिया तुम देवलोक से आकर मुझे केवली-प्ररूपित धर्म का बोध कराना। यदि यह स्वीकार हो तो मैं तुम्हें अनुमति दे सकता हूँ अन्यथा नहीं।"

पोट्टिला ने तेतलीपुत्र की बात स्वीकार कर ली और उसने आर्या सुव्रता के समक्ष दीक्षा ले ली। अंत में एक मास की संलेखना करके अपने आत्मा को क्षीण कर साठ भक्तों का अनशन कर पाप-कर्म की आलोचना तथा प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक काल करके देवलोक में उत्पन्न हुई।

उसके कुछ काल बाद कनकरथ राजा मर गया। उसका लौकिक कार्य करने के पश्चात् प्रश्न उठा कि गद्दी पर कौन बैठे? लोग तेतलीपुत्र

के घर गये तो तेतलीपुत्र ने कनकध्वज के लिए कहा और सारी बातें बता गया।

कनकध्वज का राज्याभिषेक हुआ तो पद्मावती ने उससे कहा—"तुम इस अमात्य को पिता-तुल्य मानना। उसी के प्रताप से तुम्हें गद्दी मिली है।" कनकध्वज ने माता की बात स्वीकार कर ली।

उसके बाद पोट्टिलदेव ने कितनी ही बार केवलीभाषित धर्म का प्रतिबोध तेतलीपुत्र को कराया; परन्तु तेतलीपुत्र को प्रतिबोध नहीं हुआ।

एक बार पोट्टिलदेव को इस प्रकार अध्यवसाय हुआ—"कनकध्वज राजा तेतलिपुत्र का आदर करता है। इसीलिए वह प्रतिबोध नहीं प्राप्त करता है।" ऐसा विचारकर उसने कनकध्वज राजा को तेतलिपुत्र से विमुख कर दिया।

उसके बाद एक बार तेतलिपुत्र राजा के पास आया। मंत्री को आया देखकर भी राजा ने उसका आदर नहीं किया। तेतलिपुत्र ने कनकध्वज को हाथ जोड़ा तो भी राजा ने उसका आदर नहीं किया और वह चुप रहा।

उसके पश्चात् कनकध्वज को विपरीत जानकर तेतलिपुत्र को भय हो गया और घोड़े पर सवार होकर वह अपने घर वापस चला आया। ईश्वर आदि जो भी तेतलिपुत्र को देखते, अब उसका आदर नहीं करते। अपना अनादर देखकर तेतलीपुत्र ने तालपुट खा लिया; पर उसका भी प्रभाव उस पर न हुआ। अपनी तलवार अपनी गरदन पर चलायी; पर वह भी निष्फल गया। फाँसी लगायी तो उसकी रस्सी टूट गयी।

वह इन परिस्थितियों पर विचार कर ही रहा था कि, उस समय पोट्टिलदेव उसके सम्मुख उपस्थित हुआ और बोला—"हे तेतलि! आगे प्रपात है, पीछे हाथी का भय है। इतना अंधेरा है कि कुछ सूझता नहीं है। मध्यभाग में बाणों की वृष्टि होती है, इस प्रकार चारों ओर भय ही भय है। ग्राम में आग लगी है अरण्य धकधका रहा है तो तुम्हें ऐसे भय में कहाँ जाना उचित है?"

तब तेतलिपुत्र ने पोट्टिलदेव के उत्तर में यह कहा—"हे देव ! इस प्रकार भयग्रस्त को प्रव्रज्या की शरण में जाना चाहिए ।

इस समय शुभ परिणाम से उसे जातिस्मरणज्ञान हो गया ।

उसके बाद उसे यह विचार उत्पन्न हुआ—"जम्बूद्वीप में महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती नाम के विजय के विषय में, पुंडरीकिणी नाम की राजधानी में मैं महापद्म-नामक राजा था । उस भव में स्थविरों के पास मुंडित होकर चौदह पूर्व पढ़ कर वर्षों तक चरित्रपाल कर एक मास का अनशन कर महाशुक्र-नामक देवलोक में उत्पन्न हुआ था ।

"वहाँ से च्यव कर मैं तेतलिपुर-नामक नगर में तेतलि-नामक आमात्य की भद्रा-नामक पत्नी की कुक्षि से उत्पन्न हुआ । मुझे पूर्व अंगीकार महाव्रत लेना ही श्रेयस्कर है ।"

फिर उसने महाव्रत स्वीकार किये । प्रमदवन में अशोकवृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्टक पर विचरण करते हुए उसे चौदहपूर्व स्मरण आ गये ।

बाद में उसे केवलज्ञान हो गया ।

उधर कनकध्वज राजा को विचार हुआ कि, मैंने तेतलिपुत्र का बड़ा अनादर किया । अतः वह क्षमा याचना माँगने तेतलिपुत्र के पास गया । तेतलिपुत्र ने उसे धर्मोपदेश किया और राजा ने श्रावकधर्म स्वीकार कर लिया ।

अंत में तेतलिपुत्र ने सिद्धि प्राप्त की ।[1]

३९. दशार्णभद्र—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २१४

४०. दीर्घदन्त—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३

४१. दीर्घसेन—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३

४२. द्रुम—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३

४३. द्रुमसेण—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३

---

१ ज्ञाताधर्मकथा सटीक, १, १४—पत्र १८१-२—१८६-२

४४. देवानन्दा—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २०-२४

४५. धन्य—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ३८-४०

४६. धन्य—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ६८

४७. धन्य—चम्पा-नगरी में जितशत्रु-नामक राजा राज्य करता था। उस नगर में पूर्णभद्र-नामक चैत्य था। उसी नगर में धन्य-नामक एक सार्थवाह रहता था। चम्पा-नगरी के उत्तर-पूर्व (पश्चिम) दिशा में अहिछत्रा-नामक समृद्धिशाली नगरी थी। उस अहिछत्रा में कनककेतु-नामक राजा राज्य करता था। उसने महाहिमवंत आदि देखा था। एक बार मध्यरात्रि के समय धन सार्थवाह को यह विचार उठा—"विपुल घी, तेल, गुड़ आदि क्रयाणक लेकर अहिछत्रा जाना श्रेयस्कर है।" ऐसा विचार कर उसके गणिम, धरिम, मेज्ज, पारिच्छेद्य आदि चारों प्रकार के क्रयाणक तैयार कराये और यात्रा के लिए गाड़ियों की व्यवस्था करायी।

उसके बाद उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा—"हे देवानुप्रियों! तुम लोग चम्पा-नगरी के शृंगाटक यावत् सर्व मार्गों में कहो—'हे देवानुप्रियो! धन्य-नामक सार्थवाह विपुल घी-तेल आदि लेकर व्यापार करने के लिए अहिछत्रा जाने का इच्छुक है। अतः हे देवानुप्रियो जो कोई चरक-(धाटिभिक्षाचरः) चीरिक (रथ्यापतित चीवर परिधानः), चर्मखंडिक (चर्मपरिधानः, चर्मोपकरण इति चान्ये), भिक्षाण्ड (भिक्षा-भोजी सुगत शासनस्थ इत्यन्ये), पाण्डुरागः (शैवः), गौतम (लघुराक्ष-माला चर्चित विचित्र पाद पतनादि शिक्षा कलापद्वृषभ कोपायतः कण-भिक्षाग्रही), गोव्रतिक (गोश्चर्यानुकारी), गृहधर्मा, गृहधर्मचिंतक, अवि-रुद्ध (वैनयिक), विरुद्ध (अक्रियावादी परलोकामभ्युपगमात् सर्ववादिभ्यो विरुद्धः), वृद्धः (तापस प्रथममुत्पन्नत्वात् प्रायो वृद्धकाले च दीक्षाप्रतिपत्तेः), श्रावक, रक्तपट (परिव्राजक), निर्ग्रन्थ, पासंड-परिव्राजक अथवा गृहस्थ जो कोई धन्य-सार्थवाह के साथ अहिछत्रा-नगरी में जाना चाहे, उसे धन्य

साथ ले जा सकता है। जिसके पास छत्र न होगा, उसे धन्य छत्र देगा; जिसे पगरख न होगा, उसे पगरख देगा; जिसके पास कूँड़ी न होगी उसे कूँड़ी देगा; रास्ते में जिसे भोजन की व्यवस्था न होगी; उसे भोजन देगा; प्रक्षेप (अर्द्धपथे त्रुटित शम्बलस्य शम्बल पूरणं द्रव्य प्रक्षेपकः) देगा तथा जो कोई बीमार हो अथवा अन्य किसी कारण से अशक्त हो उसे वाहन देगा।

धन्य ने सभी को आवश्यक वस्तुएँ दे दी और कहा—"आप लोग चम्पा-नगरी के बाहर अग्रोद्यान में मेरी प्रतीक्षा करें।"

उसके बाद धन्य सार्थवाह ने शुभ तिथि, करण और नक्षत्र का योग आने पर अपनी जातिवालों को भोजन आदि कराकर, उनकी अनुमति लेकर किरियाने की गाड़ियों के साथ अहिछत्रा की ओर चला। अंग देश के मध्यभाग में होता हुआ, वह सरहद पर आ पहुँचा। वहाँ पड़ाव डाल-कर भविष्य की यात्रा में सावधान करने के लिए घोषणा करायी—"अगले प्रवास में एक बड़ा जंगल आने वाला है। उसमें पत्र, पुष्प तथा फलों से सुशोभित नंदीफल-नामक एक वृक्ष मिलेगा। वह वर्ण, रस, गंध, स्पर्श और छाया में बड़ा मनोहर है। पर, जो कोई उसकी छाया में बैठेगा, अथवा उसका फल फूल खायेगा, तो प्रारम्भ में उसे अच्छा लगेगा; पर उसकी अकाल मृत्यु हो जायेगी। अतः कोई यात्री उस वृक्ष की छाया में न विश्राम ले और न उसका फल-फूल चखे।"

आबाल वृद्ध तक यह घोषणा पहुँच जाये, इस दृष्टि से उसने तीन चार घोषणा करायी और अपने आदमियों को इसलिए नियुक्त कर दिया कि उक्त घोषणा का पालन भली प्रकार हो।

धन्य-सार्थ की घोषणा पर ध्यान न देकर बहुत से लोगों ने उसके नीचे विश्राम किया तथा उसके फलों को खाया और अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए।

प्रवास करता हुआ धन्य अहिछत्रा आ पहुँचा और बड़ी नजराना लेकर राजा के सम्मुख गया। राजा ने धन्य-सार्थवाह की भेंट स्वीकार की, उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और उसे शुल्करहित कर दिया। वहाँ अपना सामान बेचने के बाद धन्य ने अन्य सामान लिये और चम्पा-नगरी में आया।

एक बार धर्मघोष-नामक साधु वहाँ पधारे। धन्य सार्थवाह उनकी वंदना करने गया। उनका धर्मोपदेश सुनकर अपने पुत्र को गृहभार देकर उसने प्रव्रज्या ले ली। सामायिक आदि ११ अंग पढ़े। वर्षों तक चारित्र पालकर एक मास की संलेखना कर ६० भक्तों को छेद कर वह देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ। यहाँ से चल कर वह महाविदेह में सिद्ध होगा।[1]

४८. धन्य—राजगृह-नगरी थी। उस राजगृह-नगरी में श्रेणिक-नामक राजा राज्य करता था। उस नगर के उत्तर-पूर्व दिशा में गुणशिलक-नामक चैत्य था। उस गुणशिलक-चैत्य के निकट ही एक जीर्ण उद्यान था। उस जीर्ण उद्यान में स्थित देवालय विनाश को प्राप्त हो गये थे। उस उद्यान के मध्य भाग में एक बड़ा भग्न कूप था। उस भग्न कूप से निकट ही मालुकाकच्छ था। वह मालुकाकक्ष बहुत-से वृक्षों, गुल्मों, लताओं, बेलों, घासों, दर्भों आदि से व्याप्त था। चारों ओर से ढँका हुआ यह मध्य भाग मे बड़ा विस्तार वाला था।

उस राजगृह नगर में, धन्य-नामक एक सार्थवाह रहता था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। पर, उसे कोई संतान न थी। उस धन्य-सार्थवाह को पंथक नामक एक दासकुमार था। वह सुन्दर अंगवाला, पुष्ट तथा बच्चों को क्रीड़ा कराने में अत्यन्त दक्ष था।

उस राजगृह नगर में विजय-नामक एक चोर था।

१—ज्ञाताधर्मकथा सटीक १-१५ पत्र २००-२—२०२-२

एक बार मध्यरात्रि के समय कुटुम्ब की चिन्ता करते हुए, भद्रा सार्थवाही को यह अध्यवसाय हुआ—"मैं कितने ही वर्षों से पाँचों प्रकार के कामभोग का अनुभव करती हुई विचर रही हूँ पर मुझे संतान न हुई।

धन्य सार्थवाह की अनुमति लेकर राजगृह-नगर के बाहर जो नाग, भूत, यक्ष, इन्द्र, स्कंद, रुद्र, शिव तथा वैश्रमण आदि देवों के जो गृह हैं, उनकी पूजा करके उनकी मान्यता करूँ।"

दूसरे दिन उसने अपने विचार धन्य से कहे और उसने मान्यताएँ कीं। वह चतुर्दशी, अष्टिमी, अमावस्या और पूर्णिमा को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराती तथा देवताओं की पूजा-वंदना करती।

भद्रा सेठानी गर्भवती हुई और उसे एक पुत्र हुआ। उसने उसका नाम देवदत्त रखा। सेठानी ने देवदत्त को खिलाने के लिए पंथक को सौंप दिया। बच्चों के साथ पंथक देवदत्त को खिला रहा था कि, इतने में विजय चोर आ पहुँचा और उसे उठा ले गया। उसने देवदत्त के सभी आभूषण आदि छीन लिये और उसे उसने कूएँ में फेंक कर और स्वयं मालुकाकक्ष के वन में भाग गया।

पंथक रोता-चिल्लाता वापस आया और उसने देवदत्त के गुम होने की सूचना दी। नगरगुत्तिका (कोतवाल) को खबर दी गयी। वह दल-बल से खोजने लगा और खोजते-खोजते बच्चे का शव कूप में पाया।

फिर, विजय चोर को खोजते नगरगुत्तिका मालुकाकक्ष में गया और माल-सहित उसे पकड़ लिया।

एक बार दानचोरी में नगर के रक्षकों ने धन्य-सार्थवाह को पकड़ा और बाँध कर कैदखाने में डाल दिया। उसकी पत्नी ने नाना प्रकार के भोजन आदि पंथक के हाथ कैदखाने में भेजा। धन्य सार्थवाह उन्हें खाने लगा। उस समय विजय चोर ने धन्य से कहा—"हे देवानुप्रिय! थोड़ा

भोजन आप मुझे भी दें।" भद्र ने कहा—"हे विजय! मैं यह सब कौए या कुत्ते को दे सकता हूँ; पर अपने पुत्र के हत्यारे को नहीं दे सकता।"

भोजन आदि के बाद धन्य को शौच तथा लघुशंका की इच्छा हुई। बँधा होने से धन्य अकेला जा नहीं सकता था। अतः उसने विजय चोर को साथ चलने को कहा। विजय ने कहा—जबतक मुझे अपने भोजन में से देने का वादा न करोगे तब तक मैं नहीं चलने का। बाध्य होकर धन्य ने उसकी बात स्वीकर कर ली।

विजय चोर को भी धन्य भोजन देता है, यह जान कर भद्रा धन्य से रुष्ट हो गयी।

कुछ समय बाद धन्य छूटकर घर आया। घर पर सबने उसका सत्कार किया पर भद्रा उदास बैठी रही।

धन्य ने भद्रा से पूछा—"हे देवानुप्रिय! मेरे आने पर तुम उदास क्यों हो?"

भद्रा बोली—"मेरे पुत्र के हत्यारे को खाना खिलाना मुझे अच्छा नहीं लगा।"

धन्य ने पूरी स्थिति भद्रा को बता दी। उसे सुनकर भद्रा शान्त हो गयी।

उसी समय धर्मघोष आये। उनके पास धन्य ने प्रवज्या ग्रहण करली। और, काल के समय काल करके देवयोनि में उत्पन्न हुआ तथा महाविदेह में जन्म लेने के बाद मुक्त होगा।[1]

४६. धर्मघोष—देखिए धन्य-सार्थवाहों का प्रकरण पत्र ३४८, ३५०

५०. धृतिधर—यह धृतिधर-गाथापति काकन्दी-नगरी के वासी थे। १६ वर्षों तक साधु पर्याय पाल कर विपुल पर सिद्ध हुए।[2]

१—ज्ञाताधर्मकथा सटीक १-२ पत्र ८३-२—८६-२।

२—अंतगड (अंतगड-अणुत्तरोववाइय—एन० वी० वैद्य-सम्पादित) पृष्ठ ३४

पृष्ठ ८३)। उसकी माँ का नाम भद्रा था। (वही, पृष्ठ ८३)। इसे ३२ पत्नियाँ थीं। बहुत वर्षों तक साधु धर्म पाल कर एक मास की संलेखना कर सर्वार्थसिद्ध-विमान में उत्पन्न हुआ। महाविदेह में जन्म लेने के बाद मुक्त होगा।

६९. **पुद्गल**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४४-४६।

७०. **पुरिसेन**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

७१. **पुरुषसेन**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

७२. **पुरोहित**—इसी प्रकरण में उ सुयार का प्रसंग देखें। (पृष्ठ ३३२)

७३. **पूणभद्र**—यह पूर्णभद्र वाणिज्यग्राम का गृहपति था। पाँच वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर विपुल पर सिद्ध हुआ। (अंतगड-अणुत्तरोववाइय, मोदी-सम्पादित, पृष्ठ ४६)

७४. **पूर्णसेन**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

७५. **पेढालपुत्र**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ २५२-२५८

७६. **पेल्लअ**—इसका उल्लेख अणुत्तरोववाइयदसा (अंतगड-अणुत्तरोववाइयदसाओ, मोदी-सम्पादित पृष्ठ ७०) में आता है। यह राजगृह का निवासी था। इसकी माता का नाम भद्रा था। इसे ३२ पत्नियाँ थीं। बहुत वर्षों तक साधु धर्म पाल कर एक मास की संलेखना कर सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुआ और महाविदेह में सिद्ध होगा (वही, पृष्ठ ८३)।

७७. **पोट्टिला**—देखिए तेतलिपुत्र का प्रसंग (पृष्ठ ३४०)।

७८. **पोट्टिल**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ २०२।

७९. **बलश्री**—अनेक विध कानन और उद्यानादि में सुग्रीव नामक नगर में बलभद्र-नामक राजा था। उसकी पत्नी का नाम मृगा था। उसे एक पुत्र बलश्री नाम का था। वह लोगों में मृगापुत्र के नाम से विख्यात था। एक दिन वह प्रासाद के गवाक्ष से नगर के चतुष्पद, त्रिपथ और बहुपथों को कुतूहल से देख रहा था कि, उसकी दृष्टि एक संयमशील साधु पर पड़ी। उसे देखकर मृगापुत्र को ध्यान आया कि, उसने उसे

कहीं देखा है। साधु के दर्शन होने के अनन्तर, मोह कर्म के दूर होने से, अंतःकरण में शुद्ध भाव आने से उसे जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ—"मैं देवलोक से च्युत होकर मनुष्यभव में आ गया हूँ," ऐसा संज्ञिज्ञान हो जाने पर मृगापुत्र पूर्व जन्म का स्मरण करने लगा और फिर उसे पूर्वकृत संयम का स्मरण हुआ। अतः उसने अपने पिता के पास जाकर दीक्षित होने की अनुमति माँगी। उसके माता-पिता ने उसे समझाने की चेष्टा की। माता-पिता की शंका मिटाकर मृगापुत्र साधु हो गया। अनेक वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर बलश्री (मृगापुत्र) एक मास की संलेखना कर सिद्ध-गति को प्राप्त हुआ। (उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, अध्ययन १९ पत्र २६०-१—२६७-१)

८०. भूतदत्ता—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४।

८१. भद्र—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९३।

८२. भद्रनन्दी—ऋषभपुर नगर था। थूभकरण्ड उद्यान था। उसमें धन्य यक्ष था। उस नगर में धनावह-नामक राजा था। उसकी पत्नी का नाम सरस्वती था। उसे भद्रनन्दी-नामक कुमार था। यौवन तक की कथा सुबाहु के समान जान लेनी चाहिए। उसे ५०० पत्नियाँ थीं। उनमें श्रीदेवी मुख्य थीं। भगवान् के आने पर उसने श्रावक-धर्म स्वीकार कर लिया। बाद में वह साधु हो गया। महाविदेह में पुनः उत्पन्न होने के बाद सिद्ध होगा। (विवागसूत्र, मोदी-चौकसी-सम्पादित, पृष्ठ ८०)

८३. भद्रनन्दी—सुघोस-नगरी में अर्जुन-नामक राजा था। उसकी पत्नी का नाम तत्तवती था। भद्रनन्दी उसका पुत्र था। भद्रनन्दी को ५०० पत्नियाँ थीं। उनमें श्रीदेवी मुख्य थी। वह साधु हो गया। अंत में वह सिद्ध होगा।

८४. भद्रा—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४।

८५. मंकाती—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४७।

८६. **मंडिक**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २९८–३०६; ३६८।

८७. **मयाली**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

८८. **मरुदेवा**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४।

८९. **महचंद्र**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४१।

९०. **महव्वल**—महापुर नगर था। वहाँ बल राजा था। सुभद्रा देवी थी। उसके कुमार का नाम महव्वल था। उसे ५०० पत्नियाँ थीं। उनमें रक्तवती मुख्य थी। यह साधु हो गया। (विवागसूय, मोदी-चौकसी-सम्पादित, पृष्ठ ८२)।

९१. **महया**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४।

९२. **महाकाली**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५।

९३. **महाकृष्णा**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५।

९४. **महाद्रुमसेण**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

९५. **महापद्म**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९३।

९६. **महाभद्र**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९३।

९७. **महामरुता**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४।

९८. **महासिंहसेन**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

९९. **महासेन**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

१००. **महासेनकृष्ण**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५।

१०१. **माकन्दिपुत्र**—भगवतीसूत्र शतक १८, उद्देशा ३ में इसका उल्लेख आता है। भगवान् महावीर ने इनके कुछ प्रश्नों के वहाँ उत्तर दिए हैं।

१०२. **मृगापुत्र**—वज्रश्री का प्रसंग देखिए (पृष्ठ ३५२)।

१०३. **मेघ**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ १२।

१०४. **मेघ**—इसका उल्लेख अंतगडदसाओ (अंतगडदसाओ-अणुत्तरोववाइयदसाओ, मोदी-सम्पादित, पृष्ठ ३४) में आया है। यह राज-

गृह का निवासी गृहपति था। बहुत वर्षों तक साधु-पर्याय पालकर विपुल पर सिद्ध हुआ (वहीं, पृष्ठ ४६)।

१०५. **मृगावती**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ६७।

१०६. **मेतार्य**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ ३१९-३२१, ३६९।

१०७. **मोर्यपुत्र**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ ३०७-३१०, ३६८।

१०८. **यशा**—उसुयार का प्रसंग देखिए (पृष्ठ ३३२)

१०९. **रामकृष्ण**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५।

११०. **रामापुत्र**—इसका उल्लेख अनुत्तरोवाइय में आता है (अंतगडदसाओ-अणुत्तरोववाइयदसाओ, मोदी-सम्पादित, पृष्ठ ७०)। यह साकेत (अयोध्या) का निवासी था। इसकी माता का नाम भद्रा था। इसे ३२ पत्नियाँ थीं। बहुत वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुआ और महाविदेह में जन्म लेने के बाद मुक्त होगा।

१११. **रोह**—इसका उल्लेख भगवतीसूत्र (शतक १, उद्देशा ६) में आता है। इसने भगवान् से लोक-आलोक आदि सम्बन्ध में प्रश्न पूछे थे।

११२. **लट्ठदंत**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

११३. **व्यक्त**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ २८२-२९३, ३६८

११४. **वरदत्त**—इसका उल्लेख विवागसूय (सुख-स्कंध) में आता है (मोदी-चौकसी-सम्पादित, पृष्ठ ८२) साकेत नगर में मित्रनन्दी राजा था। श्रीकान्ता उसकी पत्नी का नाम था। वरदत्त उनका पुत्र था। उसे ५०० पत्नियाँ थीं। उनमें वरसेना मुख्य थी। पहले उसने श्रावकधर्म स्वीकार किया और बाद में साधु हो गया। मर कर यह सर्वार्थसिद्धि में गया। फिर महाविदह में जन्म लेने के बाद मोक्ष प्राप्त करेगा।

११५. **वरुण**—यह वैशाली का योद्धा था। रथमुसल-संग्राम में

८६. **मंडिक**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २९८–३०६; ३६८।

८७. **मयाली**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

८८. **मरुदेवा**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४।

८९. **महचंद्र**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४१।

९०. **महब्बल**—महापुर नगर था। वहाँ बल राजा था। सुभद्रा देवी थी। उसके कुमार का नाम महब्बल था। उसे ५०० पत्नियाँ थीं। उनमें रक्तवती मुख्य थी। यह साधु हो गया। (विवागसूय, मोदी-चौकसी-सम्पादित, पृष्ठ ८२)।

९१. **महया**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४।

९२. **महाकाली**—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५।

९३. **महाकृष्णा**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५।

९४. **महाद्रुमसेण**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३

९५. **महापद्म**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९३।

९६. **महाभद्र**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९३।

९७. **महामरुता**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४।

९८. **महासिंहसेन**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५[illegible]

९९. **महासेन**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

१००. **महासेनकृष्ण**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ [illegible]

१०१. **माकन्दिपुत्र**—भगवतीसूत्र शतक १८, उद्देशा ३ में उल्लेख आता है। भगवान् महावीर ने इनके कुछ प्रश्नों [illegible] उत्तर दिए हैं।

१०२. **मृगापुत्र**—वज्रश्री का प्रसंग देखिए (पृष्ठ ३५२)।

१०३. **मेघ**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ १२।

१०४. **मेघ**—इसका उल्लेख अंतगडदसाओ (अंतगडदसतरोववाइयदसाओ, मोदी-सम्पादित, पृष्ठ ३४) में आया है।

१२५. **वेहास**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

१२६. **शालिभद्र**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २५।

१२७. **शालिभद्र**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ३९।

१२८. **शिव**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २०२।

१२९. **स्कंदक**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर भाग २, पृष्ठ ८०।

१३०. **समुद्रपाल**—चम्पा-नगरी में पालित-नामक एक वणिक्-श्रावक रहता था। वह भगवान् महावीर का शिष्य था। पोत से व्यापार करता हुआ, वह पिहुंड[१]-नामक नगर में आया। उसी समय किसी वैश्य ने अपनी कन्या का विवाह उससे कर दिया। तदन्तर पालित की उस पत्नी को समुद्र में पुत्र हुआ। उसका नाम उसने समुद्रपाल रखा। समुद्रपाल ने ७२ कलाएँ सीखीं और युवावस्था प्राप्त करके वह सबको प्रिय लगने लगा।

उसके पिता ने रूपिणी-नामक एक कन्या से उसका विवाह कर दिया।

किसी समय गवाक्ष में बैठा हुआ समुद्रपाल ने वध योग्य चिन्ह से विभूषित किये हुए चोर को वध्यभूमि में ले जाते देखा। उसे देखकर समुद्रपाल को विचार हुआ कि अशुभ कर्मों का फल पाप रूप ही है। ऐसा विचार आने पर माता-पिता से पूछकर उसने दीक्षा ले ली।

अनेक प्रकार के दुर्जय परिषहों के उपस्थित होने पर भी समुद्रपाल मुनि किंचित् मात्र व्यथित नहीं हुआ। श्रुतज्ञान के द्वारा पदार्थों के स्वरूप जानकर क्षमादि धर्मों का संचय करके, उसने केवलज्ञान प्राप्त किया और अंत में काल के समय में काल करके वह मोक्ष गया। (उत्तराध्ययन, नेमिचन्द्र की टीका-सहित, अध्ययन, २१ पत्र २७३-२—२७६-१)

१३१. **सर्वानुभूति**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ १२०-१२१

१—डा० सिलवन लेवी का अनुमान है कि इसी पिहुंड के लिए खारवेल के शिलालेख में पिथुड अथवा पिथुडग नाम आया है। और, उनका अनुमान यह भी है कि टालमी का पिट्टुंड्र भी सम्भवतः पिहुंड का ही नाम है (ज्याग्रैफी आव अर्ली बुद्धिज्म, पृ० ६५)

१३२. **साल**—राजाओं के प्रकरण में देखिए।

१३३. **सिंह**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

१३४. **सिंह**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ १३३।

१३५. **सिंहसेन**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

१३६. **सुकाली**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५।

१३७. **सुकृष्णा**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९५।

१३८. **सुजात**—वीरपुर-नगर था। उसके निकट मनोरम-उद्यान था। वहाँ वीरकृष्णमित्र-नामक राजा था। उसकी पत्नी का नाम श्री था। उनके कुमार का नाम सुजात था। उसे ५०० पत्नियाँ थीं, उनमें बलश्री मुख्य थी। पहले उसने श्रावक-व्रत लिया। बाद में साधु हो गया। यह महाविदेह में जन्म लेने के बाद सिद्ध होगा। (विपाकसूत्र, मोदी-चौकसी-सम्पादित, पृष्ठ ८०-८१)।

१३९. **सुजाता**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५४।

१४०. **सुदंसणा**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २४-२७; १९३-१९४

१४१. **सुदर्शन**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २५९-२६३।

१४२. **सुद्धदंत**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

१४३. **सुधर्मा**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ २९४-२९८, ३६८।

१४४. **सुनक्खत्त**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ १२२।

१४५. **सुनक्खत्त**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ७१।

१४६. **सुप्रतिष्ठ**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २ पृष्ठ ३२।

१४७. **सुबाहुकुमार**—हस्तिशीर्ष के उत्तरपूर्व-दिशा में पुष्प-करण्डक-नामक उद्यान था। उस नगर में अदीनशत्रु राजा था। उसकी रानी का नाम धारिणी था। उनके पुत्र का नाम सुबाहुकुमार था। इसका वर्णन राजाओं के प्रसंग में हमने विस्तार से किया है।

१४८. **सुभद्र**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ९३।

१४९. **सुभद्रा**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५८।

१५०. **सुमना**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५८।

१५१. **सुमनभद्र**—इसका उल्लेख अंतगड में आता है (अंतगड-अणुत्तरोववाइय, मोदी-सम्पादित, पृष्ठ ३८) यह श्रावस्ती का निवासी था। बहुत वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर विपुल पर सिद्ध हुआ (वही, पृष्ठ ४६)

१५२. **सुमरुता**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५८।

१५३. **सुव्रता**—तेतलिपुत्र वाला प्रकरण देखिए पृष्ठ ३८२-३८३।

१५४. **सुवासव**—विजयपुर-नामक नगर था। उसके निकट नंदनवन-उद्यान था। उसमें अशोक यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ वासवदत्त-नामक राजा था। उसकी पत्नी का नाम कृष्णा था। सुवासव उसका कुमार था। पहले उसने श्रावक-व्रत ग्रहण किया। बाद में साधु हो गया। महाविदेह में जन्म लेने के बाद सिद्ध होगा (विपाकसूत्र, मोदी-चोकसी-सम्पादित, पृष्ठ ८१)।

१५५. **हरिकेसबल**—चाण्डाल-कुल में उत्पन्न हुआ, प्रधान गुणों का धारक मुनि हरिकेसबल-नामक एक जितेन्द्रिय साधु हुआ है। तप से उसका शरीर सूख गया था तथा वस्त्रादि अति जीर्ण हो गये थे। उस मुनि को यज्ञवाटिका-मंडप में आते देखकर ब्राह्मण लोग अनार्यों की भाँति उस मुनि का उपहास करने लगे और कटु वचन बोलते हुए उसे वहाँ आने का कारण उन्होंने पूछा। उस समय तिंदुक वृक्षवासी यक्ष उस मुनि के शरीर में प्रविष्ट होकर बोला—"हे ब्राह्मणों! मैं संयत हूँ, श्रमण हूँ, ब्रह्मचारी हूँ, धन का संचय करने, अन्न पकाने तथा परिग्रह रखने से सर्वथा मुक्त हो गया हूँ। मैं इस यज्ञशाला में भिक्षा के लिए उपस्थित हुआ हूँ।"

मुनि की सारी बातें सुनकर ब्राह्मण रुष्ट हुए और ब्राह्मणों का रोष देखकर कुमार विद्यार्थी दंड, बेंत आदि लेकर दौड़े आये और उस मुनि को मारने लगे। उस समय कौशलिक राजा की भद्रा-नामक पुत्री ने आकर कुमारों को मारने से रोका। उसने कहा कि, यह वही ऋषि हैं जिसने मुझे त्याग दिया था। इसकी पूरी कथा उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित अध्ययन १२, पत्र १७३-१–१८५-१ में आयी है। जिज्ञासु-पाठक वहाँ देख सकते हैं।

१५६. **हरिचन्दन**—इसका उल्लेख अंतगडसूत्र में आता है (अंतगड-अणुत्तरोववाइय, मोदी सम्पादित, पृष्ठ ३४)। यह साकेत का गृहपति था। १२ वर्षों तक साधु-धर्म पाल कर विपुल पर सिद्ध हुआ (वही, पृष्ठ ४६)

१५७. **हल्ल**—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ५३।

श्रावक-श्राविका

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीलि त्ति वुच्चइ।
अहस्सिरे सयादन्ते, न य मम्ममुदाहरे॥
नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीलि त्ति वुच्चइ॥
[उत्तरा० अ० ११ गा० ४-५]

इन आठ कारणों से मनुष्य शिक्षा-शील कहलाता है :

१ हर समय हँसनेवाला न हो, २ सतत इंद्रिय-निग्रही हो, ३ दूसरों को मर्मभेदी वचन न बोलता हो, ४ सुशील हो, ५ दुराचारी न हो ६ रसलोलुप न हो, ७ सत्य में रत हो, तथा ८ क्रोधी न हो—शान्त हो।

श्रावक-धर्म

भगवान् महावीर ने अपने छद्मस्थ काल में प्रथम वर्षावास में ही हस्तिग्राम में दस महास्वप्न देखे थे। उनमें ९ का फल तो उत्पल-नामक नैमित्तिक ने बता दिया था पर चौथे स्वप्न............... :

दाम दुगं च सुरभिकुसुममयं।[1]

का फल वह नहीं बता सका था। इसका फल स्वयं भगवान् महावीर ने बताया।

हे उप्पला! जं नं तुमं न याणासि तं नं अहं
दुविहमगाराणगारियं धम्मं पन्नवेहामित्ति।[2]

—हे उत्पल! मैं अगार और अनगारिय दो धर्मों की शिक्षा दूँगा। (देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ १७३) यह 'अणगारिय' तो साधु हुए और घर में रह कर जो धर्म का पालन करे उसे जैन-धर्म में श्रावक अथवा गृही कहा जाता है।

तीर्थङ्कर के चतुर्विध संघ में १ साधु, २ साध्वी, ३ श्रावक, ४ श्राविकाएँ होती हैं।[3] ये श्रावक गृही होते हैं।

श्रावक शब्द की टीका करते हुए ठाणांग में आता है।

शृणवन्ति जिनवचनमिति श्रावकाः, उक्तञ्च
अवाप्तदृष्ट्यादिविशुद्ध सम्पत्, परं समाचार मनुप्रभातम्।

---

१. आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र २७४।

२. वही, पत्र २७५।

३. चउव्विहे संघे पं० तं० समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ। ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा ४, उ० ४, सूत्र ३६३, पत्र २८१-२।

शृणोति यः साधुजनादतन्द्रस्तं श्रावकं प्राहुरमी जिनेन्द्राः ॥

इति अथवा

श्रान्ति पचन्ति तत्त्वार्थ श्रद्धानं निष्ठां नियन्तीति श्राः, तथा वपन्ति गुण वत्सप्तक्षेत्रेषु धनबीजानि निक्षिपन्तीति वास्तथा किरन्ति–क्लिष्टकर्म्मरजो।

विक्षिपन्ततीति कास्ततः कर्मधारये श्रावकः इति भवति।

यदाहः—

शृद्धालुतां श्राति पदार्थ चिन्तनाद्धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम्।
किरत्यपुण्यानि सुसाधुसेवनादथापि तं श्रावकमाहुरञ्जसा ॥[1]

अर्थात् जो जिन-वचन को सुनता है, उसे श्रावक कहते हैं। कहा है कि, प्राप्त की हुई दृष्टि आदि विशुद्ध सम्पत्ति (सम्यक् दृष्टि) साधु जन के पास से जो प्रति दिन प्रभात में आलस्य रहित उत्कृष्ट समाचार (सिद्धान्त) जो ग्रहण करे उन्हें जिनेन्द्र का श्रावक कहते हैं। अथवा जो पचाता है, तत्त्वार्थ पर श्रद्धा से निष्ठा लाता है उसके लिए 'श्रा' शब्द है और गुण वाले सप्त क्षेत्रों में जो धन रूप बीज बोता है तथा क्लिष्ट कर्म रूप रज फेंक देता है, उससे कर्मधारय समास करने से श्रावक शब्द सिद्ध होता है। कहा है:—

पदार्थ के चिंतन से श्रद्धालुता को दृढ़ करके, निरन्तर पात्रों में धन बोता है, और सत्साधुओं की सेवा करके पापों को शीघ्र फेंकता है अथवा दूर करता है उसको ज्ञानी श्रावक कहते हैं।[2]

भगवान् महावीर के संघ में १५९०००[3] श्रावक थे। ठाणांगसूत्र में

---

१. ठाणांगसूत्र सटीक, पत्र २८२–१ तथा २८२–२।

२. ठाणांगसूत्र टीका के अनुवाद सहित, भाग २, पत्र ५४१-१।

३ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स संख सयग पामोक्खाणं समणो वासगाणं एगा सयसाहस्सीओ अउणट्ठि···

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, सूत्र १३६, पत्र ३५७।

जहाँ उपासकों का वर्णन आता है, वहाँ १० (मुख्य) उपासक गिनाये गये हैं :—

उवासगदसाणं दस अज्झयणा पं० तं०—आणंदे १, कामदेवे २ अ, गाहावति चूलणीपिता ३। सुरादेवे ४ चुल्लसतते ५ गाहावति कुंडकोलिते ६ ॥ १ ॥ सद्दालपुत्ते ७ महासतते ८, णंदिणीपिया ९, सालतियापिता (सालिहीपिय) १० ॥[1]

गृही अथवा श्रावक के १२ धर्म बताये गये हैं। उपासकदशा में आनन्द ने उन बारह धर्मों को स्वीकार किया था। वहाँ पाठ है :—

पञ्चाणुव्वइयं सत्त सिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं…[2] अर्थात् गृही को पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत ये बारह धर्म पालन करने आवश्यक हैं। ठाणांग सूत्र में पाँच अणुव्रत इस रूप में बताये गये हैं:—

पंचाणुवत्ता पं० तं०—थूलातो पाणाइवायातो वेरमण, थूलातो मुसावायातो वेरमणं, थूलातो अदिन्नदानातो वेरमणं, सदार-संतोसे, इच्छा परिमाणे।[3]

और सात गुणव्रतों का स्पष्टीकरण श्रावक-धर्म-विधि-प्रकरण (सटीक) में इस प्रकार किया गया है :—

सम्मत्त मूलिया ऊ पंचाणुव्वय गुणव्वया तिण्णि।
चउसिक्खावय सहिओ सावग धम्मो दुवालसहा ॥[4]

---

१. ठाणांग सूत्र सटीक ठाणं १०, उ० ३, सूत्र ७५५ पत्र ५०६-१।

२. उवासगदसाओ (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) पृष्ठ ६।
ऐसी ही उल्लेख रायपसेणी (बचूभनपतसिंह की) पृष्ठ २२३, ज्ञाताधर्मकथा सटीक उत्तरार्द्ध अध्ययन १५, पत्र १६६-१। तथा विपाकसूत्र (मोदी-चोकसी-सम्पादित) पृष्ठ ७६ में भी है।

३. ठाणांगसूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध, ठाणा ५, उ० १, सूत्र ३८९, पत्र २९०-१।

४. श्रावक-धर्म विधि-प्रकरण सटीक, गाथा १३, पत्र ८२।

सात के सम्बन्ध में ऐसा ही स्पष्टीकरण–श्रावक-धर्म-प्रज्ञप्ति में भी है।

त्रयाणां गुणव्रतानां शिक्षाव्रतेषु गणनात्
सप्त .शिक्षा व्रतानीत्युक्तम् ॥[1]

अर्थात् ३ गुणव्रत को ४ शिक्षाव्रत के साथ गणना करने से सात शिक्षाव्रत होते हैं।

इन व्रतों का उल्लेख तत्त्वार्थ सूत्र में इस प्रकार है :—

अणुव्रतोऽगारी ॥ १५ ॥

दिग्देशानर्थ दण्डविरति सामायिक पौषधोपवासोपभोगपरिभोग परिमाणाऽतिथि संविभाग व्रत संपन्नश्च ॥ १६ ॥

मारणान्तिकीं संलेखनां जोषिता ॥ १७ ॥[2]

संक्षेप में इन व्रतों का विवरण इस प्रकार है :—

अणुव्रत:—

१. स्थूल प्राणतिपात से विरमण–अहिंसा-व्रत लेना।

२. स्थूल मृषावाद से विरमण—मिथ्या से मुक्त रहने का व्रत लेना।

३. स्थूल अदत्तादान से विरमण—बिना दी हुई वस्तु न ग्रहण करने का व्रत लेना।

४ स्वदार संतोष—अपनी पत्नी तक ही अपने को सीमित रखना।

---

१. राजेन्द्राभिधान भाग ७, पृष्ठ ८०५।

२. तत्त्वार्थ सूत्र (जैनाचार्य श्री आत्मानन्द-जन्म-शताब्दी-स्मारक-ट्रस्ट-बोर्ड, बम्बई) पृष्ठ २११, २१२।

तत्वार्थाधिगमसूत्र स्वोपज्ञ भाष्य सहित, भाग २, पृष्ठ ८८ में टीका में कहा है:—

तत्र गुणव्रतानि त्रीणि—दिग्भोगपरिभोगपरिमाणानर्थदण्ड विरति-संज्ञान्यणुव्रतानां भावना भूतानि······

शिक्षापदव्रतानि—सामायिक देशावकाशिक पौषधोपवासातिथि-संविभागाख्यानि चत्वारि······

५ इच्छा के परिणाम-परिग्रह की मर्यादा करना—अपनी इच्छा अथवा आवश्यकताओं की मर्यादा स्थापित करना।

३. गुणव्रत :—

१—दिग्विरति व्रत अपनी त्यागवृत्ति के अनुसार पूर्व, पश्चिम आदि सभी दिशाओं का परिमाण निश्चित करके उसके बाहर हर तरह के अधर्म कार्य से निवृत्ति धारण करना।

२—भोगोपभोगव्रतः—आहार, पुष्प, विलेपन आदि जो एक बार भोगने में आये वह भोग है[1] भुवन, वस्त्र, स्त्री आदि जो बार-बार भोगने में आये वह उपभोग है।[2] इस व्रत का ग्रहण करने वाला सचित्त वस्तु खाने का त्याग करता है अथवा परिमाण करता है और १४ नियम लेता है; २२ अभक्ष्यों और ३२ अनंतकाय का त्याग करता है।

२२ अभक्ष्यों के नाम धर्मसंग्रह की टीका में इस प्रकार दिये हैं :—

चतुर्विकृतयो निन्द्या, उदुम्बर पञ्चकम्।
हिमं विषं च करका, मृज्जाती रात्रिभोजनम्॥ ३२॥
बहुबीजाऽज्ञातफले, सन्धानाऽनन्तकायिके।
वृन्ताकं चलितरसं, तुच्छ पुष्पफलादि च॥ ३३॥
आमगोरससम्पृक्तं, द्विदलं चेति वर्ज्जयेत्।
द्वाविंशतिभक्ष्याणि, जैनधर्माधिवासितः॥ ३४॥

—धर्मसंग्रह सटीक, पत्र ७२-१

—चार महाविगति, पाँच प्रकार के उदुम्बर, १० हिम, ११ विष, १२ करा, १३ हर प्रकार की मिट्टी, १४ रात्रिभोजन, १५ बहुबीज, १६ अनजाना फल, १७ अचार, १८ अनंतकाय, १९ बैंगन, २० चलित रस, २१ तुच्छ फूल-फल, २२ कच्चा दूध-दही-छाछ आदि मिली दाल ये २२ वस्तुएँ अभक्ष्य हैं।

इनका उल्लेख संबोधप्रकरण में भी है। (गुजराती-अनुवाद में पृष्ठ १९८ पर इनका वर्णन आता है)

३२ अनन्तकायों की गणना संबोधप्रकरण में इस रूप में दी है :—

सव्वा य कंद जाई, सूरणकंदो १ अ वज्जकंदो २ अ।

अल्ल हलिद्द ३ य तहा, अल्लं ४ तह अल्ल कच्चूरो ५ ॥ १ ॥

सतावरी ६, विराली ७, कुँआरी ८ तह थोहरी ९ गलोई १० अ। लसुणं ११ वंसकरील्ला १२, गज्जरं १३, लुणो १४ अ तह लोढा १५ ॥२॥ गिरिकरिणि १६ किसलिय त्ता १७, खरिसुंआ १८, थेग १९ अल्लसुत्था २० य तह लूण रुक्ख छल्ली २१, खिल्लहडो २२, अमयवल्ली २३ अ ॥ ३ ॥ मूला २४ तह भूमिरुहा २५, विरुआ २६ तह ढंक वत्थुलो पढमो २७। सूअरवल्लो २८ अ तहा, पल्लंको २९ कोमलंबिलिआ ३०। ४॥ आलू ३१ तह पिंडालू ३२, हवंति एए अणंतनामेणं। अन्नमणंतं नेअं, लक्खण जुत्तीइ समयाओ ॥ ५ ॥

—कंद की सर्वजाति १ सूरणकंद, २ वज्रकंद, ३ हलिद्द, ४ अदरक, ५ कचूर, ६ सतावरी, ७ विराली, ८ कुवार, ९ थुवर, १० गिलोय, ११ लहसुन, १२ वंसकरिल्ला, १३ गाजर, १४ नमक, १५ लोढ़ा, (कंद) १६ गिरिकर्णिका, १७ किसलयपत्र, १८ खुरसानी, १९ मोथ, २० लवण-वृक्ष की छाल, २१ खिलोड़ीकंद, २२ अमृतवल्ली, २३ मूल, २४ भूमिरुख (छत्राकार), २५ विरुद, २६ ढंक, २७ वास्तुल, २८ शूकरवाल, २९ पल्लंक, ३० कोमल इमली, ३१ आलू तथा ३२ पिंडालू।

—संबोधप्रकरण (गुजराती-अनुवाद) पृष्ठ ११९

और, १४ नियमों का उल्लेख धर्मसंग्रह सटीक (पत्र ८०-१) में इस प्रकार दिया है—

सच्चित्तं १, दव्व २, विगई ३, वाणह ४, तंबोल ५, वत्थ ६, कुसुमेसु ७। वाहण ८, सयण ९, विलेवण १०, बंभ ११, दिसि १२, न्हाण १३, भत्तेसु १४ ॥

इन सबका विस्तृत वर्णन धर्मसंग्रह सटीक, पूर्वभाग, पत्र ७१-१ से ८१-१ तक में आता है। जिज्ञासु पाठक वहाँ देख लें।

३—अपने भोगरूप प्रयोजन के लिए होने वाले अधर्म व्यापार के सिवा बाकी के सम्पूर्ण अधर्म व्यापार से निवृत्त होना अर्थात् निरर्थक कोई प्रवृत्ति न करना अनर्थदण्डविरति-व्रत है।

४. शिक्षाव्रत :—

१—सामायिक—काल का अभिग्रह लेकर अर्थात् अमुक समय तक अधर्म प्रवृत्ति का त्याग करके धर्म प्रवृत्ति में स्थिर होने का अभ्यास करना सामायिक व्रत है।

२—दिशावकाशिकव्रत—छठें व्रत में जो दिशाओं का परिणाम कर रखा है, वह यावज्जीवन के लिए है। उसमें बहुत-सा क्षेत्र ऐसा है, जिसका रोज काम नहीं पड़ता। अतः प्रतिदिन संक्षेप करे।

३ पोषधव्रत :—पोषधव्रत के अन्तर्गत ४ वस्तुएँ आती हैं।

पोसहोववासे चउव्विहे पन्नत्ते तं जहा—आहारपोसहे, सरीरसक्कारपोसहे, बंभचेरपोसहे, अव्वावारपोसहे त्ति[1]

—पौषधोपवास चार प्रकार का कहा गया है—१ आहारपौषध, २ शरीरसत्कारपौषध, ३ ब्रह्मचर्यपौषध और ४ अव्यापारपौषध।

प्रथम आहार अर्थात् खाना-पीना। इसके दो भेद हैं (१) देशतः और (२) सर्वतः। देशतः में तिविहार-उपवास करके पौषध करे; आचाम्ल करके पौषध करे अथवा एकाशना करके पौषध करे।

और, चौविहार करके पौषध करना सर्वतः पौषध है।

द्वितीय शरीरसत्कार—स्नान, धोवन, धावन, तैलमर्दन, वस्त्राभरणादि शृंगार-प्रमुख कोई शुश्रूषा न करना।

तृतीय ब्रह्मचर्यपालन—पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करे।

१—अभिधान राजेन्द्र, भाग ५, पृष्ठ ११३३

चतुर्थ अव्यापारपौषध—व्यापार आदि पाप कार्य न करना। यह व्रत अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को किया जाता है।[1]

४—अतिथिसंविभाग—न्याय से उपार्जित और जो खप (काम में आ) सके, ऐसी खान-पान आदि के योग्य वस्तुओं का इस रीति से शुद्ध भक्ति भाव पूर्वक सुपात्र को दान देनाप्रतिमा जिससे उभयपक्ष को लाभ पहुँचे—वह अतिथिसंविभाग व्रत है।

प्रतिमा

जिस प्रकार उपासकों के १२ व्रत हैं, उसी प्रकार उनके लिए ११ प्रतिमाएँ भी हैं। 'प्रतिमा' शब्द की टीका करते हुए समवायांगसूत्र में टीकाकार ने लिखा है :—

प्रतिमा :—प्रतिज्ञाः अभिग्रहरूपाः उपासक प्रतिमा[2]। उनके नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं :—

एक्कारस उवासग पडिमाओ प० तं०—दंसणसावए १, कयव्वयकंमे २, सामाइअकडे ३, पोसहोववासनिरए ४, दिया बंभयारी रत्ति परिमाणकडे ५, दिआवि राओवि बंभयारी असिणाई वियडभोई मोलिकडे ६, सचित परिण्णाए ७, आरंभ परिणाए ८, पेस परिण्णाए ९, उद्दिट्ठभत्तपरिणाए १०, समणभूए ११।[3]

१—धर्मसंग्रह गुजराती अनुवाद सहित, भाग १, पृष्ठ २४१-२४३

२—समवायांगसूत्र सटीक, समवाय ११, सूत्र ११, पत्र १९-१

३—समवायांगसूत्र सटीक सूत्र ११ पत्र १८-२

प्रवचनसारोद्धार में भी श्रावकों की ११ प्रतिमाएं इसी रूप में गिनायी गयी हैं :—

दंसण १ वय २ सामाइय ३ पोसह ४ पडिमा ५ अबंभ ६ सच्चित्ते
आरंभ ८ पेस ९ उद्दिट्ठ १० वज्जए समणभूए ११ य ॥ ९८० ॥

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, द्वार १५३, पत्र २९३।२

प्रतिमा का शाब्दिक अर्थ अभिग्रह-प्रतिज्ञा है।

उपासक की निम्नलिखित ११ प्रतिमाएँ हैं :—

१ दर्शन श्रावक—शंकादि पाँच दोषों[1] से रहित प्रशमादि पाँच लक्षणों[2] के सहित, धैर्य आदि पाँच भूषणों[3] से भूषित, जो मोक्ष-मार्ग रूप महल की पीठिका रूप 'सम्यक् दर्शन' और उनके भय लोभ लज्जा आदि विघ्नों से किंचित् मात्र अतिचार सेये बिना निरतिचार से एक महीना तक सतत पालन करना—यह पहली दर्शनप्रतिमा है। इसे एक मास कालमान वाली जाननी चाहिए।[4]

१—शंकाकाङ्क्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवा

—तत्त्वार्थसूत्र ७-१८

२—संवेगो १ चिय उवसम २, निव्वेयो ३ तह य होइ अणुकम्पा।
अत्थिक्कं चिय ए ए, सम्मत्ते लक्खणा पंच ॥ ६३६ ॥

—धर्मसंग्रह गुजराती अनुवाद सहित, भाग १, पृष्ठ १२२

३—जिणसासणे कुसलया १, पभावणा २, तित्थ (ऽऽययण) सेवणा ३ थिरया ४
भत्ती अगुणा सम्मत्त, दीवया उत्तमा पंच ॥ ६३५ ॥

—धर्मसंग्रह (वही) पृष्ठ १२१

४—सम्यक्त्वं तत्प्रतिपन्नः श्रावको दर्शन-श्रावकः, इह च प्रतिमानां प्रकान्तत्वेऽपि प्रतिमा प्रतिमावतोरभेदोपचारात्प्रतिमावतो निर्देशः कृतः, एवमुत्तरपदेष्वपि, अयमत्र भावार्थः—सम्यग्दर्शनस्य शङ्कादिशल्यरहित-स्याणुव्रतादिगुणविकलस्य योऽभ्युपगमः सा प्रतिमा प्रथमेति'''—समवा-यांगसूत्र सटीक, पत्र १६-१

पसमाइगुणविसिट्ठं कुग्गहसंका इसल्लपरिहीणं।
सम्मदंसणमणहं दंसणपडिमा हवइ पढमा ॥ ६७२ ॥

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, भाग २ पत्र २६३-१

२—कृतव्रतकर्म[1]—दर्शन-प्रतिमा में उल्लिखित रूप में सम्यक् दर्शन के पालन के साथ दो महीना तक अखंडित और अविराधित (अति-क्रमादि दोषों से रहित निरतिचार पूर्वक) श्रावक के १२ व्रतों का पालन करना। यह दो मास काल वाली दूसरी व्रत प्रतिमा है।

३—कृतसामायिक[2]—दोनों प्रतिमाओं में सूचित सम्यकत्व और व्रतों का निरतिचार पूर्वक पालन करने के उपरान्त तीन महीना तक प्रत्येक दिन (प्रातः-सायं) उभय काल अप्रमत्त रूप में सामायिक करना। यह तीसरी प्रतिमा तीन महीने के कालमान की है।

४—पौषध प्रतिमा[3]—पूर्वोक्त वर्णित तीन प्रतिमाओं के पालन के साथ-साथ चार मास तक हर एक चतुष्पर्वी में सम्पूर्ण आठ प्रहर के पौषध का (निरतिचार पूर्वक) अखंड पालन करना। यह प्रतिमा चार मास कालमान की है।

---

१ (अ)—कृतम्—अनुष्ठितं व्रतानाम्—अणुव्रतादीनां कर्म तच्छ्र वणज्ञानवाञ्चाप्रतिपत्ति लक्षणं ये न प्रतिपन्न दर्शनेन स कृतव्रत कर्मा प्रतिपन्नाणुव्रतादिरिति भाव इतीयं द्वितीया

—समवायांगसूत्र सटीक, पत्र १९-१

(आ) वीयाणुव्वयधारी

—प्रवचनसारोद्धार सटीक पत्र २९३-१

२—सामायिकं—सावद्य योग परिवर्जनिखद्य योगसेवन स्वभावं कृतं—विहितं देशतो येन स सामायिक कृतः, आहिताग्न्यादिदर्शनात् क्तान्तस्योत्तरपदत्त्वं, तदेवमप्रतिपन्न पौषधस्य दर्शनव्रतो पेतस्य प्रतिदिनं-मुभय संध्यं सामायिक करणं मास त्रयं यावदिति तृतीया प्रतिमेति—

—समवायांग सूत्रसटीक, पत्र १९-१

३—पोषं—पुष्टिं कुशलधर्माणां धत्ते यदाहारत्यागादिकमनुष्ठानं तत्पौषधं तेनोपवसनं—अवस्थानहो—रात्रं यावदिति पौषधोपवास इति, अथवा पौषधं

५—कायोत्सर्ग¹—इन चारों प्रतिमाओं के पालन पूर्वक पाँच महीने तक प्रत्येक चतुष्पर्वी में घर के अंदर या बाहर (द्वार पर) या चतुष्पथ में परिषह तथा उपसर्ग आवें तो भी चलायमान हुए बिना सम्पूर्ण रात्रि

पृष्ठ ३७२ पाद टिप्पणी का शेषांष।

पर्वदिनमष्टम्यादि तत्रोपवासः अभक्तार्थः पौषधोपवासः इति, इयं व्युत्पत्तिरेव, प्रवृत्तिस्त्वस्य शब्दस्याहार शरीर सत्कारा ब्रह्मचर्य व्यापार परिवर्जनेष्विति, तत्र पौषधपोवासे निरतः—आसक्तः पौषधोपवासनिरतः (यः) सः

एवं विधस्यः श्रावकस्य चतुर्थी प्रतिमेति प्रक्रमः अयमत्रभावः—पूर्व प्रतिमात्र योपेत अष्टमी चतुर्दश्यमावस्यापौर्णमासीष्वाहार पौषधादि चतुर्विधं पौषधं प्रतिपद्यमानस्य चतुरोमासान् यावच्चतुर्थी प्रतिमा भवतीति

१—पञ्चमी प्रतिमायामष्टम्यादिषु पर्वस्वेकरात्रिक प्रतिमाकारी भवति, एतदर्थं च सूत्रमाधिकृत सूत्र पुस्तकेषु न दृश्यते दशादिषु पुनरुपलभ्यते इति तदर्थं उपदर्शितः, तथा शेषदिनेषु दिवा ब्रह्मचारी 'रत्ती' ति रात्रौ किं ? अत आह-परिमाणं—स्त्रीणां तद्भोगानां वा प्रमाणं कृतं येन स परिमाणकृत इति, अयमत्र भावो—

दर्शन व्रत सामायिकाष्टम्यादि पौषधोपेतस्य पर्वस्वेकरात्रिक प्रतिमा कारिणः, शेषदिनेषु दिवा ब्रह्मचारिणो रात्रावब्रह्मपरिमाण कृतोऽस्नान स्यारात्रिभोजिनः अबद्ध कच्छस्य पञ्च मासान् यावत्पञ्चमी प्रतिमा भवतीति उक्तं च

अट्ठमी चउद्दसीसु पडिमं ठाएगराइयं [पश्चार्द्ध] असिणाणवियड भोई मउलियडो दिवसबंभयारी य रत्तिं परिमाणकडो पडिभावज्जेसु दियहेसु ॥१॥ त्ति

पूरी होने तक कायोत्सर्ग में रहना। यह प्रतिमा पाँच मास कालमान की होती है।

६—अब्रह्मवर्जनप्रतिमा—पूर्वोक्त पाँच प्रतिमाओं के पालन के साथ-साथ ६ मास तक ब्रह्मचर्य का पालन करना। इसका काल ६ मास का है।

७—सचित्तवर्जनप्रतिमा—पूर्वोक्त ६ प्रतिमाओं के पालन के साथ-साथ सात महीने तक सचित्त आहार का त्याग करना।

८—आरम्भवर्जनप्रतिमा—पूर्वोक्त ७ प्रतिमाओं के पालन के साथ-साथ आठ महीने तक (केवल अन्य कार्यों में नहीं, किंतु आहार में भी—अर्थात् समस्त कार्यों में) अपनी जात से आरम्भ करने का त्याग करना।

९—प्रेष्यवर्जनप्रतिमा—आठों प्रतिमाओं के पालन के साथ-साथ ९ मास तक नौकर आदि से आरम्भ न कराना।

१०—उद्दिष्टवर्जन—९ प्रतिमाओं के साथ-साथ १० मास तक अन्य प्रतिमाधारी के उद्देशी के बिना प्रेरणा के तैयार किया आहार न लेना।

११—श्रमणभूतप्रतिमा—पूर्वोक्त १० प्रतिमाओं के पालन के साथ-साथ ११ महीने तक स्वजनादि के सम्बंध को तज कर, रजोहरण आदि साधु-वेश को धारण करके और केश का लोच करके गोकुल आदि स्थानों में रहना।

'प्रतिपालकाय श्रमणोपासकाय भिक्षां दत्त' कहने पर भिक्षा देने वाले को 'धर्मलाभ' रूपी आशीर्वाद दिये बिना आहार न लेना और साधु-सरीखा सम्यक् आचार पालना।

अतिचार

जैन-शास्त्रों में जहाँ श्रावक के धर्म बताये गये हैं, वहाँ अतिचारों का भी उल्लेख है। अतिचार शब्द की टीका करते हुए व्यवहारसूत्र के टीकाकार ने लिखा है:—

(१) **वध**—साधारण दृष्टि से वध का अर्थ हत्या करना होता है। पर, यहाँ वध से तात्पर्य लकड़ी आदि से पीटना मात्र है। यह शब्द उत्तराध्ययन में भी आता है। वहाँ उसकी टीका इस प्रकार दी है :—

अ—लता लकुटादिताडनैः[1]

यह शब्द सूत्रकृतांग में भी आया है और वहाँ भी टीकाकार ने इसकी टीका में 'लकुटादि प्रहार'[2] लिखा है। प्रवचनसारोद्धार में जहाँ अतिचारों के सम्बन्ध में 'वध' शब्द आया है, वहाँ उसकी टीका करते हुए टीकाकार ने लिखा है:—

लकुटादिनां हननं, कषायादेव वध इत्यन्ते[3] ।

कषाय[4] के वश होकर लकुटादि से मारना—उसका जो प्रतिफल हुआ, उसे 'वध' कहते हैं।

संस्कृत साहित्य में भी 'वध' का एक अर्थ 'आप्टेज-संस्कृत इंगलिश-डिक्शनरी' (भाग २, पृष्ठ १३८५) में 'ब्लो' तथा 'स्ट्रोक' लिखा है तथा उसे स्पष्ट करने के लिए उदाहरण में महाभारत का एक श्लोक दिया है।

पुनरज्ञातचर्यायां कीचकेन पदावधम् ।

—महाभारत १२, १६, २१

१-उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य की टीका सहित, अ०१, गा० १६ पत्र ५३।१ ऐसी ही टीका नेमिचन्द्राचार्य जीने (उत्तराध्ययन सटीक, पत्र ७-१) तथा भावविजय उपाध्याय ने (उत्तराध्ययन सटीक पत्र १३-२) में भी की है। प्रश्नव्याकरण सटीक पत्र ६६-१ में अभयदेव सूरि ने 'वध' का अर्थ 'ताड़नम्' लिखा है।

२-सूत्रकृतांग सटीक भाग १ (गौड़ी जी, बम्बई) ५, २, १४ पत्र १३८-१

३-प्रवचनसारोद्धार सटीक, भाग १, पत्र ७१-१

४—कषाय चार हैं:—चत्तारि कसाया पं० तं० [कोहकसाए, माणकसाए माया कसाए लोभकसाए...

ठाणांग सूत्र सटीक ठाणा ४, उ० १, सूत्र२४६, पत्र १ ६३।१

इसी ग्रंथ में इस अर्थ के प्रमाण में मनुस्मृति का भी उल्लेख है।

२. बंध[1]–क्रोध के वश मनुष्य अथवा पशु को विनय ग्रहण कराने के लिए रस्सी आदि से बाँधना।

३. छविच्छेद[2]–पशु आदि के अंग अथवा उपांग[3] विच्छेद करना, बैल आदि के नाक छेदना अथवा बधिया करना, ('छवि' अर्थात् शरीर, 'च्छेद' अर्थात् काटना)

१–रज्ज्वादिनां गोमनुष्यादिनां नियन्त्रणं स्वपुत्रादीनामपि विनय ग्रहणार्थं क्रियते ततः क्रोधादिवशतः इत्यत्रापि सम्बन्धनीयं—

प्रवचनसारोद्धार सटीक, भाग १, पत्र ७१-१

२—त्वक् तद्योगाच्छरीरमपि वा छविः तस्याश्छेदो—द्वैधी करणं...क्रोधादिवशत इत्यत्रापि दृश्यं

—प्र०सा०सटीक, भाग १, पत्र ७१-२

३—कर्मग्रंथ सटीक (चतुरविजय-सम्पादित) भाग १, पृष्ठ ४६ गाथा ३३ में अंगों के नाम इस प्रकार दिये हैं:—

बाहूरु पिट्ठी सिर उर उयरंग उवंग अंगुलीयमुहा...

उसकी टीका में लिखा है—

'बाहू' भुजद्वयम्, 'ऊरू' उरुद्वमम् 'पिट्ठी' प्रतीता 'शिरः' मस्तकम् 'उरः' वक्षः, 'उदरं' पोटमित्यष्टावङ्गान्युच्यन्ते...

और, निशीथ सभाष्य चूर्णि, भाग २, पृष्ठ २६, गाथा ५९४ में शरीर के उपांग गिनाये गये हैं:—

होंति उवंगा कण्णा णासऽच्छी जंघ हत्थपाया य।

उसकी टीका में लिखा है:—

कण्णा, णासिगा, अच्छी, जंघा, हत्था, पादा य एवमादि सव्वे उवंगा भवंति।

४. अतिभारारोपण[1]—बैल मनुष्य आदि पर आवश्यकता से अधिक भार लादना

५. भात पानी का व्यवच्छेद करना[2]—आश्रित मनुष्य अथवा पशु आदि को भोजन-पानी न देना।

२—दूसरे अणुव्रत स्थूलमृषावादविरमण के निम्नलिखित ५ अतिचार हैं:—

सहसा कलंकणं १ रहसदूसणं २ दारमंत भेयं च ३।
तह कूडलेहकरणं ४ मुसोवएसो ५ मुसे दोसा ॥ २७५ ॥[3]

(१) सहसा कलंक लगाना[3]—इसके लिए उवासगदसाओ तथा वंदेत्ता सूत्र[4] में सहसाभ्याख्यान लिखा है। अर्थात् सहसा बिना विचार किये किसी को दोष वाला कहना जैसे कि अमुक चोर है, अमुक व्यभिचारी है आदि।

१—अतिमात्रस्य वोढुमशक्यस्य भारस्यारोपणं गोकरभरासभ मनुष्यादीनां स्कंधे पृष्ठे शिरसि वा वहनायाधिरोपणं इहापिक्रोधाल्लोभाद्वा यदधिकभारारोवणं सोऽतीचारः

—प्रवचनसारोद्धार, भाग १, पत्र ७१-१

२—भोजनपानयोर्निषेधो द्विपद चतुष्पादानां क्रियमाणोऽतीचारः प्रथम व्रतस्य

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, भाग १, पत्र ७१-१

३—प्रवचनसारोद्धार भाग १ पत्र ७०-२।

उवासगदसाओ (डा० पी० एल० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ १०) में मृषावाद के अतिचार इस रूप में दिये हैं:—

सहसाभक्खाणे, रहसाभक्खाणे, सदारमन्तभेए, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे।

३—अनालोच्य कलङ्कनं—कलङ्कस्य करणमभ्याख्यानमसद्दोषस्यारोपणमितियावत् चौरस्त्वं पारदारिकस्त्वमित्यादि।

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, भाग १, पत्र ७२-१

४—वंदेतासूत्र, गाथा १२।

(२) सहसारहसाभ्याख्यान[1]—एकान्त में कहीं कोई दो मनुष्य छिप कर सलाह कर रहे हों, तो उनके संकेत मात्र देखकर ऐसा कहना कि वे राज्यद्रोह का विचार कर रहे हैं या स्वामिद्रोह कर रहे हैं। चुगली आदि करना यह सब इस अतिचार में आता है।

(३) सदारमंत्रभेद—[2]अपनी पत्नी ने विश्वास करके यदि कोई मर्द की बात कही हो, तो उसे प्रकट कर देना भी एक अतिचार है।

(४) मृषा उपदेश[3]—दो का झगड़ा सुने तो एक को बुरी शिक्षा देना, तथा बढ़ावा देना। अथवा मंत्र औषधि आदि सिद्ध करने के लिए कहना अथवा ज्योतिष, वैद्यक, कोकशास्त्र आदि पाप शास्त्र सिखाना।

(५) कूटलेखन[4]—दूसरे के लिखावट की नकल करके झूठा दस्तावेज आदि बनाना।

३—तीसरे अणुव्रत अदत्तादान विरमण के ५ अतिचार हैं। प्रवचन-सारोद्धार में वे इस प्रकार गिनाये गये हैं :—

१—रहः—एकान्तस्तत्र भवं रहस्यं—राजादि कार्य सम्बद्धं यदन्यस्मै न कथ्यते तस्य दूषणं—अनधिकृतेनैवाकारेङ्गितादिभिर्ज्ञात्वा अन्यस्मै प्रकाशनं रहस्य दूषणं...

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, भाग १, पत्र ७२-१

२—दाराणां-कलत्राणामुपलक्षणत्वान्मित्रादीनां च मन्त्रो—मन्त्रणं तस्य भेदः—प्रकाशनं दारमंत्र भेद....

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, भाग १, पत्र ७२–२

३—मृषा—अलीकं तस्योपदेशो मृषोपदेशः, इदं च 'एवं च एवं च ब्रूहि त्वं एवं च एवं च अभिदध्या कुलगृहेष्वि' त्यादिकमसत्याभिधान-शिक्षा प्रदानमित्यर्थः।

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, भाग १, पत्र ७२–२

४—असद्भूतस्य लेखो—लेखनं कूटलेखस्तस्य करणं......

—प्रवचन सारोद्धार सटीक, भाग १, पत्र ७२-२

**चोराणीय १ चोरपयोगंज २ कूडमाणतुलकरणं ३।
रिउरज्जव्वहारो ४ सरिसजुइ ५ तइयवयदोसा ॥२७६॥**[1]

(१) चोराणीय—चोर का माल लेना। श्रीश्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र की वृत्ति में आता है

**चौरश्चौरापको मंत्री, भेदज्ञः काणकक्रयी।
अन्नदः स्थानदश्चेति चौरः सप्तविधः स्मृतः॥**[2]

चोर[3], चोरी करनेवाला, चोर को सलाह देनेवाला, चोर का भेद जानने वाला, चोरी का माल लेने और बेचने वाला, चोर को अन्न और स्थान देने वाले ये सात प्रकार के चोर हैं।

प्रश्नव्याकरण सटीक में १८ प्रकार के चोरों का वर्णन किया गया है।

१—प्रवचनसारोद्धार, भाग १, पत्र ७०-२ उवासगदसाओ में उनका इस प्रकार उल्लेख है :—

तेणाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कम्मे, कूडतुल्लकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे—

—उवासगदसाओ, वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ १०

२—श्रीश्राद्ध प्रतिक्रमणसूत्रम् अपरनाम अर्थदीपिका पत्र ७१।१।

३—उत्तराध्ययन अध्ययन ६ गाथा २८ में ४ प्रकार के चोर बताये गये हैं :—

आमोसे लोमहारे अ गंठिभेए अ तक्करे…

इसकी टीका करते हुए भावविजय ने लिखा है :—

(अ) आसमन्तात् मुष्णन्तीत्यामोषाश्चौरास्तान्

(आ) लोमहारा ये निर्दयतया स्वविधात शङ्कया च जन्तून हत्वैव सर्वस्वं हरन्ति तांश्च

(इ) ग्रंथिभेदा ये घुर्घुरककर्तिकादिना ग्रंथिं भिन्दन्ति तांश्च

(ई) तथा तस्करान् सर्वंच चौर्यकारिणो दि……

पत्र २२४-२

भलनं १ कुशलं २ तर्जा ३, राजभागो ४ ऽवलोकनम् ५।
अमार्गदर्शनं ६, शय्या ७, पदभङ्ग ८ स्तथैव च ॥१॥
विश्रामः ९ पादपतनं १० वासनं ११ गोपनं १२ तथा।
खण्डस्य खादनं १३ चैव तथाऽन्यमाहराजिकम् ॥२॥
पद्या १५ ग्नु १६ दक १७ रज्जूनां १८ प्रदानं ज्ञानपूर्वकं।
एताः प्रसूतयो ज्ञेया अष्टादश मनीषिभिः ॥३॥[1]

१—तुम डरो नहीं, मैं साथ में हूँ, ऐसा उत्साह दिलाने वाला **भलज** है।

२—क्षेमकुशलता पूछने वाला **कुशल** है।

३—उंगली आदि की संज्ञा से जोसमझावे वह **तर्जा** है।

४—राज्य का कर-भाग छिपाये वह **राजभाग** है।

५—चोरी किस प्रकार हो रही है, उसे देखे वह **अवलोकन** है।

६—चोर का मार्ग यदि कोई पूछे और उसे बहका दे तो वह **अमार्ग-दर्शन** है।

७—चोर को सोने का साधन दे तो वह **शय्या** है।

८—चोर के पदचिह्न को मिटा देना **पदभंग** है।

९—विश्राम-स्थल दे वह **विश्राम** है।

१०—महत्त्व की अभिवृद्धि करने वाला प्रणाम आदि करे तो वह **पादपतन** है।

११—आसन दे तो वह **आसन** है।

१२—चोर को छिपाये तो वह **गोपन** है।

१३—अच्छा-अच्छा भोजन पानी दो **खण्डदान** है।

१—प्रश्न व्याकरणम् सटीक पत्र ५८-२। ऐसा ही उल्लेख श्रीश्राद्धप्रतिक्रमण सूत्र (अपरनाम अर्थदीपिका) पत्र ७२-१ में भी है।

देखिए श्राद्धप्रतिक्रम वंदित्तुसूत्र (बड़ौदा) पृष्ठ १६५।

१४—(देश-विशेष में प्रसिद्ध) **महाराजिक**

१५—पाँव में लगाने के लिए तेल दे तो वह **पद्म** है।

१६—भोजन बनाने को आग दे वह **अग्नि** है।

१७—चोर को पानी दे वह **उदक** है।

१८—चोर को डोर दे वह रज्जू है।

(२) चोरी के लिए प्रेरणा करना भी एक अतिचार है

(३) **तप्पडिरूवे**—प्रतिरूप सदृश वस्तु मिलाना जैसे धान्य, तेल, केसर आदि में मिलावट करना। चोर आदि से वस्तु लेकर उसका रूप बदल देना भी इस अतिचार के अन्तर्गत आता है।

(४) **विरुद्ध रज्जाइकम्म**—विरुद्ध राज्य में राजा की आज्ञा के बिना गमन करना।

(५) **कूट-तुल-कूट-मान**—माप-तौल गलत रखना।

चौथे अणुव्रत के ५ अतिचार प्रवचनसारोद्धार में इस रूप में बताये गये हैं :—

भुंजइ इतर परिग्गह १ मपरिग्गहियं थियं २ चउत्थवए।
कामे तिव्वहिलासो ३ अणंगकीला ४ परविवाहो ॥२७७॥[1]

१. **अपरि-गृहीतागमन-अतिचार**—जो अपनी पत्नी न हो चाहे वह कन्या हो अथवा विधवा उससे भोग करना अपरिगृहीता अतिचार है।

१—प्रवचनसारोधार सटीक प्रथम भाग पत्र ७०-२। ऐसा ही वर्णन उपासक दशांग में भी है :—

"'इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे।
अणङ्गकीडा, परविवाह करणे, कामभोगा तिव्वाभिलासे ॥

—उवासगदसाओ (वैद्य-सम्पादित) पृष्ठ १०

२. इत्वरीगमन अतिचार—अल्पकाल के लिए भाड़े आदि पर किसी स्त्री की व्यवस्था करके भोग करना इत्वरीगमन अतिचार है।

३ अनंगक्रीड़ा अतिचार—काम की प्रधानता वाली क्रीड़ा। इसकी टीका करते हुए श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र की टीका में आचार्य रत्नशेखर सूरि ने लिखा है :—

अधर दशन कुचमर्दन चुम्बनालिंगनाद्याः परदारेषु कुर्वतोऽनङ्गक्रीड़ा।[1]

अधर, दाँत, कुचमर्दन, चुम्बन, आलिंगन आदि परस्त्री के साथ करना अनंग क्रीड़ा है।

श्रावक के लिए तो परस्त्री को देखना भी निषिद्ध है। पंचाशक में आता है :—

छन्नंगदंसणे फासणे अ गोमुत्तगहण कुसुमिराणे।
जयणा सव्वत्थ करे, इंदिअ अवलोअणे अ तहा॥ १॥

परस्त्री के सम्बंध में श्रावक को ९ बात पालन करनी चाहिए :—

वसहि १ कह २ निसिज्जिं ३ दिअ ४ कुड्डंतर ५ पुव्वकीलिअ ६ पणीए ७। अइमायाहार ८ विभूसणा ९ नव बंभगुत्तीओ॥[2]

१ स्त्री की वसति में नहीं रहना चाहिए

१—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक, पत्र ८३-१,

यहां जो 'आदि' शब्द है उसका अच्छा स्पष्टीकरण कल्पसूत्र की संदेहविषौषधि टीका में दी जाता है :—

आलिंगन १, चुंबन २, नखच्छेद ३, दशनच्छेद ४, संवेशन ५; सीत्कृत ६, पुरुषायित ७, औपरिष्ट ८ कामानाम् अष्ट……

—पत्र १२५

प्रवचनसारोद्धार की टीका में (भाग १, पत्र ७४-१) इसका विस्तार से विवेचन है।

२—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक, पत्र ८३-२

२ स्त्री-कथा[1] नहीं कहनी चाहिए

३ परस्त्री के आसन पर नहीं बैठना चाहिए

४ स्त्री की इन्द्रियाँ नहीं देखनी चाहिए

५ ऐसी जगह सोना चाहिए, जहाँ से परस्त्री की आवाज दीवाल पार करके न सुनायी दे।

६ परस्त्री के साथ यदि पहले क्रीड़ा की हो तो उसे स्मरण नहीं करना चाहिए।

७ कामवृद्धि वाला पदार्थ न खाना चाहिए।

८ अधिक आहार न खाना चाहिए।

९ परस्त्री में मोह उपजे ऐसा श्रृंगार नहीं करना चाहिए।

४ परविवाहकरण अतिचार—दूसरे के पुत्र-पुत्री का विवाह कराना

५ कामभोगतीव्रानुराग अतिचार—काम-विषयों में विशेष आसक्ति कामभोगतीव्रानुराग अतिचार है। अन्य कार्यों की ओर ध्यान कम करके कामभोग सम्बन्धी बातों पर अधिक अनुराग रखना।

५-वें अणुव्रत स्थूल परिग्रह विरमण के ५ अतिचार हैं। प्रवचनसारोद्धार में उनके नाम इस प्रकार दिये हैं :—

१—स्थानांग सूत्र में ४ विकथाएँ बतायी गयी हैं। उसमें १ स्त्रीकथा भी है। स्त्रीकथा ४ प्रकार की बतायी गयी है—१ स्त्री की जाति-सम्बंधी कथा, २ स्त्री के कुल की कथा, ३ स्त्री के रूप की कथा, ४ स्त्री के वेश की कथा, उक्त टीका में स्त्री कथा में दोष बताते हुए लिखा है :—

आयपरमोहुदीरणं उड्डाहो सुत्तमाइपरिहाणी।
बंभवयस्स अगुत्ती पसंगदोसा य गमणादी॥

—ठाणांगसूत्र सटीक, पूर्वार्द्ध, पत्र २१०-२

जोएइ खेत्तवत्थूणि १ रुप्प कणयाइ देइ सयणाणं २ ।
धणधन्नाइं परघरे बंधइ जा नियम पज्जंतो ॥[1]

१. धनधान्य परिमाण अतिक्रम अतिचार—इच्छा-परिमाण से अधिक धनधान्य की कामना और व्यवहार धनधान्य परिमाण अतिक्रम अतिचार है। इनमें से धान्य को हम पहले लेते हैं। भगवतीसूत्र में निम्नलिखित धान्यों के नाम आये हैं:—

१. शाली, २ व्रीहि, ३ गोधूम, ४ यव ५ यवयव, ६ कलाय, ७ मसूर, ८ तिल, ९ मुग्ग, १० माष, ११ निष्फाव (वल्ल), १२ कुलत्थ, १३ आलिसंदग, (एक प्रकार का चवला), १४ सतीण (अरहर) १५ पलिमंथग (गोल चना), १६ अलसी, १७ कुसुंभ, १८ कोद्रव, १९ कंगु, २० वरग २१ रालग (कंगु विशेष), २२ कोदूसग (कोदो विशेष), २३ शण २४ सरिसव, २५ मूलगबीय (मूलक बीजानि)[2]

दशवैकालिक की नियुक्ति में निम्नलिखित २४ धान्य गिनाये गये हैं:—

धन्नाइ चउव्वीसं जव १ गोहुम २ सालि ३ वीहि ४ सट्ठी आ ५। कोद्दव ६, अणुया ७, कंगु ८, रालग ९, तिल १०, मुग्ग ११, मासा १२ य ॥ अयसि १३ हरिमन्थ १४ तिउडग १५ निष्फाव १६ सिलिंद १७ रायमासा १८ अ।

१—प्रवचनसारोद्धार पूर्वार्द्ध, पत्र ७०-२। ऐसा ही उल्लेख उवासगदसाओ में भी है :—

खेत्तवत्थुपमाणाइक्कम्मे, हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कम्मे, दुपयचउपायपमाणाइक्कम्मे, धणधन्तपमाणाइक्कम्मे कुवियपमाणाइक्कम्मे ।

—(उवासगदसाओ, वैद्य-सम्पादित पृष्ठ १)

२—भगवतीसूत्र, शतक ६, उद्देसा ७, पत्र ४६८–४६९ ।
देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ३३–३५ ।

इक्खू १९, मसूर २०, तुवरी २१, कुलत्थ २२ तह २३ धन्नगकलाया ॥[1]

यही गाथा श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र की टीका में भी ज्यों-की-त्यों दी हुई है।[2]

बृहत्कल्पभाष्य में धान्यों की संख्या १७[3] बतायी गयी है। और उसकी टीका में टीकाकर ने उन्हें इस प्रकार गिनाया है :—

व्रीहिर्यवो मसूरो, गोधूमो मुद्ग-माष-तिल चणकाः।
अणवः प्रियङ्गु कोद्रवमकुष्ठकाः शालि राढक्यः।
किञ्च कलाय कुलत्थौ शणसप्तदशानि बीजानि।[4]

प्रवचनसारोद्धार की टीका में भी यही गाथा ज्यों, की त्यों, दी हुई है[5]

प्रज्ञापनासूत्र सटीक में धान्यों की गणना इस प्रकार दी है :—

साली वीही गोहुम जवजवा कलम मसूर तिल मुग्ग मास णिप्फाव कुलत्थ आलिसंदसतीण पलिमंथा अयसी कुसुम्भ कोद्दव कंगूरालगमास कोद्दंसा सणसरिसव मूलिगबीया[6]...

गाथासहस्री में निम्नलिखित धान्यों के नाम गिनाये गये हैं:—
१ गोहुम, २ साली, ३ जवजव, ४ जवाइ, ५ तिल, ६ मुग्ग, ७ मसूर, ८ कलाय[7], ९ मास, १० चवलग, ११ कुलत्थ, १२ तुवरी, १३ वट्टचणग[8],

---

१—दशवैकालिकसूत्र हरिभद्र की टीका सहित (देवचंद-लालभाई) पत्र १९३-१

२—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक, पत्र ९९-२।

३—......सणसतरसा बिया भवे धन्नं......

उ० १, गाथा ८२८, भाग २, पृष्ठ २६४।

४—बृहत्कल्प भाष्य टीका सहित, भाग २, पृष्ठ २६४।

५—प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्द्ध पत्र ७५-१।

६—पत्र ३३-१।

७—कलाय —त्रिपुटाख्य धान्य विशेषः—गाथासहस्री, पृष्ठ १६।

८—वट्टचणकाः—शिखारहिता वृत्ताकाराश्चणकविशेषाः—वही, पृष्ठ १६।

१४ वल्ला, १५ अइसी, १६ लट्टा[1], १७ कंगू[2], १८ कोडीसग, १९, सण[3] २० वरट्ट,[4] २१ सिद्धत्थ, २२ कुद्रव, २३ रालग, २४ मूलबीयग[5]।

संसक्तनिर्युक्ति में धान्यादि के वर्णन में उल्लेख है।

कुसाणाणि अ चउसट्ठी कूरे जाणाहि एगतीसं च।
नव चेव पाणायाइं तीसं पुण खज्जया हुंति ॥[6]

—अर्थात् कुसिण (धान्य) ६४ प्रकार के, कूर (चावल) ३१ प्रकार के, पान ९ प्रकार के और खाद्य ३० प्रकार के बताये गये हैं।

धन—जैन-शास्त्रों में धन ४ प्रकार के कहे गये हैं

गणिम १ धरिम २ मेय ३ परिच्छेद्य ४[7]

(१) गणिम—जिसका लेन-देन गिनकर हो। अणुयोगद्वार की टीका में आता है।

१—लट्टा—कुसुम्भपीत—वही, पृष्ठ १६।

२—कंगू-तन्दुलाः कोद्रव विशेषः—वही, पृष्ठ १६।

३—शणं त्वप्रधानं—वही, पृष्ठ १६।

४—वरट्टित्ति वरटी इति प्रसिद्धं—वही, पृष्ठ १६।

५—वही, पृष्ठ १६।

६—श्राद्धप्रतिक्रमण सूत्र सटीक पत्र १००-२।

७—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक, पत्र १००-२। प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्द्ध पत्र ७५—१ तथा कल्पसूत्र सुबोधिका टीका सहित पत्र २०२ में इस सम्बन्ध में एक गाथा दी गयी है:—

गणिमं जाईफलफोफलाई धरिमं तु कुंकुम गुडाई।
मेयं चोप्पडलोणाइ रयण वत्थाइ परिच्छेज्जं ॥

ये चार नाम नायाधम्मकहा में भी आये हैं

"गणिमं, धारिमं च, मेज्जं च, परिच्छेज्जं च"

—ज्ञाताधर्मकथा सटीक, अ० ८, पत्र १३९-२

गण्यते—सङ्ख्यते यत्तद् गणिमं[1]

(२) धरिम—जिसका व्यवहार तौल कर होता है, उसे धरिम कहते हैं।

यत्तुलाधृतंसद्व्यह्रियते[2]

(३) मेय—माप कर जिसका व्यवहार हो वह मेय है। ज्ञाता धर्मकथा की टीका में इसके लिए कहा गया है—

"यत्सेतिकापल्यादिनामीयते"[3]

(४) परिच्छेद्य—छेदकर जिसकी परीक्षा की जाती हो, उसे परिच्छेद्य कहते हैं—

यद् गुणतः परिच्छेद्यते-परीक्ष्यते वस्त्रमण्यादि[4]

दशवैकालिकनिर्युक्ति में २४ रत्न बताये गये हैं:—

रयणाणि चउव्वीसं सुवण्णतउतंब रययलोहाइं।
सीसगहिरण्ण पासाण वइर मणि मोत्ति अपवालं ॥ २५४ ॥
संखो तिणि सागुरु चंदणाणि वत्थामिलाणि कट्ठाणि।
तह चम्मदंतवाला गंधा दव्वोसहाइं च ॥ २५५ ॥[5]

कल्पसूत्र सूत्र २६ में निम्नलिखित १५ रत्न गिनाये गये हैं:—

रयणाणं वयराणं १, वेरुलिआणं २, लोहिअक्खाणं ३ मसारगल्लाणं ४, हंसगब्भाणं ५, पुलयाणं ६, सोगंधिआणं ७, जोई-

---

१–अनुयोगद्वारा सटीक पत्र १५५-२। ज्ञाताधर्मकथा की टीका में आता है
"गणिमं—नालिकेर पूगीफलादि यद्गणितं
सत् व्यवहारे प्रविशति" (पत्र १४२-२)

२–ज्ञाताधर्मकथा सटीक पूर्वार्द्ध, पत्र १४२–२

३–पत्र १४३–१

४–ज्ञाताधर्मकथा सटीक, पूर्वार्द्ध पत्र १४३–१

५–दशवैकालिक [illegible]

रसाणं ८, अंजणाणं ९, अंजणपुलयाणं १०, जायरुवाणं ११ सुभगाणं १२ अंकाणं १३, फलिहाणं १४, रिट्ठाणं १५ तथा।

इसकी टीका में उनके नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं—

हीरकाणं १, वैडूर्याणं २, लोहिताक्षाणं ३, मसारगल्लानां ४, हंसगर्भाणां ५, पुलकानां ६ सौगन्धिकानां ७, ज्योतीरसानां ८, अञ्जनानां ९, अंजनपुलकानां १०, जातरूपाणां ११, सुभगानां १२, अंकानां १३, स्फटिकानां १४, रिष्ठानां १५, ।

२ क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम-अतिचार—इच्छा-परिणाम से अधिक क्षेत्र-वस्तु का उपयोग क्षेत्रवस्तुप्रमाणातिक्रम-अतिचार है।

जैन-शास्त्रों में क्षेत्र की परिभाषा बताते हुए कहा गया है:—

सस्योत्पत्तिभूमिस्तच्च सेतु केतुतदुभयात्मकं त्रिधा…[1]

जिस भूमि में धान्य उत्पादित हो उसे क्षेत्र कहते हैं। उसके तीन प्रकार हैं सेतु-क्षेत्र, केतु-क्षेत्र और उभय-क्षेत्र। सेतु-क्षेत्र की परिभाषा इस प्रकार बतायी गयी है:—

तत्रारघट्टादिजल निष्पाद्य सस्यं सेतु-क्षेत्रं[2]

जिस भूमि में अरघट्ट आदि से सिंचाई करके अन्नोत्पादन किया जावे वह सेतु-क्षेत्र है।

और, "जलदनिष्पाद्यसस्यं केतुक्षेत्रं" मेघ-वृष्टि से जिसमें अन्न उपजे, वह केतु-क्षेत्र है।

१—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक, पत्र १००-२। प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्द्ध पत्र ७४-२ में भी ऐसा ही उल्लेख है:

सेतु केतूभय भेदात्

दशवैकालिकनियुक्ति (दशवैकालिक हरिभद्र टीका सहित) पत्र १९३-२ में भी इसी प्रकार उल्लेख है।

२—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक, पत्र १००-२। प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्द्ध ७४-२ में भी ऐसा ही उल्लेख है।

जिसमें दोनों प्रकार के जल से सस्योत्पादन हो, वह उभय-क्षेत्र है।

उभय जलनिष्पाद्य सस्यमुभयक्षेत्र[1]

वास्तुः—'गृह-ग्रामादि'। गृह तीन प्रकार के हैं। खात १ मुच्छ्रितं २ खातोच्छ्रितं ३।[2]

खात:—'भूमि गृहादि'[3] (भूमि-गृह आदि)।

मुच्छ्रित—'प्रासादि'[4]।

खातोच्छ्रितं—भूमि गृहस्योपरि गृहादि।[5]

३—रूप्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम अतिचारः—रूप्य-सुवर्ण के जो नियम निर्धारित करे, उसका उलंघन रूप्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम अतिचार है।

४—कुप्य प्रमाणातिक्रम अतिचारः—स्वर्ण-रूप्य के अतिरिक्त कांसा, लोहा, तांबा आदि समस्त अजीव-परिणाम से अधिक कामना करना। श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र में इस सम्बंध में उल्लेख हैः—

रूप्य सुवर्ण व्यतिरिक्तं कांस्यलोहताम्रत्रपुपित्तल सीसक

१—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक पत्र १००-२, प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्द्ध पत्र ७४ २ में भी ऐसा ही उल्लेख है।

२—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक, पत्र १००—२। प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्द्ध पत्र ७४—२ में भी ३ प्रकार के गृह बताये गये हैं। दशवैकालिकनिर्युक्ति (हरिभद्र की टीका सहित, पत्र १९३—२) में भी ऐसा ही उल्लेख है।

३—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक पत्र १००-२। प्रवचनसारोधार सटीक पूर्वार्ध पत्र ७४—२ में भी ऐसा ही उल्लेख है।

४—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक पत्र १००—२। प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्ध पत्र ७८-२ में भी ऐसा ही उल्लेख है।

५—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र पत्र १००—२। ऐसा ही उल्लेख प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्ध पत्र ७८—२ में भी है।

मृद्भाण्डवंश काष्ठ हल शकटशस्त्र मञ्चक मञ्चिका मसूरकादि गृहोपस्कररूपं ।[1]

५—द्विपद-चतुष्पद-प्रमाणातिक्रमण-अतिचारः—नियत परिमाण से अधिक द्विपद-चतुष्पद की कामना करना ।

श्राद्धप्रतिक्रमण सूत्र में द्विपदों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं:—

द्विपदं—पत्नी कर्मकर कर्मकरी प्रभृत हंसमयूरकुर्कुट शुक सारिका चकोर पारापत प्रभृति ।[2]

प्रवचनसारोद्धार में द्विपद इस प्रकार गिनाये गये हैं:—

कलत्रावरुद्धदासी दास कर्मकर पदात्यादीनि ।

हंसमयूर कुक्कुट शुक सारिका चकोर पारापत प्रभृतीनिच[3]

चतुष्पदं—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र की टीका में चतुष्पदों के नाम इस प्रकार गिनाये गये है:—

गोमहिष्यादि दशविधमनन्तरोक्तं[4] ।

प्रवचनसारोद्धार की टीका में उनके नाम इस प्रकार दिये हैं:—

गो महिष मेष विक करभ रासभ तुरग हस्त्यादीनि[5] ।

दशवैकालिकनिर्युक्ति में पूरे १० नाम गिना दिये गये हैं:—

गावी १ महिसी २ उट्टा ३ अय ४ एलग ५ आस ६ आसतरगा ७ अ । घोडग ८ गद्दह ९ हत्थी १० चउप्पयं होइ दसहा उ ॥ २५० ॥[6]

१—पत्र १०१-१ ऐसा ही उल्लेख प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्ध, पत्र ७५-२ में भी है । दशवैकालिक निर्युक्ति की गाथा २५८ (दशवैकालिक, हारिभद्रीय टीका सहित अ० ६, उ० २. पत्र १९४-१) में भी इसका उल्लेख आता है ।

२—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक, पत्र १०१-१ ।

३—प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्ध, पत्र ७५-१ ।

४—श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र सटीक, पत्र १०१-१ ।

५—प्रवचन सारोद्धार सटीक पूर्वार्ध, पत्र ७५-२ ।

६—दशवैकालिकसूत्र हारिभद्रीयटीका सहित पत्र [illegible] ।

३ गुणव्रतों के अतिचार

प्रथम गुणव्रत दिग्विरतिव्रत है। उसके निम्नलिखित ५ अतिचार हैं। उनके नाम प्रवचनसारोद्धार में इस प्रकार गिनाये गये हैं :—

तिरियं अहो य उड्ढं दिसिवयसंखाअइक्कमे तिन्नि।
दिसिवय दोसा तह सइविम्हरणं खित्त वुड्ढी य ॥२८०॥[1]

१. **उर्ध्वप्रमाणातिक्रमण**—पर्वत, तरु-शिखा आदि पर नियम लिये ऊँचाई से ऊपर चढ़ना ऊर्ध्वप्रमाणातिक्रमण अतिचार है।[2]

२. **अधःप्रमाणातिक्रमण**—सुरंग, कूएँ आदि में व्रत लिए गहराई से नीचे जाना।[3]

३. **तिर्यक्प्रमाणातिक्रमण**—पूर्वादि चारों दिशाओं में नियमित प्रमाण से अधिक जाना।[4]

४. **क्षेत्रवृद्धिअतिचार**—चारों दिशाओं में १००-१०० योजन जाने का व्रत ले। फिर किसी लोभ वश एक दिशा में २५ योजन कम

१—प्रवचनसारोद्धार सटीक, पूर्वार्द्ध, पत्र ७५-२। उवासगदसाओ (पी० एल० वैद्य—सम्पादित, पृष्ठ १०) में वे इस प्रकार गिनाये गये हैं—

उड्ढ दिसिपमाणाइक्कम्मे, अहो दिसिपमाणाइक्कम्मे।
तिरियदिशि पमाणाइक्कम्मे, खेत्त वुड्ढी, सइ अन्तरद्धा

२—पर्वत तरु शिखरादिषु योऽसौ नियमतः प्रदेशस्तस्य व्यतिक्रमः
—प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्ध, पत्र ७५-२

३—अधोग्रामभूमिगृहकूपादीषु
—प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्द्ध, पत्र ७५-२

४—तिर्यक् पूर्वादिदिक्षु—
—प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्द्ध, पत्र ७५-२

करके दूसरी दिशा में २५ योजन अधिक बढ़ा दे, तो यह क्षेत्रवृद्धि अति-चार है।[1]

५. स्मृत्यन्तर्धान—सौ योजन का व्रत लेने के बाद, यदि चलते समय शंका हो जाये कि १०० का व्रत लिया था या ५० का! फिर ५० योजन से अधिक जाना स्मृत्यन्तर्धान अतिचार है।[2]

२-रा गुणव्रत—भोगोपभोग के २० अतिचार हैं। उनमें भोग-सम्बन्धी पाँच अतिचार हैं। प्रवचनसारोद्धार में गाथा आती है :—

अप्पक्कं दुप्पक्कं सच्चित्तं तह सच्चित्त पडिबद्धं।
तुच्छोसहि भक्खणयं दोसा उवभोग परिभोगे ॥२८१॥

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, पूर्वार्द्ध, पत्र ७५-२

१ अपक्व, २ दुष्पक्व, ३ सचित्त, ४ सचित्त प्रतिबद्धाहार तथा ५ तुच्छौषधि ये पाँच भोग सम्बन्धी अतिचार हैं। इनका विश्लेषण जैन-शास्त्रों में इस प्रकार है :—

१. अपक्व—बिना छना आटा, अथवा जिसका अग्निसंस्कार न किया हो, ऐसा आटा खाना, क्योंकि आटा पीसे जाने के बाद भी कितने

१—पूर्वादि देशस्य दिग्व्रत विषयस्य ह्रस्वस्य सतो वृद्धिः—वर्द्धनं पश्चिमादि क्षेत्रान्तर परिमाणप्रक्षेपणे दीर्घीकरणं...

—प्रवचनसारोद्धार पूर्वार्द्ध, पत्र ७३-१

२—केनचित्पूर्वस्यां दिशि योजन शतरूपं परिमाणं कृतमासीत् गमनकाले च स्पष्टरूपतया न स्मरति—किं शतं परिमाणं कृतमुत पञ्चाशत

—प्रवचनसारोद्धार सटीक पूर्वार्द्ध, पत्र ७३-२

ही दिनों तक मिश्र रहता है। अतः इस प्रकार का मिश्र भोजन करना एक अतिचार है।[1]

२. दुष्पक्व—मक्का, ज्वार, बाजरा, गेहूँ आदि की बाल आग पर भुन कर कुछ पका और कुछ कच्चा रहने ही पर खाना दुष्पक्व-अतिचार है।

३. सचित्त—चित्त का अर्थ है, चेतना—जीव। चेतना के साथ जो वस्तु हो वह वस्तु सचित्त कही जाती है। ऐसी सचित्त वस्तुओं का भोजन करना एक अतिचार है।

४. सचित्त प्रतिबद्धाहार—जिसने सचित्त वस्तु का त्याग कर रखा हो, वह खैर की गाँठ से गोंद निकालकर खाये। गोंद अचित्त है; पर सचित्त के साथ मिला हुआ होने से उसके खाने में दोष लगता है। पके आम, खिरनी, बेर आदि इस विचार से खाये कि, मैं तो अचित्त खा रहा हूँ, सचित्त गुठली तो थूक दूँगा, ऐसा विचार करके फल का खाना भी इस अतिचार के अंतर्गत आता है।

५. तुच्छौषधिभक्षण—तुच्छ से तात्पर्य असार से है। जिस वस्तु के खाने से तृप्ति न हो, ऐसी चीज खाने से यह अतिचार लगता है। उदाहरण के लिए कहें चने का फूल, मूँग-चवला आदि की फली।

इनके अतिरिक्त कर्म-सम्बन्धी १५ अतिचार हैं। उनका उल्लेख उपदेशप्रासाद में इस प्रकार किया गया है :—

अंगार, वन, शकट, भाटक, स्फोटक, जीविका,
दंत लाक्षारस केश विष वाणिज्यकानि च ॥२॥

१—अग्न्यादिना यदसंस्कृतं शालिगोधूममौषध्यादि तदनाभोगातिक्रमादिना भुञ्जानस्य प्रथमो अतिचारः

—प्रवचनसारोद्धार सटीक, पत्र ७६ १

से त्रस जीव उत्पन्न होते हैं। नीला वस्त्र पहनने से उसमें जूँ, लीख आदि त्रस जीव उत्पन्न होते हैं। हरताल, मैनसिल आदि को पीसते समय यत्न न करने पर मक्खी-सरीखे अनेक जीव मर जाते हैं।

३. **रसवाणिज्य**—मदिरा-मांस आदि का व्यापार महापाप-रूप है। दूध, दही, घृत, तेल, गुड़, खाँड़ आदि का व्यापार भी रसकुवाणिज्य में आता है।

४. **केशकुवाणिज्य**—द्विपद, दास-दासी आदि खरीद कर बेचना। चतुष्पद गाय, घोड़ा, भैंस आदि बेचना। तीतर, मोर, तोता, मैना आदि बेचना।

५. **विषकुवाणिज्य**—वच्छनाग, अफीम, मैनसिल, हरताल, आदि बेचना। धनुष, तलवार, कटारी, बंदूक, आदि जिनके द्वारा युद्ध करते हैं, अथवा हल, मूसल, ऊखल, पटाखा आदि बेचना।

सामान्य पाँच कर्म

१. **यंत्रपीलनकर्म**—तिल, सरसों, इक्षु, आदि पिलाकर बेचना। यह सर्व जीव हिंसा के निमित्त-रूप यंत्रपीलन कर्म है।

२. **निर्लांछनकर्म**—बैल, घोड़े आदि को खस्सी करना, घोड़े, बैल, आदि पशुओं को दागना, ठेका लेना, महसूल उगाहना, चोरों के गाँव में वास करना आदि जो निर्दयीपने के काम हैं, वह निर्लांछनकर्म कहे जाते हैं।

३. **दावाग्निकर्म**—नयी घास उत्पन्न होगी, इस विचार से वन में आग लगाना आदि।

४. **शोषणकर्म**—बावड़ी, तालाब, सरोवर आदि का पानी निकाल कर सोखाना।

५. **असतीपोषणकर्म**—कुतूहल के लिए पशु-पालन। माझी,

कसाई, चमार आदि बहुआरंभी जीवों के साथ व्यापार करे, उनको खर्च आदि दे।

अनर्थदंड के निम्नलिखित ५ अतिचार प्रवचनसारोद्धार (गा० २८२, पत्र ७५-२) बताये गये हैं :—

कुक्कुइयं मोहरियं भोगुवभोगाइरेग कंदप्पा।
जुत्ताहिगरणमेए अइयाराऽणत्थदंडवए।

१. **कंदर्पचेष्टा**—मुखविकार, भ्रूविकार, नेत्रविकार, हाथ की संज्ञा बताये, पग से विकार की चेष्टा करे, औरों को हँसाये। किसी को क्रोध उत्पन्न हो जाये, कुछ का कुछ हो। धर्म की निन्दा हो, ऐसी कुचेष्टा हो।

२. **मुखारिवचन**—मुख से मुखरता करे, असंबद्ध वचन बोले, ऐसे काम करे जिससे चुगलखोर, लबार आदि के नाम से प्रसिद्ध हो, ऐसा वाचालपन।

३. **भोगोपभोगातिरिक्तअतिचार**—स्नान, पान, भोजन, चंदन, कुंकुम, कस्तूरी, वस्त्र, आभरणादिक अपने शरीर के भोग से अधिक भोगे यह भी अनर्थदण्ड है।

४. **कौकुच्यअतिचार**—जिसके कहने से औरों की चेतना काम-क्रोध रूप हो जाये तथा विरह की बात, साखी, दोहा, कवित्त, छन्द आदि कहना।

५. **संयुक्ताधिकरणअतिचार**—ऊखल के साथ मूसल, हल के साथ फाला, गाड़ी के साथ युग आदि संयुक्त अधिकरण नहीं रखना।

अब शिक्षाव्रतों में प्रथम शिक्षाव्रत सामायिक के अतिचार बताता हूँ। प्रवचनसारोद्धार में सामायिक के ५ अतिचार इस प्रकार बताये गये हैं—

काय २ मणो १ वयणाणं ३ दुप्पणिहाणं सईअकरणं च ४
अणवट्ठियकरणं चिय समाइए पञ्च अइयारा ॥२८३॥

(पत्र ७७-२)

७—विकथा-दोष—सामायिक में बैठकर विकथाएँ नहीं[1] करनी चाहिए।

८—हास्य-दोष—सामायिक में रहकर दूसरों की हँसी करना।

९—अशुद्धपाठ-दोष—सूत्र-पाठ का उच्चारण शुद्ध न करे।

१०—मुनमुन-दोष—सामायिक में अक्षर स्पष्ट न उच्चारित करे—ऐसा बोले जैसे मच्छर बोलता है।

४—अनवस्था-दोषरूप-अतिचार—सामायिक अवसर पर न करे।

५—स्मृतिविहीन-अतिचार—सामायिक किया या नहीं, उसकी पारणा की या नहीं, ऐसी भूल करना।

दिशावकाशिकव्रत के ५ अतिचार हैं। प्रवचनसारोद्धार (सटीक) में (गाथा २८४, पत्र ७८-१) में उनके नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं :-

आणयणं १ पेसवणं २ सद्दणुवाओ य ३ रूव अणुवाओ ४।
वहिपोग्गलपक्खेवो ५ दोसा देसावगसस्स॥

१. आणवणप्रयोग-अतिचार—नियम के बाहर की कोई वस्तु हो उसकी आवश्यकता पड़ने पर, कोई अन्यत्र जाता हो तो उससे कहकर मँगा लेना।

२. पेसवण प्रयोग-अतिचार—दूसरे आदमी के हाथ नियम के भूमि के बाहर की भूमि में कोई वस्तु भेजे यह दूसरा अतिचार है।

३ सद्दाणुवाय अतिचार—यदि कोई व्यक्ति नियम से बाहर की भूमि में जाता हो, उसे खाँस या खरकार कर बुलाना और अपने लिए उपयोगी कोई वस्तु मँगवाना।

४ रूपानुपाती-अतिचार—यदि कोई व्यक्ति नियम से बाहर की

---

१. विकथाएँ सात हैं—१ स्त्रीकथा, २ भक्तकथा, ३ देशकथाएँ ४ राजकथा, ५ मृदुकारणीकथा, ६ दर्शनभेदिनी, ७ चरित्रभेदिनी।

—ठाणांगसूत्र, सटीक, ठा० ७, सूत्र ५६९, पत्र ४०३।२।

भूमि में जाता हो तो हवेली आदि पर चढ़कर उसे अपना रूप दिखाना, जिसके फलस्वरूप वह आदमी पास आ जाये फिर किसी वस्तु को मँगाना।

५ पुद्गलाक्षेप-अतिचार—नियम से बाहर कोई व्यक्ति जाता हो, और उससे काम हो तो उस पर कंकड़ फेंक कर, उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करे ताकि वह उसके निकट आये। फिर उसके साथ बातचित करके उसे अपना काम बताना यह पाँचवाँ अतिचार है।

पौषधव्रत के पाँच अतिचार प्रवचनसारोद्धार सटीक (गाथा २८५, पत्र ७८-१) में इस प्रकार गिनाये गये हैं :—

अप्पडिलेहिय अप्पमज्जियं च सेज्जा २ इ थंडिलाणि ४ तहा। संमं च अणणुपालण ५ मइयारा पोसहे पंच ॥ २८५ ॥

१ अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जासंथारक अतिचार—जिस स्थान में पौषधसंस्तारक किया है, उस भूमि की तथा संथारा की पडिलेहण (प्रतिलेखना) न करे। संथारे की जगह अच्छी तरह निगाह करके देखे नहीं, अथवा यदा-कदा देखे तो भी प्रमाद वश कुछ देखी और कुछ बिना देखी रह जाये।

२ अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिज्जासंस्तारक अतिचार—संथारा को पूँजे नहीं अथवा यथार्थरूप में न पूँजे, जीवरक्षा न करे।

३ अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमि अतिचार लघुनीति अथवा बड़ीनीति न व्यवहार में लाये, परिठावने की भूमि का नेत्रों से अवलोकन न करे, और करे भी तो असावधानी से करे, जीवयत्ना बिना करे।

४ अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवण भूमि अतिचार जहाँ मूत्र अथवा विष्ठा करे उस भूमि को उच्चार-प्रस्नवण करने से पहले पूँजे नहीं अथवा असावधानी से पूँजे।

५ पोसह विहिविविवरीए अतिचार—पोषध में जब भूख लगे

तो पारणे की चिन्ता करे—जैसे कल सुबह अमुक वस्तु का भोजन करूँगा। अथवा अमुक कार्य आवश्यक है, उसे कल करने जाऊँगा अथवा पोषध के निम्नलिखित १८ दूषणों का वर्जन न करे :—

(१) बिना पोसे वाले का लाया हुआ जल पिये।

(२) पोषध के लिए सरस आहार करे।

(३) पोषध के अगले दिन विविध प्रकार के भोजन करे।

(४) पोषध के निमित्त अथवा पोषध के अगले दिन में विभूषा करे।

(५) पोषध के लिए वस्त्र धुलावो।

(६) पोषध के लिए आभरण बनवा कर पहने।

(७) पोषध के लिए रंगा वस्त्र पहने।

(८) पोषध में शरीर का मैल निकाले।

(९) पोषध में बिना काल निद्रा करे।

(१०) पोषध में स्त्री-कथा करे।

(११) पोषध में आहार-कथा करे।

(१२) पोषध में राज कथा करे।

(१३) पोषध में देश-कथा करे।

(१४) पोषध में लघुशंका अथवा बड़ी शंका बिना भूमि को पूँजे करे।

(१५) पोषध में दूसरों की निन्दा करे।

(१६) पोषध में माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-बहन आदि से वार्तालाप करे।

(१७) पोषध में चोर-कथा कहे।

(१८) पोषध में स्त्री के अंगोपांग देखे।

अतिथि-संविभाग व्रत के ५ अतिचार प्रवचनसारोद्धार सटीक (पूर्वभाग गा० २७६, पत्र ७८-१) में इस प्रकार कहे गये हैं :—

।चित्ते निक्खिवणं १ सचित्तपिहणं च २ अन्नववएसो ३।
।च्छरइयं च ४ कालाईयं ५ दोसाऽतिहि विभाए॥

१—सचित्त निक्षेप—न देना पड़े, इस विचार से सचित्त सजीव, पृथ्वी, जल, कुम्भ, ईंधन आदि के ऊपर रख छोड़े। अथवा यह विचार कर कि अमुक वस्तु तो साधु लेगा नहीं, परन्तु निमंत्रण करने से मुझे पुण्य प्राप्त होगा।

२—सचित्त पीहण-अतिचार—न देने के विचार से देय वस्तु को सूरन फलादि से ढक छोड़े।

३—कालातिक्रम-अतिचार—साधु के भिक्षाकाल से पहले अथवा साधु के भिक्षा कर चुकने के बाद आहार का निमंत्रण दे।

४—मत्सर-अतिचार—साधु के माँगने पर क्रोध करना अथवा न देना। या इस विचार से देना कि, अमुक ने यह दिया तो मैं क्यों न दूँ।

५—परव्यपदेश-अतिचार—न देने के विचार से अपनी वस्तु को दूसरे की कहना।

संलेखना के ५ अतिचार

प्रवचनसारोद्धार-सटीक (पूर्वभाग, गाथा २६४, पत्र ६१-१) में संलेखना के ५ अतिचार इस प्रकार गिनाये गये हैं :—

इह पर लोया संसप्पओग मरणं च जीविआसंसा।
कामे भोगे व तहा मरणंते च पंच अइयारा॥

१—इहलोकाशंसा—मनुष्य यदि मनुष्य-भव की आकांक्षा करे या यह विचार करे कि, इस अनशन से अगले भव में मैं राजा अथवा धनवान हूँगा।

२—परलोकाशंसा—इस भव में रह कर इन्द्रादि देवता होने की प्रार्थना करने को परलोकाशंसा-अतिचार कहते हैं।

३—मरणाशंसा—शरीर में कोई बड़ा रोग उत्पन्न होने पर अंतःकरण में खेद प्राप्त करके यह विचार करे कि, मृत्यु आवे तो बहुत अच्छा, यह मरणाशंसा-अतिचार है।

४—जीविताशंसा—कपूर, कस्तूरी, चंदन, वस्त्र, गंध, पुष्प इत्यादि पूजा की सामग्री देखकर, नाना प्रकार के गीत-वाद्य सुनकर अथवा यह सुनकर कि 'यह सेठ बड़े परिवार वाला है; इसके यहाँ बहुत से लोग आते हैं, इसलिए यह धन्य है, पुण्यवान है, श्लाघा करने योग्य है' इत्यादि अपनी प्रशंसा सुनकर जो यह मन में विचार करे कि शासन की प्रभावना मेरे कारण वृद्धि को प्राप्त होती है, इस कारण मैं बहुत दिनों जीवित रहूँ तो अच्छा, ऐसा विचार करना जीविताशंसा है।

५ कामभोगाशंसा—अगले भव में मुझे कामभोग की प्राप्ति हो तो अच्छा, ऐसा जो अनशन के समय प्रार्थना करता है, उसे कामभोगाशंसा कहते हैं।

ज्ञान के ८ अतिचार

ज्ञान के निम्नलिखित ८ अतिचार प्रवचनसारोद्धार (सटीक) में गिनाये गये हैं (गाथा २६७-पत्र ६३-२)

काले[१] विणए[२] बहुमाणो[३] वहाणे[४] तहा अनिण्हवणे[५]।
वंजण[६] अत्थ[७] तदुभए[८] अट्ठविहो नाणमायारो ॥ २६७ ॥

१—अकालाध्ययनातिचार

—शुभ कृत्यादि करने के लिए जो शुभ काल कहा गया हो, उस काल में करने से क्रिया फलदायक होती है, अन्यथा निष्फल जाती है। अतः काल बीत जाने पर पढ़ना अथवा वह क्रिया करना अकालाध्ययन-अतिचार है।

२—अविनयातिचार—

—ज्ञान का, ज्ञानी का अथवा ज्ञान के साधन पुस्तकादि का विनयोपचार करना चाहिए। ज्ञानी के पास आसन, दान अथवा आज्ञापालनादि के विनय से पढ़ना चाहिए। ऐसा न करके विनय के अभाव में पढ़ना अविनयातिचार है।

३—अबहुमानातिचार

—बहुमान—अर्थात गुरु के ऊपर प्रीति रखकर अंतरंगचित्त में प्रमोद रखकर पढ़ना। इसके विपरीत रूप में पढ़ना अबहुमान अतिचार है।

दर्शन के ८ अतिचार

प्रवचनसारोद्धार सटीक (गाथा २६८, पत्र ६३-२) में दर्शन के ८ अतिचार इस प्रकार बताये गये हैं:—

निस्संकिय[1] निक्कंखिय[2] निव्वितिगिच्छा[3] अमूढ़दिट्ठी[4] य।
उववूह[5] थिरीकरणे[6] वच्छल[7] पभावणे[8] अट्ठ ॥

(पृष्ठ ४०४ पाद टिप्पणि का शेषांश)

४—उपधानहीनातिचार

—सिद्धान्त में कहे तप बिना सूत्र पढ़े अथवा पढ़ाये। यह चौथा उपधान-हीनातिचार है।

५—निह्नवणातिचार

—जिस गुरु के पास विद्याभ्यास किया हो, उसका नाम छिपाकर किसी बड़े गुरु का नाम बताना पाँचवाँ अतिचार है।

६—वंजणातिचार

—व्यंजन, स्वर, मात्रादिक का न्यूनाधिक उच्चारण करना वंजणातिचार है।

७—अत्थातिचार

—अर्थ यदि न्यूनाधिक कहे तो अत्थातिचार है।

८—उभयातिचार

—अर्थ और उच्चारण दोनों में न्यूनाधिक करना उभयातिचार है।

१—निस्संकिय अतिचार

—सम्यक्त्व का धारण करने वाला जो श्रावक है, उसे तीर्थंकर-वचन में किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए। शंका का अभाव दर्शन का प्रथम निस्संकिय गुण है। और, तद् विपरीत विचारणा अतिचार है।

२—निक्कंखिय अतिचार

—जिन-धर्म के स्थान पर दूसरे धर्म अथवा दर्शन की आकांक्षा का अभाव दर्शन का दूसरा गुण है। और, उसके विपरीत निक्कंखिय-अतिचार है।

चारित्र के ८ अतिचार

चरित्र के आठ अतिचारों के सम्बंध में प्रवचनसारोद्धार सटीक (गा० २६९ पत्र ६३-२) में गाथा आती है:—

(पृष्ठ ४०५ की पाद टिप्पणि का शेषांश)

३—विचिकित्सा-अतिचार

—ऐसा करने का फल होगा या नहीं, इसे विचिकित्सा कहते हैं अथवा संयमपात्र महामुनीन्द्र को देखकर मन में जुगुप्सा करना। इसका जो अभाव है, वह दर्शन का तीसरा अतिचार है।

४—अमूढ़दृष्टि अतिचार

—अन्य दर्शन में विद्या अथवा तप की अधिकता देखकर, उसकी ऋद्धि का अवलोकन करके मोह के वश होकर चित्त विचलित करना दर्शन का चौथा अमूढ़-दृष्टिगुण अतिचार है।

५—उववूह अतिचार

—समानधर्मी की गुणस्तवना वैयावच्चादिक करे तो उसका अनुमोदन न करना, तटस्थ रहना।

६—थिरीकरण

—कोई सहधर्मी धर्म के विषय में चलित मन हो गया हो तो उसे स्थिर न करके उदासीन रहना।

७—वच्छल्ल

—कोई सधर्मी जात, धर्म अथवा व्यवहार-सम्बंधी आपत्ति में फँसा हो, तो उसे निवारण करने की शक्ति होते हुए भी तटस्थ रहना।

८—प्रभावना

—जिनशासन-प्रवचन श्री भगवंत भाषित सुरासुर से वंद्य होने के कारण स्वतः देदिप्यमान हैं। तथापि अपने सम्यक्त्व की शुद्धि की इच्छा करनेवाले प्राणी को, जिससे धर्म की प्रशंसा हो, ऐसे दुष्कर तपश्चरणादि करके जिनप्रवचन पर प्रकाश डालना यह दर्शन का आठवाँ गुण है। इसके विपरीत आचरण अतिचार है।

पणिहाण जोगजुत्तो पंचहिं समिईहिं तीहिं गुत्तीहिं।
चरणायारो विवरीययाई तिण्हपि अइयारा ॥

प्राणिधान अर्थात् चित्त की स्वस्थपना। अतः स्वस्थ मन से पाँच समिति और ३ गुप्तियों के साथ आचरण चरित्राचार कहा जाता है। पाँच समिति और ३ गुप्ति मिलाकर ८ हुए। इनके विपरीत जो व्यवहार है, वे चरित्राचार के ८ अतिचार कहे जाते हैं।[1]

अब हम पाँच समितियों और तीन गुप्तियों पर विचार करेंगे। ५ समितियों के नाम ठाणांग और समवायांग सूत्रों में इस प्रकार गिनाये गये हैं:—

१ ईरियासमिति, २ भासासमिति, ३ एसणासमिति, ४ आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिति, ५ उच्चारपासवणखेल-सिंघाणजल्लपारिट्ठावणियासमिति।[2]

समवायांग की टीका में इनकी परिभाषा इस रूप में दी गयी है:—

समितयः—सङ्गताः प्रवृत्तयः, तत्रेर्यासमितिः—गमने सम्यक् सत्वपरिहारतः प्रवृत्तिः, भाषासमिति—निरवद्यवचन प्रवृत्तिः, एषणा समितिः—द्विचत्वारिंश द्दोषवर्जनेन भक्तादि ग्रहणे प्रवृत्तिः, आदाने-ग्रहणे भाण्डमात्रयोरुपकरणपरिच्छदस्य निक्षेपणे अवस्थापने समितिः।

सुप्रत्युपेक्षितादिसाङ्गत्येन प्रवृत्तिश्चतुर्थी, तथोच्चारस्य पुरीषस्य प्रश्रवणस्य मूत्रस्य खेलस्य निष्ठीवनस्य सिंघाणस्य

१—पाक्षिक अतिचार में आता है कि ये ८ व्रत साधु के लिए सदा लागू होते हैं; पर श्रावक को सामायिक अथवा पौषध के समय लागू होते हैं।

—प्रतिक्रमणसूत्र प्रबोध टीका, भाग ३, पृष्ठ ६५५।

२—ठाणांगसूत्र सटीक ठाणा ५, उद्देशा ३, सूत्र ४५७ पत्र ३४२-२; समवायांगसूत्र सटीक सू० ५, पत्र १०-२।

नासिकाश्लेष्मणो जल्लस्य देहमलस्य परिष्ठापनायां-परित्यागे समितिः।[1]

समिति अर्थात् संगत प्रवृत्ति।

१—गमन करते समय सम्यक् रूप से इस प्रकार चलना कि जीव हिंसा न हो इर्यासमिति है।

२—दोष रहित वचन की प्रवृत्ति करना भाषासमिति है।

३—४२ दोषों से रहित भात-पानी ग्रहण करने में प्रवृत्ति करना ऐषणासमिति है।

४—आदान अर्थात् भांड, पात्र और वस्त्रादिक उपकरण के समूह को ग्रहण करते समय तथा निक्षेपण अर्थात् उनके स्थापन करते समय सही रूप में प्रतिलेखना करने की प्रवृत्ति चौथी समिति है।

५—उच्चार अर्थात् विष्टा, प्रस्रवण अर्थात् मूत्र, थूक, नासिका का श्लेष्म, शरीर का मैल इन सब के त्याग करने के समय स्थंडिलादिक के दोष दूर करने की प्रवृत्ति करनी पाँचवीं समिति है।

और ३ गुप्तियाँ ठाणांगसूत्र और समवायांग सूत्र में इस प्रकार गिनायी गयी हैं:—

१ मनोगुप्ति, २ वचनगुप्ति, ३ कायगुप्ति।[2]

समवाय की टीका में उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है:—

गोपनानि गुप्तयः मनः प्रभृती नाम शुभ प्रवृत्तिनिरोधनानि शुभ प्रवृत्तिकरणानिचेति।[3]

१—समवायांग सूत्र सटीक, पत्र १०-२, ११-१।

२—स्थानांगसूत्र सटीक, ठाणा ३, सूत्र १२६ पत्र ११९-२, समवायांगसूत्र सटीक समवाय ३, पत्र ८-१।

३—समवायांगसूत्र सटीक, पत्र ८-२।

(१) अनशन

अनशन के सम्बन्ध में उत्तराध्ययन में गाथा आती है:—

इत्तरिय मरणकाला य, अणसणा दुविहा भवे।
इत्तरिय सावकंखा, निरवकंखा उ बिइज्जिया ॥ ६ ॥

—अनशन दो प्रकार का है (१) इत्वरिक और (२) मरणकाल पर्यंत। इनमें प्रथम आकांक्षा-अवधि सहित और दूसरा आकांक्षा अवधि से रहित है।

जो इत्वरिक तप है वह ६ प्रकार का है। उत्तराध्ययन में गाथा आती है :—

जो सो इत्तरियतवो, सो समासेण छव्विहो।
सेढितवो पयरतवो, घणो य तह होइ वग्गो य ॥ १० ॥
तत्तो य वग्गवग्गो, पंचमो छट्ठओ पइण्णतवो।
मणइच्छियचित्तत्थो, नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥ ११ ॥

—जो इत्वरतप है वह ६ प्रकार का है। १ श्रेणितप, २ प्रतरतप, ३ धनतप, ४ वर्गतप, ५ वर्गवर्गतप, ६ प्रकीर्णतप।

इनकी परिभाषा इस प्रकार है :—

(अ) **श्रेणितप**—एक उपवास से ६ मास पर्यंत जो अनशन-तप किया जाता है, उसे श्रेणितप कहते हैं।

(आ) **प्रतरतप**—श्रेणि से गुणाकार किया हुआ श्रेणितप प्रतरतक कहा जाता है। यथा—एक उपवास, दो, तीन, चार उपवास......

दो, तीन, चार, एक
तीन, चार, एक, दो
चार, एक, दो, तीन

(इ) **धनतप**—इस षोडशपदात्मक-प्रतर को श्रेणि से गुण करने पर

घनतप होता है, जिसके ६४ कोष्ठक बनते हैं। यंत्र की स्थापना प्राग्वत् जाननी चाहिए।

(ई) **वर्गतप**—घन-तप को घन से गुणाकरने अर्थात् ६४ को ६४ कर देने से ४०९६ कोष्ठक बनते हैं।

(उ) **वर्गवर्गतप**—वर्ग को वर्ग से गुणाकार करने पर वर्गवर्ग-तप होता है। ४०९६ को ४०९६ से गुणाकरने पर १६७७७२१६ कोष्ठक बनते हैं।

(ऊ) **प्रकीर्णतप**—प्रकीर्णतप श्रेणि बद्ध नहीं होता। अपनी शक्ति के अनुरूप किया जाता है। इसके अनेक भेद हैं।

यह इत्वरतप अनेक प्रकार के स्वर्ग, अपवर्ग, तेजोलेश्या आदि देने वाला है।[1]

मरणकाल पर्यंत अनशन के सम्बन्ध में उत्तराध्ययन में आता है—

जा सा अणसणा मरणे, दुविहा सा वियाहिया।
सवियारमवियारा कायचिट्ठं पई भवे॥ १२॥

—मरणकाल पर्यंत के अनशन-तप के भी काम चेष्टा को लेकर सविचार और अविचार ये दो भेद वर्णन किये गये हैं।

अहवा सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया।
नीहारिमनीहारी, आहारच्छेओ दोसु वि॥ १३॥

—अथवा सपरिक्रम और अपरिक्रम तथा नीहारी और अनीहारी इस प्रकार यावत्कालिक अनशन-तप के दो भेद हैं। आहार का सर्वथा त्याग इन दोनों में होता है।

नवतत्त्वप्रकरण सार्थ (पृष्ठ १२६) में आता है कि, अनशन के दो भेद हैं।

१—उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य की टीका सहित पत्र ६००—२ से ६०१—२ में इनका विस्तार से वर्णन आता है।

१—यावज्जीव २—इत्वरिक। यावज्जीव के दो भेद हैं—१ पादपोपगमन और २ भक्तप्रत्याख्यान। ये दो अनशन मरण पर्यन्त संलेखना पूर्वक किये जाते हैं। उनके निहारिम और अनिहारिम दो भेद हैं। अनशन अंगीकार करके उस स्थान से बाहर जाये, तो नीहारिम और बाहर न निकले वहीं पड़ा रहे, तो अनिहारिम। ये चारों भेद यावज्जीव अनशन के हैं।

और, इत्वरिक अनशन सर्व प्रकार से और देश से दो प्रकार के होते हैं। चारों प्रकार के आहार का त्याग (चउविहार) उपवास, छठ्ठ, अट्ठम आदि सर्व प्रकार के हैं और नम्मुक्कार सहित, पोरसी आदि देश से हैं।[1]

(२) उणोदरीतप

उणोदरीतप—भर पेट भोजन न करना उणोदर-तप है। यह पाँच प्रकार का कहा गया है। उत्तराध्ययन की गाथा है :—

ओमोयरणं पंचहा, समासेण वियाहियं।
दव्वओ खेत्तकालेणं, भावेणं पज्जवेहि य ॥ १४ ॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और पर्यायों की दृष्टि से उनोदरी-तप के पाँच भेद कहे गये हैं।

(अ) **द्रव्य उनोदरी-तप**—जितना आहार है, उसमें से कम-से-कम एक कवल खाना कम करना द्रव्य उनोदरी तप है। उत्तराध्ययन में इसके सम्बन्ध में गाथा आती है:—

जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे।
जहन्नेणेगसित्थाई, एवं दव्वेण ऊ भवे ॥ १५ ॥

भोजन के परिमाण के सम्बन्ध में पिंडनिर्युक्ति में गाथा आती है:—

---

१. विशेष विस्तृत विवरण के लिए देखें नवतत्त्व सुमंगला टीका सहित, पत्र १०७-८

बत्तीसं किर कवला आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ।
पुरिसस्स महिलियाए अट्ठावीसं भवे कवला ॥ ६४२।

—पत्र १७३-१

—बत्तीस कवल से पुरुष का और अट्ठाइस कवल से नारी का आहार पूरा होता है।

'कवल' का परिणाम बताते हुए प्रवचनसारोद्धार सटीक (भाग १, पत्र ४५-२) में कहा गया है—

कुर्कुटाण्डक प्रमाणो वक्त्रोऽशन पिण्डः

आवश्यक की टीका में मलयगिरि ने लिखा है—

द्विसाहस्रिकेण तण्डुलेन कवलो भवति।

—राजेन्द्राभिधान, भाग ३, पृष्ठ ३८९।

पुरुष की उनोदरिका ९, १२, १६, २४ और ३१ पाँच प्रकार की तथा स्त्री की उनोदरिका ४–८–१२–२०–२७ पाँच प्रकार की होती है।[1]

(आ) क्षेत्र-सम्बंधी उनोदरी तप—

ग्राम, नगर, राजधानी और निगम में; आकर, पल्ली, खेटक और कर्वट में, द्रोणमुख, पत्तन और संबाध में; आश्रमपद, विहार, सन्निवेश, समाज, घोष, स्थल, सेना, स्कंधकार, सार्थ, संवर्त और कोट में तथा घरों के समूह, रथ्या, और गृहों में, एतावन्मात्र क्षेत्र में भिक्षाचरण कल्पता है। आदि शब्द से अन्य गृहशाला आदि जानना चाहिए। इस प्रकार का तप क्षेत्र-सम्बन्धी उनोदरी-तप कहा गया है।[2]

क्षेत्र-सम्बंधी यह उनोदरीतप ६ प्रकार का कहा गया है। उत्तराध्ययन में गाथा आती है—

---

१. नवतत्व प्रकरण सार्थ पृष्ठ १२६।
२. उत्तराध्ययन, अध्ययन ३०, गा० १६–१८

पेडा य अद्धपेडा, गोमुत्तिपयंग वीहिया चेव।
संबुक्कावट्टायगंतुं, पच्छागया छट्ठा ॥ १९ ॥

(१) **पेटिका**[1] —सन्दूक—के आकार में (२) **अर्द्धपेटिका**[2] के आकार में (३) **गोमुत्रिका** के आकार में (४) **पतंगवीथिका**[3] के आकार में (५) **शंखावर्त**[4] के आकार में (६) **लम्बा गमन करके फिर लौटते हुए भिक्षाचरी करना**—ये ६ प्रकार के क्षेत्र-सम्बन्धी ऊनोदरी तप हैं। ।

(५) **काल-सम्बन्धी ऊनोदरी तप** की परिभाषा उत्तराध्ययन में निम्नलिखित प्रकार से बतायी गयी है—

दिवसस्स पोरुसीणं, चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो।
एवं चरमाणो खलु, कालोमाणं मुणेयव्वं ॥ २० ॥

—दिन के चार प्रहरों में से यावन्मात्र अभिग्रह-काल हो उसमें आहार के लिए जाना काल-सम्बन्धी ऊनोदरीतप है।

अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाए घासमेसंतो।
चउभागूणाए वा, एवं कालेण उ भवे ॥ २१ ॥

१—पेडा पेडिका इव चउकोणा
उत्तराध्ययन, शान्त्याचार्य की टीका, पत्र ६०५—२

अद्धपेडा इमीए चेव अद्धसंठीया घर परिवाडी—वही

२—पयंगविही अणिमया पयंगुड्डाणसरिसा—वही

३—'संबुक्का वट्ट' ति शम्बक—शङ्खस्तस्यावर्त्तः शम्बूकावर्त्तस्तद्वदावर्त्तो यस्यां सा शम्बूकावर्त्ता सा च द्विधा यतः सम्प्रदायः

अब्भिंतरसंबुक्का बाहिरसंबुक्का य, तत्थ अब्भंतरसंबुक्काए सखनाभिखेत्तोवमाए आगिइए अंतो आढवति बाहिरओ संणियट्टइ इयरीए विवज्जओ"—वही

—अथवा कुछ न्यून तीसरी पौरुषी में या चतुर्थ और पंचम भाग न्यून पौरुषी में भिक्षा लाने की प्रतिज्ञा करना भी काल-सम्बन्धी ऊनोदरी तप है।

भाव-सम्बन्धी उनोदरीतप के सम्बन्ध में उत्तराध्ययन में आता है—

इत्थी वा पुरिसो वा, अलंकिओ वा नलंकिओ वावि।
अन्नयरवयत्थो वा, अन्नयरेणं व वत्थेणं ॥२२॥
अन्नेव विसेसेणं, वण्णेणं भावमणुमुयंते उ।
एवं चरमाणो खलु, भावोमाणं मुणेयव्वं ॥२३॥

—स्त्री अथवा पुरुष, अलंकार से युक्त वा अलंकार रहित तथा किसी वय वाला और किसी अमुक वस्त्र से युक्त हो; अथवा किसी वर्ण या भाव से युक्त हो, इस प्रकार आचरण करता हुआ अर्थात् उक्त प्रकार के दाताओं से भिक्षा ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करनेवाला साधु भाव-उनोदरी तप करता है।

पर्याय-उनोदरीतप की परिभाषा उत्तराध्ययन में इस रूप में दी हुई है :—

दव्वे खेत्ते काले, भावम्मि य आहिया उ जे भावा।
एएहिं ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खु ॥२४॥

—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो वर्णन किया गया है, उन भावों से अवमौदार्य आचरण करनेवाले को पर्यवचरक-भिक्षु कहते हैं।

(३) वृत्तिसंक्षेप

वृत्ति-संक्षेप के सम्बन्ध में प्रवचनसारोद्धार सटीक में (पत्र ६५-२) कहा गया है—

'वित्तीसंखेवणं' ति वर्तते अनयेति वृत्तिः—भैक्ष्यं तस्याः संक्षेपणं—सङ्कोचः तच्च गोचराभिग्रह रूपम्, ते च गोचर विषया

अभिग्रहा अनेक रूपाः तद्यथा-द्रव्यतः, क्षेत्रतः कालतो भावतश्च...

इस तप के सम्बन्धमें उत्तराध्ययन में गाथा आती है—

अट्ठविहगोयरग्गं तु, तहा सत्तेव एसणा।
अभिग्गहा य जे अन्ने, भिक्खायरिय माहिया ॥२५॥

—आठ प्रकार की गोचरी तथा सात प्रकार की ऐषणाएँ और जो अन्य अभिग्रह हैं, ये सब भिक्षाचरी में कहे गये हैं। इन्हें भिक्षाचरीतप कहते हैं।

(४) रसपरित्यागतप

रसपरित्यागतप के सम्बन्धमें उत्तराध्ययन में गाथा आती है—

खीर दहि सप्पिमाई, पणीयं पाणभोयणं।
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रस विवज्जणं ॥२६॥

—दूध, दही, घृत और पकान्नादि पदार्थों तथा रसयुक्त अन्नपानादि पदार्थों के परित्याग को रसवर्जन-तप कहते हैं।

(५) कायक्लेशतप

कायक्लेश-नामक तप के सम्बन्ध में उत्तराध्ययन में गाथा है—

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।
उग्गा जहा धरिज्जंति, कायकिलेसं तमाहियं ॥२७॥

—जीव को सुख देनेवाले, उग्र वीरासनादि तथा स्थान[१] को धारण करना कायक्लेश तप है।

संलीनतातप

संलीनतातप के सम्बन्ध में पाठ आता है—

एगंतमणावाए, इत्थीपसुविवज्जिए।
सयणासण सेवणया, विवित्त सयणासणं ॥२८॥

१—स्थीयत एभिरिति स्थानानि—कायावस्थिति भेदा।
—उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य की टीका सहित, पत्र ६०७-२।

—एकान्त में अर्थात् जहाँ कोई न आता-जाता हो, ऐसे स्त्री-पशु और नपुंसक रहित स्थान में शयन-आसन करना, उसे विविक्त शयानासन अर्थात् संलीनतातप कहते हैं।

यह संलीनता चार प्रकार का है। उत्तराध्यन की टीका में आता है:—

इंदियकसाय जोगे, पडुच्च संलीणया मुणेयव्वा।
तह जा विवित्त चरिया पन्नत्ता वीयरागेहिं ॥[1]

(अ) **इन्द्रियसंलीनता**—अशुभ मार्ग में जानेवाली इन्द्रियों को संवर के द्वारा रोकना।

(आ) **कषायसंलीनता**—कषाय को रोकना।

(इ) **योगसंलीनता**—अशुभ योगों से दूर रहना।

(ई) **विविक्तचर्यासंलीनता**—स्त्री, पशु और नपुंसकवाले स्थान में न रहना[2]।

(६) प्रायश्चित

प्रायश्चित के सम्बन्ध में उत्तराध्ययन में आता है :—

आलोयणारिहाईयं, पायच्छित्तं तु दसविहं।
जं भिक्खू वहई सम्मं, पायच्छित्तं तमाहियं॥३१॥

—आलोचना के योग्य दस प्रकार से प्रायश्चित का वर्णन किया गया है, जिसका भिक्षु सेवन करता है। यह प्रायश्चित तप है।

प्रायश्चित के दस प्रकारों का उल्लेख ठाणांसूत्र में इस प्रकार दिया है—

दस विधे पायच्छित्ते प० तं०—१ आलोयणारिहे, २ पडिक्कमणारिहे, ३ तदुभयारिहे, ४ विवेगारिहे, ५ विउस्सग्गारिहे,

---

१—उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य की टीका, पत्र ६०८-१।
(वही) नेमिचन्द्र की टीका, पत्र ३४१-२
२—नवतत्त्वप्रकरणसार्थ पृष्ठ १२७,१२८, सुमंगला टीका पत्र १०६-२

६ तवारिहे, ७ छेयारिहे, ८ मूलरिहे, ९ अणवठप्पारिहे, १० पारंचियारिहे।

—ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा १०, उद्देशः ३, सूत्र ७३३ पत्र ४७४-१।

१—आलोचना-प्रायश्चित—गुरु आदि के समक्ष किये पाप का प्रकाश करना।

२—प्रतिक्रमण-प्रायश्चित—किये पाप की आवृत्ति न हो, इसलिए 'मिच्छामि दुक्कड़'[1] कहना।

३—मिश्र-प्रायश्चित—किया हुआ पाप गुरु के समक्ष कहना और 'मिच्छामि दुक्कड़' कहना।

४—विवेक-प्रायश्चित—अकल्पनीय अन्नपान आदिका विधिपूर्वक त्याग करना।

५—कायोत्सर्ग-प्रायश्चित—काया के व्यापार को बन्द करके ध्यान करना।

६—तपः-प्रायश्चित—किये हुए पाप के दण्ड-रूप में नीवी (प्रत्याख्यान विशेष) तप करना।

७—छेद-प्रायश्चित—महाव्रत के घात होने से अमुक प्रमाण में दीक्षाकाल कम करना।

८—मूल-प्रायश्चित—महा अपराध होने के कारण मूल से पुनः चारित्र ग्रहण करना।

९—अवस्थाप्य-प्रायश्चित—किये हुए अपराध का प्रायश्चित न करे तब तक महाव्रत उच्चरित न करना।

१०—पाराञ्चित-प्रायश्चित—साध्वी का शीलभंग करने के कारण,

१—मिथ्या दुष्कृतं।

अथवा राजा की रानी के साथ अनाचार करने से अथवा शासन के उपघातक पाप के दण्ड के रूप में १२ वर्षों तक गच्छ से बाहर निकल कर, वेष त्याग कर महाशासन प्रभावना करने के पश्चात् पुनः दीक्षा लेकर गच्छ में आना ।[1]

(८) विनयतप

विनयतप के सम्बन्ध में उत्तराध्ययन में पाठ हैः—

अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं तहेवासणदायणं ।
गुरुभत्तिभावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ ॥३२॥

गुरु आदि को अभ्युत्थान देना, हाथ जोड़ना, आसन देना, गुरु की भक्ति करना और अंतःकरण से उनकी सेवा करना विनय-तप है। नवतत्त्वप्रकरण सार्थ (मेहसाणा, पृष्ठ १३०) में ज्ञान, दर्शन, चरित्र, मन, वचन, काया और उपचार विनय के ७ प्रकार बताये गये हैं।

(९) वैयावृत्य

वैयावृत्य की परिभाषा उत्तराध्ययन में इस प्रकार दी हैः—

आयरियमाईए, वेयावच्चम्मि दसविहे ।
आसेवणं जहाथामं, वेयावच्चं तमाहियं ॥ ३३ ॥

वैयावृत्य के योग्य आचार्य आदि दस स्थानों की यथाशक्ति सेवा-भक्ति करना वैयावृत्यतप कहलाता है।

नवतत्त्वप्रकरण सार्थ (पृष्ठ १३०) में इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, स्थविर, ग्लान, शैक्ष, सधार्मिक, कुल गण, संघ इन दस का आहार, वस्त्र, वसति, औषध, पात्र, आज्ञापालन आदि से भक्ति बहुमान करना वैयावृत्य है।[2]

१—नवतत्त्वप्रकरण सार्थ, पृष्ठ १२९ ।

२—नवतत्त्वप्रकरण, सुमंगला टीका, पत्र ११२-१

(१०) स्वाध्यायतप

स्वाध्यायतप की विवेचना उत्तराध्ययन में इस रूप में की गयी है—

वायणा पुच्छणा चेव, तहेव परियट्टणा।
अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ पञ्चहा भवे ॥३४॥

(१) शास्त्र की वाचना (२) प्रश्नोत्तर करना (३) पढ़े हुए की अनुवृत्ति करना (४) अर्थ की अनुप्रेक्षा (चिंतन) करना (५) धर्मोपदेश यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय-तप है।

(११) ध्यानतप

उत्तराध्ययन में गाथा आती है—

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, झाएज्जा सुसमाहिए।
धम्मसुक्काइं झाणाइं, झाणं तं तु बुहा वए ॥ ३५ ॥

समाधि युक्त मुनि आर्त और रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म और शुक्ल ध्यान का चिन्तन करे। इसे विद्वान लोग ध्यान-तप कहते हैं।

नवतत्त्वप्रकरण सार्थ (पृष्ठ १२३) में शुभध्यान दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) धर्मध्यान (२) शुक्लध्यान। इनके अतिरिक्त ४ प्रकार के आर्तध्यान और ४ प्रकार के रौद्रध्यान हैं। ये संसार बढ़ाने वाले हैं। धर्म-ध्यान और शुक्लध्यान के भी ४-४ प्रकार हैं।

(१२) कायोत्सर्गतप

कायोत्सर्ग-तप की परिभाषा इस प्रकार की गयी है—

सयणासणठाणे वा, जे उ भिक्खू न वावरे।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ ॥ ३६ ॥

सोते-बैठते अथवा खड़े होते समय भिक्षु काया के अन्य व्यापारों को त्याग देता है। उसे कायोत्सर्ग-तप कहते हैं।

नवतत्त्व प्रकरण (सार्थ) में उसके दो भेद बताये गये हैं (पृष्ठ-१३३) १-द्रव्योत्सर्ग, २ भावोत्सर्ग। द्रव्योत्सर्ग के ४ और भावोत्सर्ग के ३ भेद हैं।

इनके विपरीत आचरण करना अतिचार है।

वीर्य के तीन अतिचार

प्रवचनसारोद्धार (सूत्र २७२, पत्र ६५-१) में वीर्य के ३ अतिचार इस प्रकार कहे गये हैं—

सम्म करणे वारस तवाइयारा तिगं तु विरिअस्स।
मण वय काया पावपउत्ता विरियतिग अइयारा॥

तपों को मन, वचन और काया से शुद्ध रूप से करना। उसमें कमी होना ये वीर्य के तीन अतिचार हैं।

सम्यकत्व के ५ अतिचार

सम्यक्त्व के ५ अतिचार प्रवचनसारोद्धार में (गाथा २७३ पत्र ६९-२) इस प्रकार कहे गये हैं—

संका कंखा य तहा वितिगिच्छा अन्नतित्थिय पसंसा।
परतित्थि ओवसेवणमइयारा पंच सम्मते॥

१-शंका-जीवादिक नवतत्त्व के विषय में संशय करना।

२-कंखा-अन्य दर्शनों से वीतराग के दर्शन की तुलना करना।

३-वितिगिच्छा-मति भ्रम होने से फल पर संदेह करना।

४—अन्य तीर्थिक की प्रशंसा करना।

५—अन्यतीर्थिक की सेवा करना।

—:o:—

आनन्द

वाणिज्य ग्राम[1]-नामक ग्राम में जितशत्रु[2]-नामक राजा राज्य करता था। उसी ग्राम में आनन्द नामक एक व्यक्ति रहता था। उवासगदसाओ में उसे 'गाहावई'[3] बताया गया है। इस 'गाहावई' के लिए हेमचन्द्राचार्य ने 'गृहपति' शब्द का प्रयोग किया है।[4] यह 'गाहावई' शब्द जैन-साहित्य में कितने ही स्थलों पर आया है। सूत्रकृतांगसूत्र में उसकी टीका की गयी है कि

गृहस्य पतिः गृहपतिः[5]

यह शब्द आचारांग में भी आया है, पर वहाँ केवल 'गृहपतिः'[6] टीका दी गयी है। उत्तराध्ययन अ० १ में उसका अर्थ 'ऋद्धिमद्विशेष' लिखा है।

१—यह वाणिज्यग्राम वैशाली (आधुनिक बसाढ़, जिला मुज्जफ्फर) के [नि]कट था। इसका आधुनिक नाम बनिया है। विशेष विवरण के लिए देखिए [ती]र्थंकर महावीर भाग १, पृष्ठ ७३, ९३ तथा उसमें दिया मानचित्र।

२—यह जितशत्रु श्रावक राजा था। राजाओं के प्रसंग में हमने उस पर [विस्तृ]त रूप से विचार किया है।

३—वाणियगामे आणन्दे नामं गाहावई

—उवासगदसाओ, (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) पृष्ठ ४

४—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ८, श्लोक २३७ पत्र १०७-१ तथा [यो]गशास्त्र सटीक, तृतीय प्रकाश, श्लोक ३, पत्र २७५—२

५—सूत्रकृतांगसटीक २।४, सूत्र ६४, पत्र ११०२

६—आचारांग सटीक २।१।१, पत्र ३०६—१

ठाणांग में जहाँ चक्रवर्ती के १४ रत्न[1] गिनाये गये हैं, वहाँ एक रत्न 'गाहावईरयण' दिया है। उसकी टीका करते हुए टीकाकार ने लिखा है—'कोष्ठागारनियुक्तः'[2]। ये चौदह रत्न जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भी गिनाये गये हैं पर वहाँ टीकाकार 'गाहावई' शब्द की टीका ही नहीं दी है।[3]

चक्रवर्ती के रत्नों का प्रसंग जिनभद्रगणि-रचित बृहत्संग्रहणी में भी आता है। वहाँ 'गाहावई' की टीका में उसके कर्त्तव्य आदि पर प्रकाश डाला गया है :—

गृहपतिः—चक्रवर्त्तिगृह समुचितेतिकर्तव्यतापरो यस्त मिस्रगुहायां खण्डप्रपात गुहायां च चक्रवर्तिनः समस्तस्यापि स्कन्धावारस्य सुखोत्तारयोग्यमुन्मग्नजलायां निमग्न जलायां वा नद्यां काष्ठमयं सेतुबन्धं करोति।[4]

इस प्रसंग को चन्द्रसूरि-प्रणीत संग्रहणी में इस प्रकार व्यक्त किया गया है :—

अन्नादिक के कोष्ठागार का अधिपति तथा चक्री-गृह का तथा सेना के लिए भोजन-वस्त्र-जलादि की चिंता करने वाला, पूरा करने वाला। सुलक्षण तथारूपवंत, दानशूर, स्वामिभक्त, पवित्रादि गुणवाला होता है। दिग्विजय आदि के प्रसंग में आवश्यकता पड़ने पर अनेक प्रकार के धान्य, शाक चर्मरत्न पर प्रातः बोता है और सन्ध्या समय काटता है ताकि सेना का सुखपूर्वक निर्वाह हो।[5]

१—ठाणांगसूत्र सटीक उत्तरार्द्ध ठाणा ७, उद्देसा ३, सूत्र ५५८ पत्र ३९८-१

२—ठाणांगसूत्र सटीक उत्तरार्द्ध पत्र ३९९-२। समवायांग के १४-वें समवाय में जहाँ रत्न गिनाये हैं (पत्र २७-१) वहाँ भी गहवई की टीका में 'कोष्टागारिकः' लिखा है।

३—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, पूर्व भाग, पत्र २७६-१

४—जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण-रचित बृहत्संग्रहणी श्री मलयगिरि की टीका सहित, पत्र ११८-२

५—बृहत्संग्रहणी गुजराती-अनुवाद के साथ (बड़ोदा) पृष्ठ ५१७।

बौद्ध-ग्रन्थों में चक्रवर्ती के ७ रत्न बताये गये हैं (१) चक्ररत्न (२) हस्तिरत्न (३) अश्वरत्न (४) मणिरत्न (५) स्त्रीरत्न (६) गृहपतिरत्न और (७) परिणायकरत्न[१]

दीघनिकाय में कथा आती है कि एक बार एक चक्रवर्ती अपने गृहपति को लेकर नौका में बैठकर गंगा नदी की बीच धारा में जब पहुँचा तो गृहपति की परीक्षा लेने के लिए उसने गृहपतिरत्न से कहा—"गृहपति मुझे सोने-चाँदी की आवश्यकता है।" गृहपति ने उत्तर दिया—"तो महाराज! नाव को किनारे पर ले चलें।" तब चक्रवर्ती ने कहा—"गृहपति मुझे सोने-चाँदी की यहीं आवश्यकता है।" तब गृहपति ने दोनों हाथों से जल को छू सोने-चाँदी भरे घड़े निकाल कर राजा से पूछा—"क्या यह पर्याप्त है। क्या आप इतने से संतुष्ट हैं?" चक्रवर्ती ने उत्तर दिया—"हाँ पर्याप्त है।[२]

बौद्ध-ग्रन्थों में ही अन्यत्र चक्रवर्ती के चार गुणों वाले प्रसंग में भी चक्रवर्ती के गृहपति-परिषद् का उल्लेख किया गया है।[३]

ऐसा ही उल्लेख चक्रवर्ती के रत्नों के प्रसंग में प्रवचनसारोद्धार में भी है। उसमें 'गाहावई' की टीका निम्नलिखित रूप में दी है :—

चक्रवर्तिगृह समुचितेति कर्तव्यतापरः शाल्यादि सर्वधान्यानां समस्त स्वादुसहकारादि फलानां सकल शाक विशेषाणां निष्पादकश्च[४]

त्रिषष्टिशलाकापुरुष में भरत चक्रवर्ती के दिग्विजय-यात्रा के प्रकरण में गृहपति का काम इस रूप में दिया है :—

१—दीघनिकाय, हिन्दी-अनुवाद, पृष्ठ १५३-१५४

२—दीघनिकाय, हिन्दी-अनुवाद, पृष्ठ १५४-१५५

३—दीघनिकाय, हिन्दी-अनुवाद पृष्ठ १४३

४—प्रवचनसारोद्धार सटीक द्वार २१२ पत्र ३५०-१

कर उसे ज्ञातृक्षत्रिय मान लिया है।[1] वह प्रसंग जिसकी ओर पटेल का ध्यान गया इस प्रकार है :—

मित्त जाव जेट्ठपुत्तं.....कोल्लाए संनिवेसे नायकुलंसि पोसहसालाए।[2]

यहाँ मित्त जाव जेट्ठपुत्तं का पूरा पाठ इस प्रकार लेना चाहिए :—

मित्तनाइ नियग संबन्धि परिजणं आमन्तेत्ता तं मित्तनाइ नियग संबंधि परिजणं विलेऊणं वत्थगंध मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता संमाणेत्ता तस्सेव मित्त.....जणस्य पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठवेत्ता।[3]

इस 'जाव' वाले पूरे पाठ का मेल पटेल ने कल्पसूत्र के उस पाठ से मिलाया जहाँ भगवान् महावीर के जन्मोत्सव में भोज का प्रसंग आया है। वहाँ पाठ है :—

........मित्त-नाइ-नियग-सयण संबंधि-परिजणं नायए खत्तिए......[4]

यहाँ अर्थ समझने में पटेल ने भूल यह की कि, पहले तो कल्पसूत्र में 'नायए' के साथ आये 'खत्तिए' की ओर उनका ध्यान नहीं गया और इस 'नाय' को उन्होंने उवासगदसाओं में 'मित्त जाव जेट्ठपुत्तं' में जोड़ लिया और दूसरी भूल यह कि उवासगदसाओ में जो 'नायकुलंसि' शब्द है, वह 'पोसहसाला' के मालिक होने का द्योतक है, इस ओर उन्होंने विचार नहीं किया।

उवासगदसाओ में कोल्लाग में उसके सम्बन्धियों में होने का जो मूल पाठ है वह इस प्रकार है:—

१—श्रीमहावीर कथा, पृष्ठ २८६

२—उवासगदसाओ (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) पढम अज्झयणं पृष्ठ १५

३—वही (वर्णकादिविस्तार) पृष्ठ १२६-१३०

४—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका सहित पत्र २५०-२५१

तत्थ णं कोल्लाए संनिवेसे आणन्दस्स गाहावइस्स बहुए मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणे परिवसई…[1]

उस आनंद के पास ४ करोड़ हिरण्य[2] निधान में था, ४ करोड़ हिरण्य वृद्धि पर दिया था तथा चार करोड़ हिरण्य के प्रविस्तार[3] थे। इनके अतिरिक्त उसके पास ४ व्रज थे। हर व्रज में १० हजार गौएं थीं।[4]

उसकी इस सम्पत्ति की ओर ही लक्ष्य करके ठाणांग की टीका में उसके लिए 'महर्द्धिक'[5] लिखा है।

यह आनंद अपने नगर का बड़ा विश्वस्त व्यक्ति था। राइसर से लेकर सार्थवाह[6] तक सभी उससे बहुत-से कार्यों में, कारणों में, मंत्रणाओं में, कुटुम्बों में, गुह्य बातों में, रहस्यों में, निश्चयों में, और व्यवहारों में, परामर्श लिया करते थे। वह आनंद ही अपने परिवार का आधार-स्तम्भ था।

उस आनन्द को शिवानंदा-नाम की भार्या थी। वह अत्यन्त रूप

१—उवासगदसाओ (वैद्य-सम्पादित) सूत्र ८, पृष्ठ ४।

२—'हिरण्य' शब्द पर हमने तीर्थङ्कर महावीर, भाग १ में पृष्ठ १८०-१८१ विचार किया है।

३—मूल शब्द यहाँ पवित्थर है। इसकी टीका करते हुए टीकाकार ने लिखा है:—

धनधान्य द्विपदचतुष्पदादिविभूति विस्तरः….

—गोरे-सम्पादित उवासगदसाओ, पृष्ठ १५२।

४—उवासगदसाओ (वैद्य-सम्पादित) सूत्र ४, पृष्ठ ४।

५—ठाणांग, सटीक, पत्र ५०६–१।

६—पूरा पाठ इस प्रकार है:—

राईसर तलवर माडम्बिय कोडम्बिय सेट्ठि सत्थवाह….

—उवासगदसाओ (वैद्य सम्पादित) अ० १ सूत्र १२, पृष्ठ ५

वाली थी[1] और पति-भक्ता थी। आनन्द गृहपति के साथ वह पाँच प्रकार के काम भोगों[2] को भोगती हुयी सुख पूर्वक जीवन बिता रही थी।

उस वाणिज्य ग्राम के उत्तर-पूर्व दिशा में कोल्लाग-नामक सन्निवेश था। वह सन्निवेश बड़ा समृद्ध था। उस कोल्लाग-सन्निवेश में भी आनन्द के बहुत- से मित्र, सम्बन्धी, आदि रहते थे।

भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम में विहार करते हुए, एक बार वाणिज्य ग्राम आये। वहाँ समवसरण हुआ और जितशत्रु राजा उस समवसरण में गया।[3]

भगवान् के आने की बात जब आनन्द को ज्ञात हुई तो महाफल जानकर उसने भगवान् के निकट जाने और उनकी वंदना करने का निश्चय किया।[4] अतः उसने स्नान किया, शुद्ध वस्त्र पहने, आभूषण पहने और

१—अहीण पडिपुण्ण पञ्चिन्दिय सरीरा लक्खण वञ्जण गुणोववेया माणुम्माण पमाण पडिपुण्ण सुजाय सव्वङ्गसुन्दङ्गी ससिसोमाकारकंत पिय दंसणा सुरूवा। —औपपातिकसूत्र सटीक, सूत्र ७, पत्र २३

२—पाँच प्रकार के कामगुण ठाणांगसूत्र में इस प्रकार बताये गये हैं:—

पंच कामगुणा पं० तं०—सद्दा रूवा गंधा रसा फासा

—ठाणांगसूत्र, ठाणा ५, उद्देसा १, सूत्र ३९०, पत्र २९१-२

ऐसा ही उल्लेख समवायांग में भी है। देखिये समवाय सटीक, सूत्र ५, पत्र १०-१।

३. जितशत्रु राजा के समवसरण में जाने और वंदना करने का उल्लेख हमने राजाओं के प्रकरण दे दिया है।

४. यह आनन्द भगवान् से छद्मावस्था में भी मिल चुका था। १०-वें वर्षावास के समय जब भगवान् वाणिज्यग्राम आये थे तो उस समय आनन्द उससे मिला था और उसी ने भगवान् को सूचित किया था कि निकट भविष्य में भगवान् को केवलज्ञान की प्राप्ति होने वाली है (देखिये तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ २१९) उसे अवधिज्ञान था। आवश्यकचूर्णि में उल्लेख है:—

तत्थ आणंदो नाम समणो वासणो छट्ठं छट्ठेणं
आतावेति तस्स य ओहिन्नाणं उप्पन्नं—

—आवश्यक चूर्णि, भाग १, पत्र ३००।

तद्रूप ही निर्युक्ति में भी एक गाथा है।

अपने घर से निकल कर वाणिज्य ग्राम के मध्य में से पैदल चला। उसके साथ बहुत-से आदमी थे। कोरंट की माला से उसका छत्र सुशोभित था। वह दुइपलास चैत्य में पहुँचा, जहाँ भगवान् महावीर ठहरे हुए थे। बायें से दायें उसने तीन बार भगवान् की परिक्रमा की और उनकी वंदना की।

भगवान् ने आनंद को और वहाँ उपस्थित जन समुदाय को धर्म का उपदेश दिया। उपदेश सुनकर जनता और राजा अपने-अपने घर वापस चले गये।

आनन्द भगवान् के उपदेश को सुनकर बड़ा संतुष्ट और प्रसन्न हुआ और उसने भगवान् से कहा—"भन्ते! मैं निर्ग्रंथ प्रवचन में विश्वास करता हूँ। निर्ग्रंथ प्रवचन से सन्तुष्ट हूँ। निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है। वह मिथ्या नहीं है। पर मैं उसे मैं साधु होने में असमर्थ हूँ। मैं १२ गृहि-धर्म—५ [1]अणुव्रत और ७ शिक्षाएँ—स्वीकार करने को तैयार हूँ। हे देवानुप्रिय आप इसमें प्रतिबंध न करें।"

---

१. श्रावकों के लिए ५ अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत बताये गये हैं।

पंचाणुव्वतिते सत्तसिक्खावतितो दुवालसविधे सावगधम्मे।

—ठाणांगसूत्र सटीक ठाणा ९, उद्देशा ३, सूत्र ६९३, पत्र ४६०।२

ठाणांगसूत्र में ५ अणुव्रत इस प्रकार बताए गये हैं:—

पंचाणुव्वता पं० तं०—थूलातो पाणाइवायातो वेरमणं थूलातो मुसावायातो वेरमणं थूलातो अदिन्नादाणातो वेरमणं सदार संतोसे इच्छा परिमाणे।

—ठाणांगसूत्र सटीक ठाणा ५, उद्देशा १, सूत्र ३८९, पत्र २९०।१।

इसी प्रकार व्रतों का उल्लेख नायाधम्मकहा में भी है।

उस आनन्द ने भगवान् महावीर के सामने स्थूलप्राणातिपाति प्रत्याख्यान किया और कहा—"मैं जीवन पर्यन्त द्विविध और त्रिविध मन-वचन और काया से स्थूलप्रणातिपात (हिंसा) न करूँगा और न कराऊँगा।"

उसके बाद उसने मृषावाद का प्रत्याख्यान किया और कहा—"मैं यावज्जीवन द्विविध-त्रिविध मन-वचन-काया से स्थूल मृषावाद का आचरण न करूँगा और न कराऊँगा।

उसके बाद स्थूल अदत्तदान का प्रत्याख्यान किया और कहा—"मैं यावज्जीवन द्विविध-त्रिविध मन-वचन-काया से न करूँगा और न कराऊँगा।

उसके बाद स्वपत्नी संतोष परिमाण किया और कहा—"एक शिवानन्दा पत्नी को छोड़कर शेष सभी नारियों के साथ मैथुन-विधि का मन-वचन काया से प्रत्याख्यान करता हूँ।

उसके बाद इच्छा का परिणाम करते हुए उसने हिरण्य तथा सुवर्ण का परिणाम किया और कहा—"चार हिरण्य कोटि निधि में, चार हिरण्य कोटि वृद्धि में और चार हिरण्यकोटि धनधान्धादि के विस्तार में लगा है। उसके सिवा शेष हिरण्य-सुवर्ण विधि का त्याग करता हूँ।

उसके बाद चतुष्पद-विधि का परिमाण किया और कहा—"दस हजार गायों का एक व्रज, ऐसे चार व्रज के सिवा बाकी चतुष्पदों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

फिर उसने क्षेत्र-रूप वस्तु का परिमाण किया और कहा—"केवल

पृष्ठ ४२९ पाद टिप्पणि का शेषांश।

वहाँ टीकाकार ने लिखा है—"अत्र त्रयाणां गुणव्रतानां शिक्षाव्रतेषु गणनात् सप्त शिक्षाव्रतानीत्युक्तम्"—तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत में मिला देने से शिक्षाव्रत सात हो जायगा।

५०० हल हल पीछे १०० नियट्टण (निवर्तन)[1]—इतनी भूमि को छोड़कर शेष भूमि का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

फिर शकटों का परिमाण किया—"बाहर देशान्तर में जाने योग्य ५०० शकट और ५०० संवाहनिक शकट को छोड़कर शेष शकटों का प्रत्याख्यान करता हूँ।

उसने फिर वाहनों का प्रत्याख्यान किया और कहा—"देशान्तर में भेजे जाने योग्य चार वाहन और संवाहनिक चार वाहनों को छोड़कर शेष का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

फिर उपभोग-परिभोग विधि का प्रत्याख्यान किया और कहा—"एक गंधकासाई[2] (गंधकाषायी) को छोड़कर शेष सभी उल्लणिया (जलरूपण वस्त्र—स्नानधारी) का प्रत्यख्यान करता हूँ।

१—इसकी टीका टीकाकार ने इस प्रकार की है—भूमि-परिमाण विशेषो, देश विशेष प्रसिद्धः। 'निवर्तन' शब्द का अर्थ मोन्योर-मोन्योर विलियम्स संस्कृत डिक्शनरी में दिया है—२० राड या २०० क्यूबिट अथवा ४०००० वर्ग हस्त परिमाण का भूमि का माप [पृष्ठ ५६०] घासीलाल ने उवासगदसाओ के अनुवाद में इसका अर्थ बीघा किया है [पृष्ठ २७१] और डा० जगदीशचन्द्र जैन ने 'लाइफ इन ऐंशेंट इंडिया' [पृष्ठ ९०] में उसका अर्थ एकड़ कर दिया। यह दोनों ही भ्रामक हैं।

बौधायन-धर्मसूत्र (चौखम्भा संस्कृत सीरीज) में पृष्ठ २२१ पर निवर्तन शब्द आया है। मत्स्यपुराण (आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना) में निवर्तन के सम्बन्ध में लिखा है—

दंडेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम्

—अध्याय २८४, श्लोक १३, पृष्ठ ५६६

हेमाद्रि-रचित चतुर्वर्ग चिंतामणि (दान-खंड, भरतचन्द्र शिरोमणि-सम्पादित, एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, कलकत्ता, सन् १८७३) में इस सम्बन्ध में मारकण्डेय-पुराण का भी एक उद्धरण दिया है :—

दशहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दंडा निवर्तनम् ।
दश तान्येव गोचर्म्म ब्राह्मणेभ्यो ददातियः ॥

२—गन्धप्रधाना कषायेण रक्ता शाटिका गन्धकाषायी तस्याः

—उवासगदसाओ सटीक, पत्र ४-२

फिर दातुन-विधि का परिमाण किया और कहा—एक आर्द्र यष्टि-मधु (मधुयष्टि) को छोड़कर शेष सभी दातूनों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

फिर फल-विधि का परिणाम किया और कहा—"एक क्षीरामलक[१] फल को छोड़कर शेष सभी फलों का परित्याग करता हूँ।"

फिर अभ्यंग-विधि का परिमाण किया और कहा—'शतपाक और सहस्रापाक तेल को छोड़कर शेष अभ्यंगविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

फिर उद्वर्तनाविधि (उबटन) का परिमाण किया और कहा—"सुगंधि गंधचूर्ण के सिवा अन्य उद्वर्तन विधि का त्याग करता हूँ।

उसके बाद उसने स्नान-विधि का परिमाण किया और कहा—"आठ औष्ट्रिक (घड़ा) पानी के सिवा अधिक पानी से स्नान का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

फिर उसने वस्त्र-विधि का परिमाण किया और कहा—"एक क्षौम युगुल को छोड़ कर शेष सभी वस्त्रों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

उसके बाद उसने विलेपन-विधि का परिमाण किया और कहा—"अगर, कुंकुम, चंदन आदि को छोड़ कर मैं शेष सभी का प्रत्याख्यान करता हूँ।

फिर उसने पुष्प-विधि का परिमाण किया और कहा—"एक शुद्ध पद्म और मालती की माला छोड़ कर मैं शेष पुष्प-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

उसने आभरण-विधि का परिमाण किया—"एक कार्णेयक (कान का आभूषण) और नाम-मुद्रिका को छोड़कर शेष अलंकारों का त्याग करता हूँ।"

१—अबद्धास्थिकं क्षीरमिव मधुरं वा यदामलकं तस्मादन्यत्र (मीठा आमला) —उवासगदसाओ सटीक, पत्र ४-२

उसने धूप-विधि का परिमाण किया और कहा—"अगरु, तुरुक्क धूपादि को छोड़कर शेप सभी धूप-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

उसने भोजन-विधि का परिमाग करके पेयविधि का परिमाण किया और कहा—"काष्टपेया[1] को छोड़कर शेप सभी पेयविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

उसने भक्ष्य-विधि का परिमाग किया और कहा—"घयपुण्ण और खण्डखज्ज को छोड़कर अन्य भक्ष्य-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ ।"

उसने ओदन-विधि का परिमाण किया और कहा—"कलम शालि को छोड़कर मैं अन्य सभी ओदनविधि का परित्याग करता हूँ ।"

उसने सूप-विधि का परिमाण किया और कहा—"कलाय-सूप और मूँग-माप के सूप को छोड़कर शेप सभी सूपों का प्रत्याख्यान करता हूँ ।"

उसने-घृत विधि का प्रत्याख्यान किया और कहा—"शरद ऋतु के घी को छोड़कर शेप सभी घृतों का प्रत्याख्यान करता हूँ ।"

उसने शाक-विधि का प्रत्याख्यान किया—'चच्चू, सुत्थिय तथा मंडुक्किय शाक को छोड़कर शेप शाकों का प्रत्याख्यान करता हूँ ।"

उसने माधुरक-विधि परिमाण किया—"पालंगामाधुरक को छोड़कर शेप सभी माधुरक-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ ।"

उसने भोजन-विधि का परिमाण किया—"सेधाम्ल और दालिकाम्ल को छोड़कर शेप सभी जेमन-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ ।"

उसने पानी विधि का परिमाण किया—"एक अंतरिक्षोदक पानी को छोड़कर शेप सभी पानी का परित्याग करता हूँ ।"

१—कट्ठपेज्जत्ति मुद्गादि यूपो घृततलित तण्डुलपेया वा ।

—उवासगदसाओ सटीक, पत्र ५-१

उसने मुखवास-विधि का परिमाण किया और कहा—"पंचसौगंधिक[1] ताम्बूल छोड़कर शेष सभी मुखवास विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

उसने चार प्रकार के अनर्थदंड का प्रत्याख्यान किया। वे अनर्थदंड हैं—१ अपध्यानाचरित, २ प्रमादाचरित ३ हिंस्रप्रदान ४ पाप कर्म का उपदेश।

फिर, भगवान् महावीर ने आनन्द श्रावक से कहा—"हे आनंद जो जीवाजीव तत्त्व का जानकार है और जो अपनी मर्यादा में रहने वाला श्रमणोपासक है, उसे अतिचारों को जानना चाहिए; पर उनके अनुरूप आचरण नहीं करना चाहिए। इस प्रकार भगवान् ने अतिचार बताये, हम उन सब का उल्लेख पहले श्रावक-धर्म के प्रसंग (पृष्ठ ३७४-४२१) में कर चुके हैं।

इसके बाद आनंद श्रावक ने भगवान् के पास ५ अणुव्रत और ७ शिक्षाव्रत श्रावकों के १२ व्रत ग्रहण किये और कहा—

"हे भगवान्! राजाभियोग, गणाभियोग, बलाभियोग, देवताभियोग गुरुनिग्रह और वृत्तिकांतार[2] इन ६ प्रसंगों के अतिरिक्त आज से अन्य-

---

१—एला लवङ्ग कर्पूर कक्कोल जातीफल लक्षणैः सुगन्धिभिर्द्रव्यैर-भिसंस्कृतं पंचसौगन्धिकर।

—उवासगदसाओ सटीक, पत्र ५-१

२—'नन्नत्थ रायाभिओगेणं' ति न इति—न कल्पते योऽयं निषेधः सोऽन्यत्र राजाभियोगात् तृतीयायाः पञ्चम्यर्थत्वात् राजाभियोगं वर्जयित्वेत्यर्थः। राजाभियोगस्तु—राजपरतन्त्रता गणः—समुदायस्तदभियोगः गणाभियोगस्तस्माद्बलाभियोगो नाम राजगणव्यतिरिक्तस्य बलवतः पारतंत्र्य, देवताभियोगो—देवपरतन्त्रता, गुरुनिग्रहो—माता पितृ पारवश्यं, गुरूणां वा चैत्य साधूनां निग्रहः—प्रत्यनीक कृतोपद्रवो गुरुनिग्रहस्तत्रोपस्थिते तद्रक्षार्थं अन्ययूथिकादिभ्यो ददपि नाति क्रामति सम्यक्त्वामिति, 'वित्तिकांतारेणं' ति वृत्तिः जीविका तस्याः कान्तारं अरण्यं

तीर्थिकों का और अन्यतीर्थिकों के देवताओं का और अन्यतीर्थिकों को स्वीकृत अरिहंत-चैत्य (प्रतिमा) का वंदन-नमन नहीं करूँगा।

यहाँ 'चैत्य' शब्द आया है। हमने भगवान् के ३१-वें वर्षावास वाले प्रसंग में (पृष्ठ २२५) और इस अध्याय के अन्त में (पृष्ठ ४४२) 'चैत्य' शब्द पर विशेष विचार किया है।

"पहिले उनके बिना बोले उनके साथ बोलना या पुनः-पुनः वार्तालाप करना; उन्हें गुरु-बुद्धि से अशन, पान, खादिम, स्वादिम देना मुझे नहीं कल्पता।"

"राजा के अभियोग से, गण के अभियोग से, बलवान के अभियोग से, देवता के अभियोग से, गुरु आदि के निग्रह (परवशता) से और वृत्तिकान्तार से (इन कारणों के होने पर ही) देना कल्पता है।"

"निर्गन्थ-श्रमणों को प्रासुक एषणीय, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, कम्बल, प्रतिग्रह (पात्र), पाद-पोंछन, पीठ, फलक, शय्या, संस्तार, औषध, भैषज, प्रतिलाभ कराते हुए विचरना मुझे कल्पता है।"

इस प्रकार कहकर उसने इसका अभिग्रह लिया, फिर प्रश्न पूछे, प्रश्न पूछकर अर्थ को ग्रहण किया, फिर श्रमण भगवान् की तीन बार वन्दना की।

वंदन करने के बाद श्रमण भगवान् महावीर के समीप से दूतिपलाश चैत्य के बाहर निकला, निकल कर जहाँ वाणिज्यग्राम नगर और जहाँ उसका घर था, वहाँ आया। आकर अपनी पत्नी शिवानन्दा से इस प्रकार

पृष्ठ ४३४ पाद टिप्पणि का शेषांश।

तदिव कान्तारं क्षेत्रं कालो वा वृत्तिकान्तारं निर्वाहमभाव इत्यर्थः तस्मादन्यत्र निषेधो दान प्रदानादेरिति प्रकृतिमिति

कीर्तिविजय उपाध्याय-रचित विचाररत्नाकर पत्र ६६-२। उपासकदशांग सटीक पत्र १३-२ तथा उपासकदशांग (मूल और टीका के गुजराती अनुवाद-सहित) पत्र ४४-२ में इसे अधिक स्पष्ट किया गया है।

कहने लगा—"हे देवानुप्रिये ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के समीप धर्म सुना और वह धर्म मुझे इष्ट है। वह मुझे बहुत रुचा है। हे देवानुप्रिये ! इसलिए तुम भी जाओ। श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करो यावत् पर्युपासना करो और श्रमण भगवान् महावीर से पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह गृहस्थ-धर्म स्वीकार करो।"

आनंद श्रावक का कथन सुनकर उसकी भार्या शिवानन्दा हृष्ट-तुष्ट हुई। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर शीघ्र व्यवस्था करने के लिए आदेश दिया।[1]

शिवानन्दा भगवान् के निकट गयी। भगवान् महावीर ने बड़ी परिषदा में यावत् धर्म का कथन किया। शिवानंदा श्रमण भगवान् महावीर के समीप धर्म श्रवण करके और हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुई। उसने भी गृहस्थ-धर्म को स्वीकार किया। फिर, वह घर वापस लौटी।

उसके बाद गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"हे भगवन् ! क्या आनंद श्रावक आप के समीप प्रव्रजित होने में समर्थ है ?"

इस पर भगवान् ने उत्तर दिया—"हे गौतम ! ऐसा नहीं है, आनन्द श्रावक बहुत वर्षों पर्यन्त श्रावकपन पालन करेगा। और, पालन करके सौधर्मकल्प के अरुणाभ-विमान में देवता-रूप से उत्पन्न होगा। वहाँ देवताओं की स्थिति चार पल्योपम कही गयी है। तदनुसार आनंद श्रावक की भी चार पल्योपम की स्थिति वहाँ होगी।

आनंद श्रावक जीव-अजीव को जानने वाला यावत् प्रतिलाभ करता हुआ रहता था। उसकी भार्या शिवानंदा भी श्राविका होकर जीव-अजीव को जानने वाली यावत् प्रतिलाभ (दान) करती हुई रहती

१—खिप्पामेव' 'पज्जुवासइ वाला पूरा पाठ उपासक दशांग सटीक, अ० ७, पत्र ४३-१ से ४३-२ तक में है। 'भगवान् महावीर का दश उपासको' में बेचरदास ने उक्त अंश को पूरा-का-पूरा छोड़ दिया है। हमने भी ७ वें श्रावक के प्रसंग में उसका सविस्तार वर्णन किया है। (देखिए पृष्ठ ४७६)

थी। आनंद श्रावक को अनेक प्रकार शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पोपधोपवास से आत्मा को संस्कार युक्त करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। पन्द्रहवाँ वर्ष जब चल रहा था, तो एक समय पूर्व रात्रि के अपर समय में (उत्तरार्द्ध में) धर्म का अनुष्ठान करते-करते इस प्रकार का मानसिक संकल्प आत्मा के विषय में उत्पन्न हुआ—"मैं वाणिज्यग्राम नगर में बहुतों का; राजा, ईश्वर यावत् आत्मीय जनों का आधार हूँ। इस व्यग्रता के कारण मैं श्रमण भगवान् महावीर के समीप की धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। इसलिए यह अच्छा होगा कि, सूर्योदय होने पर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य सगे-सम्बन्धी आदि को जिमा कर पूरण श्रावक की तरह यावत् ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करके मित्रों यावत् ज्येष्ठ पुत्र से पूछकर कोल्लागसन्निवेश में ज्ञातकुल की पोपधशाला का प्रतिलेखन कर श्रमण भगवान् महावीर के समीप की धर्म-प्रज्ञप्ति स्वीकार करके विचरूँ !" उसने ऐसा विचार किया, विचार करके दूसरे दिन मित्र आदि को विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य जिमाने के बाद पुष्प, वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से उनका सत्कार-सम्मान किया।

उसके बाद उसने अपने पुत्र को बुलाकर कहा—"हे पुत्र! मैं वाणिज्य ग्राम नगर में बहुत से राजा ईश्वर आदि का आधार हूँ। मैं अब कुटुम्ब का भार तुम्हें देकर विचरना चाहता हूँ। आनन्द श्रावक के पुत्र ने अपने पिता का वचन स्वीकार कर लिया। आनंद श्रावक ने पूरण के समान[1] अपने पुत्र को कार्यभार सौंप दिया और कहा कि भविष्य में मुझसे किसी सम्बन्ध में बात न पूछना।

१—'जहा पूरणो' ति भगवत्यभिहितो बाल तपस्वी स यथा स्वस्थाने पुत्रादि स्थापनम करोत्तथाऽयं कृतवानित्यर्थ :—

—कीर्तिविजय-रचित विचाररत्नाकर, पत्र ७०-२

यह कथा भगवतीसूत्र सटीक शतक ३, उद्देशा २, सूत्र १४३, पत्र ३०४-३०५ में आती है।

तदनन्तर आनन्द श्रावक सबसे आज्ञा लेकर घर से निकला अं
कोल्लाग सन्निवेश में पोषधशाला में गया । पहुँचकर पोषधशाला
पूँजा, पूँज कर उच्चार प्रस्रवण भूमि (पेशाब करने की भूमि की अं
शौच जाने की भूमि की) की पडिलेहणा की । पडिलेहणा करके दर्भ
संथारे को बिछाया । फिर दर्भ के संथारे पर बैठा । वहाँ वह भग
महावीर के पास की धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार कर विचरने लगा ।

फिर आनन्द श्रावक ने श्रावक की ११ प्रतिमाओं को स्वीकार वि
उसमें से पहली प्रतिमा को सूत्र के अनुसार, प्रतिमा-सम्बन्धी कल्प
अनुसार, मार्ग के अनुसार, तत्त्व के अनुसार, सम्यक् रूप से उसने
द्वारा ग्रहण किया तथा उपयोग पूर्वक रक्षण किया । अतिचारों का
करके विशुद्ध किया । प्रत्याख्यान का समय समाप्त होने पर भी, कुछ
तक स्थित रहकर पूरा किया । इस प्रकार आनन्द श्रावक ने ग्यारहों
माएँ स्वीकार कीं ।

इस प्रकार की तपस्याओं से वह सूख गया और उसकी न
दिखलायी पड़ने लगी ।

एक दिन धर्मजागरण करते-करते उसे यह विचार उत्पन्न हु
"मैं इस कर्तव्य से अस्थियों का पिंजर मात्र रह गया हूँ । तो भी
उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग
अतः जब तक ये उत्थान आदि मेरे में हैं, तब तक कल सूर्योदय होने
अपश्चिम मरणान्तिक संलेखना की जोषणा से जूषित होकर भक्तपान
प्रत्याख्यान करके मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विचरना ही मेरे f
श्रेयस्कर है ।"

पश्चात् आनन्द श्रावक को किसी समय शुभ अध्यवसाय से, शुभ परि-
णाम से और विशुद्ध होती हुई लेश्याओं से अवधिज्ञान को आवरण करने
वाले क्षयोपशम हो जाने से अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ और वह पूर्व दिशा
में लवण समुद्र के अन्दर पाँच सौ योजन क्षेत्र जानने और देखने लगा—इसी

प्रकार दक्षिण में और पश्चिम में। उत्तर में क्षुल्ल हिमवंत पर्वत को जानने और देखने लगा, उर्ध्व में सौधर्मकल्पतक जानने और देखने लगा। अधोदिशा में चौरासी हजार स्थिति वाले लोलुप[1] नरक तक जानने और देखने लगा।'

उस काल में और उस समय में भगवान् महावीर का समवसरण हुआ। परिषदा निकली। वह वापस चली गयी। उस काल, उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति सात हाथ की अवगाहना वाले, समचतुरंस संथान वाले, वज्रर्षभनाराच संघयण वाले सुवर्ण, पुलक, निकष और पद्म के समान गोरे, उग्रतपस्वी, दीप्त तपवाले, घोर तपवाले, महा तपस्वी, उदार, गुणवान, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचारी, उत्सृष्ट शरीर वाले अर्थात् शरीर संस्कार न करने वाले, संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या धारी षष्ठ षष्ठ भक्त के निरन्तर तपः-कर्म से, संयम से और अनशनादि बारह प्रकार की तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। तब गौतम स्वामी ने छट्ठ खमण के पारणे के दिन पहली पोरसी में स्वाध्याय किया दूसरी पोरसी में ध्यान किया और तीसरी पोरसी में धीरे-धीरे, अचपल रूप में, असम्भ्रान्त होकर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना

---

१. प्रज्ञापनासूत्र सटीक, पद २ सूत्र ४२, पत्र ७९-२ में नरकों की संख्या ७ बतायी गयी है। वहाँ पाठ आता हैः—

रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुकप्पभाए, पंकप्पभाए, धूमप्पभाए, तमप्पभाए, तमतमप्पभाए।

इसमें रयणप्पभा (रत्न प्रभा) में ६ नरकावास हैं। ठाणांग सूत्र में पाठ आता हैः—

जम्बूद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स य दाहिणेणं मिमीसे रतणप्पभाते पुढवीए छ अवकंत महानिरता पं० तं० लोले १, लोलुए २, उदड्ढे ३, निदड्ढे ४, जरते ५, पज्जरते ६।

—ठाणांगसूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध, ठा० ६, उ० ३, स० ५१५ पत्र ३६५-२।

'चैत्य' शब्द पर विचार

उवासगदसाओ में पाठ आता है—'अरिहंत चेइयाइं।' हार्नेल ने जो 'उवासगदसाओ' सम्पादित किया उसमें मूल में उन्होंने यह पाठ निकाल दिया। और, पादटिप्पणि में पाठान्तर-रूप से उसे दे दिया (पृष्ठ २३)। यद्यपि हार्नेल ने मूल पाठ से उक्त पाठ तो निकाल दिया, पर टीका में से निकालने की वह हिम्मत न कर सके और वहाँ उन्होंने टीका दी है-'चैत्यानि अर्हत्प्रतिमालक्षणानि (पृष्ठ २४)। मूल में से उन्होंने यह पाठ निकाला क्यों, इसका कारण उन्होंने अपने अंग्रेजी-अनुवाद वाले खंड की पाद-टिप्पणि में दिया है—उनका कहना है कि, यदि यह मूलग्रंथ का शब्द होता तो 'चेइयाणि' होता और तब 'परिग्गहियाणि' से उसका मेल बैठता। पर, यहाँ पाठ 'चेइयाणि' के बजाय 'चेइयं' है। इस कारण यह सन्देहास्पद है (पृष्ठ ३५)। पर, हार्नेल को यह ध्यान में रखना चाहिए था कि यह गद्य है, पद्य अथवा गाथा नहीं है कि तुक मिलना आवश्यक होता।

दूसरी बात यह कि, यद्यपि हार्नेल ने ८ प्रतियों से ग्रन्थ सम्पादित किया; पर सभी प्रतियाँ उनके पास सदा नहीं रहीं। और, सब का उपयोग हार्नेल पूरी पुस्तक में एक समान नहीं कर सके। इस कारण पाठ मिलाने में हार्नेल के स्रोतों में ही बड़ा वैभिन्न रहा। पर, यदि हार्नेल ने जरा भी गद्य-पद्य की ओर ध्यान दिया होता तो यह भूल न होती। जब टीका में हार्नेल ने इस पाठ का होना स्वीकार किया तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि टीकाकार के समय में यह पाठ मूल में था—नहीं तो वह टीका क्यों करते? और, टीकाकार के समय में यह पाठ था तो हार्नेल, को ऐसी कौन-सी प्रति मिली जो टीकाकार के काल से प्राचीन और प्रामाणिक हो। यह

पाठ औपपातिक में भी आता है। हार्नेल ने उस ग्रंथ से मिलाने का भी प्रयास नहीं किया।

हार्नेल ने जो यह पाठ निकाला तो अंग्रेजी पढ़े-लिखे जैन-साहित्य में काम करने वालों ने भी उनकी ही नकलमात्र करके पुस्तकें सम्पादित कर दीं और पाठ कैसा होना चाहिए इस पर विचार भी नहीं किया। पी० एल० वैद्य और एन्० ए० गोरे इसी अनुसरणवाद के शिकार हैं।

दूसरों की देखा-देखी बेचरदास ने भी 'भगवान् महावीर ना दश उपासकों' नामक उवासगदसाओ के गुजराती-अनुवाद में चेइयाइं वाला पाठ छोड़ दिया (पृष्ठ १४)।

'पुप्फभिक्खु' ने सुत्तागमे ४ भागों में प्रकाशित कराया। उसके चौथे भाग में उवासगदसाओ है। पृष्ठ ११३२ पर उन्होंने यह पाठ निकाल दिया है। पर, पुप्फभिक्खु हार्नेल के प्रभाव से परे थे। चैत्य का अर्थ मूर्ति है, और मूर्ति नाम जैनागम में आना ही न चाहिए, इसलिए उन्हें सर्वोत्तम यही लगा कि, जब पाठ ही न होगा तो लोग अर्थ क्या करेंगे। हमने अपने इसी ग्रंथ में पुप्फभिक्खु की ऐसी अनधिकार चेष्टाओं की ओर कुछ अन्य स्थलों पर भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। यहाँ हम बता दें कि उनके पूर्व के स्थानकवासी विद्वान भी उवासगदसाओ में इस पाठ का होना स्वीकार करते हैं—

(२) अर्द्धमागधी कोष, भाग २, पृष्ठ ७३८ में रतनचंद्र ने इस पाठ को स्वीकार किया है।

(३) घासीलाल जी ने भी 'चेइयाइं' वाला पाठ स्वीकार किया है (पृष्ठ ३३५)

पर, रतनचंद्र और घासीलाल जी ने चैत्य शब्द का अर्थ यहाँ साधु किया है।

'चैत्य' शब्द केवल जैनों का अकेला शब्द नहीं है। संस्कृत-साहित्य

में और पालि में भी इसके प्रयोग मिलते हैं। अतः उसके अर्थ में किसी प्रकार का हेर-फेर करना सम्भव नहीं है।

चैत्य-शब्द का प्रयोग किस रूप में प्राचीन साहित्य में हुआ है, अब हम यहाँ उसके कुछ उदाहरण देंगे।

धार्मिक साहित्य (संस्कृत)

वाल्मीकीय रामायण

(१) चैत्यं निकुंभिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति

—युद्धकाण्ड, सर्ग ८४, श्लोक १३, पृष्ठ २३८

इन्द्रजीत निकुंभिला देवी के मंदिर में यज्ञ करने बैठा है।

(शास्त्री नरहरि मग्नलाल शर्मा-कृत गुजराती-अनुवाद) भाग २, पृष्ठ १०९८।

(२) निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणिपालितम्

—युद्ध काण्ड, सर्ग ८५, श्लोक २९, पृष्ठ २४०

लक्ष्मण रावणपुत्र की रक्षा करने वाले निकुम्भिला के मन्दिर की ओर जा निकले।

—गुजराती-अनुवाद, पृष्ठ १०९९

इसी रूप में 'चैत्य' शब्द वाल्मीकीय रामायण में कितने ही स्थलों पर आया है। विस्तारभय से हम यहाँ सभी पाठ नहीं दे रहे हैं।

महाभारत

शुचिदेशयनड्वानं देवगोष्ठं चतुष्पथम्।
ब्राह्मणं धार्मिकं चैत्यं, नित्यं कुर्यात् प्रदक्षिणाम्॥

—शांतिपर्व, अ० १९३

आचार्य नीलकंठ ने 'चैत्य' की टीका देवमन्दिर की है।

वृद्धहारीतस्मृति

विम्बानि स्थापयेद् विष्णोर्ग्रामेषु नगरेषु च।
चैत्यान्यायतनान्यस्य रम्याण्येव तु कारयेत ॥
इतरेषां सुराणां च, वैदिकानां जनेश्वरः।
धर्मतः कारयेच्छश्वच्चैत्यान्यायतनानि तु ॥

इनके अतिरिक्त गृह्यसूत्रों में भी चैत्य शब्द आया है। आश्विलायन गृह्यसूत्र में पाठ है।

चैत्ययज्ञे प्राक् स्विष्टकृतश्चैत्याय वलिं हरेत

—अ० १ खं० १२ सू० १

इसकी टीका नारायणी-वृत्ति में इस प्रकार दी है :—

चैत्ये भवश्चैत्यः यदि कश्चिद्देवतायै प्रतिशृणोति। शंकरः पशुपतिः आर्या ज्येष्ठा इत्येवमादयो यद्यात्मनः अभिप्रेतं वस्तु लब्धं ततस्त्वामहमाज्येन स्थालिपाकेन पशुना वा यक्षामीति...

बौद्ध-साहित्य

बौद्ध-ग्रंथ ललितविस्तरा में आया है कि जिस स्थल पर छन्दक को बुद्ध ने आभरण आदि देकर वापस लौटाया था, वहाँ चैत्य बनाया गया। उस चैत्य को छन्दक-निवर्तन कहते हैं।

यत्र च प्रदेशे छन्दको निवृत्तस्तत्र चैत्यं स्थापितमभूत्। अद्यापि तच्चैत्यं छन्दकनिवर्तनामति ज्ञायते

—पृष्ठ १६३

पाली

इसी प्रकार जब बुद्ध ने अपना चूड़ामणि ऊपर फेंका तो वह योजन भर ऊपर जाकर आकाश में ठहर गया। शक्र ने उस पर चूड़ामणि-चैत्य की स्थापना की।

तावतिसंभवने चूळामणि चेतियं नाम पतिट्ठापेसि

—जातकट्ठकथा (पालि)-पृष्ठ ४९

बौद्ध-साहित्य में चैत्य शब्द का मूल अर्थ ही पूजा-स्थान है। बुद्धिस्ट-हाइब्रिड-संस्कृत-डिक्शनरी भाग २ में दिया है—सीम्स टु बी यूज्ड मोर ब्राडली दैन इन संस्कृत—एज एनी आब्जेक्ट आव वेनेरेशन (पृष्ठ २२३)

इतर साहित्य

कौटिल्य अर्थशास्त्र

(१) पर्वसु च वितर्दिच्छत्रोल्लोमिकाहस्तपताकाच्छागोपहारैः चैत्य पूजा कारयेत—कौटिल्य अर्थशास्त्र (मूल) पृष्ठ २१०।

(२) दैवत चैत्यं—वही, पृष्ठ २४४।

इसका अर्थ डाक्टर आर० श्यामा शास्त्री ने 'टेम्पुल' देवालय किया है (पृष्ठ २७३)।

(३) चैत्य दैवत्—वही, पृष्ठ ३७९।

इसका अर्थ डाक्टर शास्त्री ने 'आल्टर्स' लिखा है (पृष्ठ ४०८)

(४) प्रण्य पाश चैत्यमुपस्थाप्य दैवतप्रतिमाच्छिद्रं प्रविश्यासीत् (पृष्ठ ३९३)।

इस पाठ से अर्थ स्पष्ट है। इस प्रकार के कितने ही अन्य स्थलों पर चैत्य शब्द कौटिल्य-अर्थशास्त्र में आता है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि 'चैत्य' देवप्रतिमा अथवा देवमंदिर ही है। उसका अर्थ 'साधु' अथवा 'ज्ञान' ऐसा कुछ नहीं होता।

अब हम कोषों के भी कुछ अर्थ उद्धृत करेंगे।

(१) अनेकार्थसंग्रह में हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है:—

(३) चैत्य :—देवतरौ, देवावासे, जिनविम्बे, जिनसभातरौ, जिनसभायां देवस्थाने ।

—शब्दार्थचिंतामणि, भाग २, पृष्ठ १४४ ।

(४) चैत्यः—देवस्थाने ।

—शब्दस्तोम महानिधिः, पृष्ठ १६० ।

जैन-साहित्य में कितने ही ऐसे स्थल हैं, जहाँ इसका अर्थ किसी भी प्रकार अन्य रूप में लग ही नहीं सकता । एक पाठ है—

कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा

यह पाठ सूत्रकृतांग (बाबूवाला) पृष्ठ १०१४, ठाणांगसूत्र सटीक पूर्वार्द्ध पत्र १०८-२, १४२-२; भगवतीसूत्र (सटीक सानुवाद) भाग १, पृष्ठ २३२, ज्ञाताधर्मकथा सटीक, उत्तरार्द्ध पत्र २५२-२ में तथा औपपातिकसूत्र सटीक पत्र ८-२ आया है ।

अब इनकी टीकाएं किस प्रकार की गयी हैं, उनपर भी दृष्टि डाल लेना आवश्यक है ।

(१) **मंगलं देवतां चैत्यमिव पर्युपासते**

—दीपिका, सूत्रकृतांग बाबू वाला, पृष्ठ १०१४

(२) **चैत्यमिव—जिनादि प्रतिमेव चैत्य श्रमणं**

—ठाणांगसूत्र सटीक, पूर्वार्द्ध, पत्र १११-२

(३) **चैत्यम—इष्ट देवता प्रतिमा**—औपपातिक सटीक, पत्र १०-२

(४) बेचरदास ने भगवतीसूत्र और उसकी टीका को सम्पादित और अनूदित किया है । उसमें टीका के गुजराती-अनुवाद में बेचरदास ने लिखा है—"**चैत्यनी—इष्टदेवनी मूर्तिनी—पेठे**"

बेचरदास ने '**जैन साहित्य मां विकार थवाथी थयली हानि**' में कल्पना की है कि, 'चैत्य' शब्द चिता से बना है और इसका मूल अर्थ

देवमंदिर अथवा प्रतिमा नहीं; बल्कि चिता पर बना स्मारक है। पर, जहाँ तक 'चैत्य' शब्द के जैन-साहित्य में प्रयोग का प्रश्न है, वहाँ इस प्रकार की कल्पना लग नहीं सकती; क्योंकि जहाँ चिता पर निर्मित स्मारक का प्रसंग आया है, वहाँ **'मडय चेइयेसु'** शब्द का प्रयोग हुआ है। (आचारांग सटीक २, १०, १९ पत्र ३७८-१)। और, जहाँ घुमट-सा स्मारक बना होता है। उसके लिए 'मडयथूभियासु'[1] शब्द आया है। (आचारांग राजकोट वाला, पृष्ठ ३४३) स्पष्ट है कि, चैत्य का सर्वत्र अर्थ मृतक के अवशेष पर बना स्मारक करना सर्वथा असंगत है। बेचरदास का कहना है, कि टीकाकारों ने मूर्तिपरक जो अर्थ किया, वह वस्तुतः उनके काल का अर्थ था—मूल अर्थ नहीं। पर, ऐसा कहना भी बेचरदास की अनधिकार चेष्टा है। औपपातिकसूत्र में चैत्य का वर्णन है। औपपातिक आगम-ग्रन्थों में हैं और उस वर्णक को पढ़कर पाठक स्वयं यह निर्णय कर सकते हैं कि जैन-साहित्य में चैत्य से तात्पर्य किस वस्तु से है।

तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था, चिराइए पुव्वपुरिसपण्णत्ते पोराणे सद्दिए कित्तिए णाए सच्छत्ते सज्झए सघंटे सपड़ागे पड़ागाइ-पड़ागमंडिए सलोम हत्थे कयवयड्डिए लाइय उल्लोइय महिए गोसीस सरस रत्त चंदण दद्दर दिण्ण पंचगुलितले उवचिय

१—निशीथ चूर्णि सभाष्य में भी 'मडय थूभियंसि' पाठ आया है। वहाँ थूभ की टीका में लिखा है—

'इट्टगादिचिया चिद्या थूभो भण्णत्ति'

—सभाष्य निशीथ चूर्णि, विभाग ३, उ० ३, सूत्र ७२, पृष्ठ २२४-२२५

यह स्तूप और चैत्य दोनों ही पूजा-स्थान अथवा देवस्थान होते थे। रायपसेणी सटीक सूत्र १४८ पत्र २८४, में स्तूप की टीका में लिखा है 'स्तूपः—चैत्य-स्तूपः'। जहाँ इनका सम्बंध मृतक से होता था, वहाँ 'मडय' शब्द उसमें जोड़ देते थे।

चंदणकलसे चंदणघड़ सुकय तोरण पड़िदुआर देसभाए आसित्तो वसित्त विउल वट्टवग्घारिय मल्लदामकलावे पञ्च वण्ण सरस सुरभि मुक्क पुप्फ पुंजोवयार कलिए कालागुरु-पवरकुंदुरुक—तुरुक्क धूव मघमघंत गंधुद्धयाभि रामे सुगंधवर गंध गंधिए गंधवट्टिभूए णड णट्टग जल्ल मल्ल मुट्ठिय वेलंवग पवग कहग लासग आइक्खग लंख मंख तूणइल्ल तुंव वीणिय भुयग मागह परिगए वहुजणजाणवयस्स विस्सुयकित्तिए वहुजणस्स आहुस्स आहुणिज्जे पाहुणिज्जे अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहिए पडिहारे जाग सहस्स भाग पड़िच्छए वहुजणो अच्चेइ आगम्म पुण्णभद्द चेइयं।

—उस चम्पा-नगरी के उत्तर-पूर्वक दिशा के मध्यभाग में ईशान-कोण में पूर्व पुरुषों द्वारा प्रज्ञत-प्रशंसित उपादेय रूप में प्रकाशित वहुत काल का बना हुआ अत्यंत प्राचीन और प्रसिद्ध पूर्णभद्र नाम का एक चैत्य था जो कि ध्वजा, घंटा, पताका, लोमहस्त, मोरपिच्छी और वेदिका आदि से सुशोभित था। चैत्य के अंदर की भूमि गोमयादि से लिपी हुई थी और दीवारों पर श्वेत रंग की चमकीली मिट्टी पुती हुई थी और उन पर चंदन के थापे लगे हुए थे। वह चैत्य चंदन के सुंदर कलशों से मंडित था और उसके हर एक दरवाजे पर चंदन के घड़ों के तोरण बँधे हुए थे। उसमें ऊपर नीचे सुगन्धित पुष्पों की बड़ी-बड़ी मालाएं लटकायी हुई थीं। पाँच वर्ण वाले सुगंधित फूल और उत्तम प्रकार के सुगंधि युक्त धूपों से वह खूब महक रहा था। वह चैत्य अर्थात् उसका प्रान्त भाग नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल मौष्टिक, विदूषक, कूदने वाले, तरने वाले, ज्योतिषी, रास वाले, कथा वाले, चित्रपट दिखाने वाले, वीणा वजाने वाले और गाने वाले भोजक आदि लोगों से व्याप्त रहता था। यह चैत्य अनेक

लोगों में और अनेक देशों में विख्यात था। बहुत से भक्त लोग वहाँ आहुति देने, पूजा करने, वंदन करने, और प्रणाम करने के लिए आते थे। वह चैत्य बहुत से लोगों के सत्कार सम्मान एवं उपासना का स्थान था तथा कल्याण और मंगल-रूप देवता के चैत्य की भाँति विनयपूर्वक पर्युपासनीय था। उसमें दैवी शक्ति थी और वह सत्य एवं सत्य उपाय वाला अर्थात् उपासकों की लौकिक कामनाओं को पूर्ण करने वाला था, और वहाँ पर हजारों यज्ञों का भाग नैवेद्य के रूप में अर्पण किया जाता था; इस प्रकार से अनेक लोग दूर-दूर से आकर इस पूर्णभद्र चैत्य की अर्चा पूजा करते थे।

पूर्णभद्र तो यक्ष था; वह वहाँ मरा तो था नहीं, कि उसकी चिता पर यह मंदिर बना था।

नगर का जो वर्णक जैन-शास्त्रों में है, उसमें भी चैत्य आता है। औपपातिकसूत्र में ही चम्पा के वर्णन में—

आचारवंत चेइय

(सटीक पत्र २)

पाठ आया है। वहाँ उसकी टीका इस प्रकार दी हुई है—

आकारवन्ति—सुन्दराकाराणि आकारचित्राणि वा यानि चैत्यानि—दैवतायतनानि···

रायपसेणी में भी यह पाठ आया है (बेचरदास-सम्पादित पत्र ४) वहाँ उसकी टीका की है—"**आकारवन्ति सुन्दराकाराणि चैत्यम्**"

रायपसेणी में ही एक अन्य प्रसंग में आता है (सूत्र १३९)

धूवं दाऊण जिणवराणं

इस पाठ से स्पष्ट है कि जिनवर और उनकी मूर्ति में कोई भेद नहीं है—जो मूर्ति और वही जिन !

बेचरदास ने रायपसेणी के अनुवाद (पत्र ९३) में इसका अर्थ किया "ते प्रत्येक प्रतिमाओ आगल धूप कर्यो"। बेचरदास ने 'रायपसेण-

इयसुत्त' का एक गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित कराया है, उसमें पृष्ठ ९६ पर ऐसा ही अनुवाद दिया हैं। स्पष्ट है कि, मूर्ति पूजक होकर भी मूर्ति-पूजा के विरोधी बेचरदास को 'जिन' और 'प्रतिमा' को समानार्थी मानना पड़ा।

अधिक स्पष्टीकरण के लिए 'चेइयं' शब्द की कुछ टीकाएं हम यहाँ दे रहे हैं:—

(१) **चेइयं—इष्टदेव प्रतिमा** भग० २।१. भाग १ पत्र २४८
(२) **चैत्यानि—अर्हत् प्रतिमा**—आवश्यक हारिभद्रीय, पत्र ५१०-१
(३) **चैत्यानि—जिन प्रतिमा**—प्रश्नव्याकरण, पत्र १२६-१
(४) **चैत्यानि—देवतायतनानि** उवाई०, पत्र ३.
(५) **चैत्यम्—इष्टदेव प्रतिमा** उवाई०, पत्र १०
(६) वेयावत्त—**चैत्यमिति कोऽर्थ इत्याह—'अव्यक्त' मिति जीर्ण्ण पतितप्रायमनिर्द्धारितदेवताविशेषाश्रयभूतमित्यर्थः**

मलधारी हेमचन्द्र कृत आवश्यक टीका टिप्पण पत्र २८-१

चैत्य पूजा स्थान था, यह बात बौद्ध-ग्रन्थों से भी प्रमाणित है। बुद्ध ने वैशाली के सम्बन्ध में कहा—

"...वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जि चेतियानि अब्भन्तरानि चेव वाहिरानि च, तानि सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, तेसं च दिन्नपुब्बं कुतपुब्बं धम्मिकं वलिं नो परिहापेन्ती' ति...

दीघनिकाय (महावग्ग, नालंदा-संस्करण), पृष्ठ ६०

वज्जियों के (नगर के) भीतर या बाहर के जो चैत्य (चौरा-देवस्थान) हैं, वह उनका सत्कार करते हैं,० पूजते हैं। उनके लिए पहिले किये गये दान को, पहले की गयी धर्मानुसार बलि (वृत्ति) को लोप नहीं करते..."

दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ ११९

वैशाली के चैत्य-पूजा का महत्त्व जैन-ग्रन्थों में भी वर्णित है। उत्तराध्ययन की टीका में वहाँ मुनि सुव्रत स्वामी के स्तूप का वर्णन आता है। (नेमिचन्द्र की टीका, पत्र २-१) और कूणिक के युद्ध के प्रसंग में आता है कि जब तक वह स्तूप रहेगा, वैशाली का पतन न होगा।

घासीलाल जी ने उपासगदशांग के अपने अनुवाद में (पृष्ठ ३३९) लिखा है—

"चैत्य शब्द का अर्थ साधु होता है, बृहत्कल्प भाष्य के छट्ठे उद्देशे के अन्दर 'आहा आधयमकम्मे०' गाथा की व्याख्या में क्षेमकीर्तिसूरि ने 'चैत्योद्देशिकस्य' का "साधुओं को उद्देश करके बनाया हुआ अशनादि" यह अर्थ किया है।

घासीलाल ने जिस प्रसंग का उल्लेख किया है, वह प्रसंग ही दे देना चाहता हूँ, जिससे पाठक ससंदर्भ सारी स्थिति समझ जायेंगे। वहाँ मूल गाथा है

आहा अधे य कम्मे, आयाहम्मे य अत्तकम्मे य।
तं पुण आहाकम्मं, कप्पति ण व कप्पती कस्स ॥६३७५॥

—आधाकर्म अधःकर्म आत्मघ्नम् आत्मकर्म चेति औद्देशिकस्य साधूनुद्दिश्य कृतस्य भक्तादेश्चत्वारि नामानि। 'तत् पुनः' आधाकर्म कस्य कल्पते ? कस्य वा न कल्पते ?

बृहत्कल्प सनियुक्ति लघुभाष्य-वृत्ति-सहित, विभाग ६, पृष्ठ १६८२-१६८३

यहाँ मूल में कहाँ चैत्य शब्द है, जिसकी टीका की अपेक्षा की जाये। असल में लोगों को भ्रम में डालने के लिए 'चेति (च + इति) और औद्देशिकस्य' तीन शब्दों की संधि करके 'चैत्योद्देशिकस्य' करके आगे से उसका मेल बैठाने की कुचेष्टा घासीलाल ने की है। उस पाठ में और टीका में कहीं भी चैत्य शब्द नहीं आया है।

घासीलाल जी का कहना है कि, चैत्य शब्द का किसी कोष में मूर्ति अर्थ नहीं है। इसके समर्थन में उन्होंने पाइअसद्दमहण्णव का उद्धरण दिया। पर, पहली बात तो यह कि, उस कोष में 'साधु' कहाँ लिखा है?

दूसरी बात यह भी ध्यान में रखने की है कि, उसी कोष में और उसी उद्धरण में चैत्य का एक अर्थ 'बिम्ब' भी है। घासीलाल ने और कुछ उद्धरणों से उसका अर्थ करते हुए लिखा है 'बिम्ब' का अर्थ मूर्ति नहीं है। अब हम यहाँ कुछ कोषों से बिम्ब का अर्थ दे देना चाहते हैं—

(१) बिम्बः—अ स्टैच्यू, फिगर, आयडल यथा

हेमबिम्बनिभा सौम्या मायेव मयनिर्मिता—रामायण ६.१२.१८

—आप्टेज संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, भाग २, पृष्ठ ११६७

(२) बिम्ब—ऐन इमेज,शैडो, रिफ्लेक्टेड आर प्रेजेंटेड फार्म, पिक्चर

—रामायण, भागवतपुराण, राजतरंगणी

बिम्ब को मूर्ति के अर्थ में हेमचन्द्राचार्य ने भी प्रयोग किया है

चैत्यं जिनौकस्तद्बिम्बं......अनेकार्थकोष, का० २, श्लोक ३६२

चैत्यपूजा का एक बड़ा स्पष्ट उदाहरण आवश्यकचूर्णि पूर्वार्द्ध पत्र ४९५ में आता है कि, श्रेणिक राजा सोने के १०८ यव से चैत्यपूजा करता था—

...सेणिग्रस्स अट्ठसतं सोवण्णियाण जवाण करेति चेतिय अच्चणितानिमित्तं

कुछ आधुनिक विद्वान्

चैत्य शब्द के सम्बन्ध में अब हम कुछ आधुनिक विद्वानों का मत दे देना चाहते हैं। किसी भी प्रकार का भ्रम न हो, इस दृष्टि से हम मूल उद्धरण ही यहाँ देना चाहेंगे।

(१) चेतिय (सं० चैत्य) इन इट्स मोस्ट कामन सेंस हैज कम

टु मीन ए श्राइन असोसिएड विथ बुद्धिज्म, बट द' वर्ड इन इट्स ओरिजनल यूस वाज नाट एक्सक्ल्यूसिवली बुद्धिस्ट फार देयर आर रेफरेंसेज टु ब्रह्मनिकल एँड जैन चैत्याज एज वेल। दस द' वर्ड मस्ट हैव बीन ओरिजनली यूज्ड इन द' सेंस आव एनी सेक्रेड स्पाट आर एडिफिस आर सैंक्चुअरी मेंट फार पापुलर वरशिप...

—ज्यागरैफी आव अर्ली बुद्धिज्म, विमलचरणला लिखित, पृष्ठ ७४

—साधारण रूप में 'चैत्य' का अर्थ बौद्ध-धर्म से सम्बद्ध मन्दिर या पूजा-स्थान है; लेकिन मूल रूप में इस शब्द का प्रयोग केवल बुद्ध-धर्म से सम्बद्ध नहीं होता था; क्योंकि ब्राह्मण और जैन-चैत्यों के भी सन्दर्भ मिलते हैं। अतः कहना चाहिए कि मूल रूप में इस शब्द का अर्थ किसी पवित्र स्थान के लिए, वेदिका के लिए अथवा पूजा के निमित्त मन्दिर के लिए होता था।

(२) इन द पिटकाज दिस वर्ड मीन्स अ पापुलर श्राइन अनकनक्टेड विथ इदर बुद्धिस्ट आर ब्राह्मनिकल सेरेमोनियल, सम टाइम्स परहैप्स मीयरली ए सेक्रेड ट्री आर स्टोन प्राबेब्ली आनर्ड बाई सच सिम्पुल राइट्स एज डेकोरेटिंग इट विथ पेंट आर फ्लावर्स।...

—सर चार्ल्स इलियट लिखित 'हिंदुइज्म ऐंड बुद्धिज्म' भाग २, पृष्ठ १७२-१७३

पिटकों में इस शब्द का अर्थ सर्वसाधारण के लिए पूजा-स्थल है—उसका न तो बौद्धों और न ब्राह्मणों से सम्बन्ध होता था। कभी-कभी वृक्ष, या पत्थर चैत्य में होते थे और रंगों तथा फूलों से उन्हें सजाकर उनके प्रति आदर प्रकट किया जाता था।

(३) द' मोस्ट जेनेरल नेम फार ए सैंक्चुरी इज चैत्य (प्रा० चेतिय) अ टर्म नाट ओन्ली आप्लाइंग टु बिल्डिंग, बट टु सेक्रेड ट्रीज, मेमोरियल स्टोंस, होली स्पोट्स, इमेजेज, रेलिजस इंस्क्रिप्शंस। हेंस आल एडिफिसेज ... द' कैरेक्टर आव अ सेक्रेड मानूमेंट आर चैत्याज—ए० कर्न-लिखित

'मैनुएल आव बुद्धिज्म' (पृष्ठ ९१)—पूजा-स्थान के लिए सबसे प्रचलित शब्द चैत्य (प्रा०—चेतिय) था। किसी भवन से उसका तात्पर्य सदा नहीं होता। बल्कि, (प्रायः) पवित्र वृक्ष, स्मारक शिला, स्तूप, मूर्तियाँ अथवा धर्मलेख का भी वे द्योतन करते हैं। अतः कहना चाहिए कि समस्त स्थान जहाँ पवित्र स्मारक हों चैत्य हैं।

(४) इन अ सेकेण्ड्री सेंस टू अ टेम्पुल आर श्राइन कंटेनिंग अ चैत्य आर धातुगर्भ। चैत्याज आर दागबाज आर ऐन एसेंशल फीचर आव टेम्पुल्स आर चैपेल्स कंस्ट्रक्टेड फार परपज आव वरशिप देयर बींग अ पैसेज राउंड द' चैत्य फार सरकम्बुलेशन (प्रदक्षिणा) ऐंड फ्राम दीज सच टेम्पुल्स हैव रिसीव्ड देयर अपीलेशन द' नेम आव चैत्य हाउएवर अप्लाइड नाट ओन्ली टु सैंक्चुअरीज बट टु सेक्रेड ट्रीज, होली स्पाट ऐंड अदर रेलिजस मानूमेंट्स।

—ए ग्रुनवेडेल-लिखित 'बुद्धिस्ट आर्ट इन इंडिया'
(अनुवादक रिब्सन। जे० बर्जेस द्वारा परिवर्द्धित) पृष्ठ २०-२१।

—इसका दूसरा भाव 'मंदिर' या पूजा-स्थान है, जो चैत्य या धातुगर्भ से सम्बद्ध होते थे। चैत्य अथवा दागबा मंदिर अथवा पूजास्थान के आवश्यक अंग होते थे। चैत्य के चारों ओर परिक्रमा होती थी …… चैत्य शब्द केवल मंदिर ही नहीं पवित्र वृक्ष, पवित्र स्थान अथवा अन्य धार्मिक स्थानों के लिए प्रयुक्त होता था।

(५) श्राइन

—डा० जगदीशचन्द्र जैन-लिखित 'लाइफ इन एंशेंट इंडिया एज डिपिक्टेड इन द' जैन कैनेस', पृष्ठ २३८।

—मंदिर।

२ कामदेव

चंपा-नामक नगरी में पूर्णभद्र-चैत्य था। उस समय वहाँ जितशत्रु-नामक राजा था। उस नगर में कामदेव-नामक एक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। छः करोड़ सुवर्ण उसके खजाने में थे, छः करोड़ व्यापार में लगे थे, ६ करोड़ प्रविस्तर में थे। दस हजार गौएं प्रति व्रज के हिसाब से उसके पास ६ व्रज था।

यह कामदेव भी भगवान् के आने का समाचार सुनकर भगवान् के पास गया और भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर उसने श्रावक-धर्म स्वीकार किया।

अंत में कामदेव ने भी अपने सगे-सम्बन्धियों को बुलाकर उनसे अनुमति लेकर और अपने घर का सारा काम काज अपने पुत्र को सौंप कर भगवान् महावीर के समीप की धर्म-प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने लगा।

एक पूर्व रात्रि के दूसरे समय में एक कपटी मिथ्यादृष्टि देव कामदेव के पास आया। सबसे पहले वह पिशाच का रूप धारण करके हाथ में खांडा लेकर आया और कामदेव से बोला—"अरे कामदेव श्रावक! मृत्यु की इच्छा करने वाला, बुरे लक्षणों वाला, हीनपुण्य चतुर्दशी को जन्मा, तू धर्म की कामना करता है, तू पुण्य की कामना करता है? स्वर्ग की कामना करता है? मोक्ष की कामना करता है? और, उनकी आकांक्षा करता है। हे देवानुप्रिय! अपने शील, व्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से डिगना नहीं चाहते? यदि तुम आज इनका परित्याग नहीं करोगे तो इस खांड़े से तुझे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।"

उसी काल में श्रमण भगवान् महावीर विचरते हुए चम्पा आये। उनका आगमन सुनकर कामदेव ने सोचा—"अच्छा होगा श्रमण भगवान् महावीर जब आये हैं तो पहले उनको वंदन-नमस्कार करके लौटूँ तब पौषध की पारणा करूँ। ऐसा विचार करके वह पौषधशाला से निकला और पूर्णभद्र-चैत्य में जाकर उसने शंख के समान पर्युपासना की।

भगवान् ने परिषदा में धर्मकथा कही और उसके बाद कामदेव को सम्बोधित करके रात्रि की घटना के सम्बंध में पूछा। कामदेव ने सारी बात स्वीकार की।

फिर भगवान् निर्गंथ-निर्गन्थियों को सम्बोधित करके कहने लगे—"आर्य! गृहस्थ-श्रावक दिव्य मानुष्य और तिर्यंच-सम्बंधी उपसर्गों को सहन करके भी ध्यान निष्ठ रहते हैं। हे आर्य! द्वादशांग गणिपिटक के धारक निर्गंथियों को तो ऐसे उपसर्ग सहन करने में सर्वथा दृढ़ रहना चाहिए।

उसके बाद कामदेव ने प्रश्न पूछे और उनका अर्थ ग्रहण किया। और, वापस चला गया।

कामदेव बहुत से शील-व्रत आदि से आत्मा को भावित कर बीस वर्षों तक श्रावक-पर्याय पाल, ११ प्रतिमाओं को भली भाँति स्पर्श कर, एक मास की संलेखना से आत्मा को सेवित करता हुआ, साठ भक्त अनशन द्वारा त्याग कर, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त होता हुआ काल के समय में काल करके सौधर्मकल्प में सौधर्मावतंसक महाविमान के ईशान कोण के अरुणाभ-नामक विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—"भगवन्! वहाँ से कामदेव कहाँ उत्पन्न होगा?"

भगवान् ने कहा—"हे गौतम! चार पल्योपम देवलोक में रहकर वह महाविदेह में सिद्ध होगा।'

---

३ चुलनीपिता

वाराणसी-नगरी में कोष्ठक-चैत्य था और जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उस नगरी में चुलनीपिता-नामक एक गृहपति रहता था। उसकी पत्नी का नाम श्यामा था। उसके आठ करोड़ सुवर्ण निधान में थे, आठ करोड़ व्यापार में और आठ करोड़ प्रविस्तार में लगे हुए थे। दस हजार गायें प्रति गोकुल के हिसाब से उसके पास आठ गोकुल थे।

भगवान् महावीर स्वामी एक बार ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वाराणसी आए। परिषदा निकली। भगवान् के उपदेश को सुन कर चुलनी-पिता ने भी आनन्दश्रावक के समान गृहस्थ-धर्म स्वीकार किया और कालान्तर में अपने पुत्र को गृहस्थी का कार्यभार सौंप कर और सम्बन्धियों तथा जाति वालों से अनुमति लेकर पोपधशाला में जाकर धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार करके विचरने लगा।

एक रात्रि के पिछले प्रहर में चुलनीपिता के सम्मुख एक देव प्रकट हुआ। वह देव हाथ में नीलकमल यावत् तलवार लेकर बोला—"यदि तुम अपना शील भंग नहीं करोगे तो तुम्हारे बड़े लड़के को घर से लाकर घात करूँगा और फिर काटकर उसे कड़ाही में उकालूँगा। फिर तुम्हारे शरीर को उकले मांस और रक्त से सींचूँगा। अत्यन्त दुःख की पीड़ा से तू मर जायेगा। पर, चुलनीपिता श्रमणोपासक देवता के ऐसे कहने पर निर्भय यावत् विचरता रहा। दो-तीन बार धमकी देने पर भी जब चुलनीपिता विचलित नहीं हुआ तो देव ने उसके बड़े लड़के को लाकर घात किया। उसके मांस के तीन टुकड़े किये और अदहन चढ़े

हुए कड़ाहे में उकाला और उसके रक्त और मांस से चुलनीपिता का शरीर सींचने लगा। चुलनीपिता ने उसे सहन कर लिया।

फिर उसने दूसरे और तीसरे लड़के को भी वैसा ही किया। पर, श्रावक अपने विचार पर अडिग रहा। फिर चौथी बार उस देव ने कहा—"हे अनिष्ट कामी! यदि तू अपना व्रत भंग नहीं करता, तो तेरी माता भद्रा को घर से लाकर तेरे सामने ही उसके प्राण लूँगा, फिर उसके मांस के तीन टुकड़े करके कड़ाहे में डालूँगा और उसके रक्त तथा मांस से तेरे शरीर को सींचूँगा। इससे अत्यन्त दुःखी होकर तू मृत्यु को प्राप्त करेगा।" फिर भी चुलनीपिता निर्भय रहा। उसने तीन बार ऐसी धमकी दी।

देव के तीसरी बार ऐसा कहने पर, चुलनीपिता श्रावक विचार करने लगा—"यह पुरुष अनार्य है। इसने मेरे तीन पुत्रों का घात किया और और अब मेरी माता का वध करना चाहता है। ऐसा विचार कर वह उठा और देव को पकड़ने चला। देवता उछल कर आकाश में चला गया और चुलनीपिता ने एक खम्भा पकड़ लिया तथा वह जोर-जोर चिल्लाने लगा।

उसकी आवाज सुनकर चुलनीपिता की माता भद्रा आयी और चिल्लाने का कारण पूछने लगी। चुलनीपिता ने सारी बात माता को बतायी तो माता बोली—"कोई भी तुम्हारे पुत्रों को घर से नहीं ले आया है और न किसी ने तुम्हारे पुत्रों का वध किया है। किसी ने तुम्हारे साथ उपसर्ग किया है। कषाय के उदय से चलित चित्त होकर उसे मारने की तुम्हारी प्रवृत्ति हुई। उस घात की प्रवृत्ति से स्थूलप्राणातिपातविरमण-व्रत और पोषध-व्रत भंग हुआ। पोषध-व्रत में सापराध और निरपराध दोनोंके मारने का त्याग होता है। इसलिए तुम आलोचना करो, प्रतिक्रमण करो

और अपनी गुरु की साक्षी से निन्दा-गर्हा करो तथा यथायोग्य तपः-कर्म रूप प्रायश्चित स्वीकार करो।

चुलनीपिता ने अपनी माता की बात स्वीकार कर ली।

उसने ११ प्रतिमाओं का पालन किया। और, आनन्द की तरह मृत्यु को प्राप्त कर कामदेव की भाँति सौधर्मकल्प में सौधर्मावितंसक के ईशान के अरुणप्रभ विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वह चार पल्योपम वहाँ रह कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा।
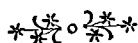
४. सुरादेव

वाराणसी-नगरी में कोष्ठक-चैत्य था तथा जितशत्रु-नामक राजा राज्य करता था। उस नगरी में सुरादेव-नामक गृहपति रहता था। ६ करोड़ सुवर्ण उसके खजाने में थे, ६ करोड़ व्यापार में लगे थे और ६ करोड़ प्रविस्तर में थे। उसके पास ६ गोकुल थे। उसकी भार्या का नाम धन्या था।

सुरादेव के समान उसने भी भगवान् महावीर के सम्मुख गृहस्थधर्म स्वीकार किया। कालान्तर में वह भी कामदेव के समान भगवान् महावीर के निकट स्वीकार की गयी धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके रहने लगा।

एक समय पूर्व रात्रि के समय उसके सम्मुख एक देव प्रकट हुआ। उसने भी क्रम से सुरादेव के बड़े, मँझले और छोटे लड़कों के वध की धमकी दी। उसने तद्रूप किया—सभी के पाँच-पाँच टुकड़े किये और उनके रक्त-मांस से सुरादेव के शरीर को सींचा। जब सुरादेव इनसे भीत नहीं हुआ तो देव ने कहा—"हे सुरादेव! तू यदि शीलव्रत भंग नहीं करता तो मैं श्वास यावत् कुष्ठ[1] से तुम्हें पीड़ित करूँगा, जिससे तू तड़प-तड़प कर मर जायेगा।

१—सासे, कासे, जरे, दाहे, कुच्छिसूले, भगंदरे अरिसा, अजीरए, दिट्ठिमुद्धसूले, अकारए, अच्छिवेयणा, कण्णवेयणा, कंडू, दउदरे, कोढे

—ज्ञाताधर्मकथा (एन० वी० वैद्य-सम्पादित) अ० १३, पृष्ठ १४८

—विवागसुत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) पृष्ठ १०

आचारांग की टीका में १८ प्रकार के कुष्ठ बताये गये हैं :—

ऐसी धमकी जब उस देव ने तीन बार दी तो तीसरी बार धमकी सुनकर सुरादेव के मन में उसके अनार्यपने पर क्षोभ हुआ और उसे पकड़ने चला। उस समय वह देव आकाश में उछल गया और सुरादेव के हाथ में खम्भा आ गया तथा वह चिल्लाने लगा।

कोलाहल सुनकर सुरादेव की पत्नी आयी और चिल्लाने का कारण पूछने लगी। सुरादेव सारी कथा कह गया तो उसकी पत्नी ने आश्वासन दिया कि घर का कोई न लाया गया है और न मारा गया है। शेष पूर्ववत् ही है। अन्त में वह मरकर सौधर्मकल्प में अरुणकान्त विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ चार पल्योपम रहकर वह महाविदेह में जन्म लेने के बाद सिद्ध होगा।

पृष्ठ ४६२ पाद टिप्पणि का शेषांश

कुष्ठमष्टादशभेदं तदस्यास्तीति कुष्ठी, तत्र सप्तदश महाकुष्ठानि, तद्यथा—अरुणोदुम्बर निश्यजिह्वकपाल काकनादपौण्डरीकदद्रु कुष्ठानीति महत्त्वं चैषां सर्वधात्वनुप्रवेशादसाध्यत्वाच्चेति एकादश क्षुद्रकुष्ठानि तद्यथा—स्थूलारुष्क १, महाकुष्ठै २, ककुष्ठ ३, चर्मदल ४, परिसर्प्प ५, विसर्प्प ६, सिध्म ७, विचर्चिका ८, किटिभ ९, पामा १०, शतारुक ११ संज्ञानीति

—आचारांग सटीक १, ६, १, पत्र २१२-२

५ चुल्लशतक

आलभिका-नामक नगरी में शंखवन-नामक उद्यान था और जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उस नगरी में चुल्ल[1] शतक नामक एक गृहपति रहता था। वह आढ्य था। छः करोड़ हिरण्य उसके निधान में, ६ करोड़ व्याज में और ६ करोड़ हिरण्य विस्तार में थे। दस हजार गाय के एक व्रज के हिसाब से उसके पास ६ व्रज थे। उसकी भार्या का नाम बहुला था। महावीर स्वामी का समवसरण हुआ। आनन्द-श्रावक के समान उसने भी भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर गृहस्थ-धर्म स्वीकार किया और कालान्तर में कामदेव के समान उसने धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार की।

एक रात को मध्य रात्रि के समय चुल्लशतक के सम्मुख एक देव प्रकट हुआ। तलवार हाथ में लेकर उसने चुल्लशतक से कहा—'हे चुल्ल-शतक! तुम अपना शील भंग करो अन्यथा तुम्हारे ज्येष्ठ्य पुत्र को ले आऊँगा, उसका वध करूँगा। उसके मांस का सात टुकड़ा करूँगा। कड़ाही में उबालूँगा।...'' उस देव ने यह सब किया भी पर चुल्लशतक अपने व्रत पर दृढ़ रहा।

अन्त में उस देव ने कहा—'हे चुल्लशतक! यदि तुम अपना शील-व्रत भंग नहीं करते तो जितना धन तुम्हारे पास है, उसे तुम्हारे घर से लाकर शृंगाटक यावत् पथ[2] पर सर्वत्र फेंक दूँगा। तू इसके नष्ट

१—'चुल्ल' शब्द का अर्थ है 'लघु' 'छोटा' (दे० अर्धमागधी कोष रतनचन्द्र-सम्पादित, भाग २, पृष्ठ ७२५) पर घासीलाल ने उवासगदसाओ के अनुवाद में 'चुल्ल' का अर्थ 'क्षुद्र' करके उसका नाम क्षुद्रशतक संस्कृत, हिन्दी, गुजराती तीनों भाषाओं में लिखा है। (पृष्ठ ४४८) पर यह सर्वथा अशुद्ध है।

२—इसका पूरा पाठ इस प्रकार है:—

सिंघाडग तिय चउक्क चच्चर चउमुह महापह पहेसु

होने से मर जायेगा। फिर भी चुल्लशतक निर्भय विचरण करता रहा। जब उसने दूसरी और तीसरी बार ऐसी धमकी दी तो चुल्लशतक को विचार हुआ कि यह अनार्य पुरुष है। इसने हमारे पुत्र का वध किया अब हमारी सम्पत्ति नष्ट करना चाहता है।' ऐसा विचार करके चुल्लशतक उसे पकड़ने चला।

पर, वह देव आकाश में उछल गया। चुल्लशतक जोर-जोर चिल्लाने लगा। उसकी पत्नी आयी। और, उसने चिल्लाने का कारण पूछा तो चुल्लशतक पूरी कहानी कह गया। शेष पूर्ववत् समझना चाहिए।

अंत में काल के समय में काल करके वह सौधर्म देवलोक में अरुण शिष्ट-नामक विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ चार पल्योपम की स्थिति के बाद वह महाविदेह में सिद्ध प्राप्त करेगा।
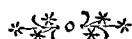
६ कुण्डकोलिक

काम्पिल्यपुर-नगर में जितशत्रु राजा राज्य करता था और सहस्राम्रवन-नामक उद्यान था। उस नगर में कुंडकोलिक-नामक गृहपति था। पुष्या-नामकी उसकी भार्या थी। ६ करोड़ हिरण्य उसके विधान में थे, ६ करोड़ वृद्धि में थे और ६ करोड़ प्रविस्तर में लगे थे। उसके पास ६ व्रज थे—प्रत्येक व्रज में १० हजार गौएँ थीं।

भगवान् महावीर एक बार ग्रामानुग्राम विहार करते हुए काम्पिल्य-पुर आये। समवसरण हुआ और कामदेव के समान कुण्डकोलिक ने श्रावक-धर्म स्वीकार कर लिया।

एक दिन कुंडकोलिक मध्याह्न के समय अशोकवनिका में जहाँ पृथ्वीशिलापट्टक था, वहाँ आया और वहाँ अपनी नाममुद्रिका तथा उत्तरीय पृथ्वीशिलापट्टक पर रख कर श्रमण भगवान् महावीर के पास स्वीकार की हुई धर्म-प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने लगा।

एक बार उस कुंडकोलिक श्रमणोपासक के पास एक देव प्रकट हुआ। उसने पृथ्वीशिलापट्टक से कुंडकोलिक की नाममुद्रिका और उत्तरीय वस्त्र उठा लिया। श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये उस देव ने आकाश में स्थित रहकर कुंडकोलिक श्रमणोपासक से कहा—"हे देवानुप्रिय! कुंडकोलिक श्रमणो-पासक! मंखलि-पुत्र गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति सुन्दर है, क्योंकि उसकी धर्मप्रज्ञप्ति[1] में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पराक्रम नहीं है। सब कुछ नियति के आश्रित है; श्रमण भगवान् महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति अच्छी नहीं

१—धर्मप्रज्ञप्तेः। प्रज्ञापनं प्रज्ञप्तिः। धर्मस्य प्रज्ञप्तिः ततो धर्मप्रज्ञप्तेः।
—दशवैकालिक [बाबूवाला] पृष्ठ १४३।

है; क्योंकि उसमें उत्थान यावत् पराक्रम है और नियति आश्रित सब कुछ नहीं माना जाता है।"

कुंडकोलिक श्रमणोपासक ने उस देव सेकहा—"हे देव! मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति उत्थान न होने से यावत् सर्व भाव नियत होने से अच्छी है और भगवान् महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति उत्थान होने से यावत् सर्वभाव अनियत होने से खराब है, यह मान लिया जाये, तो हे देव! यह दिव्य ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्यदेवानुभाव आपको कैसे प्राप्त हुए? यह सब आपको उत्थान यावत् पराक्रम से प्राप्त हुए अथवा उत्थान के अभाव यावत् पराक्रमहीनता से?"

यह सुनकर वह देव बोला—"हे देवानुप्रिय! मैंने यह देवऋद्धि उत्थान के अभाव यावत् पराक्रम के अभाव में प्राप्त किया है।"

कुंडकोलिक ने उत्तर दिया—"यदि यह देवऋद्धि उत्थान आदि के अभाव में प्राप्य है, तो जिन जीवों में विशेष उत्थान नहीं है, और पराक्रम नहीं है, वह देव क्यों नहीं होते? गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति सुन्दर होने का जो कारण आप बताते हैं, और भगवान् महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति अच्छी न होने का जो आप कारण बताते हैं, वे मिथ्या हैं।"

कुंडकोलिक की इस प्रकार वार्ता सुनकर वह देव शंकित हो गया और कुंडकोलिक को उत्तर न दे सका। नाममुद्रिका और उत्तरीय पृथ्वीशिलापट्टक पर रखकर वह जिधर से आया था, उधर चला गया।

उस समय भगवान् महावीर वहाँ पधारे। कामदेव के समान कुंडकोलिक भगवान् की वंदना करने गया। धर्मदेशना के बाद भगवान् ने कुंडकोलिक से देव के आने की बात पूछी। कुंडकोलिक ने सारी बात स्वीकार कर ली।

भगवान् ने कहा—"हे आर्यो! जो गृहस्थावास में रहकर भी अर्थ[1],

---

[1] 'अर्थैं—जीवादिभिः सूत्राभिधेयैर्वा—उपासकदशा सटीक पत्र २६-१

हेतु[1], प्रश्न[2], कारण[3] व्याकरण[4] और उत्तर के सम्बंध में अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर करता है, तो हे आर्यों ! द्वादशांग गणिपिटक का अध्ययन कर्ता श्रमण-निर्गंथ अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर और निराश करने में शक्य है।"

उसके बाद कुंडकोलिक शील-व्रत आदि से अपनी आत्मा को भावित करता रहा। १४ वर्ष व्यतीत होने पर और १५-वें वर्ष के बीच में कामदेव के समान अपने ज्येष्ठ पुत्र को गृहभार देकर पोषधशाला में धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार करके रहने लगा। ११ प्रतिमाओं को पाल कर काल के समय में काल कर वह सौधर्मदेवलोक में अरुणध्वज विमान में उत्पन्न हुआ। शेष पूर्ववत जान लेना चाहिए।

पृथ्वीशिलापट्टक

औपपातिक सूत्र में पृथ्वीशिलापट्टक का वर्णक इस प्रकार है :—

तस्स णं असोगवर पायवस्स हेट्ठा ईसिं खंधसमल्लीणे एत्थ णं महं एक्के पुढविसिलापट्टए पराणत्ते, विक्खं भायामउस्सेह-सुप्पमाणे किण्हे अंजणघणकिवाणकुवलय हलधरकोसेज्जा-गासकेसकज्जलंगीखंजणसिंगभेदरिट्ठय जंबूफल असण कसण बंधणणी तुप्पलपत्तनिकर अयसि कुसुमप्पगासे मरकतमसार कलित्तणयण की परा सिवरणे णिद्धघणे अट्ठसिरे आयंसयत-लोवमे सुरम्मे ईहामियउसभतुरगनर मगर विहग वालग किण्ण-ररूरूसरभचमरकुंजर वणलय पउमलयभित्तिचित्ते आईणगरू

---

१ हेतु—अन्वयव्यतिरेक लक्षणैः—वही

२ प्रश्नैः—पर प्रश्नीयपदार्थैः—वही

३ कारणै—उपपत्तिमात्र रूपैः—वही

४ व्याकरणै—पदेण प्रश्नितस्योत्तरदान रूपैः—वही

यवूरण वणीततूल फरिसे सीहासणसंठीए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

—औपपातिक सूत्र सटीक, सूत्र ५, पत्र १८-२

—उस उत्तम अशोकवृक्ष के नीचे स्कंध से कुछ दूरी पर किन्तु उसी के अधः प्रदेश में विशाल एक पृथिवीशिलापट्टक था। वह लम्बाई चौड़ाई एवं ऊँचाई में बराबर प्रमाण वाला था, हीनाधिक प्रमाणवाला नहीं था। इसका वर्ण कृष्ण था। अंजन, घन, कृपाण, कुवलय, हलधरकौशेय (बलदेव-वस्त्रं), आकाश, केश, कज्जलांगी (कज्जलगृहं), खंजनपक्षी, शृंगभेद, रिष्टक (रत्नम्), जम्बूफल, असनक (बीयकाभिधानो वनस्पतिः) सनबंधन (सनपुष्पवृन्तं), नीलोत्पलपत्रनिकर और अतसीकुसुम के प्रकाश-जैसा था (अर्थात् श्याम वर्ण का था)। मरकत, मसार (मसृणीकारकः पाषाणविशेषः), कटित्र (वृत्ति विशेषः), नयनकीका (नेत्रमध्यतारा तद्राशिवर्गः काल इत्यर्थः), के पुंज जैसा इसका वर्ण था। वह सजल मेघ के समान था। इसके आठ कोने थे ('अट्ठसिरे' अष्टशिराः—अष्टकोण इत्यर्थः)। इसका तलभाग काँचदर्पण-जैसा चमकीला था। (देखने में यह) सुरम्य (लगता) था। ईहामृग (वृकाः), वृषभ, तुरग (अश्व), नर, मकर, विहग, व्याल (सर्प), किन्नर, रुरु, सरभ, चमर, कुञ्जर, वनलता एवं पद्मलता इन सबके चित्रों से यह सुशोभित था। (इसका स्पर्श) अजिनक (चर्ममय वस्त्र), रूत (रूई), वूर (वनस्पति विशेषः), नवनीत, तूल (अर्कतूल) के स्पर्श के समान था। यह सिंहासनाकार था। हृदय को हर लेनेवाला, नेत्रों को आल्हादित करने वाला एवं सुन्दर आकृति सम्पन्न यह पृथ्वीशिलापट्टक अपूर्व शोभा-संपन्न था।

***

७-सद्दालपुत्र

पोलासपुर-नामक नगर में सहस्राम्रवन-नामक उद्यान था। जितशत्रु वहाँ का राजा था। उस पोलासपुर नामक नगर में सद्दालपुत्र-नामक कुम्भकार आजीविकोपासक रहता था। वह गोशाला के सिद्धान्तों में (अर्थ सुनने से) लब्धार्थ, (अर्थ धारण करने से) गृहीतार्थ, (संशय युक्त विषयों का प्रश्न करने से) पृष्टार्थ, विनिश्चितार्थ और अभिगतार्थ, था। 'हे आयुष्मन्! आजीवकों का सिद्धान्त इस अर्थरूप है, इस परमार्थ रूप है और शेष सब अनर्थरूप हैं', इस प्रकार आजीवकों के सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ वह विचरता था।

उस आजीविकों के उपासक सद्दालपुत्र के पास एक करोड़ हिरण्य निधान में था, एक करोड़ ब्याज पर दिया था और एक करोड़ धन-धान्यादि के प्रविस्तर में लगा था। दस हजार गायों का एक व्रज उसके पास था। उस सद्दालपुत्र की भार्या का नाम अग्निमित्रा था। पोलासपुर नगर के बाहर उस सद्दालपुत्र के कुम्भकारापण थे। वहाँ कुछ को वह भृत्ति (द्रव्य) और कुछ को भोजन देता था। इस प्रकार बहुत से लोग प्रत्येक दिन प्रातःकाल करक (वार्घटिका-जल भरने का घड़ा) वारक (गडुकान् = गड़ुआ) पिटर (स्थालीः = थाली), घट (घड़ा) अर्द्धघट (घटार्द्धमानान्), कलश (आकार विशेषवतो बृहद्घटकान्) अलिंजर (महदुदक भाजन विशेषान्) जंबूल (लोकरूढ्यावसेयान्) और उष्ट्रिका (सुरातैलादि भाजन) बनाते थे। इस प्रकार आजीविका उपार्जन करते वह राजमार्ग पर विहरता था।

किसी समय वह सद्दालपुत्र मध्याह्नकाल में अशोकवनिका में आया।

वहाँ आकर वह मंखलिपुत्र गोशालक के पास स्वीकार की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरण करने लगा। उसके बाद आजीविकोपासक सद्दालपुत्र के पास एक देव आया। वह श्रेष्ठ वस्त्र धारण किए हुए था। आकाश में स्थित रहकर उस देव ने इस प्रकार कहा—"भविष्य में यहाँ महामाहण, उत्पन्न ज्ञान-दर्शन धारण करने वाला, अतीत-वर्तमान-और भविष्य का जानने वाला, अरिहंत, जिन, केवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी, तीनों लोकों के लिए अवलोकित, महित और पूजित, देव मनुष्य-असुर सबके अर्चनीय, वंदनीय, सत्कार करने योग्य, सम्मान करने योग्य, कल्याण, मंगल देव और चैत्य के समान उपासना करने योग्य, सत्य कर्म की संपत्ति युक्त पुरुष आने वाला है। इसलिए तू उनकी वंदना करना यावत् पर्युपासना करना। तथा प्रातिहारिक (जो वापस लिया जा सके) पीठ, फलग, शय्या, वसति, और संस्तारक के लिए आमंत्रित करना।" इस प्रकार दूसरी और तीसरी बार ऐसा कह कर, वह देव जिधर से आया था, उधर चला गया।

देव के ऐसे वचन सुनकर सद्दालपुत्र को इस प्रकार अध्यावसाय हुआ—"इस प्रकार के तो खरेखर हमारे धर्माचार्य (गोशालक) हैं। वे ही इन गुणों से युक्त हैं। वे ही यहाँ शीघ्र आने वाले हैं। मैं उनकी वंदना करूँगा यावत् पर्युपासना करूँगा तथा प्रातिहारिक यावत् संस्तारक के लिए आमंत्रित करूँगा।"

उसके बाद सूर्योदय होते वहाँ भगवान् महावीर स्वामी पधारे। उनकी वंदना करने के लिए परिषदा निकली यावत् उनकी पर्युपासना की। सद्दालपुत्र को इन सब से सूचना मिली कि श्रमण भगवान् महावीर विहार करते हुए यहाँ आये हैं। अतः उसे विचार हुआ—"मैं उनके पास जाकर उनकी वंदना तथा पर्युपासना करूँ।"

ऐसा विचार करके उसने स्नान यावत् प्रायश्चित किया।

स्नानोत्तर क्रियाएं

यह पाठ सद्दालपुत्र की पत्नी अग्निमित्रा के प्रसंग में भी आया है। वहाँ टीकाकार ने लिखा है:—

स्नाता 'कृतवलिकर्मा' वलिकर्म—लोकरूढं 'कृत कौतुक-मङ्गलप्रायश्चिता' कौतुकं—मषोपुण्ड्रादि, मंगलं—दध्यक्षत चन्दनादि एते एव प्रायश्चितमिव प्रायश्चितं दुःस्वप्नादि प्रतिघातक त्वेनावश्यंकार्य त्वादिति'

—उवासगदसाओ सटीक, पत्र ४४-१

ऐसा पाठ कल्पसूत्र में स्वप्न पाठकों के प्रसंग में भी आता है (कल्पसूत्र सुबोधिका टीक-सहित, सूत्र ६७ पत्र १७५) इसकी टीका संदेह विषौषधि टीका में आचार्य जिनप्रभ ने इस प्रकार की है:—

'कयवलि कम्मे त्यादि' स्नानानंतरं कृतं वलिकर्मः यैः स्वगृहदेवतानां तत्तथा, तथा कृतानि कौतुक मंगलान्येव प्रायश्चितानि दुःस्वप्नादिविघातार्थमवश्य करणीयत्वाद्यैस्तैस्तथा, तत्र कौतुकानि मषीतिलकादीनि, मंगलानि तु सिद्धार्थदध्यक्ष तदुर्वांकुरादीनि अन्येत्वाहुः—

'पायच्छित्ता' पादेन पादे वा छुताश्चक्षुर्दोषपरिहारार्थं पादच्छुताः कृतकौतुक मंगलाश्च ते पादच्छुताश्चेति विग्रहः तथा शुद्धात्मानः स्नानेन शुचीकृतदेहाः

—पत्र ७७

ठीक इसी प्रकार कल्पसूत्र की टिप्पन में आचार्य पृथ्वीचन्द्र सूरि ने भी लिखा है (पवित्र कल्पसूत्र, कल्पसूत्र टिप्पनकम्, पृष्ठ १०)

घासीलाल जी ने उपासकदशांग का जो अनुवाद किया है, उसमें उन्होंने 'जाव' को वर्णक से पूरा तो किया, पर 'वलिकम्मं' छोड़ गये।

और, मूल के 'ण्हाए जाव पायच्छिते' पाठ में से 'पायच्छिते' का अनुवाद छोड़ गये।

यह पाठ औपपातिकसूत्र में दो स्थलों पर आता है (औपपातिकसूत्र सटीक, सूत्र ११ पत्र ४२ तथा सूत्र २७ पत्र १११)। औपपातिकसूत्र का जो अनुवाद घासीलाल ने किया, उसमें 'बलिकम्म' का अनुवाद पृष्ठ १०६ पर 'पशु-पक्षी आदि के लिए अन्न का विभाग-रूप बलिकर्म किया' और पृष्ठ ३५८ पर उसका अर्थ 'काक आदि को अन्नादि-दान-रूप बलिकर्म किये' किया है। घासीलाल स्थानकवासी हैं, पर उनका यह अर्थ स्वयं स्थानकवासी लोगों को भी अमान्य है। स्थानकवासी विद्वान रतनचंद्र ने अर्द्धमागधी कोष ५ भागों में लिखा है, उसमें बलिकर्म का अर्थ उन्होंने भाग ३, पृष्ठ ६७२ पर 'गृहदेवता की पूजा' (सूत्र ११) तथा 'देवता के निमित्त दिया जाने वाला' (सूत्र २७) दिया है। रतनचन्द्र जी के इस उद्धरण से ही स्पष्ट है कि, घासीलाल ने कितनी अनधिकार चेष्टा की है!

प्राचीन भारत में स्नान के बाद यह सब क्रियाएं करने की परम्परा सभी में थी, चाहे वह अन्यतीर्थिक हो अथवा श्रावक-व्रतधारी। यह बात औपपातिकसूत्र वाले पाठ से स्पष्ट है, जिसमें कूणिक राजा (सूत्र ११) तथा उसके अधिकारी (सूत्र २७) इन क्रियाओं को करते हैं। डा० जगदीशचन्द्र जैन ने 'लाइफ इन ऐंशेंट इंडिया' में उसका ठीक अर्थ किया है—"हैविंग मेड द' आफरिंग टु द' हाउस-गाड्स" (पृष्ठ २३५)

बेचरदास ने 'भगवान् महावीर ना दश उपासको' में (पृष्ठ ४१) यह पूरा प्रसंग ही छोड़ दिया।

भगवान् के पास जाना

इन स्नोत्तर क्रियाओं के बाद सद्दालपुत्र शुद्ध और प्रवेश योग्य वस्त्र पहन कर बहुत से मनुष्यों के साथ अपने घर से बाहर निकला और

पोलासपुर के मध्यभाग में से होता हुआ जहाँ सहस्राम्रवन था वहाँ गया। वहाँ भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की तथा उनका वंदन-नमस्कार करके पर्युपासना की।

उसके बाद भगवान् ने धर्मोपदेश किया और धर्मोपदेश के पश्चात् उन्होंने सद्दालपुत्र से पूछा—"सद्दालपुत्र कल मध्याह्न काल में जब तुम अशोकवनिका में थे, तुम्हारे पास एक देव आया था?" इसके बाद भगवान् ने देव द्वारा कथित सारी बात कह सुनायी। भगवान् ने पूछा—"क्या उसके बाद तुम्हारा यह विचार हुआ कि तुम उसकी सेवा करोगे? पर, हे सद्दाल-पुत्र! उस देव ने मंखलिपुत्र गोशालक के निमित्त वह नहीं कहा था।"

श्रमण भगवान् महावीर की बात सुनकर सद्दालपुत्र के मन में विचार हुआ—"ये उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारी यावत् सत्य कर्म की सम्पदा से युक्त भगवान् महावीर मेरे वंदन-नमस्कार करने के अतिरिक्त पीठ, आसन फलक आदि के लिए आमंत्रित करने योग्य हैं।" ऐसा विचार करके सद्दालपुत्र उठा और उठकर भगवान् का वंदन-नमस्कार करके बोला—"हे भगवन्! पोलासपुर नगर के बाहर मेरी कुम्भकार की ५०० दूकानें हैं। आप वहाँ (प्रातिहारिक) पीठ, फलक यावत् संथारा ग्रहण करके निवास करें। भगवान् ने सद्दालपुत्र की बात स्वीकार कर ली और उसकी दूकानों में विहार करने लगे।

इसके बाद एक बार आजीविकोपासक सद्दालपुत्र हवा से कुछ सूखे हुए मृत्तिकापात्रों को अंदर से निकाल कर धूप में सूखने के लिए रख रहा था।

सद्दालपुत्र को प्रतिबोध

उस समय भगवान् ने सद्दालपुत्र से पूछा—"हे सद्दालपुत्र! यह कुलाल भाण्ड कहाँ से आया और कैसे उत्पन्न हुआ?" इस प्रश्न पर सद्दालपुत्र बोला—"यह पहले मिट्टी थी। इसे पानी में भिगोया गया।

फिर क्षार (राख) और करीष (गोबर) मिलाया गया। तब चाक पर चढ़ाया और उसके बाद करक यावत् उष्ट्रिक बनाये।"

भगवान् ने पूछा—"ये कुम्भकारपात्र उत्थान यावत् पराक्रम से उत्पन्न होते हैं या उत्थान सिवाय यावत् पराक्रमहीनता से?" इस पर सद्दालपुत्र ने कहा—"भगवान्! ये उत्थान सिवाय यावत् पराक्रमहीनता से बनते हैं; क्योंकि उत्थान यावत् पुरुषाकार का अभाव है। सब कुछ नियत है।"

इस पर भगवान् ने पूछा—"हे सद्दालपुत्र! यदि कोई व्यक्ति तुम्हारा वायु से सूखा पात्र चुरा ले जाये; यत्र-तत्र फेंक दे, फोड़ डाले, बलपूर्वक लेकर फेंक दे अथवा तुम्हारी पत्नी अग्निमित्रा के साथ विपुल भोग भोगते विहरे तो क्या उसे तू दंड देगा?"

"हाँ! मैं उस पुरुष पर आक्रोश करूँगा, उसे हनन करूँगा, बाँधूँगा, तर्जना करूँगा, ताड़न करूँगा और मार डालूँगा।"

इस पर भगवान् बोले—"यदि उत्थान यावत् पराक्रम का अभाव है, और सर्व भाव नियत है, तो कोई पुरुष तुम्हारे वायु से सूखे, और पकाये हुए पात्रों का हरण करता नहीं; और उसे बाहर लेकर फेंकता नहीं, और तुम्हारे पत्नी अग्निमित्रा के साथ विपुल भोग भोगता नहीं है! और, तुम उस पर आक्रोश करते नहीं, हनते नहीं यावत् जीवन से मुक्त नहीं करते। और, यदि कोई व्यक्ति इन पात्रों को उठा ले जाता है, और अग्निमित्रा के साथ भोग भोगता है, और तू आक्रोश करता है, तो तुम्हारा यह कहना कि 'उत्थान नहीं है यावत् सर्व भाव नियत है,' मिथ्या है।"

करने की मेरी इच्छा है।" और, आनंद के समान सद्दालपुत्र ने भी श्रमणो-पासक-धर्म स्वीकार कर लिया।

वहाँ से वह घर लौट कर आया तो अपनी पत्नी संघमित्रा से बोला—"यहाँ श्रमण भगवान् महावीर पधारे हैं। तुम उनके पास जाओ और पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत स्वीकार करो।" अग्निमित्रा ने सद्दाल-पुत्र की बात स्वीकार कर ली।"

उसके बाद सद्दालपुत्र ने अपने कौटुम्बिक पुरुष को बुलाया और बुला कर कहा—

"हे देवानुप्रियो! जल्दी चलने वाले, प्रशस्त और सदृश रूपवाले, समान खुर और पूँछ वाले, समान रंग से रंगे सींग वाले, सोने के कलाप[1] आभूषणों से युक्त, चाल में उत्तम, रजत की घंटियों से युक्त, स्वर्णमय सुतली से नाथ से बाँधे हुए, नीलकमल के समान शिरपेच वाले, दो युवा और उत्तम बैलों से युक्त, अनेक प्रकार की मणिमय घंटियों से युक्त, उत्तम काष्ठमय जूए और जोत की उत्तम डोरी से उत्तम रीति से जुते हुए प्रवर लक्षण युक्त, धम्मिय[2] यानप्रवर उपस्थित करो।"[3]

उसके बाद अग्निमित्रा ने स्नान किया यावत् कौतुक मंगल और प्रायश्चित करके शुद्ध होकर तथा प्रवेश योग्य वस्त्र पहन कर, अल्प और महामूल्य वाले अलंकारों से शरीर का शृंगार कर चेटिओं तथा दासिओं के समूह से घिरी हुई धार्मिक श्रेष्ठ यान पर चढ़ी और पोलासपुर नगर के मध्य भाग में से होती हुई सहस्राम्रवन उद्यान में जहाँ भगवान् महावीर थे

१—कलापौ—ग्रीवाभरण विशेषौ।

२—यह 'धम्मिय' इसी अर्थ में औपपातिकसूत्र में भी आया है। सूत्र ३० की टीका में टीकाकार ने लिखा है—धर्मणि नियुक्ता-औपपातिक सटीक, पत्र ११८।

३—'यान प्रवर'—सम्बंधी यह पाठ भगवतीसूत्र सटीक, शतक ९, उद्देशा ६ सूत्र ३८, पत्र ८३८ में देवानंदा के प्रकरण में भी आता है।

वहाँ आयी। वहाँ पहुँच कर वहाँ यान से नीचे उतरी और चेटियों के साथ वह भगवान् महावीर के सम्मुख गयी। वहाँ पहुँच कर उसने तीन बार भगवान् की वंदना की, और वंदन-नमस्कार करके न अति दूर और न अति निकट हाथ जोड़ कर खड़ी रहकर उसने पर्युपासना की।

भगवान् ने बृहत् परिपदा के सम्मुख उपदेश किया। भगवान् का उपदेश सुनकर अग्निमित्रा बड़ी संतुष्ट हुई। उसने भगवान् से कहा—

"हे भगवान्! मैं निर्ग्रंथ-प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ। आपके पास जिस प्रकार बहुत से क्षत्रिय प्रव्रजित हुए वैसे मैं प्रवजिति होने में समर्थ तो नहीं हूँ पर मैं पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत अंगीकार करना चाहती हूँ। हे भगवन्! इस पर आप प्रतिबंध न करें।" भगवान् के सम्मुख उसने १२ प्रकार का गृहस्थधर्म स्वीकार कर लिया। उसके बाद वह वापस चली आयी।

कालान्तर में भगवान् उद्यान से निकल कर अन्यत्र विहार करने चले गये।

उसके बाद श्रमणोपासक होकर सद्दालपुत्र जीवाजीव आदि तत्त्वों का जानकार होकर विचरण करता रहा। इस बात को सुनकर मंखलिपुत्र गोशालक को विचार हुआ—"सद्दालपुत्र ने आजीवक-धर्म को अस्वीकार कर अब निग्रंथ-धर्म स्वीकार कर लिया है।" ऐसा विचार करके वह पोलासपुर में आजीवक-सभा में आया। वहाँ पहुँचकर उसने पात्रादि उपकरण रखे और आजीवकों के साथ सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के घर आया। सद्दालपुत्र ने गोशालक को आते देखा। पर, उसके प्रति उसने किसी भी रूप में आदर नहीं प्रकट किया। ऐसा देखकर गोशालक खड़ा रहा।

सद्दालपुत्र को आदर न करते देख, और उसे भगवान् महावीर का गुणगान करते देख, मंखलिपुत्र गोशालक बोला—"हे देवानुप्रिय यहाँ महामाहण आये थे?" इस पर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने पूछा—"हे

करने की मेरी इच्छा है।" और, आनंद के समान सद्दालपुत्र ने भी श्रमणो-पासक-धर्म स्वीकार कर लिया।

वहाँ से वह घर लौट कर आया तो अपनी पत्नी संघमित्रा से बोला—"यहाँ श्रमण भगवान् महावीर पधारे हैं। तुम उनके पास जाओ और पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत स्वीकार करो।" अग्निमित्रा ने सद्दाल-पुत्र की बात स्वीकार कर ली।"

उसके बाद सद्दालपुत्र ने अपने कौटुम्बिक पुरुष को बुलाया और बुला कर कहा—

"हे देवानुप्रियो! जल्दी चलने वाले, प्रशस्त और सदृश रूपवाले, समान खुर और पूँछ वाले, समान रंग से रंगे सींग वाले, सोने के कलाप[1] आभूषणों से युक्त, चाल में उत्तम, रजत की घंटियों से युक्त, स्वर्णमय सुतली से नाथ से बाँधे हुए, नीलकमल के समान शिरपेच वाले, दो युवा और उत्तम बैलों से युक्त, अनेक प्रकार की मणिमय घंटियों से युक्त, उत्तम काष्ठमय जूए और जोत की उत्तम डोरी से उत्तम रीति से जुते हुए प्रवर लक्षण युक्त, धम्मिय[2] यानप्रवर उपस्थित करो।"[3]

उसके बाद अग्निमित्रा ने स्नान किया यावत् कौतुक मंगल और प्रायश्चित करके शुद्ध होकर तथा प्रवेश योग्य वस्त्र पहन कर, अल्प और महामूल्य वाले अलंकारों से शरीर का शृंगार कर चेटिओं तथा दासिओ के समूह से घिरी हुई धार्मिक श्रेष्ठ यान पर चढ़ी और पोलासपुर नगर के मध्य भाग में से होती हुई सहस्राम्रवन उद्यान में जहाँ भगवान् महावीर थे

१—कलापौ–ग्रीवाभरण विशेषौ।

२—यह 'धम्मिय' इसी अर्थ में औपपातिकसूत्र में भी आया है। सूत्र ३० की टीका में टीकाकार ने लिखा है—धर्मणि नियुक्ता-औपपातिक सटीक, पत्र ११८।

३—'यान प्रवर'-सम्बंधी यह पाठ भगवतीसूत्र सटीक, शतक ९, उद्देशा ६ सूत्र ३८, पत्र ८३८ में देवानंदा के प्रकरण में भी आता है।

वहाँ आयी। वहाँ पहुँच कर वहाँ यान से नीचे उतरी और चेटियों के साथ वह भगवान् महावीर के सम्मुख गयी। वहाँ पहुँच कर उसने तीन बार भगवान् की वंदना की, और वंदन-नमस्कार करके न अति दूर और न अति निकट हाथ जोड़ कर खड़ी रहकर उसने पर्युपासना की।

भगवान् ने वृहत् परिषदा के सम्मुख उपदेश किया। भगवान् का उपदेश सुनकर अग्निमित्रा बड़ी संतुष्ट हुई। उसने भगवान् से कहा—

"हे भगवान्! मैं निर्गंथ-प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ। आपके पास जिस प्रकार बहुत से क्षत्रिय प्रव्रजित हुए वैसे मैं प्रवजिति होने में समर्थ तो नहीं हूँ पर मैं पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत अंगीकार करना चाहती हूँ। हे भगवन्! इस पर आप प्रतिबंध न करें।" भगवान् के सम्मुख उसने १२ प्रकार का गृहस्थधर्म स्वीकार कर लिया। उसके बाद वह वापस चली आयी।

कालान्तर में भगवान् उद्यान से निकल कर अन्यत्र विहार करने चले गये।

उसके बाद श्रमणोपासक होकर सद्दालपुत्र जीवाजीव आदि तत्त्वों का जानकार होकर विचरण करता रहा। इस बात को सुनकर मंखलिपुत्र गोशालक को विचार हुआ—"सद्दालपुत्र ने आजीवक-धर्म को अस्वीकार कर अब निग्रंथ-धर्म स्वीकार कर लिया है।" ऐसा विचार करके वह पोलासपुर में आजीवक-सभा में आया। वहाँ पहुँचकर उसने पात्रादि उपकरण रखे और आजीवकों के साथ सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के घर आया। सद्दालपुत्र ने गोशालक को आते देखा। पर, उसके प्रति उसने किसी भी रूप में आदर नहीं प्रकट किया। ऐसा देखकर गोशालक खड़ा रहा।

सद्दालपुत्र को आदर न करते देख, और उसे भगवान् महावीर का गुणगान करते देख, मंखलिपुत्र गोशालक बोला—"हे देवानुप्रिय यहाँ महामाहण आये थे?" इस पर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने पूछा—"हे

देवानु-प्रिय ! महामाहण कौन है ?" इस पर गोशालक ने कहा—"श्रमण भगवान् महावीर महामाहण हैं ?"

"हे देवानुप्रिय ! आप ऐसा क्यों कहते हैं ?"

"हे सद्दालपुत्र ! खरेखर श्रमण भगवान् महावीर महामाहण, उत्पन्न हुए ज्ञान-दर्शन के धारण करने वाले यावत् महित्-स्तुति करने योग्य और पूजित हैं यावत् तथ्य कर्म की सम्पत्तियुक्त हैं। इस कारण से, हे देवानु-प्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर महामाहण है।"

फिर गोशालक ने पूछा—"हे देवानुप्रिय ! यहाँ महागोप आये थे ?"

"हे देवानुप्रिय ! महागोप कौन हैं ?"

"श्रमण भगवान् महावीर महागोप हैं।"

"हे देवानुप्रिय ! किस कारण से वह महागोप कहे जाते हैं ?"

"हे देवानुप्रिय ! इस संसार रूपी अटवी में, नाश को प्राप्त होते हुए, विनाश को प्राप्त होते हुए, भक्षण किये जाते, छेदित होते हुए, भेदित होते हुए, लुप्त होते हुए, विलुप्त होते हुए बहुत-से जीवों का धर्मरूप दंड से संरक्षण करते हुए, संगोपन (बचाव) करते हुए, निर्वाण-रूपी बाड़े में अपने हाथ से पहुँचाते हैं। इस कारण हे सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान् महावीर महागोप हैं, ऐसा कहा जाता है।

फिर गोशालक ने पूछा—"हे देवानुप्रिय ! यहाँ महासार्थवाह आये थे ?"

"हे देवानुप्रिय ! महासार्थवाह कौन हैं ?"

"सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान् महावीर महासार्थवाह हैं।"

"आप ऐसा क्यों कहते हैं ?"

"हे देवानुप्रिय ! संसाररूपी अटवी में नाश को प्राप्त होते हुए, विनाश को प्राप्त होते हुए, यावत् विलुप्त होते हुए बहुत-से जीवों को धर्ममय मार्ग में संरक्षण करते हुए निर्वाण-रूप महापट्टण-नगर के सम्मुख

अपने हाथों पहुँचाते हैं। इसलिए हे सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान् महावीर महासार्थवाह कहे जाते हैं।"

फिर गोशालक ने पूछा—"हे देवानुप्रिय ! क्या यहाँ महाधर्मकथी आये थे ?"

"हे देवानुप्रिय ! महाधर्मकथी कौन ?"

"श्रमण भगवान् महाधर्मकथी हैं।"

"हे श्रमण भगवान् महावीर को महाधर्मकथी आप क्यों कहते हैं ?"

"हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर अत्यन्त मोटे संसार में नाश को प्राप्त होते हुए, विनाश को प्राप्त होते हुए, भक्षण किये जाते हुए, छेदित होते हुए, लुप्त होते हुए, विलुप्त होते हुए, उन्मार्ग में प्राप्त हुए, सन्मार्ग को भूले हुए, मिथ्यात्व के बल से पराभव प्राप्त हुए, और आठ प्रकार के कर्मरूप अंधकार के समूह से ढके जीवों के बहुत-से अर्थ यावत् व्याकरण[1] का उत्तर देकर चार गति रूपी संसार की अटवी को अपने हाथ लगाते हैं। इसलिए श्रमण भगवान् महावीर धर्मकथी हैं।"

"हे देवानुप्रिय ! भगवान् महावीर महानिर्यामक हैं।"

"ऐसा आप किस कारण कह रहे हैं !"

"हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर 'संसार-रूप महासमुद्र में नाश को प्राप्त होते हुए यावत् विलुप्त होते हुए डूबते हुए, गोता खाते हुए बहुत से जीवों को धर्मबुद्धि-रूपी नौका के द्वारा निर्वाण-रूप तट के सम्मुख अपने हाथों पहुँचाते हैं। इसलिए श्रमण भगवान् महावीर महानिर्मायक हैं।"

इसके बाद सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने मंखलिपुत्र गोशालक से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! आप निपुण हैं, यावत् नयवादी, उपदेश-लब्धी तथा विज्ञानप्राप्त हैं, तो क्या आप हमारे धर्माचार्य से विवाद करने में समर्थ हैं ?"

"मैं इसके लिए युक्त नहीं हूँ।"

"ऐसा आप क्यों कहते हैं कि आप हमारे धर्माचार्य यावत् भगवंत महावीर के साथ विवाद करने में समर्थ नहीं हैं ?"

"हे सद्दालपुत्र ! जैसे कोई पुरुष तरुण, बलवान, युगवान, यावत् निपुण शिल्प को प्राप्त हुआ हो, वह एक मोटी बकरी, सूअर, मुर्गा, तीतर, बतक, लावा, कपोत, कपिंजल, वायस और श्येन के हाथ से, पग से, खुर से, पूँछ से, पंख से, सींग से, विषाण से जहाँ से पकड़ता है, वहीं निश्चल और निःस्पन्द दबा देता है; इस प्रकार भगवान् महावीर मुझे अर्थों, हेतुओं यावत् उत्तरों से जहाँ-जहाँ पकड़ेंगे निरुत्तर कर देंगे। इस कारण मैं कहता हूँ कि मैं भगवान् महावीर के साथ विवाद करने में समर्थ नहीं हूँ।"

तब सद्दालपुत्र ने कहा—"हे देवानुप्रिय ! आप हमारे धर्माचार्य [भग]वान् महावीर स्वामी का गुणकीर्तन करते हैं। अतः, मैं आपको

(प्रतिहारिक) पीठ यावत् संथारा देता हूँ। आप जाइए मेरी कुम्भकारी की दूकानों से (प्रातिहारिक) पीठ फलक आदि ले लीजिए।" इसके बाद मंखलिपुत्र उसकी दूकानों से (प्रातिहारिक) पीठ फलक आदि लेकर विचरने लगा।

इसके बाद मंखलिपुत्र गोशाला आख्यान[1] से, प्रज्ञापना[2] से, संज्ञापना[3] और विज्ञापना[4] से सद्दालपुत्र को निर्ग्रन्थ-प्रवचन से चलायमान करने, क्षुब्ध कराने और विपरिणाम कराने में असमर्थ रहा तो श्रान्त, तान्त और परितान्त होकर पोलासपुर नगर से निकल कर बाहर के देशों में विचरने लगा।

इस प्रकार सद्दालपुत्र को विविध प्रकार के शील आदि पालन करते यावत् आत्मा को भावित करते १४ वर्ष व्यतीत हो गये। १५-वाँ वर्ष जब चालू था तो पूर्वरात्रि के उत्तर भाग में यावत् पौषधशाला में श्रमण भगवान् महावीर के अति निकट की धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार करके सद्दालपुत्र विचरने लगा। तब पूर्वरात्रि के उत्तरार्ध काल में उसके समीप एक देवता आया। वह देवता नीलकमल के समान तलवार हाथ में लेकर बोला और चुलनीपिता श्रावक के समान उस देवता ने सब उपसर्ग किये। अंतर केवल यह था कि इस देवता ने उसके प्रत्येक पुत्र के मांस के नौ-नौ टुकड़े किये

---

१ 'आघवणाहिं य' त्ति आख्यानैः
—उपासगदशांग सटीक पत्र ४७

२ 'प्रज्ञापनाभिः'—
—भेदतोवस्तु प्ररूपणाभिः—वही

३ संज्ञापनाभिः—
—सञ्ज्ञान जननैः—वही

४ विज्ञापनाभिः—
—अनुकूलभणितैः—वही

यावत् सबसे छोटे लड़के को मार डाला और सद्दालपुत्र का शरीर लोहू से सींचा पर सद्दालपुत्र निर्भय धर्म में स्थित रहा।

अंत में उस देवता ने कहा—"यदि तू धर्म से विचलित नहीं होता तो मैं तेरी पत्नी अग्निमित्रा को लाकर तेरे सामने उसका घात करूँगा।" फिर भी सद्दालपुत्र निर्भय बना रहा। देवता ने जब दूसरी और तीसरी बार भी ऐसा कहा तो सद्दालपुत्र को उस देवता के अनार्यपने पर क्षोभ हुआ और उसे पकड़ने उठा। शेष सब चुलनीपिता के समान है। कोलाहल सुनकर अग्निमित्रा आयी और सब शेष पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

मृत्यु के बाद सद्दालपुत्र अरुणभूत-नामक विमान में उत्प
महाविदेह में वह सिद्ध होगा।

८ महाशतक

राजगृह नगर था। उस नगर में श्रेणिक-नाम का राजा राज्य करता था। उस राजगृह-नगर में महाशतक-नामक आढ्य और समर्थ व्यक्ति रहता था। उसके पास कांस्य[1] सहित आठ करोड़ हिरण्य निधान में, आठ करोड़ प्रविस्तर पर आठ करोड़ वृद्धि पर था। उस महाशतक को रेवती प्रमुख तेरह पत्नियाँ थीं। वे सभी अत्यंत रूपवती थीं। रेवती के पिता के घर से उसे आठ कोटि हिरण्य मिला था और दस हजार गौवों का एक व्रज मिला था। शेष १२ पत्नियों के पिता के घर से केवल एक-एक कोटि हिरण्य मिला था और एक-एक व्रज मिले थे।

भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए राजगृह पधारे। समवसरण हुआ और परिषदा वंदन करने निकली। आनन्द के समान महाशतक ने भी भगवान् के निकट श्रावकधर्म स्वीकार कर लिया। महाशतक ने कांस्य सहित आठ करोड़ हिरण्य और आठ व्रज का व्रत लिया और अपनी १३ पत्नियों को छोड़कर शेष नारियों से मैथुन का परित्याग किया। उसने यह भी व्रत लिया कि, दो द्रोण प्रमाण हिरण्य से भरे कांस्य पात्र का ही व्यवहार प्रतिदिन करूँगा। उसके बाद श्रमणोपासक महाशतक जीव-अजीव आदि के ज्ञाता के रूप में विचार करता रहा।

१—सकांस्य की टीका उपासकदशांग में इस प्रकार दी है:—सह कांस्येन द्रव्यमान विशेषेण सकांस्या (पत्र ४८-२) अभिधान राजेन्द्र (भाग ३, पृष्ठ १८०) में उसके लिए लिखा है : आढक इति प्रसिद्धे परिमाणे च। आप्टेज संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी भाग १

पृष्ठ ३२१ में आढ़क का परिमाण इस प्रकार दिया है. द्रोण का चतुर्थांश६४ प्रस्थ१६ कुडव (लगभग ७ रत्तल ११ औंस)।

कुछ समय बाद कुटुम्ब जागरण करते हुए मध्यरात्रि के समय रेवती को यह विचार हुआ कि इन बारह सपत्नियों के होते मैं महाशतक के साथ उदार मनुष्य संबन्धी भोग भोगने में समर्थ नहीं हूँ। मुझे इन बारह सपत्नियों को अग्नि-प्रयोग से, शस्त्र-प्रयोग से अथवा विष-प्रयोग से मुक्त करके उनका एक-एक करोड़ हिरण्य और एक-एक व्रज लेकर महाशतक के साथ निर्बाध भोग भोगना चाहिए। अतः एक दिन उस रेवती ने ६ पत्नियों को शस्त्र-प्रयोग से और ६ पत्नियों को विष-प्रयोग से मार डाला और उनकी सम्पत्ति पर स्वयं अधिकार कर लिया।

वह रेवती गृहपत्नी मांस लोलुप होकर, मांस में मूर्छित होकर यावत् अत्यन्त आसक्त होकर शलाके पर सेंका हुआ, तला हुआ और भुना हुआ मांस खाती हुई और सुरा[1], मधु[2], मेरक[3], मद्य[4], सीधु[5] और प्रसन्ना[6] मद्य का व्यवहार करती हुई रहने लगी।

उसके बाद राजगृह में प्राणि-वध-निषेध (हिंसा-निवारण) की घोषण

१—काष्ठपिष्ठ निष्पन्नां—उवासगदसाओ सटीक, पत्र ४९–१।

२—क्षौद्रं वही पत्र ४९-२; मधु का अर्थ उत्तराध्ययन नेमिचंद्र की टीका सहित पत्र ३६९—१ में 'मद्य विशेषो' लिखा है।

३—मद्यविशेषं उवासगदसाओ सटीक पत्र ४९-२ उत्तराध्ययन की टीका में नेमिचंन्द्र में लिखा है—"मैरेयं सरकः" पत्र ३६९-१।

४—गुड धातकी भवं-उवासगदसाओ सटीक ४९–२।

५—तद्विशेषं–उवासगदसाओ सटीक पत्र ४९-२।

६—सुराविशेषं—उपासक दशा सटीक, पत्र ४९–२।

सुराओं का विशेष वर्णन कल्पवृक्षों वाले प्रकरण में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (पूर्वभाग) पत्र ९९–२—१००–२ तथा जीवाजीवाभिगमसूत्र सटीक १४५-२—१४६-१ में आता है। जिज्ञासु पाठक वहाँ देख लें। उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका पत्र ३७-२ में कादंबरी नाम भी आता।

हुई।[1] तब उस मांस-लोलुप ने कौलग्रहिक (मैके के पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा—"हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे पितृगृह के व्रजों में से प्रतिदिन प्रातःकाल दो बछड़ा मार कर मुझे दिया करो।" वे नित्य दो बछड़े का वध करते। इस प्रकार रेवती मांस तथा मदिरा के व्यवहार में लिप्त रहने लगी।

महाशतक श्रमणोपासक को शीलव्रत के साथ आत्मा को भावित करते १४ वर्ष व्यतीत हो गये। तब उसने अपने ज्येष्ठ्य पुत्र को अपने स्थान पर गृहकार्य का भार सौंप कर पोषधशाला में भगवान् के समीप की धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार करके रहने लगा। एक दिन रेवती गृहपत्नी मत्त-उन्मत्त होकर, नशे में डगमगाती हुई, केश को विक्षित किये हुए, उत्तरीय को दूर करती हुई, शृंगार किये हुए, पोषधशाला में पहुँची और महाशतक के निकट पहुँच कर मोहोन्माद उत्पन्न करनेवाली और शृंगार रस वाला स्त्रीभाव प्रदर्शित करती हुई महाशतक श्रमणोपासक से बोली—"धर्म की इच्छा वाले, स्वर्ग की इच्छा वाले, मोक्ष की इच्छा वाले, धर्म की आकांक्षा वाले, धर्म की पिपासावाले हे महाशतक श्रमणोपासक ! तुम्हारे धर्म, पुण्य और स्वर्ग अथवा मोक्ष का क्या फल है, जो तुम मेरे साथ उदार यावत् भोगने योग्य भोग नहीं भोगते ?"

श्रमणोपासक महाशतक ने रेवती के कहे पर ध्यान नहीं दिया और धर्मध्यान करता विचरण करता रहा। अतः रेवती जिधर से आयी थी, उधर ही वापस चली गयी।

महाशतक श्रमणोपासक ने प्रथम उपासक प्रतिमा को स्वीकार करके विधिपूर्ण रूप में उसे पूरा किया। इस प्रकार उसने ग्यारहों प्रतिमाएँ पूरी कीं। इन घोर तपों से महाशतक श्रमणोपासक कृश और दुर्बल हो गया और उसकी नस-नस दिखने लगी।

१—राजगृह में उस समय श्रेणिक राजा था। हिंसानिवारण की यह घोषणा वस्तुतः उस पर भगवान् महावीर के उपदेश के प्रभाव का प्रतिफल था।

एक दिन धर्मजागरण करते हुए श्रमणोपासक महाशतक को विचार हुआ 'इस तप से मैं कृश हो गया हूँ।' अतः वह मरणन्तिक संलेखना से जोषित शरीर होकर भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर मृत्यु की कामना न करता हुआ, विचारने लगा। शुभ अध्यवसाय से अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया और वह महाशतक श्रमणोपासक पूर्व दिशा में लवण समुद्र में हजार योजन प्रमाण, दक्षिण और पश्चिम दिशाओं में भी उतना ही और उत्तर दिशा में चुल्ल हिमवंत वर्षधर पर्वत तक जानने और देखने लगा। नीचे वह रत्नप्रभा पृथ्वी के चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाला लोलुप-अच्युत् नाम के नरकावास को जानने-देखने लगा।

एक दिन रेवती गृहपत्नि मत्त यावत् ऊपर का वस्त्र हटाकर पोषधशाला में जहाँ महाशतक श्रावक था, वहाँ आयी और "हे मशाशतक श्रमणोपासक!" आदि पूर्ववत् बोली। रेवती ने इसी प्रकार दूसरी बार कहा। पर, जब उसने तीसरी बार कहा तो महाशतक श्रमणोपासक ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया और जानकर गृहपत्नी रेवती से कहा—हे रेवती! तुम सात दिनों के अंदर अलसक (विषूचिका) रोग से आर्त ध्यान की अत्यन्त परवशता से दुःखित होकर असमाधि में मृत्यु को प्राप्त करके रत्नप्रभा पृथ्वी मे अच्चुय-नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाली नैरयिक के रूप उत्पन्न होगी।"

रेवती ने सोचा महाशतक मुझ पर रुष्ट होगया है। अतः वह भयभीत होकर अपने घर वापस चली गयी गयी। सात रात के अंदर अलसक व्याधि से वह मर कर नरक गयी।

उस समय भगवान् महावीर राजगृह पधारे। उन्होंने गौतम से महाशतक-रेवती की सम्पूर्ण घटना कह कर कहा—"हे गौतम! महाशतक के निकट जाकर कहो।

'हे देवानुप्रिय! अपश्चिम मरणान्तिक संलेखना के लिए क्षीण हुए शरीर वाले यावत् भक्त-पान का प्रत्याख्यान जिसने किया हो, ऐसे श्रमणोपासक को सत्य यावत् अनिष्ट कथन के लिए दूसरे को उत्तर देना योग्य नहीं है। उसने रेवती को ऐसा कहा, इसलिए उसे आलोचना करनी चाहिए और यथायोग्य प्रायश्चित करना चाहिए।"

महावीर स्वामी के आदेश से गौतम स्वामी महाशतक के निकट गये और उसे भगवान् का विचार बताया। महाशतक ने बात स्वीकार कर ली। महाशतक श्रावकोपासक ने बीस वर्षों तक श्रावक-धर्म पाला, बहुत से शील, व्रत आदि से आत्मा को भावित किया और अंत में साठ भक्त का प्रत्याख्यान करके सौधर्म देवलोक में अरुणावतंसक-नामक विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ। चार पल्योपम वहाँ रह कर वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध हो गया।
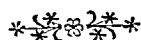
९ नंदिनीपिता

श्रावस्ती-नामक नगरी थी। कोष्ठक चैत्य था। जितशत्रुनामक राजा था। उस श्रावस्ती-नगरी में नन्दिनीपिता-नाम का गृहपति रहता था। वह बड़ा धनवान् था। चार करोड़ हिरण्य उसके निधान में, चार करोड़ वृद्धि पर और चार करोड़ प्रविस्तर पर लगे थे। दस हजार गाय प्रति व्रज के हिसाब से उसे चार व्रज थे। अश्विनी-नाम की उसकी पत्नी थी।

भगवान् महावीर नगर में पधारे। समवसरण हुआ। आनंद के समान उसने गृहस्थ-धर्म स्वीकार किया।

नन्दिनीपिता श्रमणोपासक ने बहुत समय तक बहुत से शील-व्रत आदि का पालन किया। श्रावक-धर्म पालते हुए चौदह वर्ष व्यतीत होने के बाद पन्द्रहवें वर्ष में अपने पुत्र को गृहभार सौंप कर भगवान् महावीर के समक्ष स्वीकार की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरण करने लगा। इस प्रकार बीस वर्षों तक श्रावक-धर्म पाल कर वह अरुणगव विमान में उत्पन्न हुआ और उसके बाद महाविदेह में मोक्ष को प्राप्त करेगा।

***
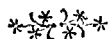
१० सालिहीपिता

श्रावस्ती नामक नगरी थी। कोष्ठक-चैत्य था। जितशत्रु-नामका राजा राज्य करता था। उस नगरी में सालिहीपिता नामक गृहपति रहता था। चार करोड़ हिरण्य उसके निधान में थे, चार करोड़ वृद्धि पर और चार करोड़ प्रविस्तर पर लगे थे। दस हजार गौएं प्रति व्रज के हिसाब से उसके पास चार व्रज थे। उसकी पत्नी का नाम फाल्गुनी था।

भगवान् श्रावस्ती पधारे। समवसरण हुआ और आनंद के समान सालिहीपिता ने गृहस्थ-धर्म स्वीकार किया।

और, कामदेव के समान गृहभार अपने पुत्र को सौंप कर श्रमण भगवान् महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार करके रहने लगा? श्रावकों की ११ प्रतिमाएं उसने उपसर्ग रहित पूर्ण कीं। मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त होकर वह अरुणकिल-नामक विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ? वहाँ चार पल्योपम बिता कर वह महाविदेह में मोक्ष को प्राप्त करेगा।

०

मुख्य श्रावकों का संक्षिप्त परिचय

ये दसों ही श्रावक १५ वर्ष श्रावक-धर्म पाल कर धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार करते हैं और २० वर्ष श्रावक-धर्म पाल कर स्वर्ग जाते हैं। वे सभी महाविदेह में सिद्ध होंगे।

उपासकदशा के अंत में दसों श्रावकों का वर्णन अति संक्षेप-रूप में दिया है। पाठकों की सुविधा के लिए, हम यहाँ मूल गाथाएं और उनका अनुवाद दे रहे हैं:—

वाणियगामे चम्पा दुवे य वाणारसीइ नयरीए।
आलभिया य पुरवरी कम्पिल्लपुरं च बोद्धव्वं ॥ १ ॥
पोलासं रायगिहं सावत्थीए पुरीए दोन्नि भवे।
एए उवासगाणं नयरा खलु होन्ति बोद्धव्वा ॥ २ ॥
सिवनन्द-भद्द-सामा-धन्न-बहुल-पूस-अग्गिमित्ता य।
रेवइ-अस्सिणी तह फग्गुणी य भज्जाण नामाइं ॥३॥
ओहिण्णाण-पिसाए माया वाहि-धण-उत्तरिज्जे य।
भज्जा य सुव्वया दुव्वया निरुवसग्गया दोन्नि ॥४॥
अरुणे अरुणाभे खलु अरुणप्पह-अरुणकन्त-सिट्ठे य।
अरुणज्झए य छट्ठे भूय-वडिंसे गवे कीले ॥ ५ ॥
चाली सट्ठि असीई सट्ठी सट्ठी य सट्ठि दस सहस्स।
असिई चत्ता चत्ता वए एयाण य सहस्साणं ॥ ६ ॥
वारस अट्ठारस चउवीसं तिविहं अट्ठरस इ नेयं।
धन्नेण ति चोव्वीसं वारस वारस य कोडीओ ॥७॥
उल्लण-दन्तवण-फले अभिङ्गणुव्वट्टणे सणाणे य।

वत्थ विलेवण पुप्फे आभरणं धूव पेज्जाइ ॥ ८ ॥
भक्खोयण-सूय-घए सागे माहुर-जेमण-पाणे य ।
तम्बोले इगवीसं आणन्दाईण अभिग्गहा ॥ ९ ॥
उड्ढं सोहम्मपुरे लोलूए अहे उत्तरे हिमवन्ते ।
पञ्च सए तह तिदिसिं ओहिण्णाणं दसगणस्स ॥ १० ॥
दंसण वय-सामाइय-पोसह-पडिमा-अबम्भ-सच्चित्त ।
आरम्भ-पेस-उद्दिट्ठ-वज्जये समणभूए य ॥ ११ ॥
इक्कारस पडिमाओ वीसं परियाओ अणसणं मासे ।
सोहम्मे चउ पलिया महाविदेहम्मि सिज्झिहिइ ॥१२॥

१ वाणिज्य ग्राम में, (२-३) दो चम्पा-नगरी में, (४) वारणसी में, (५) आलभिका में, (६) काम्पिल्यपुर में, (७) पोलासपुर में, (८) राजगृह में, (९-१०) श्रावस्ती में श्रावक हुए । इन्हें श्रावकों का नगर जानना चाहिए ॥ १-२ ॥

अनुक्रम से शिवानन्दा, भद्रा, श्यामा, धन्या, बहुला, पुष्पा, अग्नि-मित्रा, रेवती, अश्विनी और फाल्गुनी ये दसों श्रावकों की भार्या के नाम हैं ॥ ३ ॥

१—अवधिज्ञान, २ पिशाच, ३ माता, ४ व्याधि, ५ धन, ६ उत्तरीय-वस्त्र, ७ सुव्रता भार्या, ८ दुर्व्रता भार्या ये अनुक्रम से ८ श्रावकों के निमित्त थे । अंतिम दो उपसर्ग रहित हुए ॥ ४ ॥

ये दसों श्रावक अनुक्रम से अरुण, अरुणाभ, अरुणप्रभ, अरुणकान्त, अरुणशिष्ट, अरुणध्वज, अरुणभूत, अरुणावतंसक, अरुणगव और अरुण-कील विमान में उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥

चालीस, साठ, अस्सी, साठ, साठ, साठ, दस, अस्सी, चालीस और चालीस हजार गायों का व्रज उनका जानना चाहिए ॥ ६ ॥

१—बारह हिरण्य कोटि, २—अट्ठारह हिरण्य कोटि, ३ चौबीस

हिरण्य कोटि, ४-५-६ प्रत्येक के पास १८-१८ कोटि, ७–तीन कोटि, ८-चौबीस कोटि, ९-१० बारह-बारह कोटि द्रव्य उनके पास थे। ७ ॥

उल्लण-अंगोछा, दातुन, फल, अभ्यंग, उद्वर्तन, स्नान, वस्त्र, विलेपन, पुष्प, आचरण, धूप, पेय, भक्ष्य, ओदन, सूप, घी, शाक, मधुर फल, रस, भोजन, पानी, ताम्बूल, ये २१ प्रकार के अभिग्रह आनन्दादि श्रावकों के थे ॥ ८-९ ॥

ऊर्ध्व में सौधर्म देवलोक तक, अधो दिशा में रत्नप्रभा लोलुपच्युत नरक तक, उत्तर दिशा में हिमवन्त पर्वत तक, और शेष दिशाओं में ५०० योजन तक का अवधि ज्ञान दसों श्रावकों को था ॥ १० ॥

इन सभी श्रावकों ने दर्शन, व्रत, सामायिक, पोषध, कायोत्सर्ग प्रतिमा, अब्रह्मचर्यवर्जन, सचित्ताहारवर्जन, आरम्भवर्जन, प्रेष्यवर्जन, उद्दिष्टवर्जन, और ११ प्रतिमाओं का पालन किया। २० वर्षों तक श्रमणोपासक-धर्म पाला, एक मास का अनशन किया, सौधर्मकल्प में ४ पल्योपम की उनकी स्थिति है और अंत में ये सभी महाविदेह में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे!
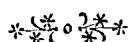
श्रावक-श्राविका

हम उवासगदसाओ में आये दस महाश्रावकों का विवरण दे चुके हैं। हम यहाँ उन अन्य श्रावकों का परिचय देना चाहते हैं, जिनका उल्लेख जैन-साहित्य अन्यत्र में आता है:—

अग्निमित्रा—सद्दालपुत्र की पत्नी। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४७०।

अम्बड—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २२०-२२५।

अभीति—उद्रायन-प्रभावती का पुत्र। राजाओं के प्रकरण में 'उद्रायण' का प्रसंग देखें। इनका उल्लेख भगवतीसूत्र शतक १३, उद्देशा ६ में आया है।

अश्विनी—नंदिनीपिया की पत्नी। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४८८।

आनन्द—भगवान् के १० मुख्य श्रावकों में प्रथम। देखिए तीर्थङ्कर महावीर भाग २, पृष्ठ ४२२–४४१

आनन्द—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ १९२; भाग २ पृष्ठ १०९।

ऋषिभद्रपुत्र—यह आलभिया का गृहपति था। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ६६।

उत्पला—इसका उल्लेख भगवतीसूत्र शतक १२, उद्देशा १, में आता है। यह शंख श्रावक की पत्नी थी। इसी प्रकरण में शंख श्रावक का विवरण देखिए (पृष्ठ ४९६)।

कामदेव—भगवान् के १० मुख्य में दूसरा। देखिए तीर्थङ्कर महावीर भाग २, पृष्ठ ४५६–४५८।

कुंडकोलिक—भगवान् के १० मुख्य श्रावकों में छठाँ। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४६६–४६९।

चुलणीपिया—भगवान् के १० मुख्य श्रावकों में तीसरा। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४५९–४६१।

चुल्लशतक—भगवान् के १० मुख्य श्रावकों में पाँचवाँ। देखिए, तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४६४–४६६।

धन्या—सुरादेव की पत्नी। देखिए तीर्थङ्कर महावीर भाग २, पृष्ठ ४६२।

नंद मणिकार—राजगृह नगर में गुणशिलक चैत्य था। वहाँ श्रेणिक-नामक राजा राज्य करता था। एक बार श्रमण भगवान् महावीर अपने परिवार के साथ गुणशिलक-चैत्य में पधारे। वहाँ एक बार सौधर्म-कल्प का दुर्दुरावतंसक-नामक विमान का निवासी दुर्दुर-नामक एक तेजस्वी देव उनकी भक्ति करने आया। उस देव का तेज देखकर भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य ने उस देव के अद्भुत् तेज का कारण पूछा ?

भगवान् ने कहा—"हे गौतम ! इस नगर में पहले एक बड़ी ऋद्धि वाला नंद-नामक एक मणिकार (जौहरी) रहता था। उस समय मैं इस गर में आया। मेरा धर्मोपदेश सुनकर उसने श्रमणोपासक-धर्म स्वीकार र लिया।

असंयमी सहवास के कारण धीरे-धीरे वह अपने संयम में शिथिल होने गा। एक बार निर्जल अठम स्वीकार करके वह पौषधशाला में था। सरे दिन उसे बड़ी प्यास लगी। असंयत तथा आसक्त होने के कारण ह अत्यन्त व्याकुल हो गया। उस समय उसे विचार हुआ कि लोगों को ीने अथवा नहाने के लिए जो बावड़ी, पुष्करिणी अथवा तालाब बनवाता वह धन्य है। दूसरे दिन बड़ी भेंट लेकर वह राजा के पास गया और

उनसे अनुमति लेकर उसने वैभारगिरि के पास समचौरस, बराबर काँठे वाली, अनेक जाति के पुष्पों से सुशोभित, और पुष्पों के गंध से छिके भ्रमर, सारस आदि अनेक जलचरों की आवाजों से गुंजारित एक बड़ी पुष्करिणी बनवायी।

उसके बाद उसके पूर्व दिशा के वनखंड में अनेक स्तम्भों से सुशोभित एक मनोहर चित्रसभा बनवायी। उसे अनेक प्रकार के काष्ठकर्म (दारुमय पुत्रिकादि निर्मापणानि) पुस्तकर्म (पुस्त-वस्त्रं), चित्र, लेप्य, ग्रन्थि आदि से सुशोभित कराया।

उसमें विविध प्रकार के गायक, नट आदि वेतन पर रखे गये थे। राजगृह से यहाँ आने वाले अपने आसन पर बैठे-बैठे इनके नाटक आदि का आनंद लिया करते थे।

उसके दक्षिण दिशा में पाकशाला बनवायी गयी थी। उसमें विविध प्रकार की भोजन-सामग्री तैयार होती। श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, अतिथि लोगों को वहाँ से भोजन मिलता।

पश्चिम के वनखंड में चौकोर, विपुल हवा तथा प्रकाश से युक्त एक बड़ा औषधालय बनवाया। उसमें अनेक वैद्य, तथा वैद्यपुत्र, ज्ञायक (**शास्त्रानध्यायिनोऽपि शास्त्रज्ञ प्रवृत्ति दर्शनेन रोगस्वरूपतः चिकित्सावेदिनः**) ज्ञायकपुत्र, कुशल (**स्ववितर्काच्चिकित्सादि प्रवीणाः**) कुशलपुत्र आने वाले रोगियों के रोगों का निदान करके चिकित्सा करते थे।

उत्तर दिशा में एक बड़ी अलंकारिक सभा (नापितकर्मशाला) बनवायी थी। उसमें अनेक अलंकारिक पुरुष रोक कर रखे गये थे। कितने ही श्रमण, अनाथ, ग्लान, रोगी तथा दुर्बल उस सभा का लाभ उठाते।

अनेक लोग आते-जाते उस पुष्करिणी में नहाते, तथा पानी पीते। राजगृह नगर भर में नंद मणिकार के इस कृति की प्रशंसा करते।

कुछ समय बाद, एक बार नंद मणिकार को सोलह रोगों ने एक साथ आ घेरा—श्वास, कास, ज्वर, दाह, शूल, भगंदर, अर्श, अजीर्ण, नेत्रपीड़ा, मस्तकपीड़ा, अरुचि, आँख-कान की वेदना, खाज, जलोदर, और कुष्ठ[1]। इनसे वह परीशान हो गया। उसकी चिकित्सा के लिए घोषणा की गयी।

घोषणा को सुन कर बहुत से वैद्य, वैद्यपुत्र यावत् कुशलपुत्र हाथ में सत्थकोस (शास्त्र कोशः—क्षुर नखरदनादि भाजनं स हस्ते गतः स्थितो येषां ते तथा, एवं सर्वत्र...) कोसगपाय (कोशक का पात्र), शिलिका (किराततिक्तकादितृण रुपाः प्रतत पाषाणरूपा वा शस्त्र तीक्ष्ण करणार्थाः सिल्ली) लेकर, गोली तथा भेजष, ओषध हाथ में लेकर अपने घर से निकले और नन्द मणिकार के घर पहुँच कर उन लोगों ने नन्द मणिकार

१—आचारांग सूत्र सटीक श्रु० १, अ० ६, उ० १, सूत्र १७३ पत्र २१०-२ में १६ रोगों के नाम इस प्रकार आते हैं:—

१ गंडी अहवा २ कोढी ३ रायंसी ४ अवमारियं।
५ काणियं ६ झिमियं चेव, ७ कुणियं ८ खुज्जियं तहा ॥१४॥
९ उदरिं च पास १० मूयं च, ११ सूणियं च १२ गिलासणिं।
१३ वेवइं १४ पीढ सप्पि च, १५ सिलिवयं १६ महुमेहणिं ॥१५॥

सोलस ए ए रोगा, और 'कुष्ठ' शब्द पर टीका करते हुए शीलांकाचार्य ने लिखा है

'कुष्ठी' कुष्ठमष्टादशभेदं तदस्यास्तीति कुष्ठी, अत्र सप्त महाकुष्ठानि तद्यथा—अरुणोदुम्बर निश्यजिह्वकपाल काकनाद पौण्डरीकदद्रु कुष्ठानीति, महत्त्वं चैषां सर्वधात्वनु प्रवेशादसाध्य त्वाच्चेति, एकादश क्षुद्र कुष्ठानि, तद्यथा स्थूलारुष्क १, महाकुष्ठ २, ककुष्ठ ३, चर्मदल ४, परिसर्प्प ५, विसर्प्प ६, सिध्म ७, विचर्चिका ८, किटिभ ९, पामा १० शतारुक ११ संज्ञानीति, सर्वाण्यप्यष्टादश...

—पत्र २१२-२

का शरीर देखा, रोगी होने के कारण पूछे[1], और फिर उव्वलणेहि (उद्वेलनानि—देहोपलेपन विशेषाः यानि देहाद्धस्तामर्शनेनापनीयमानानि मलादिक मादायो द्वलंतीति) उवट्टणेहिं (उद्वर्त्तनानि—तान्येव विशेष वस्तु लोकरूढ़ि समवसेय), स्नेहपान (द्रव्य विशेष पक्वघृतादि पानानि वमनानि च प्रसिद्धानि), विरेचनानि (अधोविरेकाः) स्वेदनानि (सप्तधान्यकादिभिः), अवदहनानि (दम्भनानि) अपस्नानानि (स्नेहापनयनहेतुद्रव्य संस्कृत जलेन स्नाति), अनुवासनाः (चर्मयंत्र प्रयोगेणापानेन जठरे तैल विशेष प्रवेशनानि), वास्तिक कर्माणि (चर्मवेष्टन प्रयोगेण शिरः प्रभृतीनां स्नेहपूरणानि गुदे वा वर्त्यादि-क्षेपणानि), निरुहा (अनुवासन एव केवलं द्रव्य कृतो विशेषः), शिरोवेधा (नाडी वेधनानि रुधिर मोक्षणानीत्यर्थः), तक्षणानि (त्वचः क्षुरप्रादिना तनूकरणानि) प्रक्षणानि (ह्रस्वानित्वचो विदारणानि) शिरोवस्तयः (शिरसि बद्धस्य चर्मकोशस्य संस्कृत तैलापूर लक्षणोः प्रागुक्तानि वस्ति कर्माणि सामान्यानि अनुवासना निरुह्-शिरोवस्त यस्तु तद्भेदाः) तर्पणानि (स्नेह द्रव्य विशेषैंबृहणानि), पुटपाकः (कुष्ठिकानां कणिकावेष्ठिता नामग्निनापचनानि) अथवा पुटपाकाः पाकविशेष निष्पन्ना औषध विशेषाः), छल्ल्यो (रोहिणी प्रभृतयः), वल्ल्यो (गुड्ची प्रभृतयः) कन्दादीनि (कन्दों से), पत्र से, पुष्प से, फल से, बीज से, शिलिका जाति के तृण

१—णवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ती सिया तं०—अच्चासणाते, अहितासणाते, अतिणिद्दाए, अतिजागरितेण, अच्चारनिरोहेणं, पासवणनिरोहेणं, अद्धाणगमणेणं, भोयणपडिकूलताते, इंदियत्थ विकोवणयाते

ठाणांगसूत्र, ठा० ९ उ० ३, सूत्र ६६७ पत्र ४४६-१

—१ अत्यशन, २ अहिताशन, ३ अतिनिद्रा, ४ अतिजागरण, ५ मूत्रावरोध, ६ मलावरोध, ७ अध्वगमन, ८ प्रतिकूल भोजन ९ कामविकार

से, गोली से, ओपध से, भेपज से रोग दूर करने का प्रयास किया पर निष्फल रहे।

नंदमणिकार का मन अंत समय तक बावड़ी में रहा; अतः मरकर वह उसी बावड़ी में मेंढक हुआ।

पुष्करिणी पर आये लोग नंद की प्रशंसा करते। उसे सुनकर उसे पूर्व-भव का स्मरण हो आया कि श्रमणोपासक-पर्याय शिथिल करने के कारण वह मेढक हुआ। वह पश्चाताप करने लगा और संयम पालने का उसने संकल्प ले लिया तथा अपनी हिंसक प्रवृत्ति बंद कर दी।

एक बार पुष्करिणी में स्नान के लिए आये लोगों के मुख से उसने मेरे आने की बात सुनी और बाहर निकलकर प्लुत गति से मेरी ओर चला।

उस समय श्रेणिक मेरा दर्शन करने आ रहा था। वह श्रेणिक के दल के एक घोड़े के पैर के नीचे दब गया। "श्रमण भगवान् महावीर को मेरा नमस्कार हो", यह उसने अपनी भापा में कहा। अच्छे ध्यान को ध्याते हुए वह मेंढक मर गया। वही दुर्दुर-नामक तेजस्वी देव हुआ।[1]

नंदिनीपिया—भगवान् के १० महाश्रावकों में नवाँ। देखिए तीर्थंकर महावीर भाग २, पृष्ठ ४८८।

पालिय—श्रमण-श्रमणियों के प्रसंग में समुद्रपाल का वर्णन देखिए। उत्तराध्ययन के २१-वें अध्ययन में इसके लिए आता है—

चंपाए पालिए नाम, सावए आसि वाणिए।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥ १ ॥

पुष्कली—देखिए तीर्थंकर महावीर भाग २, पृष्ठ ४९९।

पुष्या—कुण्डकोलिक की पत्नी। देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४६६।

१—पृष्ठ ५.१ पर जिस कुष्ठी का उल्लेख कर आये हैं, वह यही दुर्दुरांक देव था।

फाल्गुनी—सालिहीपिया की पत्नी। देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४८९।

बहुल—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ १९२, भाग २ पृष्ठ ११०।

बहुला—चुल्लशतक की पत्नी—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४६४।

भद्रा—कामदेव की पत्नी—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४५६।

मद्दुक—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २४७

महाशतक—भगवान् के १० मुख्य श्रावकों में आठवाँ। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४८३–४८७।

रेवती—महाशतक की पत्नी—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४८३।

रेवती—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ १३४।

लेप—देखिए, तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ २५२।

विजय—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ १०९।

शंख—श्रावस्ती-नामक नगर में कोष्ठक-चैत्य था। उस नगरी में शंख-प्रमुख बहुत-से श्रमणोपासक रहते थे। उस शंख नामक श्रमणोपासक की उत्पला-नामकी स्त्री थी। वह उत्पला श्रमणोपासिका थी। उसी श्रावस्ती-नगरी में पुष्कली श्रमणोपासक था।

उस समय एक बार भगवान् श्रावस्ती पधारे। भगवान् ने धर्मकथा कही। उसके अन्त में श्रावकों ने भगवान् से प्रश्न पूछे और उनका अर्थ ग्रहण किया।

अंत में शंख-नामक श्रमणोपासक ने सभी श्रमणोपासकों से कहा—"हे देवानुप्रिय! तुम लोग पुष्कल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, आहार तैयार कराओ। हम लोग उनका आस्वाद लेते पाक्षिक पौषध का अनुपालन करते विहार करें।" श्रमणोपासकों ने उसे विनय पूर्वक स्वीकार कर लिया।

फिर शंख को यह विचार आया—"भोजन आदि का स्वाद लेते हुए पोषध स्वीकार करना मुझे स्वीकार्य नहीं है। मैं तो पोषध में ब्रह्मचर्य पूर्वक मणि-स्वर्ण आदि का त्याग कर डाभ का संथारा बिछा कर अकेले पोषध स्वीकार करूँगा।" ऐसा विचार कर अपनी पत्नी की अनुमति लेकर वह पोषधशाला में पाक्षिक पोषध का पालन करने लगा।

अन्य श्रमणोपासकों ने जब सब प्रबंध कर लिया और शंख नहीं आया तो उसे बुलाने का निश्चय किया। पुष्कल बुलाने के लिए शंख के घर गया। शंख के पौषध व्रत ग्रहण करने की बात जानकर वह उस स्थान पर गया जहाँ शंख था। शंख ने उससे कहा—"आप लोग आहार आदि का सेवन करते हुए व्रत करें।"

एक दिन मध्यरात्रि के समय धर्मजागरण करते हुए शंख के मन में विचार हुआ कि, भगवान् का दर्शन करके तब पाक्षिक पोषध की पारणा करूँ। जब वह भगवान् का वंदन करने गया तो धर्मोपदेश के बाद भगवान् ने कहा—"हे आर्यों तुम लोग शंख की निन्दा मत करो। यह शंख श्रमणोपासक धर्म के विषय में दृढ़ है।" इसके बाद गौतम स्वामी ने भगवान् से धर्मजागरण आदि के सम्बंध में प्रश्न पूछे। फिर शंख ने क्रोध, मान आदि के सम्बंध में अपनी शंकाएँ भगवान् से पूछ कर मिटायीं।

जब शंख चला गया तो गौतमस्वामी ने पूछा—"क्या शंख साधु होने में समर्थ है ?" भगवान् ने ऋषिभद्रपुत्र सरीखा ही उत्तर दिया।

इसके सम्बंध में कल्पसूत्र में आता है—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स संख सयगपामोक्खाणं समणोवासगाणं······

—कल्पसूत्र सुबोधिकाटीका सहित सूत्र १३६ पत्र ३५७

इससे स्पष्ट है कि वह कितना महत्वपूर्ण श्रमणोपासक था।

शिवानन्दा—आनंद श्रावक की पत्नी। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, ४२७।

श्यामा—चुलनीपिता की पत्नी। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४५९।

सद्दालपुत्र—भगवान् के १० मुख्य श्रावकों में सातवाँ। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४७०–४८२।

सालिहीपिया—भगवान् के १० मुख्य श्रावकों में दसवाँ। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४८९।

सुदंसण—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४८।

सुनन्द—देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ १०९।

सुरादेव—भगवान् के मुख्य श्रावकों में चौथा। देखिए तीर्थङ्कर महावीर, भाग २, पृष्ठ ४६२।

सुलसा[१]—राजगृह नगरी में श्रेणिक राजा के शासन-काल में नाग-नामक सारथी रहता था। यह नाग सारथी महाराज प्रसेनजित का सम्बंधी था। उसकी पत्नी का नाम सुलसा था। सुलसा शीलादिक गुणों से युक्त थी। पर उसे कोई पुत्र नहीं था। एक दिन पुत्र न होने के कारण नाग को दुःखी देखकर, सुलसा ने कहा—"धर्म की आराधना से हमारा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। इसके लिए आप चिन्ता न करें।" और, वह त्रिकाल पूजा, ब्रह्मचर्य पालन तथा आचाम्ल करने लगी।

उसके इस व्रत को देखकर इन्द्र ने एक बार सुलसा की बड़ी प्रशंसा की। इन्द्र द्वारा ऐसी प्रशंसा सुनकर हरिणेगमेषी दो साधुओं का रूप बना कर सुलसा के घर गया और लक्षपाक तैल माँगा। सुलसा सहर्ष

१—सुलसा की कथा आवश्यक चूर्णि उत्तरार्द्ध पत्र १६४।
भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति पत्र २४८-२—२५५-१।
उपदेशप्रासाद, स्तम्भ ३, व्याख्यान ३६ आदि ग्रंथों में आती है।

तेल ले आयी; पर हरिणेगमेषी ने दैव-शक्ति से तैलपात्र ही तोड़ दिया। इस प्रकार वह तीन पात्र ले आयी और हरिणेगमेषी उनको तोड़ता रहा। इतने पर भी सुलसा की भावना में कोई अंतर न आया जान हरिणेगमेषी ने प्रसन्न होकर ३२ गोलियाँ दीं और कहा कि एक गोली खाना इससे तुम्हें एक पुत्र होगा। सुलसा ने सोचा कि ३२ बार गोली खाने से ३२ बार पुत्र-प्रसव का कष्ट उठाना पड़ेगा। अतः यदि सब गोली एक साथ ही खा जायें तो ३२ लक्षणों वाला पुत्र होगा। ऐसा विचार कर सुलसा ने कुल गोलियाँ एक साथ खा लीं। इससे उसके गर्भ में ३२ पुत्र आये। गर्भ में इतने पुत्र आने से उसे भयंकर पीड़ा हुई। कायोत्सर्ग कर पुनः सुलसा ने हरिणेगमेषी का आह्वान किया। हरिणेगमेषी ने अपने देवबल से सुलसा की पीड़ा तो दूर कर दी पर कहा कि, ये सभी बच्चे समान आयुष्य वाले होंगे।

कालान्तर में सुलसा के ये ३२ पुत्र श्रेणिक के अंगरक्षक बने। श्रेणिक जब चेल्लणा का अपहरण करने गया था, उसमें ये सुलसा के ये ३२ पुत्र मारे गये।

एक बार अंबड जब राजगृह आ रहा था, तो भगवान् ने सुलसा को धर्मलाभ कहलाया। सुलसा के धर्म की परीक्षा लेने के लिए अंबड ने नाना प्रपंच रचे पर सुलसा उसे वंदन करने नहीं गयी। अंत में पाँचवें दिन सुलसा के घर आकर अंबड ने भगवान् का संदेश दिया।

यह सुलसा मृत्यु के समय भगवान् महावीर का स्मरण करती रही। अतः वह स्वर्ग गयी और वहाँ से च्यवकर वह अगली चौबीसी में १५-वाँ तीर्थङ्कर होगी।[1]

—:०:—

भगवान् महावीर
के
भक्त राजे

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएणं, रोगेणाऽऽलस्सएण य ॥३॥

[उत्तरा० अ० ११ गा० ३]

इन पाँच कारणों से मनुष्य सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता:—
अभिमान से, क्रोध से, प्रमाद से, कुष्ठ आदि रोग से, और आलस्य से।

भक्त राजे

अदीनशत्रु[1]

भगवान् महावीर के समय में हस्तिशीर्ष[2]-नामक नगर में अदीनशत्रु-नामक राजा राज्य करता था। उसे १००० रानियाँ थीं; जिनमें धारिणी देवी मुख्य थी। धारिणी देवी ने एक दिन स्वप्न में सिंह देखा। समय आने पर उन्हें पुत्र प्राप्ति हुई। उसका नाम सुबाहु रखा। (सुबाहु के जन्म की कथा मेघकुमार के सदृश जान लेनी चाहिए)

यह सुबाहुकुमार जब युवा हुआ तो उसका विवाह हुआ। सुबाहु-कुमार के ५०० पत्नियाँ थीं; जिनमें पुष्पचूला प्रमुख थी (सुबाहु-कुमार के विवाह का प्रसंग महाबल के विवाह के अनुसार जान लेना चाहिए)

एक बार भगवान् महावीर विहार करते हुए हस्तिशीर्ष-नामक नगर में आये। उस नगर के उत्तर-पूर्व दिशा में पुष्पकरंडक-नाम का एक रमणीय उद्यान था। उस उद्यान में कृतवनमालप्रिय-नाम के एक यक्ष का बड़ा सुन्दर यक्षायतन था।

भगवान् के आने का समाचार सुनकर राजा अदीनशत्रु कूणिक की भाँति वंदन करने और धर्मोपदेश सुनने गया। उनका पुत्र सुबाहुकुमार भी जमालि के समान रथ से गया। परिषद और धर्मकथा सुनकर सब चले गये। सुबाहुकुमार ने पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत ग्रहण कर लिये।

१—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० २, अ० १, पृष्ठ ७५-७८।

२—इस नगर में भगवान् अपने छद्मस्थ काल में भी जा चुके थे। हमने इसका उल्लेख अपने इसी ग्रन्थ के भाग १, पृष्ठ २२४ पर किया है।

कालान्तर में एक बार मध्यरात्रि में धर्मजागरण जागते हुए सुबाहु-कुमार के मन में यह संकल्प उठा कि वे नगर आदि धन्य हैं जहाँ भगवान् महावीर विचरते हैं और वे राजा आदि धन्य हैं जो भगवान् के पास मुंडित होते हैं। यदि भगवान् यहाँ आयें तो मैं उनसे प्रव्रज्या लूँ।

सुबाहुकुमार के मन की बात जान कर भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए हस्तिशीर्ष-नामक नगर में आये और पुष्पकरंडक-नामक उद्यान के यक्षायतन में ठहरे। फिर राजा वंदन करने गये। सुबाहुकुमार भी गया। धर्मोपदेश सुनकर सुबाहुकुमार ने प्रव्रज्या लेने की अनुमति माँगी। मेघ-कुमार की तरह उसका निष्क्रमण-अभिषेक हुआ और उसके बाद उसने प्रव्रज्या ले ली।

साधु होकर सुबाहुकुमार ने एकादशादि अंगों का अध्ययन किया तथा उपवास आदि अनेक प्रकार के तपों का अनुष्ठान किया। बहुत काल तक श्रामण्यपर्याय पाल कर एक मास की संलेखना से अपने आपको आराधित कर २६ उपवासों के साथ आलोचना और प्रतिक्रमण करके आत्म-शुद्धि द्वारा समाधि प्राप्त कर काल को प्राप्त हुआ।

अप्रतिहत[1]

सौगंधिका-नाम की नगरी थी। उसमें नीलाशोक-नामक उद्यान था। उसमें सुकाल नामक यक्ष का स्थान था।

उस नगरी में अप्रतिहत नामक राजा का राज्य था। सुकृष्णा उसकी मुख्य देवी थी। तथा महाचन्द्र उनका कुमार था। (महाचंद्र के जन्म, शिक्षा-दीक्षा, विवाह आदि का विवरण सुबाहु-सरीखा जान लेना चाहिए।)

भगवान् महावीर के सौगंधिका आने पर अप्रतिहत राजा भी वंदन आदि के लिए समवसरण में गया (पूरा विवरण अदीनशत्रु-सा ही है)

१—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० २, अ० ५, पृष्ठ ८२।

महाचन्द्र ने पहले श्रावक-धर्म स्वीकार किया और बाद में भगवान् के सम्मुख प्रव्रजित हुआ।

अर्जुन[1]

सुघोस-नामक नगर था। देवरयण उद्यान था। उसमें वीरसेन-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस नगर में अर्जुन नामक राजा था। तत्त्ववती उसकी रानी थी। भद्रनन्दी उनका कुमार था।

उस नगर में भगवान् महावीर के आने आदि तथा सभा आदि का विवरण अदीनशत्रु के समान ही है।

भद्रनन्दी कुमार ने सुबाहु के समान पहले श्रावक-धर्म स्वीकार किया और फिर बाद में साधु हो गया।

अलक्ख

भगवान् महावीर के काल में वाराणसी-नगरी में अलक्ख[2] नाम का राजा राज्य करता था। वाराणसी नगर के निकट काम महावन[3] नाम का चैत्य था।

एक बार भगवान् महावीर विहार करते हुए वाराणसी आये। भगवान् महावीर के आने का समाचार अलक्ख को मिला। समाचार सुनकर

१—विपाक सूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० २, अ० ८ पृष्ठ ८२।

२—'अलक्ख' का संस्कृत रूप 'अलक्ष्य' होगा। देखिए अल्पपरिचितसैद्धांतिक शब्द कोष, पृ. ८९।

३—वाणारसीए नयरीए काममहावणे चेइए।

—अंतगडदसाओ, एन० वी० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ ३७।

इस काम महावन का उल्लेख भगवती सूत्र शतक १५ उ० १ में भी आता है—

वाराणसीए बहिए काम महावणंसि चेइयंसि।

अलक्ख भगवान् का उपदेश सुनने गया। भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर अलक्ख ने गृहस्थ-जीवन का परित्याग करने का निश्चय कर लिया और अपने ज्येष्ठ पुत्र को गद्दी पर बैठाकर स्वयं साधु हो गया। साधु होकर उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। वर्षों तक साधु-जीवन व्यतीत किया और विपुल-पर्वत पर निर्वाण को प्राप्त किया।

यह विपुल-पर्वत राजगृह के निकट था। भगवतीसूत्र में पाठ आया है।

रायगिहे नगरे समोसरणं ··· विपुलं पव्वयं[1]।

जैन-ग्रन्थों में राजगृह के निकट पाँच पर्वतों का उल्लेख मिलता है १ विभारगिरि, २ विपुलगिरि, ३ उदयगिरि, ४ स्वर्णगिरि, ५ रत्नगिरि मेघविजय उपाध्याय रचित दिग्विजय-महाकाव्य में आता है :—

वैभार रत्न विपुलोदयहेम शैलैः।[2]

अकबर ने ७—वीं माह उरदी बहेस मुताबिक माह रबीउलअव्वल सन् ३७ जुलूसी को एक फरमान श्री हीरविजय सूरि के नाम दिया था। उसमें दो स्थानों पर 'राजगृह के पाँचो पर्वत' उल्लेख आया है।[3]

उद्रायण

भगवान् महावीर के काल में सिंधु-सौवीर देश में उद्रायण-नामक राजा राज्य करता था। उसकी राजधानी वीतभय थी।

जैन-ग्रंथों में तो सर्वत्र सिन्धु-सौवीर की राजधानी वीतभय ही बतायी गयी है, पर आदित्त-जातक (जातक हिन्दी अनुवाद, भाग ४; पृष्ठ १३९) में सिंधु-सौवीर की राजाधानी रोरुवा (अथवा रोरुव) दिया है। ऐसा ही

१—भगवतीसूत्र (बेचरदास-सम्पादित) शतक २, उद्देशा १, पृष्ठ २४२—२४८

२—मेघविजय उपाध्याय रचित दिग्विजय महाकाव्य, पृष्ठ १३०।

३—जैनतत्त्वादर्श [illegible]

उल्लेख दिव्यावदान (पृष्ठ ५४४) तथा महावस्तु (जोंस-अनूदित, भाग ३, पृष्ठ २०४) में भी है।

डाक्टर जगदीशचन्द्र जैन ने (लाइफ इन ऐंशेंट इंडिया, पृष्ठ ३०२) वीतभय का दूसरा नाम कुंभारपक्खेव माना है और प्रमाण में आवश्यक चूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र ३७ दिया है। आवश्यकचूर्णि में धूल वाले प्रसंग में आता है।

सिणवल्लीए कुंभारपक्खेत्रं नाम पट्टणं तस्स नामेणं जात।

यहाँ सिणवल्ली शब्द की ओर डाक्टर महोदय ने ध्यान नहीं दिया। उद्रायण राजा की कथा उत्तराध्यन के १८-वें अध्याय में भी आयी है। वहाँ धूल की वृष्टि वाले प्रसंग में आता है :—

सो य अवहरितो अणवराहि त्ति काउं सिणवल्लीए।
कुम्भकारवेक्खो नाम पट्टणं तस्स नामेणं कयं॥

—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, पत्र २५५-२।

शय्यातरं मुनेस्तस्य कुम्भकारं निरागसम्।
सा सुरी सिनपल्यां प्राग निन्मे हृत्वा ततः पुरः॥ २१८॥
तस्य नाम्ना कुम्भकार कृतमित्याह्वयं पुरम्।
तत्र सा विदधे किं वा दिव्य शक्तेर्न गोचरः॥ २१९॥

—उत्तराध्यन भावविजय की टीका, पत्र ३८७-२।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि, देव ने उपद्रव द्वारा वीतभय नष्ट करने के पश्चात शय्यातर कुम्भकार को सिणवल्ली पहुँचा दिया और सिणवल्ली का नाम कुम्भारपक्खेव पड़ा न कि वीतभय का।

बहुत से स्थलों पर भूल से अथवा अज्ञानवश वीतमय के इस राजा का नाम उदायन मिलता है। पर, उसका सही नाम उद्रायण था। मेरे पास हरिभद्र की टीका सहित आवश्यक-निर्युक्ति की एक हस्तलिखित प्रति है। उसमें भी उद्रायण ही लिखा है। उद्रायणावदान तिब्बती मूल के साथ जोहानेस नोबेल का जर्मन अनुवाद प्रकाशित हुआ है। उसमें भी राजा

का नाम उद्रायण ही दिया है (खंड २, पृष्ठ ८४)। बौद्ध-ग्रंथों में इसका नाम रुद्रायण मिलता है।

यह उद्रायण वीतभय इत्यादि ३६३ नगरों और खानों तथा सिंधु-सौवीर आदि १६ देशों का पालन करने वाला था। महासेन (चंडप्रद्योत) आदि १० महापराक्रमी मुकुटधारी राजा उसकी सेवा में रहते थे।[1]

उनकी पत्नी का नाम प्रभावती था। वह वैशाली के राजा महाराज चेटक की पुत्री थी।[2]

उद्रायण को प्रभावती से एक पुत्र था। उसका नाम अभीचि था। तथा राजा की बहन का एक लड़का था, उसका नाम केशी था।[3]

राजा उद्रायण की पत्नी श्राविका थी।[4] पर उद्रायण स्वयं तापसों का भक्त था।[5]

१—से णं उदायणे राया सिंधुसोवीरप्पमोक्खाणं सोलसण्हं जणवयाणं वीतीभयप्पामोक्खाणं तिण्हं तेसट्ठीणं नगरागर सयाणं महसेणप्पमोक्खाणं दसण्हं राईणं बद्धमउडाणं—भगवतीसूत्र सटीक, शतक १३, उद्देसा ६, पत्र ११३५।

ऐसा ही उल्लेख उत्तराध्ययन नेमिचन्द्राचार्य की टीका सहित (पत्र २५२-१), आदि अन्य ग्रंथों में भी मिलता है।

२—उत्तराध्ययन भावविजय गणि की टीका, अ० १८, श्लोक ५, पत्र ३८०-१ —आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध पत्र १६४

३—उत्तराध्ययन भावविजय की टीका, अ० १८, श्लोक ६ पत्र ३८०-१।

४—(अ) तस्य प्रभावती राज्ञी, जज्ञे चेटकराट्सुता।
बिभ्रती मानसे जैनं········ ॥ ५ ॥
—उत्तराध्ययन, भावविजय की टीका, अ० १८, श्लोक ५, पत्र ३८०।

(आ) उद्दायणस्स रन्नो महादेवी चेडगराय धूया समणोवासिया पभावई
—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्राचार्य की टीका सहित, पत्र २५३-१।

(इ) प्रभावती देवी समणोवासिया।
—आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध पत्र ३९९।

५—उद्दायण राया तावस भत्तो—आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र ३९९।

राजा उद्रायण के पास विद्युन्माली-नामक एक देव की बनायी हुई तथा उसी द्वारा भेजी हुई गोशीर्ष चंदन की एक भगवान् महावीर की एक प्रतिमा थी। राजा ने अंतःपुर में चैत्य-निर्माण करके उसमें उस प्रतिमा को स्थापित करा दिया था।[1] रानी प्रभावती त्रिसंध्या उसकी पूजा किया करती थी।[2] रानी प्रभावती की मृत्यु के बाद राजा की एक कुब्जा दासी उस मूर्ति की पूजा करने लगी। इसी दासी को चंड-प्रद्योत हर ले गया। जिसके कारण चंडप्रद्योत और उद्रायन में युद्ध हुआ। उसका सविस्तार विवरण हमने चंडप्रद्योत के वर्णन में दे दिया है।

राजा उद्रायण की पत्नी मर कर देवलोक में गयी और बाद में उसने राजा उद्रायण की निष्ठा श्रावक-धर्म में दृढ़ की।[3]

एक बार राजा ने पोषधशाला में जाकर पौषध किया। वहाँ रात्रि में धर्म-जागरण करता हुआ राजा को विचार हुआ कि—"वह नगर ग्राम आकार आदि धन्य हैं, जिन्हें वर्धमान स्वामी अपने चरण-रज से पवित्र करते हैं। यदि भगवान् के चरण से वीतभय पवित्र हो, तो मैं दीक्षा ले लूँ।"

उसके विचार को जानकर भगवान् ने विहार किया और अनु-क्रम से विहार करते वीतभयपत्तन के उद्यान में ठहरे। प्रभु का आगमन जानकर उद्रायण भगवान् के पास वंदना करने गया। वंदना करके उसने भगवान् से विनती की—"जब तक अपने पुत्र को राज्य सौंप कर दीक्षा लेने न आऊँ तब तक आप न जाइये।"

भगवान् महावीर ने कहा—"पर इस ओर प्रमाद मत करना।" लौटकर राजा आया तो उसे विचार हुआ कि, यदि मैं अपने पुत्र को राज्य दूँगा तो वह राज्य में ही फँसा रह जायेगा और चिरकाल तक भवभ्रमण

१—उत्तराध्ययन भावविजय की टीका, अ० १८, श्लोक ८४, पत्र ३८३-१।

२—वही, श्लोक ८५।

३—आवश्यक चूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र ३९९।

करता रहेगा। इस विचार से उसने अपने पुत्र को राज्य न देकर अपनी बहन के लड़के केसी को राज्य दे दिया। और, स्वयं उत्सव पूर्वक जाकर उसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। बाद में एक उपवास से लेकर एक महीने तक के उपवासों तक का कठिन तप किया।[1] उस समय राजा काया के शोषण करने का विचार करने लगा।

बचाखुचा और रूखा-सूखा आहार करने से एक बार वह बीमार पड़ गया। उस समय वैद्यों ने उसे दही खाना बताया। इस पर राजा गोकुल में विहार करने लगा; क्योंकि अच्छा दही मिलना वहीं सम्भव था।

एक बार उद्रायण विहार करते हुए वीतभय में आया। केशी राजा के मंत्रियों ने केशी राजा को बहकाया कि उद्रायण उसका राज्य छीनने की इच्छा से आया है। दुर्बुद्धि केशी उनके कहने में आ गया और विषमिश्रित भात उद्रायण को खाने के लिए दिया। कई बार एक देवीने उसका विष निकाल लिया। पर एक बार राजा विष खा ही गया। जब उद्रायण को विष खा जाने का ज्ञान हुआ तो समताभाव से उसने एक मास का अनशन किया और समाधि में रहकर केवलज्ञान पाकर मोक्ष गया।

राजा के मुक्ति पाने से देवी अत्यन्त क्रुद्ध हुई। उसने धूल की वर्षा की और वीतभय को स्थल बना दिया। एक मात्र कुंभार जो उद्रायण का शैयातर था निर्दोष था। उसे देवी सिनपल्ली में ले गयी एक मात्र वही जीवित था। अतः उसके ही नाम पर उस जगह का नाम कुम्भकारपक्खेव पड़ा।[2]

१—चउत्थ-छट्ठ-अट्ठम-दसम-दुवालस-मासद्ध-मासाईणि तवोकम्माणि कुव्वमाणे विहरइ।

—उत्तराध्ययन नेमिचंद्र टीका, पत्र २५५-१

चउत्थ = १ उपवास, छट्ठ = २ उपवास, अट्ठम = ३ उपवास, दसम = ४ उपवास दुवालस = ५ उपवास, मासद्ध = १५ उपवास, मासाईणि = १ मास का उपवास।

२—संस्कृत में इसका नाम कुम्भाकरकृत मिलता है।

उत्तराध्ययन भावविजय की टीका १८ अध्ययन श्लोक २१६ पत्र ३८७-२; ...ण्डलप्रकरणवृत्ति, पत्र १६३-१

कनकध्वज

श्रमण-श्रमणियों के प्रकरण में तेतलीपुत्र का प्रसंग देखिए (पृष्ठ ३४०)।

करकंडू

प्रत्येक बुद्धवाले प्रकरण में देखिए (पृष्ठ ५५७–५६३)।

कूणिक

कूणिक के पिता का नाम श्रेणिक और माता का नाम चेल्लणा था। यह चेल्लणा वैशाली के महाराज चेटक की पुत्री थी।[1] इसके वंश आदि के सम्बन्ध में हमने श्रेणिक-भंभासार के प्रकरण में विशेष विवरण दे दिया है, अतः हम उसकी यहाँ पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते।

इसका नाम कूणिक पड़ने का कारण यह था कि, जब इसका जन्म हुआ तो इसे अपशकुन वाला पुत्र मान कर इसकी माता चेल्लणा ने इसे नगर के बाहर फिंकवा दिया। यहाँ कुक्कुट के पंख से इसकी कानी उंगली में जख्म हो गया। इस जख्म के ही कारण ही इसका नाम कूणिक पड़ा। जैन-ग्रन्थों में इसका दूसरा नाम अशोकचन्द्र मिलता है।[2] यह कूणिक शब्द 'कूणि' से बना है। कूणि का अर्थ (ह्विटलो) उंगली का जख्म होता है।[3]

१—निरयावलिया (पी० एल० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ २२) में महाराज चेटक के मुख से कहलाया गया है:—

राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते, चेल्लणाए देवीए अत्तए, मम नत्तुए...

२—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध पत्र १६७ (मूल पाठ के लिए देखिए श्रेणिक भंभासार का प्रसंग)। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ३०९ (पत्र ८१-२) में स्पष्ट आता है:—

रूढ़ व्रणापि सा तस्य कूणिताभवदंगुलिः।
ततः सपांशुरमणैः सोऽभ्यधीयत कूणिकः॥

३—आप्टेज संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी, भाग १, पृष्ठ ५८०

बौद्ध-ग्रन्थों में इसी राजा का उल्लेख अजातशत्रु नाम से है।[1] बहुत दिनों तक लोग अजातशत्रु ही उसका मूल नाम मानते रहे। परन्तु अब पुरातत्व द्वारा सिद्ध हो चुका है कि, उसका मूल नाम कूणिक ही था[2] और यहाँ यह कह देना भी अप्रसांगिक न होगा कि यह कूणिक नाम केवल जैन ग्रन्थों में ही मिलता है। अन्यत्र उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

परिवार

जैन-ग्रन्थों में इसकी तीन रानियों के उल्लेख मिलते हैं :—

पद्मावती,[3] धारिणी[4] और सुभद्रा[5]। आवश्यकचूर्णि में उल्लेख है

१—डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग १, पृष्ठ ३१

२—मथुरा-संग्रहालय में कूणिक की एक मूर्ति है। उस पर शिलालेख भी है। उसमें लिखा है:

निद्भप्र सेनि अज (।) सत्रु राजो (सि) रि
कूणिक शेवासिनागो मागधानाम् राजा

"श्रेणि के वंशज अजातशत्रु कूणिक शेवासिकनाग मागधों के राधा की मृत्यु हुई"

"२४ [वर्ष] ८ [महीना] [राज्यकाल ?]

विशेष विवरण के लिए देखिए 'जनरल आव बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी वाल्यूम ५, भाग ४, पृष्ठ ५५०-५५१ [दिसम्बर १९१९]

३—**तस्स णं कूणियस्स रन्नो पउमावई नामं देवी होत्था......**

—निरयावलिया (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) सूत्र ८, पृष्ठ ४ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ३१४ पत्र ८२-१ में भी उसका उल्लेख है।

४—**ओववाइयसुत्त सटीक (सूत्र ७, पत्र २३) में आता है**
तस्स णं कोणियस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था......

५—ओववाइयसुत्त सटीक, सूत्र ३३, पत्र १४४

कूणिक

(मथुरा-संग्रहालय में संगृहीत एक मूर्ति)

इस पर शिलालेख है :—

(दाहिनी ओर) निभद प्र सेनी अज[ा] सत्तु राजो [सि] र [ी]

(सामने) ४,२० (य) १० (ड) - ८ (ही या ह्री)

कूणिक सेवासि नागो मागधानाम् राजा

—जर्नल आव बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी खंड ५, अंक ४

कि कूणिक ने ८ राजाओं की कन्याओं से विवाह किया था, परन्तु वहाँ उनके नाम अथवा वंश का उल्लेख नहीं है।[1]

पद्मावती का ही पुत्र उदायी था,[2] जो कूणिक के बाद मगध के सिंहासन पर बैठा और इसी ने अपनी राजधानी चम्पा से हटाकर पाटलिपुत्र बनायी[3]।

राज्यारोहण

कूणिक के राज्यारोहण की और श्रेणिक की मृत्यु की तथा राजधानी के परिवर्तन की कथा हम श्रेणिक के प्रसंग में लिख आये हैं। अतः हम उसकी पुनरावृत्ति नहीं करेंगे।

कूणिक और भगवान् महावीर

यह कूणिक भगवान् महावीर का पक्का भक्त था। उसने अपने यहाँ एक ऐसा विभाग ही खोल रखा था, जो नित्य प्रति का भगवान् का समाचार कूणिक को सूचित करता रहता था। औपपातिकसूत्र सटीक, सूत्र ८, पत्र २४-२५ में पाठ आता है—

तस्स णं कोणिअस्स रण्णो एक्के पुरिसे विउलकय वित्तिए भगवओ पवित्तिवाउए भगवओ तद्देवसिअं पवित्तिं णिवेएइ, तस्स णं पुरिसस्स बहवे अण्णे पुरिसा दिण्णभतिभत्तवेअणा भगवओ पवित्तिवाउआ भगवओ तद्देवसियं पवित्तिं णिवेदेंति ॥

इसकी टीका अभयदेव सूरि ने प्रकार की है :—

१—अण्णदा कूणियस्स अट्ठहिं रायवर कण्णाहिं समं विवाहो कतो।
—आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र १६७

२—अण्णदा कदाइ पउमावतीए पुत्तो उदायी
—आवश्यकचूर्णि उत्तरार्ध, पत्र १७७

३—आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र १७७

'तस्सण' मित्यादौ 'विउलकयवित्तिए' त्ति विहितप्रभूत जीविक इत्यर्थः, वृत्तिप्रमाणं चेदम्—अर्द्धत्रयोदशरजतसहस्राणि, यदाह—"मंडलियाण सहस्सा पीईदाणं सयसहस्सा।" 'पवित्तिवाउए' त्ति प्रवृत्तिव्यापृतो वार्ताव्यापारवान्, वार्तानिवेदक इत्यर्थः। 'तद्देवसिअं' ति दिवसे भवा दैवसिकी सा चासौ विवक्षिता—अमुत्र नगरादावागतो विहरति भगवानित्यादिरूपा, दैवसिकी चेति तद्दैवसिकी, अतस्तां निवेदयति। 'तस्स ण' मित्यादि अत्र 'दिण्णभतिभत्तवेयण' त्ति दत्तं भृतिभक्तरूपं वेतनं—मूल्यं येषां ते तथा, तत्र भृतिः—कार्षापणादिका भक्तं च—भोजनमिति।

—औपपातिकसूत्र सटीक, पत्र २५

—उस कूणिक राजा के यहाँ एक ऐसा पुरुष नियुक्त था, जिसे राजा (कूणिक) की ओर से बड़ी आजीविका मिलती थी। 'भगवान् कब कहाँ से विहार कर किस ग्राम में समवसृत हुए हैं, इस समाचार को जानने के लिए वह नियुक्त किया गया था। तथा भगवान् के दैनिक वृतांत का भी अर्थात् आज दिन भगवान् इस नगर से विहार कर इस नगर में विराज रहे हैं, इस प्रकार की उनकी दैनिक विहार-वार्ता का भी ध्यान रखता था। यह वृतांत राजा के निकट निवेदन करता था।

वैशाली से युद्ध

भंभासार ने अपने जीते ही जी सेचनक हाथी,[1] तथा देवदिन्न

१—सेचनक हाथी का वृतान्त उत्तराध्ययनसूत्र नेमिचन्द्राचार्य की टीका पत्र [illegible] (अध्ययन १ गाथा १८ की टीका) में दिया गया है।

हार[1] हल और विहल्ल को दे दिये थे।[2] इस सेचनक हाथी और देव-प्रदत्त हार का मूल्य श्रेणिक के पूरे राज्य के बराबर था।[3]

जब कूणिक चम्पा में राज्य कर रहा था, तो उस समय एक बार उसका भाई विहल्ल सेचनक हाथी पर बैठकर अपनी पत्नियों के साथ गंगा नदी में स्नान करने गया।[4] उसका वैभव देखकर कूणिक की रानी पद्मावती ने कूणिक से कहा—"हे स्वामिन्, विहल्ल कुमार सेचनक हाथी के द्वारा अनेक प्रकार की क्रीड़ा करता है। यदि आपके पास गंध-हस्ति नहीं है तो इस राज्य से क्या लाभ ?"

कूणिक ने पद्मावती को बहुत समझाने की चेष्टा की; परन्तु पद्मावती अपने आग्रह पर अटल रही और कूणिक को ही उसके आगे झुकना पड़ा। कूणिक ने हल्ल-विहल्ल से हाथी और हार माँगे। भय वश दोनों भाई अपने नाना चेटक के पास चले गये। कूणिक ने चेटक के पास दूत भेजकर अपने भाइयों को वापस भेजने को कहा। चेटक ने इनकार

१—हार की उत्पत्ति की कथा निरयावलिकासूत्रम् सटीक (आगमोदय समिति) पत्र ५-१ में उपलब्ध है।

२—हल्लस हत्थी दिन्नो सेयणगो, विहल्लस्स देवदिन्नो हारो.........

निरयावलिका सटीक पत्र ५-१

३—किरजावतियं रज्जस्स मोल्लं तावतियं देवदिण्णस्स हारस्स सेतणगस्स.........

—आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र १६७

४—तए णं से वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गंधहत्थिणा अन्तेउर परियाल संपरिवुडे चंपं नगरिं मज्झमज्झेणं निग्गच्छइ। २ अभिक्खणं २ गंगं महाणइं मज्जणयं ओयरइ,

—निरयावलिया (गोपाणी-सम्पादित) पृष्ठ १६

कर दिया। इस पर कूणिक ने युद्ध के लिए तैयार होने का संदेश भेजा। महाराज चेटक भी तैयार हो गये।

अतः कूणिक अपने कालकुमार आदि दस भाइयों[1] को लेकर सेना सहित वैशाली की ओर चल पड़ा। चेटक ने भी अपने साथी राजाओं को बुलाया।[2]

पहले दिन कालकुमार तीन हजार हाथी, तीन हजार रथ, ३ हजार अश्व और तीन करोड़ मनुष्य को लेकर गरुड़-व्यूह की रचना कर युद्ध में उतरा।[3] चेटक प्रतिपन्न-व्रत के कारण दिन में एक ही वाण चलाते थे और वह वाण अचूक होता था।[4]

प्रथम दिन के युद्ध में कालकुमार काम आया। इसी प्रकार अगले ९ दिन में १ सुकाल, २ महाकाल, ३ कृष्णकुमार, ४ सुकृष्ण, ५ महाकृष्ण, ६ वीरकृष्ण, ७ रामकृष्ण, ८ पितृसेनकृष्ण ९ पितृमहासेणकृष्ण राजकुमार काम आये।[5]

१—दस भाइयों के नाम के लिए देखिए श्रेणिक का प्रकरण। उसमें कालादि १० पुत्रों के नाम दिये हैं।

२—भगवतीसूत्र शतक ७, उद्देसा ६ [सटीक, पत्र ५७६] में उस युद्ध के दोनों पक्षों के नाम इस प्रकार दिए हैं:—

विदेहपुत्ते जइत्था, नव मल्लई, नवलेच्छई काशी कोसलगा अट्ठारसवि गणरायाणो पराजइत्थो ...."

३—निरयावलिकासूत्र सटीक, पत्र ६-१

४—चेटक राजस्य तु प्रतिपन्न व्रतत्वेन दिन मध्ये एकमेव शरं मुञ्चति अमोघ वाणश्च

—निरयावलिकासूत्र सटीक, पत्र ६-२

५—निरयावलिका सटीक पत्र ६-१

चेटक राजा को जीतने के लिए कूणिक ने ११-वें दिन अट्ठम तप किया। इससे शक्र और चमरेन्द्र कूणिक के पास आये।[1] उनसे कूणिक ने चेटक को पराजित करने की बात कही, तो शक्र ने कहा—"चेटक श्रावक है। मैं उसे मार नहीं सकता। पर, तुम्हारी रक्षा अवश्य कर सकता हूं।" ऐसा कह कर कूणिक की रक्षा के लिये शक्र ने उसे एक अभेद्य कवच दिया और चमरेन्द्र ने महाशिलाकंटक और रथ मुशल-युद्ध की विकुर्वणा की।[2]

इन्द्रों की इस प्रकार की सहायता का उल्लेख भगवतीसूत्र (सटीक) शतक ७, उद्देशः ९ सूत्र ३०१ पत्र ५८४ में भी आता है। वहाँ उसका कारण भी दिया है:—

गोयमा सक्के देवराया पुव्वसंगतिए, चमरे असुरिंदे असुर कुमार राया परियाय संगतिए।[3]

—गौतम ! शक्र कूणिक राजा का पूर्वसांगतिक (पूर्वभव) का मित्र था और असुरकुमार (चमरेन्द्र) कूणिक का पर्याय संगतिक (तापस-जीवन का) मित्र था।[4]

१—निरयवलिका सटीक, पत्र ६–१

२—निरयावलिका सटीक (आगमोदय समिति] पत्र ६–१

३—शक्रेन्द्रस्य कूणिक राजा पूर्व्वसङ्गतिकश्चमरेन्द्रस्य च प्रव्रज्या-सङ्गतिकः प्रतिप्रादितोऽस्ति तत्कथं मिलति इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सौधर्म्मे-न्द्रस्य कार्तिक श्रेष्ठिभवे कूणिकराज्ञो जीवो गृहस्थत्वेन मित्रमस्तीति तेन पूर्व्वसङ्गतिकः, चमरेन्द्रस्य तु पूरणतापस भवे कूणिक जीवः तापसत्वेन मित्रं तेन पर्यायसङ्गतिकः कथितोऽस्तीति श्री भगवती सूत्र सप्तमशतक नवमोद्देशक वृत्तौ इति बोध्यम् ॥

—प्रश्नरत्नाकराभिधः श्री सेन प्रश्नः (दे० ला०) पत्र १०३-१।

४—कूणिक के पूर्व भव का वृतांत आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र १६६ में दिया है।

महाशिलाकंटक और रथमुशल की परिभाषा भवगतीसूत्र में इस प्रकार दी गयी है।

गोयमा! महासिलाकंटए णं संगामे वट्टमाणे जे तत्थ आसे वा हत्थी वा जोहे वा सरही वा तणेण वा पत्तेण वा कट्ठेण वा सकराया वा अभिहम्मति सव्वे से जाणए महासिलाए अहं म० २, से तेणट्ठे णं गोयमा महासिलाकंटए।[1]

—हे गौतम! इस संग्राम में घोड़ा, हाथी, योद्धा और सारथियों को तृण, काष्ठ, पत्ते से मारा जाये तो उसे लगे कि उस पर महाशिला गिरायी गयी है।

और, रथमुशल की परिभाषा निम्नलिखित रूप में दी गयी है:—

गोयमा! रहमुसले णं संगामे वट्टमाणे एगे रहे अणासए असारहिए अणारोहए समुसले महया २ जणक्खयं जणवहं जणप्पमद्दं जणसंवट्टकप्पं रुहिरकद्दमं करेमाणे सव्वओ समंता परिधावित्था से तेणट्ठेणं जाव रहमुसले संगामे।[2]

—अश्वरहित, सारथिरहित, योद्धारहित मुसलसहित एक रथ विकराल जनसंहार करे, जनवध करे, जनप्रमर्दन करे और जलप्रलय करे और उनको रुधिर के कीचड़ में करता हुआ चारो ओर दौड़े, ऐसे युद्ध को रथमुसल संग्राम कहते हैं।

इन दोनों युद्धों का विस्तृत विवरण भगवतीसूत्र शतक ७ उद्देशा ९ में आता है।[3]

इस युद्ध के बीच में ही एक दिन आकाशवाणी हुई कि, जब तक मागधिका वेश्या कूलवालक[4] को न लायेगी, विजय असम्भव है। मागधिका

१—भगवती सूत्र सटीक, सूत्र २९९ पत्र ५७८।

२—भगवतीसूत्र सटीक, सूत्र ३००, पत्र ५८४

३—भगवतीसूत्र सटीक पत्र ५७५-१ से ५९१ तक

४—कूलवालक की कथा उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका, अध्ययन १, पत्र २-१ में विस्तार से आयी है।

वेश्या श्राविका का रूप बनाकर गयी और कूलवालक को अपने जाल में फँसाकर वैशाली ले आयी। नैमित्तिक का वेश धर कर कूलवालक वैशाली में गया। वहाँ उसने सुव्रतस्वामी का स्तूप देखा, जिसके प्रभाव से वैशाली का पतन नहीं होता था। लड़ाई से आजिज़ आ कर लोगों ने छद्म वेश धारी कूलवालक से घेरा टूटने की तरकीब पूछी, तो कूलवालक ने कहा जब तक यह स्तूप न टूटेगा, घेरा न हटेगा। लोगों ने स्तूप तोड़ डाला। समाचार पाकर पहले तो कूणिक ने घेरा हटा लिया; पर बाद में वैशाली पर आक्रमण करके वैशाली पर विजय प्राप्त की।

विजय के बाद कूणिक चम्पा लौटा। चम्पा लौटने के बाद इसे चक्रवर्ती बनने की इच्छा हुई। कूणिक ने इस सम्बन्ध में महावीर स्वामी से प्रश्न पूछा। महावीर स्वामी ने कहा कि तुम चक्रवर्ती नहीं हो सकते। सब चक्रवर्ती हो चुके हैं। फिर कूणिक ने पूछा—चक्रवर्ती के लक्षण क्या हैं? भगवान् ने कहा—

चउदसरयणा छक्खंड भरह सामी य ते हुंति।[1]

इसके बाद कूणिक ने नकली १४ रत्न बनाये और ६ खंड के विजय को निकला को निकला। अंत में सम्पूर्ण सेना लेकर तिमिस्र-गुफा की ओर गया। वहाँ अट्ठम[2] तप किया। तिमिस्र-गुफा के देव कृतमाल ने पूछा—"तुम कौन हो?" कूणिक ने कहा—"मैं चक्रवर्ती हूँ।" "सब चक्रवर्ती तो बीत चुके, तुम कौन?" इस पर कूणिक शेखियाँ बताने लगा

१—उपदेशमाला दोघट्टी टीका, पत्र ३५३।

२—भरत चक्री की तमिस्रा-यात्रा के प्रसंग में त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १, सर्ग ४, श्लोक २३९ (पत्र ९९-१) में अष्टमतप आता है। मिस हेलेन ने बड़ौदा से प्रकाशित अंग्रेजी-अनुवाद में इसका अर्थ ४ दिनों का उपवास लिखा है। यह उनकी भूल है। अष्टम तप में ३ दिन का उपवास होता है।

३—आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र १७६—१७७।

और बोला—"मैं तेरहवाँ चक्रवर्ती हूँ।" कूणिक की बात से क्रुद्ध होकर कृतमाल ने कूणिक को भस्म कर किया।[१]

स्तूप के सम्बन्ध में कुछ विचार

स्तूप उलटे कटोरे के आकार का होता था और या तो दाह-संस्कार के स्थान पर बनाये जाते थे।[२] या सिद्धों अथवा तीर्थङ्करों की मूर्तियों सहित उस देवता-विशेष की पूजा के लिए निर्मित होते थे। स्तूप में तीर्थङ्कर-पतिमा होने का बड़ा स्पष्ट उल्लेख तिलोयपण्णत्ति में है। उसमें आता है :—

भवणखिदिप्पणिधीसुं वीहिं पडि होंति णवणवा थूहा।
जिणसिद्धप्पडिमाहिं अप्पडिमांहि समाइण्णा॥[३]

—भवन भूमि के पार्श्व भागों में प्रत्येक वीथी के मध्य में जिन और सिद्धों की अनुपम प्रतिमाओं से व्याप्त नौ नौ स्तूप होते हैं।

इन स्तूपों की पूजा होती थी। जैन-ग्रंथों में कितने ही स्थलों पर देव-देवियों की पूजा-सम्बन्धी उत्सवों के वर्णन आये हैं[४], उनमें एक उत्सव 'थूभमह' भी है। 'मह' शब्द के सम्बन्ध में राजेन्द्राभिधान में लिखा है।

मह—महपूजायामिति धातोः क्वपि महः[५]

इन महों के सम्बन्ध में आचारांग की टीका में आता है:—

पूजा विशिष्टे काले क्रियते।[६]

१—आवश्यकचूर्णि उत्तरार्ध पत्र १७६-१७७।

दशावैकालिक हरिभद्रसूरिकृत टीका (बाबू वाला) पृष्ठ ४७ में भी यह प्रसंग आता है।

२—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सटीक (पूर्व भाग, पत्र १५८-१) में उल्लेख है कि भरत ने ऋषभदेव भगवान् की चिता-भूमि पर अष्टापद पर्वत पर स्तूप-निर्माण कराया:—

चेइअ थूभे करेह।

३—तिलोयपरणत्ती (सानुवाद) चउत्थो महाधियारो, गाथा ८४४, पृष्ठ २५४।

४—देखिये तीर्थङ्कर महावीर, भाग १, पृष्ठ ३४५-३४८।

५—राजेन्द्राभिधान, भाग ६, पृष्ठ १७०।

६—आचारांगसूत्र सटीक, श्रु० २, पत्र २९८-२।

थूभमह को राजेन्द्राभिधान में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

स्तूपस्य विशिष्टे काले पूजायां[1]

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि, स्तूपों में मूर्तियाँ होती थीं और उनकी पूजा होती थी।

मेरी यह स्थापना शास्त्रों के अतिरिक्त अत्र पुरातत्त्व से भी सिद्ध है। यह दुर्भाग्य की बात है कि, जैनों से सम्बद्धित खुदाई का काम भारत में नहीं के बराबर हुआ। पर; कंकाली-टीला (मथुरा) का जो एक ज्वलंत प्रमाण जैन-स्तूप सम्बन्धी प्राप्त है, उसमें कितनी ही जैन-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।[2]

धर्म के प्रति वैशाली वासियों की अटूट श्रद्धा थी। महापरिनिव्वान-सुत्त में बुद्ध ने वैशाली वालों के ७ गुण गिनाये हैं, उनमें धर्म के प्रति उनकी निष्ठा भी एक है। उसमें पाठ है :—

"वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जि चेतियानि अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च, तानि सक्करोन्ति गुरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, तेसं च दिन्नं पुब्बं कतपुब्बं धम्मिकं बलिं नो परिहापेन्ती"[3]।

क्या सुना है—वज्जियों के (नगर के) भीतर या बाहर जो चैत्य हैं, वह उनका सत्कार करते हैं, पूजते हैं। उनके लिए पहिले किए गये दान को पहिले की गयी धर्मानुसार बलि को लोप नहीं करते।[4]

१—राजेन्द्राभिधान, भाग ४, पृष्ठ २४१५।

२—विशेष विवरण के लिए देखिए 'जैन स्तूप एंड अदर एंटीक्विटीज आव मथुरा,' विंसेंट ए० स्मिथ-लिखित (आर्क्यालाजिकल सर्वे आव इंडिया न्यू इम्पीरियल सिरीज, वाल्यूम २०)। अहिच्छत्रा में भी जैन-स्तूप मिला है और उसमें भी जैन-मूर्तियाँ मिली हैं।

३—दीघनिकाय [पालि], महावग्गो, पृष्ठ ६०।

४—दीघनिकाय हिन्दी-अनुवाद पृष्ठ ११६।

दीघनिकाय में कहा गया है कि जब तक ये सात गुण वैशाली वालों के पास रहेंगे, वे पराजित नहीं होंगे। उन सात गुणों में यह एक देव-पूजा भी है।[1]

इस वैशाली के कुछ देवमन्दिरों के उल्लेख बौद्ध-ग्रन्थों में भी मिलते हैं :—

१ चापाल चैत्य[2], २ उदेन चैत्य[3], ३ गोतमक चैत्य[4], ४ सत्तम्बक चैत्य[5], ५ बहुपुत्तीय चैत्य[6], ६ सारंदद चैत्य[7]

इनमें चापाल[8] और सारंदद चैत्य[9] यक्षायतन थे। उदेन और गोतमक वृक्ष-चैत्य थे[10] और सत्तम्बक चैत्य[11] में पहले किसी देवता की प्रतिमा थी।

बहुपुत्तीय चैत्य बुद्ध-पूर्व का पूजास्थान था। टीकाकारों ने लिखा है कि वहाँ न्यग्रोध का वृक्ष था। उसमें बहुत-सी शाखाएँ थीं। लोग पुत्र-प्राप्ति के लिए उस देवस्थान की पूजा किया करते थे।[12]

बौद्ध-साहित्य इस बहुपुत्तीय चैत्य के सम्बंध में अधिक जानकारी देने में असमर्थ है। न्यग्रोध का अर्थ 'वट' होता है।[13] जैन-ग्रन्थों में वट यक्ष का

१—वही, पृष्ठ ११६।

२—दीघनिकाय पालि भाग २, पृष्ठ ८४

३—वही ,, ,, ९२

४—वही ,, ,, ९२

५—वही, ,, ,, ९२

६—वही ,, ,, ९२

७—वही ,, ,, ९२

८—डिक्शनरी आव पाली प्रापरनेम्स, भाग १, पृष्ठ ६६२

९—वही, भाग २, ,, ,, ११०८

१०—वही, भाग १, ,, ,, ३८१

११—वही, भाग २, ,, ,, १०१०

१२—वही, भाग २, ,, ,, २७३

१३—न्यग्रोधस्तु बहुपात् स्याद्, बटो वैश्रवणालयः

—अभिधानचिंतामणि सटीक, भूमिकांड, श्लोक १९८ पृष्ठ ४५५

ध्वज-चिह्न बताया गया है।[1] दूसरी बात यह कि जैन-ग्रंथों में यक्षों को पुत्र-दायक देव कहा माना गया है।[2] अतः पुत्र-कामना से पूजा जाने वाला यह बहुपुत्तीय चैत्य निश्चय ही यक्षायतन था।

अब हमें यह देखना है कि बहुपुत्तीय कौन यक्ष है? इसका उल्लेख जैन-शास्त्रों में आता है, या नहीं। बृहत्संग्रहणी सटीक में निम्नलिखित यक्ष गिनाये गये हैं :—

१ पूर्णभद्रा; २ मणिभद्रा; ३ श्वेतभद्राः; ४ हरिभद्राः; ५ सुमनोभद्राः; ६ व्यतिपाकभद्राः, ७ सुभद्राः, ८ सर्वतोभद्राः, ९ मनुष्यपक्षाः, १० धनाधिपतयः, ११ धनाहाराः, १२ रुपयक्षाः, १३ यक्षोत्तमाः[3]

इन यक्षों में पूर्णभद्र और मणिभद्र यक्षेन्द्र हैं[4] और यक्षेन्द्र पूर्णभद्र की ४ महारानियों में एक बहुपुत्रिका भी थीं।[5]

अतः वैशाली का यह बहुपुत्तीय चैत्य बहुपुत्रिका (यक्षिणी) चैत्य रहा होगा।

भगवतीसूत्र में भी विशाखा नगरी में बहुपुत्तीय-चैत्य का उल्लेख मिलता है।[6] भगवतीसार के लेखक गोपालदास जीवाभाई पटेल ने अपनी पादटिप्पणि में विशाखा के स्थान पर विशाला कर दिया।[7] पर यह उनकी

१—श्रीबृहत्संग्रहणीसूत्र (गुजराती-अनुवाद सहित] पृष्ठ १०८

२—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ ३६०

३—बृहत्संग्रणी सटीक, पत्र २८-२

४—दो जक्खिदा पन्नत्ता, तं०—पुन्नभद्दे चेव मणिभद्दे

—ठाणांग, ठाणा २, उद्देसा ३, सूत्र ९४, पत्र ८५-१

५—पुण्णभद्दस्स णं जक्खिदस्स जक्खरन्नो चत्तारि अग्गमहिसिओ पं तं०—पुत्ता, बहुपुत्तिता, उत्तमा, तारगा

—ठाणांग सूत्र, ठा० ४, उद्देशा १, सूत्र २७३

६—भगवती सूत्र सटीक, शतक १८, उद्देशा २, सूत्र ६१८, पत्र १३५७

७—भगवतीसार पृष्ठ २३६

मूल है। विशाखा और विशाला दो भिन्न स्थान थे। इस विशाखा का उल्लेख फाह्यान[1] और ह्वैनसांग[2] ने भी किया है और कनिंघम ने इसकी पहचान वर्तमान अयोध्या से की है।[3]

जैन-साहित्य में एक अन्य बहुपुत्तीया देवी का उल्लेख मिलता है।[4] यह सौधर्म देवलोक की देवी थी।[5]

गागलि

साल के बाद पृष्ठचम्पा में साल का भांजा गागलि नामक राजा राज्य करता था। उसकी माता का नाम यशोमति और पिता का नाम पिठर था।

एक बार भगवान् महावीर जब राजगृह से चम्पापुरी की ओर चले तो उस समय साल-महासाल नामक मुनियों ने भगवान् की वंदना करके पूछा—"हे स्वामी ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम लोग पृष्ठचंपा जाकर हम अपने स्वजनों को प्रतिबोध करायें।" भगवान् ने गौतम गणधर के साथ उन्हें जाने की आज्ञा दे दी।

अनुक्रम से विहार करते वे लोग पृष्ठचम्पा गये। वहाँ गौतमस्वामी ने उपदेश दिया।

गागलि गौतम स्वामी और अपने मामाओं के आने की बात सुनकर वंदना करने आया। धर्मदेशना सुनकर गागलि राजा को और उसके माता-पिता को वैराग्य हुआ। और, गागलि ने अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर अपने माता-पिता के साथ गौतम स्वामी के पास दीक्षा ले ली।

उसके बाद गौतम स्वामी, साल, महासाल, गागलि, पिठर और यशोमति के साथ चम्पा की ओर चले जहाँ भगवान् थे।

१—२ कनिंघम्स ऐंशेंट ज्यागरैफी, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४५९

३—कनिंघम्स ऐशेंट ज्यागरैफी आव इंडिया, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४६०

४—निरयावलिया पी० एल० वैद्य-सम्पादित पृष्ठ ३५

५—सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तीया विमाणे

—निरयावलिया सटीक पत्र ३३-१

मार्ग में साल-महाल मुनि विचार करने लगे—"बहन, बहनोई और भांजा सब संसार-सागर से तरे यह तो यह बहुत सुन्दर हुआ।" उसी समय गागलि के मन में विचार हुआ—"मेरे साल-महासाल मामाओं ने मेरा बड़ा उपकार किया। अपनी राज्यलक्ष्मी को भोगने का अवसर मुझे दिया और फिर मोक्ष-लक्ष्मी भोगने का मुझे अवसर दिलाया।" ऐसा विचार करते-करते वे पाँचो क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुए और शुभ ध्यान से उनको केवलज्ञान हो गया।

अनुक्रम से गौतम स्वामी के साथ वे जिनेश्वर के पास आये वहाँ उन पाँचों केवलियों ने जिनेन्द्र की प्रदक्षिणा की और वे फिर केवली-परिषद् की ओर चले। उस समय गौतम स्वामी ने उनसे कहा—"मुनियो! क्या तुम लोग जानते नहीं? कहाँ जा रहे हो? इधर आओ और जगत्प्रभु की वंदना करो।

इसे सुनकर भगवान् ने गौतम से कहा—"हे गौतम! केवली की आशातना मत करो?"[1]

चंड प्रद्योत

देखिए प्रद्योत

चेटक

भगवान् महावीर के समय में वृज्जियों का बड़ा शक्तिशाली गणतंत्र था।[2] उसकी राजधानी वैशाली थी। और, उस गणतंत्र के सर्वोच्च राजा

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ६ श्लोक १६६–१७६ पत्र १२४–२।

२—जैन-ग्रन्थोंमें वैशाली के गणराजाओं का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि वह गणतंत्र था। अन्य किसी प्रसंग में गणराजा नहीं मिलता।

चेटक थे।[1] उनके आधीन ९ लिच्छवि ९ मल्लकी काशी, कोशल के गणराजा थे।[2] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में उनका नाम चेटक प का कारण बताते हुए लिखा है :—

चेटीकृतारि भूपालस्तत्र चेटक इत्यभूत।

अर्थात् शत्रु राजा को चेटी (सेवक) बनाने वाले चेटक राजा थे

उनके माता-पिता का क्या नाम था, इसका उल्लेख नहीं मि केवल हरिषेणाचार्य कृत वृहत्‌कथाकोष में 'श्रेणिक कथानकम्' में है कि उनके पिता का नाम केक और माता का नाम यशोमति था।[4]

दलसुख मालवणिया ने चेटक के सम्बन्ध में लिखा है[5] कि, ऐसा

१—(अ) वेसालीए नयरीए चेडगस्स रन्नो—निरयावलिका (चाला) पत्र १६२।

(आ) एतो य वेसालीए नगरीए चेडओ राया।

—आवश्यकचूर्णि, भाग २, पत्र

(इ) त्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक १ पत्र ७७-१

(ई) वेसालीए पुरीए, सिरिपासजिणेस सासण सणाहो।
हेहमकुल संभूओ चेडगनामा निवो असि॥ ६२॥

—उपदेशमाला सटीक, प

२—(अ) नवमल्लई नवलेच्छई कासी कोसलका अट्ठारस रायाणो।

—निरयावलिका (आगमोदयसमिति)

—कल्याण सूत्र, सुबोधिका टीका,

३—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक १८५, प

४—अथ वज्रविषे देमे विशाली नगरी नृपः।
अस्यां केकोऽस्य भार्याऽऽसीत् यशोमतिरिनप्रभा॥ १६५।

— बृहत्कथाकोश, पृष्ठ ८३, [

५—उत्थान महावीर जयंती-अंक [जैन-प्रकाश] मार्च १५,१९ ीय अने महावीर तो संघ] पृष्ठ ६६ की पादटिप्पणि।

मिलता कि वह श्रमणोपासक था तथा महावीर का भक्त था। यह हम उसकी सगाई से अनुमान करते हैं। पर, मालवणिया का ऐसा लिखना उनकी भूल है। जैन-शास्त्रों में तथा जैन-कथा-साहित्य में उसके श्रमणोपासक होने के कितने ही स्थानों पर उल्लेख है। हम उनमें से कुछ यहाँ दे रहे हैं:—

१—सो चेडवो सावग्रो।

—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६४।

२—चेटकस्तु श्रावको।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक १८८, पत्र ७७-२।

३—वेसालीए पुरीए सिरिपास जिणेस सासण सणाहो।
हेहयकुल संभूग्रो चेडग नामा निवोअसि॥ ६२॥

—उपदेश माला सटीक, पत्र २३८।

श्वेताम्बर ही नहीं दिगम्बर-ग्रन्थों में भी चेटक के श्रावक होने का उल्लेख मिलता है। उत्तरपुराण में आता है—

चेटकाख्यातोऽस्ति विख्यातो विनीतः परमार्हतः।

—उत्तरपुराण, पृष्ठ ४८३।

आगम-ग्रन्थों की टीकाओं में अन्य रूप से उसके श्रावक होने का उल्लेख है। भगवतीसूत्र (शतक ७, उद्देशा ८) में युद्ध के प्रसंग पर टीका करते हुए दानशेखर गणि ने लिखा है :—

चेटक प्रतिपन्न प्रतिज्ञतया दिनमध्ये एकमेव शरंमुंच्यते।

—पत्र १११-१

ऐसा ही उल्लेख भगवतीसूत्र की बड़ी टीका में भी है।

प्रतिपन्न व्रतत्वेन दिन मध्ये एकमेव शरं मुंचति।

—पत्र ५७९।

अतः इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि, चेटक भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का श्रावक था।

महाराज चेटक हैहय-कुल के थे। ऐसा उल्लेख जैन-ग्रन्थों में स्वतंत्र रूप से भी आया है[1] और चेटक के मुख से भी कहलाया गया है।

इस हैहय-कुल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में कहा गया है कि, यह वंश'ऐल-वंश' अथवा 'चन्द्र-वंश' की शाखा थी। इस सम्बन्ध में जयचन्द्र विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक 'भारतीय इतिहास की रूप-रेखा (जिल्द १, पृष्ठ १२७-१२९) में लिखा है:—

"किन्तु, इक्ष्वाकु के समय के लगभग ही मध्यदेश में एक और प्रतापी राजा था। जो मानव-वर्ग का नहीं था। उसका नाम था पुरुरवा ऐल और उसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी...। उसका वंश 'ऐल-वंश' या 'चंद्र-वंश' कहलाता है।...पुरुरसा का पौत्र नहुष हुआ, जिसके पुत्र का नाम ययाति था।...उसके पाँच पुत्र थे—यदु,तुर्वसु, द्रह्यु, अनु और पुरु।... यदु के वंशज यादव आगे चल कर बहुत प्रसन्न हुए। उनकी एक शाखा हैहय-वंश कहलायी।"[2]

१—(अ) चेडओ राया हेहय कुल संभूतो
—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६४

(आ) वैशालिकश्चेटको हैहय कुल संभूतो
—आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, पत्र ६७६-२

(इ) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक २२६, पत्र ७८-२

(ई) उपदेशमाला सटीक, पत्र ३३८,

२—पार्जिटर ने 'एंशेंट इंडियन हिस्टारिकल ट्रैडिशन" में पुरुरवा को इला का पुत्र लिखा है। पर, जयचन्द्र विद्यालंकार ने इसे गढ़ी हुई कहानी माना है। पुरुरवा के वंश का वर्णन करते हुए पार्जिटर ने लिखा है कि पुरुरवा को ५-६ पुत्र थे।... उनमें ३ महत्वपूर्ण थे।...आयु, आयुस और अमावसु।...आयु को पाँच पुत्र थे —नहुष......। नहुष को ६-७ लड़के थे, जिनमें दो यति और ययाति महत्वपूर्ण थे। ययाति को एक पत्नी से दो लड़के थे—यदु और तुर्वसु। यदु को ४ या ५ पुत्र थे। उनमें दो सहस्त्रजित और क्रोष्टृ महत्व के थे। सहस्त्रजित के वंशज उसके पौत्र के नाम पर हैहय कहलाये।
—पृष्ठ ८५-८७.

जैन-ग्रंथों में उनके वंश का गोत्र वासिष्ठ बतलाया गया है।[1] पर, चन्द्र-वंश की स्थापना के सम्बन्ध में जैनों की भिन्न मान्यता है। त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र में आता है:—

..............................।

तत्पुत्रं सोमयशसं तद्राज्ये स न्यवी विशत ॥ ७५४ ॥
तदादि सोमवंशो ऽभूच्छा खाशतसमाकुलाः।[2]

—कि ऋषभदेव भगवान् के पुत्र बाहुबली के पुत्र सोमयश से सोमवंश अथवा चंद्रवंश चला।

ऐसा ही उल्लेख पद्मानंद महाकाव्य में भी है:—

..............................।

तदङ्गजं सोमयशोऽभिधानं, निवेशयामास तदीयराज्ये ॥३७८॥
तदादि विश्वेऽजनि 'सोम' वंशः, सहस्रसङ्ख्या प्रसृतोरुशाखः।[3]

यह मान्यता केवल श्वेताम्बरों की ही नहीं है। दिगम्बर-ग्रन्थों में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है:—

योऽसौ बाहुबली तस्माज्जातः सोमयशः सुतः।
सोमवंशस्य कर्तासौ तस्य सुनुर्महाबल ॥ १६ ॥
ततोऽभूत्सुबलः सूनुरभूद्भुजबलो ततः।[4]
एवमाद्याः शिवं प्राप्ताः सोमवंशोद्भवाः नृपा ॥१७॥

महाराज चेटक स्वयं लिच्छिवि न होते हुए भी, लिच्छिवि-गणतंत्र के

१—भागवओ महावीरस्स माया वासिट्ठसगुत्तेणं

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, सूत्र १०९, पत्र २६१

२—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १, सर्ग ५, श्लोक ७५४-७५५ पत्र १४७-२

३—पद्मानन्द महाकाव्य पृष्ठ ४०२

४—हरिवंशपुराण (जिनसेन सूरि कृत), सर्ग १३, श्लोक १६-१७, पृष्ठ २२६

महाराज चेटक की सब से बड़ी पुत्री प्रभावती का विवाह वीतभय[1] के राजा उद्रायण[2] से हुआ था। उसकी दूसरी पुत्री पद्मावती का विवाह अंग देश के राजा दधिवाहन से, मृगावती का वत्स देश के राजा शतानीक से, शिवा का उज्जयिनी के राजा प्रद्योत से, ज्येष्ठा का महावीर स्वामी के बड़े भाई नन्दिवर्द्धन से हुआ था।

सुज्येष्ठा और चेल्लणा तब तक क्वारी थीं। बाद में चेल्लण का विवाह मगध के राजा श्रेणिक से हो गया और सुज्येष्ठा साध्वी हो गयी। इसकी कथा इस प्रकार है।

मगध के राजा श्रेणिक ने चेटक की पुत्री सुज्येष्ठा के रूप और यौवन की ख्याति सुनकर चेटक के पास विवाह का संदेश भेजा। इस-पर चेटक ने उत्तर दिया:—

वाहीक कुल जो वाञ्छन् कन्यां हैहयवंशजां ॥
समान कुलयोरेव विवाहो हन्त नान्ययोः।
तत्कन्यां न हि दस्यामि श्रेणिकाय प्रयाहि भोः ॥

१—जैन-ग्रन्थों में २५॥ आर्यदेशों की जहाँ गणना है, उनमें एक आर्यदेश सिंधु-सौवीर भी बताया गया है। उसी की राजधानी वीतभय थी। विशेष विवरण के लिए देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृष्ठ ४२-४६

२—कुछ लोग भूल वश इस राजा का नाम उदायन लिखते हैं। मालवणिया ने स्थानांग-समवायांग में भी इसी रूप में इसका नाम लिखा है। पर, उसका सही नाम उद्रायण है। मेरे पास आवश्यक-निर्युक्ति की हस्तलिखित पोथी हरिभद्र की वृत्ति सहित है। उसमें उद्रायण ही लिखा है। तिब्बती मूल के साथ उद्रायणवदान का जर्मन अनुवाद प्रकाशित हुआ है। उसमें (भाग २, पृष्ठ ८४) भी उद्रायण शब्द ही है।

उत्तराध्ययन की नेमिचंद्र की टीका (पत्र २५५-२) में उद्दायण शब्द है। ऐसा ही उपदेशमाला सटीक [श्लोक ९६, पत्र ३३८] में भी है। उद्दायण का संस्कृत रूप उद्रायण होगा, न कि उदायन।

—वाहीक कुल में उत्पन्न हुआ हैहयवंश की कन्या की इच्छा करता है। समान कुल में ही विवाह होना योग्य है। अन्य में नहीं, इसलिए मैं श्रेणिक को कन्या नहीं दूँगा। तुम चले जाओ।[1]

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक २२६-२२७, पत्र ७८-२।

तब श्रेणिक ने अपने दूतों द्वारा सुज्येष्ठा के अपनी ओर आकृष्ट किया। वह उससे प्रेम करने लगी। एक सुरंग द्वारा उसके हरण की तैयारी हुई; पर संयोगवश चेल्लणा का हरण हो गया और सुज्येष्ठा पीछे रह गयी। इससे उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह साध्वी हो गयी।[2]

१—जैन-ग्रन्थों में जहाँ-जहाँ श्रेणिक और चेटक का उल्लेख है, उन सभी स्थलों पर कुलों के उल्लेख मिलते हैं।

(अ) कहिहं वाहिय कुले देमित्ति पडिसिद्धो

—आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, पत्र ६७७-१

(आ) चेडओ कहहं वाघियकुलए देमित्ति

—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६५

(इ) परिभाविऊण भूवो भणेइ कन्नं न हेहया अम्हें।
वाहियकुलंमि देयो जहा गयं जाह तो तुब्भे॥

—उपदेशमाला सटीक, पत्र ३३६,

श्रेणिक के प्रसंग में हमने वाहीक-कुल पर विचार किया है और हैहयकुल के सम्बन्ध में ऐतिहासिक मत इसी प्रसंग में पहले व्यक्त कर चुका हूँ। अतः उनकी पुनरावृत्ति यहाँ अपेक्षित नहीं है।

२—(अ) सुखकांक्षिभिरोदत्ता यदाप्यन्ते विडंबनाः॥२६५॥
इत्थं विरक्ता सुज्येष्ठा स्वयमापृच्छ्य चेटकम्।
समीपे चन्दनार्यायाः परिव्रज्या मुपादये॥२६६॥

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, पत्र ८०-१

(आ) सुज्येट्ठा य धिरत्थु कामभोगाणि पव्वइत्ता

—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६६

(इ) धिरत्थु कामभोगाणंति पव्वतिया

—आवश्यक हारिभद्रीय टीका, पत्र ६७८-१

इस प्रकार चेटक ने अपने काल के सभी प्रमुख राजाओं से पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करके पूरे भारत से वैशाली को सम्बद्ध कर रखा था।

कालान्तर में चेटक की इसी पुत्री चेल्लणा ने कूणिक को जन्म दिया और वह कूणिक ही श्रेणिक के बाद मगध की गद्दी पर बैठा।

श्रेणिक ने अपने जीवन-काल में ही अपने पुत्र हल्ल-वेहल्ल को सेचनक हाथी और अट्ठारसवंकं (अट्ठारह लड़ी का) हार दे दिया था। कूणिक की पत्नी पद्मावती ने कूणिक को इन वस्तुओं को ले लेने को उसकाया। इस पर हल्ल-वेहल्ल वैशाली चले गये। कूणिक ने वैशाली-नरेश चेटक के पास दूत भेजकर अपने भाइयों को और हाथी तथा हार वापस करने को कहा। चेटक ने इसका यह उत्तर भेजा कि ये वस्तुएँ चाहते हो तो उन्हें आधा राज्य दे दो। कूणिक इस पर सेना लेकर अपने १० भाइयों के साथ चम्पा से विदेह पर चढ़ आया। चेडग भी ९ लिच्छिवि, ९ मल्लई काशी-कोसल के गण राजाओं के साथ युद्ध-स्थल पर पहुँचे। दोनों ओर से भयानक युद्ध हुआ। इसका सविस्तार विवरण भगवतीसूत्र शतक ७, उद्देशा ९ में तथा निरयावलिकासूत्र में मिलता है। चेटक ने प्रतिपन्न-व्रत ले रखा था; अतः वह एक दिन में एक ही बाण चलाता था। १० दिन में उसके १० अमोघ बाणों से काल आदि कूणिक के १० भाई मारे गये। कूणिक को अपनी पराजय स्पष्ट नजर आने लगी। पर किसी छल-बल से कूणिक ने वैशाली को जीत लिया। इस सम्बन्ध में विशेष विवरण उत्तराध्ययन (प्रथम अध्ययन, गाथा ३) की टीका में मिलता है।

जय

प्रत्येक बुद्धवाले प्रकरण में द्विमुख के प्रकरण में देखिए (पृष्ठ ५६३)।

जितशत्रु

जैन-ग्रन्थों कई राज्यों के राजाओं का नाम जितशत्रु (प्राकृत— जियसत्तू) मिलता है। उनमें निम्नलिखित जितशत्रु भगवान् के भक्त थे।

—वाहीक कुल में उत्पन्न हुआ हैहयवंश की कन्या की इच्छा करता है। समान कुल में ही विवाह होना योग्य है। अन्य में नहीं, इसलिए मैं श्रेणिक को कन्या नहीं दूँगा। तुम चले जाओ।'

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक २२६-२२७, पत्र ७८-२।

तब श्रेणिक ने अपने दूतों द्वारा सुज्येष्ठा के अपनी ओर आकृष्ट किया। वह उससे प्रेम करने लगी। एक सुरंग द्वारा उसके हरण की तैयारी हुई; पर संयोगवश चेल्लणा का हरण हो गया और सुज्येष्ठा पीछे रह गयी। इससे उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह साध्वी हो गयी।[2]

१—जैन-ग्रन्थों में जहाँ-जहाँ श्रेणिक और चेटक का उल्लेख है, उन सभी स्थलों पर कुलों के उल्लेख मिलते हैं।

(अ) कहिहं वाहिय कुले देमित्ति पडिसिद्धो

—आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, पत्र ६७७-१

(आ) चेडओ कहहं वाधियकुलए देमित्ति

—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६५

(इ) परिभाविऊण भूवो भणेइ कन्नं न हेहया अम्हे।
वाहियकुलंमि देयो जहा गयं जाह तो तुब्भे॥

—उपदेशमाला सटीक, पत्र ३३६,

श्रेणिक के प्रसंग में हमने वाहीक-कुल पर विचार किया है और हैहयकुल के सम्बन्ध में ऐतिहासिक मत इसी प्रसंग में पहले व्यक्त कर चुका हूँ। अतः उनकी पुनरावृति यहाँ अपेक्षित नहीं है।

२-(अ) सुखकांक्षिभिरीदृक्षा यदाप्यन्ते विडंबनाः॥२६५॥
इत्थं विरक्ता सुज्येष्ठा स्वयमापृच्छ्य चेटकम्।
समीपे चन्दनार्यायाः परिव्रज्या मुपादये॥२६६॥

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, पत्र ८०-१

(आ) सुज्येट्ठा य धिरत्थु कामभोगाणि पव्वइत्ता

—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६६

(इ) धिरत्थु कामभोगाणंति पव्वतिया

—आवश्यक हारिभद्रीय टीका, पत्र ६७८-१

इस प्रकार चेटक ने अपने काल के सभी प्रमुख राजाओं से पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करके पूरे भारत से वैशाली को सम्बद्ध कर रखा था।

कालान्तर में चेटक की इसी पुत्री चेल्लणा ने कूणिक को जन्म दिया और वह कूणिक ही श्रेणिक के बाद मगध की गद्दी पर बैठा।

श्रेणिक ने अपने जीवन-काल में ही अपने पुत्र हल्ल-वेहल्ल को सेचनक हाथी और अट्ठारसवंकं (अट्ठारह लड़ी का) हार दे दिया था। कूणिक की पत्नी पद्मावती ने कूणिक को इन वस्तुओं को ले लेने को उसकाया। इस पर हल्ल-वेहल्ल वैशाली चले गये। कूणिक ने वैशाली-नरेश चेटक के पास दूत भेजकर अपने भाइयों को और हाथी तथा हार वापस करने को कहा। चेटक ने इसका यह उत्तर भेजा कि ये वस्तुएँ चाहते हो तो उन्हें आधा राज्य दे दो। कूणिक इस पर सेना लेकर अपने १० भाइयों के साथ चम्पा से विदेह पर चढ़ आया। चेडग भी ९ लिच्छिवि, ९ मल्लई कासी-कोसल के गण राजाओं के साथ युद्ध-स्थल पर पहुँचे। दोनों ओर से भयानक युद्ध हुआ। इसका सविस्तार विवरण भगवतीसूत्र शतक ७, उद्देशा ९ में तथा निरयावलिकासूत्र में मिलता है। चेटक ने प्रतिपन्न-व्रत ले रखा था; अतः वह एक दिन में एक ही बाण चलाता था। १० दिन में उसके १० अमोघ बाणों से काल आदि कूणिक के १० भाई मारे गये। कूणिक को अपनी पराजय स्पष्ट नजर आने लगी। पर किसी छल-बल से कूणिक ने वैशाली को जीत लिया। इस सम्बन्ध में विशेष विवरण उत्तराध्ययन (प्रथम अध्ययन, गाथा ३) की टीका में मिलता है।

जय

प्रत्येक बुद्धवाले प्रकरण में द्विमुख के प्रकरण में देखिए (पृष्ठ ५६३)।

जितशत्रु

जैन-ग्रन्थों कई राज्यों के राजाओं का नाम जितशत्रु (प्राकृत— जियसत्तू) मिलता है। उनमें निम्नलिखित जितशत्रु भगवान् के भक्त थे।

१—**वाणियागाम**—वाणियाग्राम के—भगवान् महावीर कालीन-राजा का नाम जितशत्रु[1] था। भगवान् महावीर विहार करते हुए एक बार वाणियागाम पधारे। समवसरण हुआ। उसमें जितशत्रु भी गया। और कूणिक के समान उसने भी भगवान् की वंदना की।[2]

२—**चम्पा**—चम्पा के भी एक राजा जितशत्रु का उल्लेख मिलता है।[3] भगवान् महावीर एक बार चम्पा गये। समोसरण हुआ और जितशत्रु ने भगवान् की वंदना की।[4]

३—**वाराणसी**—वाराणसी के तत्कालीन राजा का नाम जितशत्रु था।[5] भगवान् जब काशी गये तो समोसरण हुआ और उसमें जितशत्रु भी भगवान् की वंदना करने गया।

१—वाणियगामे नयरे जियसत्तू नामं राया होत्था

—उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ ४

२—तणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे जाव समोसरिए। परिसा निग्गमा। कूणिए राया जहा तहा जितसत्तू निग्गच्छइ २ त्ता जाव पज्जुवासइ।

—उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ २५

३—(अ) तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं णगरी होत्था। जियसत्तू राया।

—उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ २२

(आ) चम्पा नाम नयरी⋯जियसत्तू नामं राया

—नायाधम्मकहाओ, अध्ययन १२, पृष्ठ १३५ (एन० वी० वैद्य-सम्पादित)

४—जहा आणन्दे तहा निग्गए

—उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ २२

५—वाराणसी नामं नगरी।⋯जियसत्तू राया

—उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ ३२

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नगरी।⋯जियसत्तू राया

—उपासगदसाओ, पी० एल० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ ३८

४—आलभिया—आलभिया के राजा का नाम भी जितशत्रु था।[1] भगवान् महावीर जब वहाँ गये और समवसरण हुआ तो वह भी वहाँ वंदना करने गया।

५—कंपिलपुर—कंपिलपुर के राजा का भी नाम जितशत्रु था।[2] महावीर जब वहाँ गये, तो जितशत्रु भी समवसरण में आया और उसने भगवान् की वंदन की।

६—पोलासपुर—पोलासपुर के राजा का नाम जितशत्रु था।[3] भगवान् महावीर जब वहाँ गये, तो समवसरण में जितशत्रु भी गया और उसने भी भगवान् की वंदना की।

७—सावत्थी—श्रावस्ती के राजा का भी नाम जितशत्रु था।[4] भगवान् के वहाँ जाने पर उसने समवसरण में जाकर भगवान् की वंदना की।

८—काकंदी—काकंदी के राजा का भी नाम जितशत्रु था।[5]

१—आलभिया नामं नगरी…जियसत्तू राया

— उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य सम्पादित, पृष्ठ ४१

२—कंपिल्लपुरे नयरे …जियसत्तू राया

— उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य सम्पादित, पृष्ठ ४३

३—पोलासपुरे नामं नयरे…जियसत्तू राया

— उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य सम्पादित, पृष्ठ ४७

४—…सावत्थी नयरी…जियसत्तू राया

— उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य सम्पादित पृष्ठ ६६

सावत्थी नयरी…जियसत्तू राया

— उवासगदसाओ, पी० एल० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ ७०

५—कागन्दी नामं नयरी होत्था।…जियसत्तू राया

— अणुत्तरोववाइयदसाओ, एन० वी० वैद्य सम्पादित, पृष्ठ ५१

भगवान् महावीर जब काकंदी पधारे तो उसने भी भगवान् के सम्मुख कूणिक के समान जाकर वंदना की।[1]

६—लोहार्गला—लोहार्गला के राजा का भी नाम जितशत्रु था। भगवान् महावीर छद्मस्थ काल में मगधभूमि से पुरिमतताल जाते हुए लोहार्गला से गुजरे तो जितशत्रु ने उनकी वंदना की थी।[2]

दत्त[3]

चम्पा-नामक नगरी थी। पूर्णभद्र-नामक उद्यान में पूर्णभद्र-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस नगर में दत्त-नामक राजा था। दत्तवती उसकी रानी थी। महाचन्द्र उनका कुमार था।

भगवान् का आना, समवसरण आदि पूर्णविवरण अदीनशत्रु-सा जान लेना चाहिए।

महाचन्द्र ने पहले श्रावक-धर्म स्वीकार किया और बाद में साधु हो गया। पूरी कथा सुबाहु के समान है।

१—तेणं कालेणं २ समणे समोसढे। परिसा निग्गता। राया जहा तहा निग्गओ

—अणुत्तरोववाइयदसाओ, एन० वी० वैद्य-सम्पादित पृष्ठ ५२

२—लोहग्गलं रायहाणिं, तत्थ जियसत्तू राया, सोय अन्नेण राइ-निरुद्धो, तस्स चार पुरिसेहिं गहिता पुच्छिज्जंत ण साहंति...

—आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र २९४

३—विपाकसूत्र [पी०एल० वैद्य-सम्पादित] श्रु० २ अ०९, पृष्ठ ८३

दधिवाहन

भगवान् महावीर के समय में दधिवाहन चम्पा का राजा था। उसकी पत्नी का नाम पद्मावती था। वह वैशाली के महाराजा चेटक की पुत्री थी। उसकी एक अन्य पत्नी भी थी।[1] उसका नाम धारिणी था।[2]

आवश्यकचूर्णि में कथा आती है कि एक बार कौशाम्बी के राजा शतानीक ने इसके राज्य पर आक्रमण कर दिया। हम उसका सविस्तार वर्णन इसी ग्रंथ के प्रथम भाग में पृष्ठ २३९ पर कर आये हैं।[3]

इसकी पुत्री चंदना (जिसका पहले का नाम वसुमति था) भगवान् महावीर की प्रथम साध्वी हुई।[4]

इस आक्रमण के बाद भी कुछ दिनों राज्य करने के बाद दधिवाहन ने अपने पुत्र को राज्य सौंप कर स्वयं प्रव्रज्या ले ली। इसकी कथा विस्तार से प्रत्येकबुद्ध करकंडू के चरित्र में हमने दे दिया है।[5]

१—पउमावती चंपाए दहिवाहणस्स

—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र २०४

२—दहिवाहणस्स रन्नो धारिणी देवी

—आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र ३१८

दधिवाहनभूप भार्या धारिणी

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, पत्र ३०८

३—आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र ३१८

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका पत्र ३०८

४—समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचंदणापामोक्खाओ छत्तीसं अज्जिया साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया हुत्था

—कल्पसूत्र, पत्र १३५, सुबोधिका टीका पत्र ३५६

५—दधिवाहणो पव्वइतो

—आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र २०५

दशार्णभद्र[१]

भगवान् महावीर के काल में दशार्णपुर में दशार्णभद्र नामका राजा राज्य करता था। उसे एक दिन उसके चरपुरुष ने आकर सूचित किया कि कल प्रातःकाल आपके नगर के बाहर भगवान् महावीर पधारने वाले हैं।

चर की बात सुनकर दशार्णभद्र बड़ा प्रफुल्लित हुआ और उसने अपनी सभा के समक्ष कहा—"कल प्रातः मैं प्रभु की वंदना ऐसी समृद्धि से करना चाहता हूँ, कि जिस समृद्धि से किसी ने भी वंदना न की हो।"

उसके बाद वह अपने अंतःपुर में गया। अपनी रानियों से भी प्रभु की वंदना करने की बात कही। दशार्णभद्र पूरी रात चिन्ता में पड़ा रहा और सूर्योदय से पूर्व ही नगर के अध्यक्ष को बुलाकर नगर सजाने की आज्ञा उसने दी।

नगर ऐसा सजा जैसे कि वह स्वर्ग का एक खण्ड हो। नगर सज जाने की सूचना मिलने के बाद राजा ने स्नान किया, अंगराग लगाया, पुष्पों की मालाएँ पहनी, उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों से अलंकृत हुआ और हाथी पर बैठकर प्रभु के समवसरण की ओर पूरी ऋद्धि से चला।

१—दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ताणं मुणीचरे।
दसण्णभद्दो निक्खतो, सक्खं सक्केण चोइओ॥
—उत्तराध्ययन, शान्त्याचार्य की टीका सहित, अध्ययन १८, श्लोक ४४, पत्र ४४७-२

दशार्णभद्रो दशार्णपुर नगरवासी विश्वंभराविभुः यो भगवन्तं महावीरं दशार्णकूटनगर निकट समवसृतमुद्यान··
—ठाणांगसूत्र सटीक पत्र ४८३-२

उसका गर्व देखकर इन्द्र के मन में दशार्ण के गर्वहरण की इच्छा हुई। अतः इन्द्र ने जलमय एक विमान बनाया। उसे नाना प्रकार के स्फटिक आदि मणियों से सुशोभित कराया। उस विमान में कमल आदि पुष्प खिले थे और तरह-तरह के पक्षी बोल रहे थे। उस विमान में बैठकर इन्द्र अपने देवसमुदाय के साथ समवसरण की ओर चला।

पृथ्वी पर पहुँचकर इन्द्र अति सज्जित ऐरावत हाथी पर बैठ कर देव-देवियों के साथ समवसरण में आया।

इन्द्र की इस ऋद्धि को देखकर दशार्ण के मन में अपनी ऋद्धि-समृद्धि क्षीण लगने लगी और (अविलम्ब भगवान् के पास जाकर) उसने अपने वस्त्राभूषण उतार कर दीक्षा ले ली।

दशार्णभद्र को दीक्षा लेते देखकर इन्द्र को लगा कि, जैसे वह पराजित हो गया है और दशार्णभद्र के पास जाकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके इन्द्र लौट गया।

उसके बाद दशार्णभद्र ने भगवान् के साथ रहकर धर्म का अध्ययन किया और साधु-व्रत पालन किया।

दशार्णभद्र की यह कथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर्व १०, सर्ग १०; उत्तराध्ययन टीका अ० १८; भरतेश्वरबाहुबली वृत्ति, ऋषिमंडल वृत्ति आदि ग्रंथों में आती है।

ठाणांगसूत्र में आता है—

अणुत्तरोववातिय दसाणं दस अज्झयणा पं तं०—
ईसिदास य १ धरणे त २, सुणक्खत्ते य ३, कातिते ४।
सट्ठाणे ५, सालिभद्दे त ६, आणंदे ७, तेतली ८॥ १॥
दसन्नभद्दे ९ अतिमुत्ते १० एमेते दस आहिया।......

(पत्र ५०६-१)

उसकी टीका (पत्र ५१०-२) में उसकी कथा दी गयी है।

यद्यपि इन में से कुछ का उल्लेख अणुत्तरोववाइय में मिलता है, पर दशार्णभद्र का उल्लेख वहाँ नहीं मिलता। अणुत्तरोववाइय में अब ३ अध्ययन हैं। प्रथम में जालि-मयालि आदि श्रेणिक के १० पुत्रों का, द्वितीय में दीहदंत आदि श्रेणिक के १३ पुत्रों का और तीसरे में

धन्ने सुणक्खत्ते इसिदासे य आहिए
पेल्लए रामपुत्ते य चन्दिमा पुट्ठिमाइय ॥
पेढालपुत्ते अणगारे नवमे पोट्टिले इय।
वेहल्ले दसमे वुत्ते इमेए दस आहिया।

१ धन्य, २ सुनक्षत्र, ३ ऋषिदास, ४ पेल्लक, ५ रामपुत्र, ६ चन्दिमा ७ पुट्ठिमा, ८ पेटालपुत्र, ९ प्रोष्ठिल, १० वेहल्ल के उल्लेख मिलते हैं।

इनमें धन्य, सुनक्षत्र और ऋषिदास ये तीन ही नाम ऐसे हैं, जिनका उल्लेख ठाणांग और अणुत्तरोववाइय दोनों में है।

अणुत्तरोववाइय किसे कहते हैं, इसका उल्लेख समवायांग सटीक सूत्र १४४ (पत्र २३५-२, भावनगर) में आता है। इनमें लिखा है कि, जो लोग मरकर अणुत्तरलोक तक जाने वाले हैं और पुनः जन्म लेने के बाद जो सिद्ध होनेवाले हैं, ऐसे लोगों का उल्लेख अणुत्तरोववाइय में है। और ठाणांग की टीका में अभययदेवसूरि ने कहा है—

"परमनुत्तरोपपातिकाङ्गे नाधीतः क्वचित्सिद्धश्च श्रूयते"

(पत्र ५१०-२)

भरतेश्वरबाहुबलिचरित्र में भी लिखा है कि, दशार्णभद्र मर कर मुक्त हुआ।

"क्रमात्कर्मक्षयं कृत्वा दशार्णभद्रो मुक्तिं ययौ ॥

(प्रथम भाग, पत्र ११६-२)

पर, ठाणांग में अणुत्तरोवाइय के प्रसंग में दशार्णभद्र का उल्लेख होने

से स्पष्ट है कि दशार्णभद्र को मुक्ति नहीं हुई। यह बात समवायांग—जो चौथा अंग—और नन्दी सूत्र से भी प्रमाणित है।

अणुत्तरोववाओ सुकुलपच्चायाया……

—समवायांग (भावनगर) पत्र २३५-१

—अणुत्तर विमान में उत्पत्ति और उत्तम कुल में जन्म

—वही पत्र २३६-२

अनुत्तरोपपातिकत्वे-उपपत्तिः, सुकुलप्रत्यावृत्तयः

—नंदीसूत्र (सुधा) पृष्ठ १३५

अनुत्तर-सर्वोत्तम विजयादि-विमानों में औपपातिक रूप से उत्पन्न होना, मनुष्य भव में फिर श्रेष्ठ कुल की प्राप्ति आदि

—वही पृष्ठ १३६

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि, अनुत्तरोपपातिक में जिनके उल्लेख आते हैं, उनको पुनः मनुष्य-भव में उत्पन्न होना होगा। तब उसके बाद मुक्ति होगी। इन अंगों के आधार पर बाद की पुस्तकों में उल्लिखित मुक्ति की बात स्वीकार नहीं की जा सकती।

दशार्ण

दशार्ण देश का उल्लेख जैनों के २५॥ आर्य-देशों में[1] तथा बौद्धों के १६ महाजनपदों में मिलता है।[2] इसका उल्लेख हिन्दू-वैदिक ग्रन्थों में भी प्रचुर मिलता है :—

१—देखिए तीर्थंकर महावीर, प्रथम भाग, पृष्ठ ४४

२—देखिए तीर्थंकर महावीर, प्रथम भाग, पृष्ठ ५३

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में उल्लेख है कि यह नगर शत्रुघ्न के लड़के शत्रुघाती को दिया गया।[1]

सुबाहुर्मधुरां लेभे शत्रुघाती त वैदिशाम्।

—रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग १८०, श्लोक ९, द्वितीय भाग पृष्ठ ४४०।

'महाभारत' में भी दशार्ण का उल्लेख कई स्थलों पर आया है—

उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।
पञ्चालाः कोसलाश्चैव नैक पृष्ठा धुरन्धराः॥

—महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय ९, श्लोक ४१, पृष्ठ १५।

इसके अतिरिक्त महाभारत में सभापर्व ३०।५ तथा उद्योगपर्व १८९।९ में भी दशार्ण का उल्लेख आया है।

पतंजलि-भाष्य में भी दशार्ण का उल्लेख है।[2]

कुछ स्थलों पर इस राज्य का नाम आकर[3] भी आया है।

१—विमलचरण ने अपनी पुस्तक 'हिस्टारिकल ज्यागरैफी आव ऐंशेंट इंडिया' [पृष्ठ ३३६] में लिखा है कि, इस नगर को रामचन्द्र ने अपने भाई शत्रुघ्न को दिया और पता दिया है (उत्तर काण्ड, अध्याय १२१) पर वस्तुतः शत्रुघ्न के पुत्रों के सम्बन्ध में वहाँ उल्लेख है कि, सुबाहु को मथुरा और शत्रुघाती को विदिशा शत्रुघ्न ने दिये। भगवतदत्त ने अपनी पुस्तक 'भारतवर्ष का इतिहास' पृष्ट १११ पर उक्त श्लोक की ठीक व्याख्या दी है।

२—महाभाष्य ; ६-१-८६-२१-६१ और देखिये 'इंडिया इन दी टाइम आव पतंजलि,' पृष्ट ८५।

३—देखिए सिलेक्ट इंस्क्रुप्शंस [दिनेशचन्द्रसरकार-सम्पादित] भाग १, पृष्ठ १७२ जूनागढ़ का रुद्रदामन का शिलालेख और पृष्ठ १९६ पर नासिका का वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी का शिलालेख तथा पृष्ठ ६० की पादटिप्पणि। मध्यभारत का इतिहास, द्विवेदी लिखित, पृष्ठ ३३।

इसके अतिरिक्त कालिदास के मेघदूत[1] और कादम्बरी[2] में भी इस नगर का उल्लेख है।

प्राचीन जैन-ग्रन्थों में इस दशार्ण-राज्य की राजधानी मृतिकावती बतायी गयी है। इस मृत्तिकावती नगर का उल्लेख हिन्दू-वैदिक-ग्रन्थों में भी आया है। यादव-राज्य सात्वत के चार लड़कों में बँट गया था और बभ्रु और उसके वंशज मृत्तिकावती में राज्य करते रहे।[3] एक अन्य विवरण में आता है कि, दो भाइयों ने अपने सबसे छोटे भाई को घर से निकाल दिया तो वह नर्मदा, मेकला, मृत्तिकावती और ऋक्ष-पर्वत में अपना दिन बिताने लगा।[4]

मृत्तिकावती का उल्लेख पुराणों में अन्य प्रसंगों में भी आया है:—मारकंडेय-पुराण के अपने अनुवाद में (पृष्ठ ३४२) पार्जिटर ने भोज शब्द पर पादटिप्पणि में लिखा है कि भोज लोग मृत्तिकावती में रहते थे और पृष्ठ ३४९ पर भी मृत्तिकावती का उल्लेख पादटिप्पणि में किया है।

दशार्ण की ही राजधानी दशार्णपुर भी बतायी गयी है। जैन-ग्रन्थों में इस नगर का उल्लेख ठाणांग,[5] आवश्यकचूर्णि,[6] आवश्यक की टीका आदि ग्रन्थों में आता है।

१—तेषां दिक्षु प्रथित विदिशा लक्षणां राजधानीं,
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मा।
रसभ्रमङ्ग मुखमिव पायो वैभवत्पाश्चलोमि—मेघदूत, पूर्वमेघ, श्लोक २४।

२—मालया वेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना राजधान्यसीत्
कादंबरी

३–ऐंशट इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन पृष्ठ २७६, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग १ पृष्ठ १५६

४–ऐंशंट इंडियन हिस्टोरिकल टेडिशन, पेज २६६

५–ठाणांगसूत्र सटीक, उतरार्द्ध, पत्र ५१०-२

६–आवश्यकचूर्णि, उतरार्द्ध, पत्र १५६

इस दशार्णपुर की पहचान विदिशा अथवा वर्तमान भिलासा से की जाती है। इसका नाम भिलसा पड़ने के कारण पर प्रकाश डालते हुए कनिंघम ने 'रिपोर्ट आव टूर्स इन बुंदेलखंड ऐंड मालवा इन १८७४-७५ ऐंड १८७६-७७' में लिखा है कि यहाँ सर्वसाधारण में विख्यात है कि राजा भील अथवा भिलस द्वारा बसाये जाने के कारण इसका नाम भिलसा पड़ा।[१]

पर, डाक्टर हाल ने भिलसा नाम पड़ने का एक सर्वथा भिन्न कारण बताया है। उन्होंने लिखा है कि, यहाँ भाइल नामक सूर्यमंदिर राजा कृष्ण के मंत्री वाचस्पति ने बनवाया था। उस भाइल सूर्य-मंदिर के ही कारण इसका नाम भिलसा पड़ा।[२]

उदयपुर के शिलालेख में 'भाइल स्वामी-महाद्वादशकमंडल' शब्द आया है। यह शिलालेख १२२९ वि०स० का है।[३]

डाक्टर कनिंघम ने अपनी उसी पुस्तक में भाइलस्वामी शब्द प व्याख्या करते हुए लिखा है—'भा' का अर्थ प्रकाश होता है और 'इल का अर्थ प्रस्फुटित करना, बिखेरना आदि हुआ। अतः भाइल का अ प्रकाश विकरित करने वाला। 'भाइल' और 'ईश' मिलकर भैलेश हुआ उसी का विकृत रूप भिल्सा बना।[४]

भाइलस्वामी के सम्बन्ध में उल्लेख जैन-ग्रन्थों में भी आता है विविधतीर्थकल्प में 'चतुरशीति महातीर्थ नाम संग्रहकल्प'[५] में 'भाइ

१—पृष्ठ ३४ (वाल्यूम १०, आर्क्यालाजिकल सर्वे आव इंडिया, १८८०)
२—बंगाल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल XXXI, ॥ ११२ नोट
एपीग्राफिका इंडिया, वाल्यूम २४, भाग ५, अं० ३० पृष्ठ २३१
३-एपीग्राफिका इंडिया वाल्यूम २४, भाग ५, पृष्ठ २३१
४—रिपोर्ट आव टूर्स इन बुलेन्दखंड ऐंड मालवा इन १८७४-७५ पृष्ठ ३४
५-विविधतीर्थ कल्प पृष्ठ ८६.

स्वामिगढ़े देवाधि देवः' आता है। सम्पादकों ने पादटिप्पणि में 'भाइल' शब्द का रूपान्तर 'भायल' दिया है। विविधतीर्थकल्प के इस उल्लेख से संकेत मिलता है कि जिनप्रभसूरि के समय में नगर का नाम 'भाइलस्वामी-गढ़' था। जिनप्रभसूरि की यह उक्ति कि, नगर ही भाइलस्वामी कहा जाता था, शिलालेखों से भी प्रमाणित है (देखिये हिस्ट्री आफ द' परमार डिनेस्टी-डी० सी० गांगुली-लिखित (१९३३) पृष्ठ १६१। अल्ब-रूनी ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि, नगर का नाम भी नगर के पूज्य देवता के नाम पर था (अल्बरूनीज इंडिया, भाग १, पृष्ठ २०२) और जिनप्रभसूरि द्वारा बाद में गढ़ लगाने का कारण यह था कि, वह गढ़ है (इम्पीरियल गजेटियर हंटर-सम्पादित भाग २, पृष्ठ ९३)

भाइलस्वामी-सम्बन्धी एक कथा का उल्लेख त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र पर्व १० में कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने भी किया है।[1] कथा है—

"एक बार विदिशापुरी में भायलस्वामी नामक एक वणिक् रहता था। उसे राजा ने विद्युन्माली द्वारा प्रकाशित गोशीर्षचंदन की देवाधिदेव की प्रतिमा पूजा करने के लिए दी। एक बार भायलस्वामी को पूजा-सामग्री लिए दो अत्यंत तेजवान् पुरुष दिखलायी पड़े। उन्हें देख कर भायलस्वामी ने उनसे पूछा—"आप कौन हैं ?'

वे तेजवान पुरुष बोले—"हम लोग पाताल भवनवासी कम्बल-शम्बल नागकुमार हैं। यहाँ देवाधिदेव की पूजा करने की इच्छा से आये हैं।" भायलस्वामी ने उनसे पाताललोक देखने की इच्छा प्रकट की। उन दोनों देवताओं ने भायलस्वामी की बात स्वीकार कर ली। पाताललोक देखने के उत्साह में भायलस्वामी देवाधिदेव की आधी पूजा करके उन देवताओं के साथ पाताल चला।

१—त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग ११, श्लोक ५४०-५५६ पेज २५४-२ से २५५-२

पाताल में उसने धरणेन्द्र से वर माँगा कि ऐसा हो कि, मेरा नाम विख्यात् हो जाय और अविचल रहे। धरणेन्द्र ने उत्तर दिया कि चंड-प्रद्योत राजा तुम्हारे नाम से एक अत्यंत सुन्दर नगर बसायेगा। यहाँ आने की जल्दी में तुमने आधी पूजा की है। अतः यह प्रतिमा कितने ही काल तक मिथ्यादृष्टिवालों द्वारा पूजित होगी। और 'भायलस्वामी सूर्य' के नाम से विख्यात होगी। सूर्य-मंदिर के कारण यह न केवल भायलस्वामी वरन् भास्वत भी कहा जाता था, जिसका अर्थ सूर्य है (आप्टे-संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी, भाग २, पृष्ठ ११९७) देखिये—डिनेस्टिक हिस्ट्री आव नार्दन इंडिया, एच० सी० राय-लिखित खण्ड २, नक्शा संख्या ४)

इसका एक अन्य नाम एड़कक्ष[1] भी मिलता है। यह नाम जैन-ग्रन्थों में भी आया है। एड़कक्ष नाम पड़ने का कारण लिखा है कि एक श्राविका को उसका पति बहुत सताता था। अतः किसी देवता ने उसके पति की आँखें निकाल लीं। पर वह श्राविका अपने पति के प्रति निष्ठावान थी। अतः उसने तपस्या प्रारम्भ कर दी। फिर तत्काल मरे मेड़े की आँख उसके पति को लगा दी गयी। तब से वह आदमी एड़कक्ष कहा जाने लगा और उसकी नगरी का नाम एड़कक्षपुर पड़ गया।[2]

जैन-ग्रन्थों में इस नगरी के गजाग्रपद नाम का भी उल्लेख आता है। कथा है—"दशार्णपुर के निकट दशार्णकूट था। इसी दशार्णकूट पर भगवान् महावीर ठहरे थे। जब भगवान् वहाँ थे, तो दशार्णभद्र हाथी पर बैठ कर भगवान् के प्रति आदर प्रकट करने गये। हाथी अपने अगले पाँव पर खड़ा हो गया।

१—पेटवत्थु २०, पेटवत्थु टीका ६६-१०५

डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग १, पेज ४५६।

२—आवश्यकचूर्णि भाग २, पत्र १५६-१५७

मन्यते, तर्हि वज्रस्वामिनः स्वर्गमनात्प्रागपि स गिरीरथावर्त्त-नामाऽऽसीदिति सङ्कल्छेत ॥'

इससे स्पष्ट है कि 'रथावर्त्त' विदिशा के पास ही था। निशीथ चूर्णि में भी ऐसा ही उल्लेख आया है।[२]

'जैन-परम्परा नो इतिहास' नामक ग्रन्थ में लेखक ने[३] अपनी कल्पना भिड़ाकर इसे मैसूर राज्य में बताया है और वहाँ की बड़ी मूर्ति को वज्र स्वामी की मूर्ति लिख दिया है। स्पष्ट है और प्रमाणित है कि मैसूर राज्य की वह मूर्ति बाहुबली की है। तीर्थकल्प में स्पष्ट उल्लेख है—**"दक्षिणा-पथे गोमटदेवः श्री बाहुबलिः"**[४]। लेखक ने न तो इस ओर ध्यान दिया और न शास्त्रीय उल्लेखों की ओर और वह अपनी कल्पना भिड़ा गये। उनकी दूसरी कल्पना यह है कि वज्रस्वामी का दूसरा नाम द्वितीय भद्रबाहु है[५]। यह बात भी सर्वथा अप्रमाणित है।

रथावर्त के ही निकट वासुदेव और जरासंध में युद्ध हुआ था।[६] रथावर्त का उल्लेख महाभारत में भी आता है।[७]

आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति पाटलिपुत्र से यहाँ आये और जीवित प्रतिमा का वंदन करके आर्यमहागिरि गजाग्रपद तीर्थ की वंदना करने गये। बाद में आर्यमहागिरि इसी गजाग्रपदतीर्थ में अनशन करके

१—श्रीकल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी, पेज २८२।

२—निशीथ पेज ६०।

३—पेज ३३७।

४—विविध तीर्थ कल्प, पेज ८५।

५—जैन-परम्परा नो इतिहास, पेज ३३७।

६—आवश्यकचूर्णि, पूर्व भाग, पत्र २३५।

७—महाभारत (कृष्णाचार्य व्यासाचार्य सम्पादित) वनपर्व, अध्याय ८२, श्लोक २२, पेज १४१।

स्वर्गवासी हुए और आर्य सुहस्ती विदिशा से उज्जयनी में जीवित प्रतिमा को वंदन करने चले गये।[1]

अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण विदिशा का प्राचीन भारतीय इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। और, इसी कारण शताब्दियों तक वह बड़े महत्त्व का व्यापारिक केन्द्र रहा। यहाँ से व्यापार-मार्ग कौशाम्बी, काशी, पाटलिपुत्र, भरुकच्छ और सूर्पारक तक जाते थे। पाली-साहित्य में इसे पाटलिपुत्र से ५० योजन की दूरी पर बताया है।[2] पाली-साहित्य में यहाँ से जाने वाले एक अति लम्बे मार्ग का भी एक उल्लेख आया है। बावरी नामक एक व्यक्ति ने श्राप का फल जानने के लिए अपने १६ शिष्य बुद्ध के पास भेजे। अल्लक से प्रस्थान करके वह दल प्रतिष्ठान, माहिष्मती, उज्जयिनी, गोनद्ध, होता हुआ विदिशा पहुँचा और यहाँ से वनसाह्वय, कौशाम्बी, साकेत, श्रावस्ती, सेतव्या, कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा, भोगनगर, वैशाली होता हुआ राजगृह गया।[3]

सम्राट् अशोक अपने युवराजत्वकाल में यहाँ रह चुका था और उसने एक वैश्य की पुत्री से यहीं विवाह कर लिया था। उसी की संतान महेन्द्र राजकुमार और संघमित्रा थीं।[4]

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसे मध्यम प्रकार के हाथियों के लिए

१—आवश्यक चूर्णि, द्वितीय भाग, पत्र १५६-१५७। आवश्यक हारिभद्रीय टीका तृतीय भाग, पत्र ६६६-२, ६७०-१। आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, द्वितीय भाग, पत्र १०७-१ गाथा १२७८।

२—डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पेज ६२२।

३—सुत्तनिपात (हार्वाड ओरियेंटल सिरीज) लार्ड चैमर्स-सम्पादित पृष्ठ २३८,

४—डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृष्ठ ६२२; बुद्धचर्या, पृष्ठ ५३७

प्रसिद्ध बताया है।[1] जातकों में इस राज्य को तलवार के लिए प्रसिद्ध बताया गया है।[2]

कालिदास ने विदिशा के सम्बंध में लिखा है:—

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्याम जम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः॥

—चारों ओर पके जामुन के फलों से लदे हुए वृक्षों से वनश्री अधिक सुहावनी दिखायी देगी, और इस आनन्द के कारण सुदूरवर्ती मानसरोवर के हंस भी वहाँ खिंचे आयेंगे चाहे वे वहाँ कुछ ही दिन क्यों न ठहरें।[3]

कालिदास ने जिस प्रकार हंसों और जम्बू के वृक्षों का उल्लेख किया है, ठीक वैसा ही हंस[4] और जम्बू[5] का उल्लेख आवश्यक चूर्णि में भी है।

विदिशा के आसपास जो खोदायी हुई है, उसमें बहुत-सी ऐसी ऐतिहासिक सामग्री मिली है, जो जैन-दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

बेसनगर से २ मील दक्षिण-पश्चिम की दूरी पर उदयगिरि में २० गुफाएँ हैं, उनमें दो गुफाएँ संख्या १ और २० जैन-गुफाएँ हैं। शिल्पशास्त्र की दृष्टि से गुफा नम्बर १ रोचक है; क्योंकि वह भारत में मन्दिर-

---

१—कलिङ्गाङ्गगजाः श्रेष्ठाः प्राच्याश्चेति करूशजाः
दशार्णश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमा मताः
सौराष्ट्रिकाः पाञ्चजनाः तेषां प्रत्यवरास्स्मृताः
सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तेजश्च वर्धते

कौटिलीयं अर्थशास्त्र—शामाशास्त्री सम्पादित, पृष्ठ ५०

२—दसण्णकं तिखिणधारं असिम्

—जातक III, पेज ३३८

३—मेघदूत (काशीनाथ बापू-सम्पादित) श्लोक २३, पृष्ठ १४

४—आवश्यकचूर्णि-पत्र ४७१

५—आवश्यकचूर्णि पत्र ४७८

निर्माण-शास्त्र के विकास में प्रारम्भिक रूप का प्रतिनिधित्व करती है।[1] इस गुफा में ७ फुट × ६ फुट का एक कमरा है और ७ वर्ग फुट का एक बरामदा है। इसमें पीछे की दीवाल की चट्टान में ही मूर्ति खोदी हुई थी। अब वह मूर्ति बहुत-ही जीर्ण शीर्ण हो गयी है।[2]

उदयगिरि की गुफा संख्या १० को कनिंघम ने जैन-गुफा बताया है। इसका कारण उन्होंने यह बताया है कि, इसमें पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा स्थापित थी। इसमें कई कमरे हैं।[3] इस गुफा में एक शिलालेख भी है :—

नमः सिद्धेभ्यः श्री संयुतानाम् गुनतो

नगर से आधे मील की दूरी पर एक टीला है और उस टीले से आधे मील की दूरी पर बेतवा के तट पर हाथी पर चढ़े एक सवार की विशाल मूर्ति है।[4] प्राचीन पुरातत्त्वविदों ने हाथी की मूर्ति का उल्लेख तो किया, पर जैन-साहित्य से अनभिज्ञ होने के कारण वे इसका महत्त्व न आँक सके। हम पहले इस नगर के निकट के पर्वत के गजाग्रपद कहे जाने का उल्लेख कर चुके हैं। अतः उसे यहाँ दुहराना नहीं चाहते।[5]

वर्तमान स्थिति यह है कि, प्राचीन विदिशा आज भिलसा के नाम से विख्यात है। भिलसा से दो मील उत्तर बेसनगर-नामक ग्राम है। विदिशा से २ मील की ही दूरी पर उदयगिरि की प्रसिद्ध गुफाएँ[6] हैं। कनिंघम ने यहाँ के ऐतिहासिक स्थानों की परस्पर दूरी इस प्रकार दी है[7]—

१—कालिदास-वर्णित मध्यप्रदेश—चतुर्धाम, डाक्टर हरिहर त्रिवेदी-लिखित पृष्ठ ३८।

२—रिपोर्ट आव टूर्स इन बुंदेलखंड ऐंड मालवा १८७४-७५-१८७६.७७ पृष्ठ ४६-४७

३—वही, पृष्ठ ५३

४—रिपोर्ट, आव टूर्स इन बुंदेलखंड ऐंड मालवा १८७४-७५-१८७६-७७ कनिंघम लिखित, पृष्ठ ४०

५—देखिए पृष्ठ ५४८

६—मध्यप्रदेश चतुर्धाम, पृष्ठ ३५

७—भिल्स-टोप्स, पृष्ठ ७,

साँची—भिल्सा से ५॥ मील दक्षिण-पश्चिम

सोनारी—साँची से ६ मील दक्षिण-पश्चिम

सतधारा—साँची से ६॥ मील पश्चिम

भोजपुर—साँची से ७ मील पूर्व-दक्षिण-पूर्व। भेलसा से ६ मील दक्षिण-दक्षिण-पूर्व

अंधेर—भोजपुर से ४ मील पूर्व दक्षिण-पूर्व। भिलसा से ९ मील पूर्व-दक्षिण-पूर्व।

द्विमुख

प्रत्येकबुद्ध वाले प्रकरण में देखिए (पृष्ठ ५६३)

धनावह[१]

ऋषभपुर नामक नगर में स्तूपकरंडक-नामक उद्यान था। उस उद्यान में धन्य-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस नगर में धनावह नामक राजा राज्य करता था। उसकी देवी का नाम सरस्वती था। उन्हें भद्रनन्दी-नामक पुत्र था। (जन्म, शिक्षा-दीक्षा, विवाह आदि का विवरण सुबाहुकुमार की तरह जान लेना चाहिए)

एक बार भगवान् महावीर ऋषभपुर आये। धनावह भद्रनन्दी आदि वंदना करने गये (यहाँ समस्त विवरण अदीनशत्रु-सा समझ लेना चाहिए।) भद्रनन्दी ने भगवान् के सम्मुख श्रावक-धर्म स्वीकार किया।

कालान्तर में इसे प्रव्रजित होने का विचार हुआ और यह भी सुबाहुकुमार के समान प्रव्रजित हो गया।

नग्गति

प्रत्येकबुद्ध वाले प्रकरण में देखिए (पृष्ठ ५६९)

१—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित), द्वितीय श्रुतस्कंध, अ० २, पृष्ठ ८१

नमि

प्रत्येकबुद्धों वाला प्रकरण देखिए (पृष्ठ ५६४)

पुण्यपाल

देखिए तीर्थंकर महावीर भाग २ पृष्ठ २९७

प्रत्येकबुद्ध

जैन-ग्रन्थों में ४ प्रत्येकबुद्ध बताये गये हैं :—करकंडु, दुम्मुह, नमि और नग्गइ। प्रत्येकबुद्धों की गणना १५ प्रकार के सिद्धों में की गयी है। नन्दीसूत्र सटीक में (सूत्र २१, पत्र १३०-१) आता है :—

से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ? अणंतरसिद्ध केवलनाणं पण्णरसविहं पण्णत्तं, तं जहा—तित्थसिद्धा (१) अतित्थसिद्धा (२) तित्थयरसिद्धा (३) अतित्थयरसिद्धा (४) सयंबुद्धसिद्धा (५) पत्तेयबुद्धसिद्धा (६) बुद्धबोहियसिद्धा (७) इत्थिलिंगसिद्धा (८) पुरिसलिंगसिद्धा (९) नपुंसगलिंगसिद्धा (१०), सलिंगसिद्धा (११), अन्नलिंगसिद्धा (१२) गिहिलिंगसिद्धा (१३) एगसिद्धा (१४) अणेगसिद्धा (१५) सेतं अणंतरसिद्ध केवलनाणं

ऐसा ही नवतत्त्व-प्रकरण की ५५-वी गाथा में भी उल्लेख है।

जिण, अजिण, तित्थऽतित्था, गिहिअन्नसलिंग थी नर नपुंसा।
पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्ध बोहिय इक्कणिक्का य ॥ ५५ ॥

—नवतत्त्वप्रकरण सुमंगाला टीका सहित, पत्र १६४-२

प्रत्येकबुद्धों के लिए कहा गया है—

"प्रत्येकबुद्धास्तु बाह्यप्रत्ययमपेक्ष्य बुध्यन्ते, प्रत्येक—बाह्यं वृषभादिकं कारणमभिसमीक्ष्य बुद्धाः प्रत्येकबुद्धाः इति व्युत्पत्तेः, तथा च श्रूयते—बाह्य वृषभादि प्रत्ययसापेक्षा करकंड्वादीनां

बोधिः बोधिप्रत्ययमपेक्ष्य च बुद्धाः सन्तो नियमतः प्रत्येकमेव विहरन्ति, न गच्छवासिन इव संहता।

—राजेन्द्राभिधान, भाग ७, पृष्ठ ८२८

ऐसा ही नवतत्त्व की सुमङ्गला-टीका पत्र १६५-२ में भी है।

विचारसारप्रकरण (मेहसाना, अनुवाद-सहित) में पृष्ठ १५३ गा० ८४९ में भी ऐसा ही उल्लेख है।

तत्त्वार्थाधिगम सूत्र (भाष्य तथा टीका सहित, हीरालाल-सम्पादित, भाग २, पृष्ठ ३०४) में बारह बातों द्वारा सिद्धों की विशेष विचारणा की गयी है—

क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थ-चरित्र-प्रत्येकबुद्ध बोधित-ज्ञानाऽव-गाहना-ऽन्तर-सङ्ख्या-ऽल्पबहुत्वतः साध्याः ॥१०-७॥

इसमें प्रत्येकबुद्ध शब्द पर टीका करते हुए कहा गया है—

तथा परः प्रत्येकबुद्ध सिद्धः प्रत्येकमेकमात्मानं प्रति केनचिन्निमित्तेन सञ्जातजातिस्मरणाद् वल्कलचीरि प्रभृतयः करकण्डवादयश्च प्रत्येकबुद्धाः

—पृष्ठ ३१०

ये प्रत्येकबुद्ध किसी बाहरी एक वस्तु को देखकर बुद्ध होते हैं (कथा में प्रत्येक के बुद्धत्व-प्राप्ति का विवरण दिया है) वे साधु के समान विहार करते हैं; परन्तु गच्छ में नहीं रहते।

आर्हत्दर्शनदीपिका (मंगलविजय-लिखित, प्रो० हीरालाल कापड़िया-सम्पादित तथा विवेचित, पृष्ठ ११५४) में प्रत्येकबुद्ध के सम्बन्ध में लिखा है—

"संध्या समय के बादल जिस प्रकार रंग बदलते हैं, उसी प्रकार संसार में पौद्गलिक वस्तु क्षणभंगुर हैं, इस प्रकार विचार करके, अर्थात् किसी प्रकार वैराग्यजनक निमित्त प्राप्त करके, केवलज्ञान प्राप्त करके जो मोक्ष

प्राप्त करे, उसे प्रत्येकबुद्ध कहते हैं—जैसे करकंडु मुनि ! इन जीवों की सिद्धिप्राप्ति में प्रस्तुत भव में गुरु के उपदेश की अपेक्षा नहीं होती, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए।"

और, उसकी पादटिप्पणि में लिखा है कि प्रत्येकबुद्ध और स्वयंबुद्ध में खासकर (१) बोधि (२) उपाधि (३) श्रुत और (४) वेष इन चार अपेक्षाओं की भिन्नता होती है।

बौद्ध-ग्रन्थों में प्रत्येक बुद्ध—बौद्धग्रन्थों में दो प्रकार के बुद्ध बताये गये हैं—१ तथागतबुद्ध और २ प्रत्येकबुद्ध। पर, टीकाकारों ने चार प्रकार के बुद्ध गिनाये हैं—१ सब्बन्नुबुद्ध २ पच्चेकबुद्ध ३ चतुसच्च बुद्ध ४ सुतबुद्ध[1] और प्रत्येक बुद्धों के सम्बन्ध में कहा गया है :—

"उन्हें स्वतः ज्ञान होता है पर वे जगत को उपदेश नहीं करते......"

—(डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृष्ठ ९४ तथा २९४)

और, बौद्ध-ग्रन्थों में भी वे ही चार प्रत्येकबुद्ध बताये गये हैं, जिनका उल्लेख जैन-ग्रन्थों में है। (जातक हिन्दी-अनुवाद भाग ४, कुम्भकार-जातक, पृष्ठ ३६)

ये चारों प्रत्येकबुद्ध श्रावक थे और बाद में बाह्य निमित्त देखकर प्रत्येक बुद्ध हुए।

इन चारों प्रत्येक बुद्धों का जीवनचरित्र उत्तराध्ययन (नेमिचन्द्राचार्य की टीका सहित) अध्ययन ९, पत्र १३३-१ से १४५-२ तक में आती है।

(१)

करकंडु

चम्पा-नगरी में दधिवाहन नामका राजा राज्य करता था। उनकी

१—डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृष्ठ २९४

पत्नी का नाम पद्मावती था। वह वैशाली के महाराजा चेटक की पुत्री थीं।

एक बार रानी गर्भवती हुई। उस समय गर्भ के प्रभाव से उन्हें यह दोहद हुआ कि, "मैं पुरुष वेश धारण करके हाथी पर चढ़ूँ और राजा मेरे मस्तक पर छत्र लगाएँ। और, इस रीति से मैं आरामादिक में विचरूँ।" पर, लज्जावश रानी यह दोहद किसी से कह न सकीं। अतः कृषकाय होने लगीं। एक दिन राजा ने उनसे बड़े आग्रह से पूछा तो रानी ने अपने मन की बात कह दी।

अतः राजा एक दिन रानी को हाथी पर बैठा कर उनके मस्तक पर छत्र लगा कर सेना आदि के साथ नगर से बाहर निकल कर आराम में गये।

उस समय वर्षा ऋतु का प्रारम्भ था। छोटी-छोटी बूँदें पड़ रही थीं। अतः हाथी को विंध्यक्षेत्र की अपनी जन्मभूमि का स्मरण हो आया और हाथी जंगल की ओर भागा। सैनिकों ने रोकने की चेष्टा की पर निष्फल रहे।

हाथी जंगल की ओर चला जा रहा था कि, राजा को एक वटवृक्ष दिखायी दिया। राजा ने रानी से कहा—"देखो, यह सामने वटवृक्ष आ रहा है। जब हाथी वहाँ पहुँचे तो तुम उसे पकड़ लेना।" जब वृक्ष निकट आया तो राजा ने तो डाल पकड़ ली; पर रानी उसे पकड़ने में चूक गयीं। राजा ने जब वृक्ष पर रानी को नहीं देखा तो बहुत दुखी हुए।

स्वस्थमन होने पर, राजा तो चम्पा लौट आये पर हाथी रानी को एक निर्जन जंगल में ले जाकर स्वयं एक सरोवर में घुस गया। सरोवर में अवसर देखकर रानी किसी प्रकार हाथी से उतर गयीं और तैर कर किनारे आयीं।

उस जंगल की भयंकरता देखकर, रानी विलाप करने लगीं। पर, अपनी असहायावस्था जानकर हिम्मत बाँधकर एक ओर चल पड़ीं। काफी दूर जाने पर उन्हें एक तापस मिला। रानी ने तापस को प्रणाम किया

और उसके पूछने पर अपना परिचय बता दिया। तापस ने रानी को आश्वासन देते हुए कहा—"मैं भी चेटक का सगोत्री हूँ। अतः चिन्ता करने की अब कोई बात नहीं है।" उस तापस ने वन के फलों से रानी का स्वागत किया। और, कुछ दूर साथ जाकर गाँव दिखा कर बोला—"हे पुत्री हल चली भूमि पर मैं नहीं चल सकता। अतः तुम अकेले सीधे चली जाओ। आगे दन्तपुर[1] नामक नगर है। वहाँ दंतवक्र राजा है। उस पुरी से किसी के साथ चम्पा चली जाना।"

१—कुम्भकार-जातक (जातक हिन्दी-अनुवाद, भाग ४, पेज ३७) में करकंडु को दन्तपुर का राजा बताया गया है। उक्त जातक में करकंडु का जीवन-चरित्र वस्तुतः नहीं के बराबर है। जैन-स्रोतों में करकंडु के जीवन का वर्णन बौद्ध-स्रोतों की अपेक्षा कहीं अधिक है। जैन-कथाओं से स्पष्ट है कि, करकंडु की माँ दंतपुर पहुँची थी, वहीं वह साध्वी हुई और वहीं करकंडु का जन्म हुआ। राजा तो वह बाद में कांचनपुर का हुआ।

बौद्ध स्रोतों से पता चलता है कि यह दंतपुर कलिंग की राजधानी थी (दीघनिकाय, महागोविंदसुत्त, हिन्दी-अनुवाद, पेज १४१)। उक्त सूत्र में दंतपुर के राजा का नाम सत्तभू लिखा है। वह रेणु का समकालीन था। गंगा इन्द्रवर्मन के जिजिंगी-प्लेट में इसे अमरावती से भी अधिक सुंदर नगर बताया गया है।

(एपीग्राफिका इंडिका, जिल्द २५, भाग ६, अप्रैल १६४०, पेज २८५)

महाभारत के उद्योगपर्व में [अ० ४७] में भी दंतपुर अथवा दंतकपुर नाम आता है।

इस नगर की पहचान विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न स्थलों से की है। कुछ राजमहेन्द्री को प्राचीन दंतकपुर बताते हैं। कुछ पुरी को प्राचीन काल का दंतपुर मानते हैं। सिलवेन लेवी ने इसकी पहचान टालेमी के पलौरा से की है। (देखिए 'प्रीएरियन एंड प्रीड्रेवेडियन इन इंडिया, पेज १६३-१७५), सुब्बाराव ने वंशधारा नदी के दक्षिणी तट पर चिकाकोल स्टेशन से ३ मील की दूरी पर स्थित एक किले के अवशेष को दंतपुर माना है (हिस्टारिकल ज्यागरैफी आव ऐंशेंट इंडिया, पेज १४६।)

पद्मावती रानी दंतपुर पहुँची। नगर में घूमते-घूमते उसने उपाश्रय में साध्वियों को देखा और उनके पास जाकर उसने वंदना की। साध्वियों ने रानी से परिचय पूछा। रानी ने उनसे अपना समस्त हाल कह दिया पर गर्भ की बात उनसे गुप्त रख ली।

रानी की कथा सुनकर साध्वियों ने उसे उपदेश दिया। उपदेश सुनकर रानी को वैराग्य हुआ और उसने दीक्षा लेली। जब रानी का गर्भ वृद्धि को प्राप्त हुआ तो साध्वियों ने पूछा—"यह क्या ?" अब रानी ने सारी बातें सच-सच कह दीं।

गर्भ के दिन पूरे होने पर शैयातर के घर जाकर रानी ने प्रसव किया और नवजात शिशु को रत्नकम्बल में लपेटकर पिता की नाममुद्रा के साथ श्मशान में छोड़ दिया। बच्चे की रक्षा के लिए रानी श्मशान में ही एक जगह छिप कर देखने लगी। इतने में श्मशान का मालिक चांडाल आया। वह निष्पुत्र था। उसके बच्चे को उठा लिया और उसकी पत्नी उसका पालन-पोषण करने लगी। छिप कर रानी ने उस चांडाल का घर देख लिया। रानी जब उपाश्रय में आयी तो साध्वियों ने पुनः उसके गर्भ की बात पूछी। रानी ने कहा—"मृत पुत्र हुआ था। उसे फेंक दिया।"

पर, रानी पुत्रस्नेह के कारण अक्सर चांडाल के घर जाती और भिक्षा में मिली अच्छी वस्तु को उस बच्चे को दे देती।

जब वह बालक बड़ा हुआ तो वह अपने समान उम्र के बच्चों में राजा बनता।[1] एक दिन वह श्मशान में था कि दो साधु चले जा रहे थे।

१—नेमिचन्द्र की टीका (पत्र १३४-१) में आता है कि, राजा बन कर वह समवयस्क लड़कों से कर माँगता। लड़के पूछते कर में क्या दें तो कहता मुझे खुजलाओ। (ममं कंडुयह। ताहे से 'करकंडु' त्ति नामं कयं) इसी कारण बच्चे उसे करकंडु कहने लगे। ऐसा ही शान्त्याचार्य को टीका पत्र ३०१-२, भावविजय की टीका श्लोक ६५, पत्र २०५-१ आवश्यक हारिभद्रीय टीका पत्र ७१७-२ तथा उपदेशप्रासाद, २४-३४६ में भी लिखा है।

एक साधु ने एक बाँस दिखा कर कहा—"यह लकड़ी चार अंगुल बड़ी होने पर जो इसे धारण करेगा वह राजा होगा।[१]"

एक ब्राह्मण का लड़का सुन रहा था। उसने वह बाँस जमीन के नीचे चार अंगुल तक खोदकर काट लिया। इस चांडाल के घर पले लड़के में और ब्राह्मण-पुत्र में झगड़ा हो गया। दोनों न्यायाधीश के यहाँ गये। न्यायाधीश ने एक बाँस के लिए इतना बात बढ़ाने का कारण पूछा तो चांडाल के घर पले लड़के ने कहा—"जो यह बाँस को धारण करेगा, वह राजा होगा। यह लकड़ी मेरे स्मशान की है; अतः मुझे मिलनी चाहिए।" न्यायाधीश ने लकड़ी उसे दिला दी और कहा—"अच्छा राज्य मिले तो इस ब्राह्मण को ध्यान में रखना उसे एक ही गाँव दे देना।"

१—दंडों के लक्षण के सम्बंध में उत्तराध्ययन की नेमिचन्द्राचार्य की टीका में निम्नलिखित गाथाएँ दी हुई हैं:—

एगपव्वं पसंसंति, दुपव्वा कलहकारिया।
तिपव्वा लाभसंपन्ना, चउपव्वा मारणंतिया॥ १॥
पंचपव्वा उ जालट्ठी, पंथे कहलनिवारिणी।
छपव्वा य आयंको, सत्तपव्वा आरोगिया॥ २॥
चउरंगुलपइट्ठाणा, अट्ठंगुल समूसिया।
सत्तपव्वा य जा लट्ठी, मत्तगय निवारिणी॥ ३॥
अट्ठपव्वा असंपत्ती, नवपव्वा जसकारिया।
दसपव्वा उ जा लट्ठी, तहियं सव्वसंपया॥ ४॥
वंका कीडक्खइया, चित्तलया पोल्लडा च दड्ढा य।
लट्ठी य उब्भसुक्का, वज्जेयव्वा पयत्तेणं॥ ५॥
घणवद्धमाणपव्वा, निद्धावन्नेण एगवन्नाय।
एमाइलक्खण जुआ, पसत्थालट्ठी मुणेयव्वा॥ ६॥

पत्र १३४-१

ब्राह्मण ने बाँस दे तो दिया पर; उसने पीछे उ
षड्यंत्र किया। चांडाल समाचार सुन कर अपनी पत
वहाँ से भाग निकला। और कांचनपुर[1] चला गया।

जिस दिन यह परिवार वहाँ पहुँचकर विश्राम क
वहाँ का राजा मर गया था। उसे पुत्र नहीं था; अतः
घोड़ा छोड़ा गया था। घोड़े ने आकर चांडाल के
प्रदक्षिणा की और उसके निकट ही ठहर गया।

अब यह करकंडु कांचनपुर का राजा हो गया, यह
ब्राह्मण-पुत्र भी आया और उसने चम्पा में एक गाँव
दधिवाहन के नाम एक ग्राम उस ब्राह्मण को दे देने के

दधिवाहन इस पत्र को देखकर बड़ा क्रुद्ध हुआ।
समझकर करकंडु ने चम्पा पर आक्रमण कर दिया।

रानी पद्मावती ने पिता-पुत्र के बीच परिचय क
कराया। दधिवाहन ने इसे चम्पा का भी राज्य दे
साधु हो गया।

इसी करकंडु ने कलिकुण्ड तीर्थ की स्थापना कराय
कल्प, चम्पापुरीकल्प, पृष्ठ ६५)

इस करकंडु को गौवों से बड़ा प्रेम था। एक दिन
में गया था कि उसने एक अति सुंदर बछड़े को देखा
प्रसन्न हुआ कि, उसने आज्ञा की। कि उस बछड़े को उ
दूध पिलाया जाये।

वह बछड़ा कालान्तर में युवा हुआ और उसके भी
जब करकंडु ने गोकुल में उस बछड़े को लाने को कहा त

१—कांचनपुर कलिंग की राजधानी थी और २५॥ आर
गणना थी। वसुदेव हिंडी (पेज १११) में कुछ व्यापारियों का
जो रत्नादि लेकर लंकाद्वीप से कांचनपुर आये थे।

एक बूढ़ा बैल खड़ा कर दिया गया। इसे ही देखकर करकंडु को वैराग्य हुआ और वह प्रत्येकबुद्ध हो गया।

(२)

द्विमुख[1]

पाँचाल-देश में काम्पिल्य-नामक नगर में जय-नामक राजा था। उनकी रानी का नाम गुणमाला था।

एक दिन देश-देशान्तर से आये एक दूत से राजा ने पूछा—"ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो दूसरे राजाओं के पास है और मेरे पास नहीं है।" इस प्रश्न को सुनकर दूत ने कहा—"महाराज आपके राज्य में चित्रशाला नहीं है।"

राजा ने चित्रकारों को बुला कर सुन्दर चित्र बनाने की आज्ञा दी।

उस चित्रसभा बनाने के लिए पृथ्वी की खुदाई हो रही थी, तो पाँचवें दिन पृथ्वी में से एक रत्नमय देदीप्यमान मुकुट निकला। उस मुकुट में स्थान-स्थान पर पुतलियाँ लगी थीं।

एक शुभ दिवस देखकर राजा ने सिंहासन पर बैठकर उस दिव्य मुकुट को धारण किया। उसे धारण करने से जय राजा द्विमुख दिखने लगे।

अनुक्रम से द्विमुख राजा को सात पुत्र हुए। पर, उन्हें एक भी पुत्री नहीं थी। रानी ने मदन-नामक यक्ष की मानता की। रानी को स्वप्न में पारिजात वृक्ष की मंजरी दिखलायी पड़ी। अतः जब रानी को पुत्री हुई तो रानी ने उस कन्या का नाम मदनमंजरी रखा। इस कन्या का विवाह

१—बौद्ध-ग्रन्थों में इस राजा का नाम दुर्मुख लिखा है। और वैराग्य का कारण भी भिन्न दिया है। (देखिये कुम्भकार जातक)

बाद में चंडप्रद्योत से हुआ। हमने प्रद्योत के प्रसंग में मुकुट के लिए हुए युद्ध और कन्या के विवाह का विस्तृत विवरण दे दिया है।

एक बार इन्द्र-महोत्सव आया। नगरवासियों ने इन्द्रध्वज की स्थापना की। वह इन्द्रध्वज, झंडियों, पुष्पों, घंटियों आदि से सज्जित किया गया। लोगों ने उसकी पूजा की। पूर्णिमा के दिन राजा भी उत्सव में सम्मिलित हुआ।

पूजा समाप्ति के बाद नगर-निवासियों ने उस ध्वज के आभूषण आदि तो निकाल लिए और काष्ठ को इसी प्रकार फेंक दिया। बच्चों ने मल-मूत्र से उस काष्ठ को अशुचि करना प्रारम्भ किया।

एक दिन राजा द्विमुख ने उस स्थिति में उस काष्ठ को देखा और उन्हें वैराग्य हो गया। अपने केशों का लोचकर वह प्रत्येकबुद्ध हो गये और मुनिवेश धारण करके पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

(३)

नमि[1]

मालव-देश में स्वर्ग को भी नीचा दिखाने वाला सुदर्शन-नामक नगर था। उस नगर में मणिरथ-नामक राजा था। उस मणिरथ के भाई का नाम युगबाहु था। वही युगबाहु युवराज था। उस युगबाहु की पत्नी का नाम मदनरेखा था। वह मदनरेखा शीलव्रत धारण करने वाली थी। उसे चन्द्रयश-नामक एक पुत्र था।

एक दिन मणिरथ ने मदनरेखा को देखा और कामपीड़ित हो गया। और, उसे अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए नाना भाँति के वस्त्राभूषण उसके पास दूति द्वारा भेजने लगा।

एक दिन एकान्त में मदनरेखा को देखकर मणिरथ ने कहा—"हे सुन्दरी! यदि तुम मुझे पुरुष-रूप में स्वीकार करो तो मैं तुम्हें राज्य-लक्ष्मी

१—कुम्भकार जातक में इसका नमि न होकर निमि दिया गया है।

की स्वामिनी बनाऊँगा ।" इसे सुनकर मदनरेखा ने उसे समझाया—"युवराज की पत्नी होने से मुझे राज्यलक्ष्मी तो स्वतः प्राप्त है। छोटे भाई की पत्नी होने से मैं आपके लिए पुत्री-तुल्य हूँ। उसकी कामना कोई नहीं करता। परस्त्री के साथ रमण करने की इच्छा मात्र दुःखदायक है। अतः हे महाराज आप इस इच्छा को त्याग दें।"

राजा को लगा कि हमारा भाई ही शत्रु-रूप में हो गया है। अतः उसके जीवित रहते मेरी दाल न गलेगी। कालान्तर में मदनरेखा गर्भवती हुई और एक दिन वह युगबाहु के साथ उपवन में गयी थी तथा रात्रि में कदलीगृह में रह गयी। भाई की हत्या का अच्छा अवसर जान कर वह कदलीगृह में गया। भाई को देखते ही युगबाहु ने उसे प्रणाम किया। राजा ने उससे कहा—"इस समय रात्रि में यहाँ रहना ठीक नहीं है।" युगबाहु वापस चलने की तैयारी कर ही रहा था कि, मणिरथ ने खड्ग से उसे मार दिया। मदनरेखा "अन्याय! अन्याय!!" चिल्लाने लगी तो राजा बोला—"प्रमादवश हाथ से खड्ग गिर पड़ा। भय की इसमें कोई बात नहीं है। युगबाहु का पुत्र वैद्य को ले आया। उपचार किया गया पर अधिक रक्त-प्रवाह के कारण थोड़ी ही देर में युगबाहु चेष्टा-रहित हो गया।

मदनरेखा मणिरथ के कुत्सित विचारों से तो परिचित थी ही। अतः रात्रि में घर से निकल पड़ी और पूर्व दिशा की ओर चली। प्रातः-काल होते-होते वह एक गहन वन में आ पहुँची। उस भयंकर वन में चलते-चलते दोपहर में एक सरोवर के तट पर पहुँची। वहाँ मुँह-हाथ धोकर फल आदि खाकर एक कदलीगृह में साकार अनशन (मर्यादित भोजन त्याग) करके लेटी।

वह इतनी थकी थी कि रात आ गयी पर उसकी नींद नहीं खुली। रात्रि होने पर उसकी नींद खुली तो बड़ी सतर्कता से जगती रही।

मध्य रात्रि में उसके पेट का गर्भ चलायमान हुआ। पेट में बड़ी पीड़ा हुई और उसे एक पुत्र-रत्न पैदा हुआ। युगबाहु की नाम-मुद्रिका पहना कर और रत्नकम्बल में लपेट कर बच्चे को उस कदली में रखकर वह सरोवर में स्नान करने गयी। इतने में एक जलहस्ती ने उसे सूँड में पकड़ा और गेंद की तरह आकाश में उछाला।

उस समय एक युवा विद्याधर आकाशमार्ग से नंदीश्वर द्वीप की ओर अपने साधु पिता की वंदना करने जा रहा था। उसने रानी को लोक लिया और उसे वैताढ्य-पर्वत पर ले गया। वहाँ मदनरेखा अपने बच्चे के लिए रुदन करने लगी। उस विद्याधर ने भी मदनरेखा से विवाह का प्रस्ताव किया। मदनरेखा ने उससे अपने पुत्र के पास पहुँचा देने के लिए आग्रह किया तो उसने कहा—"तुम्हारे पुत्र को मिथिला का राजा पद्मरथ उठा ले गया। वह निष्पुत्र है; अतः उसने उस पुत्र को पालने के लिए अपनी पत्नी पुष्पमाला को दे दिया है।"

रानी मदनरेखा ने अपने पतिव्रत-धर्म की रक्षा के लिए उस विद्याधर से कहा—"पहले आप अपने पिता की वंदना कर लें; उसके बाद ही कुछ होगा।"

वह विद्याधर अपने पिता के पास गया तो उसके पिता ने उसे जो उपदेश दिया, उससे उस विद्याधर के ज्ञानचक्षु खुल गये और अपने प्रस्ताव के लिए मदनरेखा से वह क्षमायाचना करने लगा। कालान्तर में वह रानी मदनरेखा साध्वी हो गयी।

मदनरेखा के पुत्र के प्रभाव से शत्रुराजा भी राजा पद्मरथ को नमन करने लगे। इससे प्रभावित होकर पद्मरथ ने उस पुत्र का नाम नमि

रखा। बचपन में पाँच धाइयों[1] ने उस बालक की देखरेख की। आठ वर्षों की उम्र होने पर पद्मरथ ने उस बच्चे को कलाचार्य के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा। युवा होने पर पद्मरथ ने इक्ष्वाकुवंश के १००८ कन्याओं से उसका विवाह कर दिया।

उस नमि को गद्दी सौंपकर पद्मरथ ने दीक्षा ले ली और कालान्तर में मोक्षपद प्राप्त किया।

उधर सुदर्शन-नामक नगर में घटना यह घटी कि, जिस रात्रि को मणिरथ राजा ने युगबाहु को मारा, उसी रात्रि में सर्प काटने से मणिरथ का देहांत हो गया और वह चौथे नरक में गया। मंत्रियों ने चंद्रयश को गद्दी पर बैठाया और दोनों भाइयों का अग्नि-संस्कार एक साथ ही किया।

एक बार नमिराजा का श्वेत पट्टहस्ती उन्मत्त होकर विंध्याचल की ओर भागा। जब वह हाथी सुदर्शनपुर के पास से जा रहा था, राजा के कर्मचारियों ने इसकी सूचना राजा को दी। चंद्रयश ने बड़े परिश्रम से उस हाथी को नगर में प्रवेश कराया।

अपने हाथी का समाचार पाकर नमि राजा ने हाथी माँगने के लिए चंद्रयश के पास दूत भेजा। पर चंद्रयश ने कहा—"जो बलवान होता है, वही रत्न धारण करता है। कोई रत्न को वापस नहीं करता।" समाचार सुनकर नमि राजा सुदर्शनपुर की ओर चला। सुदर्शनपुर का नगरद्वार बंद कर दिया गया और नमि की सेना ने सुदर्शनपुर घेर लिया।

युद्ध का समाचार सुनकर साध्वी मदनरेखा ने जाकर नमि को समझाया कि तुम दोनों भाई परस्पर न लड़ो। नमि के न मानने पर वह चंद्रयश के पास गयी। चंद्रयश अपनी माँ को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ।

१—खीरधाईए, मज्जणधाईए, कीलावणधाईए, मंडणधाईए, अंकधाईए

—नायाधम्मकहाओ पेज २१

माँ के कहने पर चंद्रयश स्वयं अपने छोटे भाई से मिलने गया और छोटे भाई नमि को गद्दी पर बैठाकर स्वयं उसने दीक्षा ले ली।

नमि अब दोनों राज्यों का पालन करने लगे। एक बार नमि को ज्वर हुआ। सभी चिकित्साएँ बेकार गयीं और वैद्यों ने रोग को असाध्य कह दिया।

केवल चंदन के रस से राजा को कुछ शांति मिलती। अतः उसकी रानियाँ चंदन घिसने लगीं। चंदन घिसने से रानियों के कंकण से जो खटखट शब्द होता। उससे राजा को कष्ट होने लगा। यह जानकर रानियों ने एक छोड़कर अन्य कंकण उतार दिये। अब शब्द न होता सुनकर राजा को विचार हुआ कि शब्द तो सुनायी नहीं पड़ता। लगता है कि, प्रमादी रानियाँ चंदन घिस नहीं रही हैं। यह विचार जानकर मंत्री ने कहा—"महाराज! सबने कंकण उतार दिये हैं। केवल एक कंकण हाथ में होने से शब्द नहीं हो रहा है।"

अब राजा को विचार हुआ, बहुत समागम से दोष उत्पन्न होता है। अतः इस संसार का त्याग करके यदि अकेला रहना हो तो अति उत्तम। इस विचार से राजा ने निश्चय किया कि, यदि ज्वर समाप्त हो जाये तो मैं चरित्रग्रहण कर लूँ।"

विचार करते-करते राजा सो गया और राजा के पुण्य के प्रभाव से कार्तिक मास की पूर्णिमा की रात्रि को राजा का ६ महीने का ज्वर उतर गया।

प्रातः होते-होते राजा ने स्वप्न देखा—"मैं मेरु-पर्वत के शिखर पर हूँ" इसी समय प्रातःकाल के बाजे आदि की ध्वनि से राजा की नींद खुल गयी।[1]

१—कुम्भकार-जातक में उसके प्रतिबोध की कथा भी भिन्न है। उसमें लिखा है एक सूनी दूकान से मांस का टुकड़ा लेकर एक चील उड़ी। गृद्ध आदि अन्य पक्षी उससे मांस छीनने के लिए झपटे। उसने उसे छोड़ दिया। दूसरे ने ग्रहण किया, अब सब उस पर झपटे। यह देखकर नमि को विचार हुआ कि जो मांस का टुकड़ा ग्रहण करता है, उसे कष्ट होता है और जो उसका त्याग करता है, वही सुखी होता है। इसी प्रकार पाँच काम भोगों का परित्याग सुखद है।

प्रवेश कर गया। उसमें प्रवेश करते ही राजा ने एक अति सुन्दर कन्या देखी।

राजा को देखते ही वह कन्या उठकर खड़ी हो गयी और उसने राजा को उच्चासन दिया। एक दूसरे को देखते ही दोनों में प्रेम हो गया। वहाँ बैठने के बाद राजा ने उस सुन्दरी से उसका परिचय पूछा और उस एकान्त-वन में वास करने का कारण जानना चाहा। पर, उस सुन्दरी ने उत्तर दिया—"पहले मेरे साथ विवाह कर लो। फिर मैं, आपको सभी बातें बताऊँगी। यह सुनकर राजा उस भवन में स्थित जिनालय में गया। उसके निकट ही एक मनोहर वेदिक थी। वहाँ जिन को प्रणाम करने के पश्चात् राजा ने उस युवती से गंधर्व-विवाह कर लिया।

रात्रि भर वहाँ रहने के पश्चात्, दूसरे दिन प्रातःकाल जिनेन्द्र की वंदना करके राजा उस भवन के सभामंडप में स्थित सिंहासन पर आसीन हुआ। रानी उनके निकट अर्द्धासन पर बैठी। और, फिर उसने कथा प्रारम्भ की—

"क्षितिप्रतिष्ठ-नामक नगर में जितशत्रु-नामका एक राजा था। एक बार उसने एक बड़ी भारी चित्रसभा बनवायी और नगर के चित्रकारों को बुलाकर सब को बराबर भाग बाँट कर, उस चित्रसभा को चित्रित करने का आदेश दिया। उन चित्रकारों में चित्रांगद नामक एक अति बूढ़ा चित्रकार था। उस बूढ़े चित्रकार को पुत्र नहीं था, अतः कोई उसके काम में सहायता करने वाला न था।

"उस बूढ़े चित्रकार को कनकमंजरी नामक एक कन्या थी। वह सदैव अपने पिता के लिए खाना उस चित्रसभा में लाती। एक दिन वह कन्या अपने पिता के लिए भोजन लेकर चित्रसभा की ओर जा रही थी कि, इतने में उसने देखा कि एक व्यक्ति भीड़ से भरे राजमार्ग पर घोड़ा दौड़ाते चला आ रहा था। कनकमंजरी डर गयी। किसी प्रकार वह अपने पिता के पास पहुँची, तो उसे देखकर उसका पिता बड़ा प्रसन्न हुआ। जब तक

उसका पिता भोजन कर रहा था, तब तक बैठे-बैठे उस कनकमंजरी ने एक मयूरपिच्छ बना दिया। उस दिन सभागार देखने जब राजा आया तो मयूरपिच्छ देखकर वह उसे उठाने चला। पर, वहाँ तो चित्र था। आघात से उँगली का नख टूट गया।

राजा फिर उस चित्र को देखने लगे। राजा को चित्र देखते देख कर विनोद से कनकमंजरी बोली—"अब तक तीन पाँवों वाली पलंग थी। आप जो चौथे मूर्ख मिल गये, तो अब पलंग चार पाँवों वाली हो गयी।" यह सुनकर राजा बोला—"शेष तीन कौन हैं? और, मैं चौथा किस प्रकार हूँ?" इसे सुनकर वह कन्या बोली—"मैं चित्रांगद-नामक चित्रकार की पुत्री हूँ। सदा मैं अपने पिता के लिए भोजन लेकर आती हूँ। आज भोजन लेकर आते समय राजमार्ग में मैंने एक घुड़सवार देखा। वह पहला मूर्ख था; क्योंकि राजमार्ग में स्त्री-बालक-वृद्ध आदि आते-जाते रहते हैं। उस भीड़-भाड़ की जगह में वेग से घोड़ा चलाना कुछ बुद्धिमानी का काम नहीं है। इसलिए मूर्ख-रूपी पलंग का वह पहला पाया हुआ।

"दूसरा मूर्ख इस नगर का राजा है, जिसने दूसरे की शक्ति और वेदना जाने बिना सभी चित्रकारों को समान भाग चित्र बनाने को दिया। घर में अन्य प्राणी होने से उनकी सहायता से दूसरे चित्रकार जल्दी-जल्दी काम कर सकने में समर्थ हैं; पर मेरे पिता तो पुत्र-रहित और दुःखी-मन हैं। वे अकेले दूसरों के इतना काम कैसे कर सकते हैं? इसलिए राजा मूर्खरूपी चौकी का दूसरा पाया है।

"तीसरे मूर्ख मेरे पिता हैं। उनका उपार्जित धन खाते-खाते समाप्त हो चुका है। जो बचा है, उससे ही किसी प्रकार मैं नित्य भोजन लाती हूँ। जब मैं लेकर आती हूँ, तो वह शौच जाते हैं। मेरे आने से पूर्व ही शौच नहीं हो आते; और जाते हैं तो जल्दी नहीं आते। इतने में भोजन

ठंडा और नीरस हो जाता है। इसलिए मूर्ख-रूपी मंच के वह तीसरे पाये हैं।

"चौथे मूर्ख आप हैं। जब यहाँ मोर आने की कोई उम्मीद नहीं है, तो फिर मोरपंख यहाँ भला कैसे आयेगा? और, यदि कोई मोरपंख यहाँ ले भी आया भी हो, तो हवा से उसे उड़ जाना चाहिए था? इनकी जानकारी के बिना ही आप उसको लेने के लिए तैयार हो गये।"

राजा ने सोचा—"यह कन्या चतुर है तथा सुन्दर है। मैं इससे विवाह क्यों न कर लूँ?" बाद में उस राजा ने उस कन्या से विवाह कर लिया।

एक बार उस नगर में विमलचंद्र-नामक आचार्य पधारे। राजा कनकमंजरी-सहित उनकी वंदना करने गया और दोनों ने श्रावक-धर्म स्वीकार कर लिया।

मर कर वह कनकमंजरी स्वर्ग गयी। वहाँ से च्यव कर वैताढ्य-पर्वत पर तोरणपुर-नामक नगर में दृढ़शक्ति राजा की पुत्री हुई। तब उसका नाम कनकमाला पड़ा।

और वह चित्रकार मरकर वाणमंतर-देवता हुआ।

कनकमाला ने उस देव से पूछा—"हे पिता! इस भव में मेरा पति कौन होगा?" तो देव ने कहा—"पूर्व भव में जो जितशत्रु-नामक राजा था, वही इस भव में सिंहरथ-नामक राजा होगा वह घोड़े पर यहाँ आयेगा।"

यह सब सुनकर सिंहरथ को भी जातिस्मरण ज्ञान हो गया।

अब राजा कुछ दिनों तक वहाँ रह गया। बाद में वह राजधानी में लौटा अवश्य; पर प्रायः पर्वत पर कनकमाला के यहाँ जाया करता। पर्वत पर प्रायः रहने से ही उसका नाम नग्गति पड़ा।[1]

१—तश्रो कालेण जम्हा नगे श्रईइ तम्हा 'नग्गइ एस' त्ति पइट्ठियं नामं लोएण राइणो

—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका, पत्र १४४-२

कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन राजा ससैन्य भ्रमण करने निकला। वहाँ नगर के बाहर एक आम्रवृक्ष देखा। राजा ने उसमें से एक मंजरी तोड़ ली। पीछे आते लोगों ने भी उस पेड़ में से मंजरी-पल्लव आदि तोड़े। लौट कर आते हुए राजा ने देखा कि वह वृक्ष ठूँठ मात्र रह गया है।[1]

कारण जानने पर राजा को विचार हुआ—"अहो! लक्ष्मी कितनी चपल है।" इस विचार से प्रतिबोध पाकर राजा प्रत्येकबुद्ध हो गया।

इस प्रकार चारों प्रत्येक बुद्ध (अपने-अपने पुत्रों को राजकाज सौंपकर) एक बार पृथ्वी पर विचरते हुए क्षितिप्रतिष्ठ-नामक नगर में आये। वहाँ चार द्वार वाला एक यक्ष-चैत्य था। उस चैत्य में पूर्वाभिमुख एक यक्ष प्रतिमा थी।

उस चैत्य में करकंडु पूर्व के द्वार से आये। उसके बाद द्विमुख दक्षिण द्वार से आये। उन्हें देखकर यक्ष के मन में विचार हुआ—"इस मुनि से पराङ्मुख रह सकना मेरे लिए सम्भव नहीं है।" यह विचार कर उसने दक्षिण ओर मुख कर लिया।

पीछे पश्चिम द्वार से नमि आये। उनका विचार कर यक्ष ने तीसरा मुख उनकी ओर कर लिया।

अंत में नग्गति उत्तर ओर के द्वार से आये और यक्ष ने एक मुख उधर भी कर लिया। इस प्रकार वह चतुर्मुख हो गया।

करकंडु को बाल्यावस्था से खुजली होती थी। उन्होंने बाँस की शलाका लेकर कान खुजलाया और उस शलाका को ठीक से रख लिया। उसे देख कर द्विमुख बोले—"हे मुनि! आपने राज्यादि सब का त्याग कर दिया फिर यह शलाका किसलिए अपने पास रखे हो?"

१—कुम्भकार जातक में इसके प्रतिबोध का कारण कंकण की ध्वनि होना लिखा है।

इसे सुनकर करकंडु कुछ नहीं बोले। इतने में नमि राजर्षि ने द्विमुख से कहा—"जब आपने राज्यादि सब का त्याग कर दिया और निर्ग्रन्थ बने तो आप दूसरे का दोष क्यों देखते हैं ?"

अब नग्गति बोले—"हे मुनि सर्व त्याग करके अब केवल मोक्ष के लिए उद्यम करो। अन्य की निन्दा करने में क्यों प्रवृत्त हैं ?"

अंत में करकंडु ने कहा—"मोक्ष की आकांक्षा वाला मुनि यदि दूसरे मुनि की आदत का निवारण करे तो इसमें निन्दा किस प्रकार हुई ? जो क्रोध से अथवा ईर्ष्या से दूसरे का दोष कहे उसे निन्दा कहते हैं। ऐसी निंदा किसी मोक्षाभिलाषी को नहीं करनी चाहिए।"

करकंडु की इस प्रकार की शिक्षा को शेष तीनों मुनियों ने स्वीकार कर लिया।

फिर ये चारो मुनि स्वेच्छा से विचरने लगे और कालान्तर में मोक्ष गये।

इन चारों प्रत्येकबुद्धों के जीवों ने पुष्पोत्तर-नामक विमान से एक साथ च्यव किया था। चारों ने पृथक-पृथक स्थानों में अवश्य चरित्र ग्रहण किया; पर चारों की दीक्षा एक ही समय में हुई और एक ही साथ सब मोक्ष गये।

डाक्टर रायचौधरी की एक भूल

डाक्टर हेमचन्द्र रायचौधरी ने 'पोलिटिकल हिस्ट्री आव एँशेंट इंडिया' (पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ १४७) में इन प्रत्येकबुद्धों को पार्श्वनाथ की परम्परा का साधु मानकर उनका काल-निर्णय करने का प्रयास किया है। पर, ये तो चंडप्रद्योत के समकालीन थे, जो भगवान् का समकालीन राजा था। अतः उनका सम्बन्ध पार्श्वनाथ भगवान् से जोड़ना, वस्तुतः एक भूल है। उन्होंने दूसरी भूल यह कि, उन्होंने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि जैन ग्रंथों में भी उन्हें ही प्रत्येक बुद्ध बताया गया है।

प्रदेशी

केकयार्द्ध-जनपद की सेतव्या-नामक राजधानी[1] में प्रदेशी[2] नाम का राजा राज्य करता था। इस सेतव्या के ईशान-कोण में नन्दनवन के समान मृगवन-नामक उद्यान था। सेतव्या का राजा प्रदेशी अधार्मिक, धर्म के अनुसार आचरण न करने वाला, अधर्म-पालक, अधर्म का प्रसार करने वाला था। उसके शील तथा आचार में धर्म का किंचित् मात्र स्थान नहीं था। वह राजा अपनी आजीविका अधर्म से ही चलाता था। वह प्रचंड क्रोधी था उसके हाथ सदा लोही रहता था।[3]

उसी समय में श्रावस्ती-नगर में जितशत्रु-नामक राजा राज्य करता था। रायपसेणी में आता है :—

१—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग १, पेज ४४-४५।

इस राज्य का नाम केकयार्द्ध पड़ने का कारण यह था कि यह मूल केकय-राज्य का उपनिवेश था। इस सम्बंध में हमने तीर्थंकर महावीर, भाग १ पेज १८६ तथा वीर विहार-मीमांसा (हिन्दी) पेज २३ में विशेष रूप से विचार किया है। और राजा का नाम 'पयेसी' [प्रदेशी] होने से भी हमारी मान्यता की पुष्टि होती है।

२—पएसिकहा, रायपसेणी सटीक, पत्र २७३-१।

३—अधम्मिए अधम्मिट्ठे अधम्मक्खाई अधम्माणुए अधम्मपलोई, अधम्मपजणणे, अधम्मसीलसमुयायारे, अधम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणे, 'हण' 'छिंद' 'भिंद' पवत्तए लोहियपाणी पावे चंडे रुद्दे खुद्दे साहस्सीए उक्कंचण वंचण माया नियडि कूड कवड सायिसंपओग बहुले निस्सीले निव्वए निग्गुणे निम्मेरे निप्पच्चक्खाणपोसहोव वासे बहूणं दुप्पयच उप्पयमिय पसुपक्खी सिरिसवाण घायाए वहाए उच्छायणयाए अधम्म केऊ समुट्ठिए, गुरुणं णो अब्भुट्ठेति णो विणयं पउंजइ, सयस्स वि य णं जणवयस्स णो सम्मं कर भरवित्तिपवत्तेइ ।

—रायपसेणीय सटीक सानुवाद, पत्र २७३-१-२।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पएसिस्स रन्नो अंतेवासी जियसत्तू नामं राया होत्था।

रायपसेणी सटीक—पत्र २७९-१

श्रावस्ती नगरी का राजा जितशत्रु प्रदेशी-राजा का अंतेवासी राजा था। अंतेवासी' पर टीका करते हुए मलयगिरी ने लिखा है :—

समीपे वसतीत्येवंशीत्योऽन्तेवासी—शिष्यः।
अन्तेवासी सम्यगाज्ञा विधायी इति भावः॥

—राययसेणी सटीक, पत्र २७९-१

इस टीका से दो ध्वनियाँ निकलती हैं। एक की श्रावस्ती का राजा सेयविया का निकटवर्ती राजा था और दूसरा यह कि वह प्रदेशी का आज्ञा मानने वाला राजा था।

पर, बौद्ध-ग्रन्थों में इससे पूर्णतः विपरीत बात कही गयी है। दीर्घनिकाय के पायासीराजञ्ञसुत्त (दीघनिकाय मूल, भाग २, महावग्ग, पृष्ठ २३६) में आता है:—

तेन खो पन समयेन पायासी राजञ्ञो सेतव्यं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं रञ्ञा पसेदिना कोसलेन दिन्नं राज दायं ब्रह्मदेय्यं।

—उस समय पायासी राजन्य (राजञ्ञ, मांडलिक राजा) जनाकीर्ण तृण-काष्ठ-उदक धान्य सम्पन्न राज-भोग्य कोसलराज प्रसेनजित द्वारा दत्त, राज दाय, ब्रह्मदेय सेतव्या का स्वामी होकर रहता था।

—दीर्घनिकाय (राहुल-जगदीश काश्यप का अनुवाद) पृष्ठ १९९। इसी आधार पर डिक्शनरी आव पाली प्रपार नेम्स, भाग २, पृष्ठ १८७ में पायासी को सेतव्या का 'चीफटेन' लिखा है।

पर, यह बौद्ध मान्यता जैन-मान्यता से बिलकुल मेल नहीं खाती और स्वयं बौद्ध-उद्धरण में परस्पर-विरोधी बातें हैं। पायासी के लिए बौद्ध

'राजन्य' शब्द का व्यवहार करते हैं। फिर अब हमें 'राजन्य' का अर्थ समझ लेना चाहिए :—

१—क्षत्रं तु क्षत्रियो राजा राजन्यो बहुसंभवः।

—अभिधानचिंतामणि सटीक, पृष्ठ ३४४।

२—मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्।
राज्ञि राट्पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूप महीक्षितः॥

—अमरकोष (खेमराज श्रीकृष्णदास) पृष्ठ १४४।

जब राजन्य का अर्थ राजा हुआ तो फिर पायासी को 'चीफटेन' कहना पूर्णतः भूल है। 'राज होना' और 'आधीन होना' दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं।

दूसरी बात यह कि वह पायासी क्षत्रिय था। फिर, वह ब्रह्मदेय क्यों लेने लगा ?

बौद्ध-ग्रन्थों में श्रावस्ती के राजा का नाम प्रसेनजित आने से विमल चरण ला ने जैन-ग्रंथों में आये जितशत्रु और प्रसेनजित को एक मान लिया है।[1] पर, यह उनकी भूल है। जैन-ग्रन्थों में प्रसेनजित नाम भी आता है। (उत्तराध्ययन, नेमिचंद्र की टीका, अष्टम अध्ययन, पत्र १२४-१२)।[2] यदि प्रसेनजित और जितशत्रु एक ही व्यक्ति का नाम होता तो वैसा स्पष्ट उल्लेख मिलता। जब जितशत्रु और प्रसेनजित दो भिन्न नाम मिलते हैं, तो दोनों का एक में मिलाना किसी भी प्रकार उचित नहीं है।

बौद्ध-ग्रन्थों में इस जितशत्रु के सम्बन्ध में आता है कि, इसका लड़का विडूडभ इसके जीते ही गद्दी पर बैठ गया और प्रसेनजित कूणिक की

१—श्रावस्ती इन इंडियन लिटरेचर [मेम्वायर्स आव द, आर्कयालाजिकल सर्वे आव इंडिया संख्या ५०] पेज ११

२ भद्दसाल-जातक हिन्दी-अनुवाद, भाग ४, पेज ३५३। मज्झिमनिकाय [हिन्दी-अनुवाद] पेज १६७ की पाद-टिप्पणि डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २ पेज १७२।

सहायता लेने राजगृह गया। पर, जब वह पहुँचा तो नगर का फाटक बंद था। वह बाहर एक शाला में पड़ा रहा और वहीं मर गया।[1] प्रसेनजित के जीवन की इतनी महत्त्वपूर्ण घटना का कोई उल्लेख जितशत्रु के सम्बन्ध में नहीं मिलता। यदि दोनों एक होते तो इसका उल्लेख किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिलता।

एक अन्य स्थल पर ला महोदय ने वाराणसी, काम्पिल्य, पलासपुर, और आलभिया के जितशत्रु राजाओं को एक ही व्यक्ति मान लिया है और कहा है कि यह सब प्रसेनजित के आधीन राजे थे।[2]

ला ने यहाँ उवासगदसाओ का प्रमाण दिया है। पर, ला महोदय ने वह वर्णन ठीक से पढ़ा नहीं। उवासगदसाओ में उल्लेख ऐसा है कि उन नगरों में जब महावीर स्वामी गये तो वहाँ के राजे उनकी वंदना करने आये। यह सब एक ही व्यक्ति नहीं थे; बल्कि भिन्न-भिन्न थे। प्रसेनजित राजा था, वह अपना राज्य-कार्य छोड़कर महावीर स्वामी के विहार में स्थल-स्थल पर क्यों घूमा करता। जैन-ग्रन्थों में २५॥ आर्य-देशों के उल्लेख आये हैं। उसमें वाराणसी, काम्पिल्य आदि स्वतंत्र राष्ट्र की राजधानियाँ बतायी गयी हैं। अतः सबको एक में मिलाना किसी प्रकार उचित नहीं है।

उवासगदसाओ के अनुवाद में हार्नेल[3] ने लिखा है "सूर्यप्रज्ञप्ति में जितशत्रु को विदेह की राजधानी मिथिला का राजा बताया गया है। यहाँ उवासगदसाओ में उसे वनियागाम या वैशाली का राजा बताया गया है। दूसरी ओर महावीर के मामा चेटक को वैशाली अथवा विदेह का राजा

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ११, श्लोक ५०१ पत्र १५३-२

२—श्रावस्ती इन इण्डियन लिटरेचर (मेमायर्स आव द' आक्यालाजिकल सर्वे आव इण्डिया, संख्या ५०) पेज ६।

३—उवासगदसाओ अंग्रेजी-अनुवाद पेज ६।

होना लिखा है। अतः लगता है कि जितशत्रु और चेटक एक ही व्यक्ति थे।"

वनियागाम और वैशाली को एक मान लेना हार्नेल की एक मूलभूत भूल है, जिसके कारण उन्हें कितनी ही जगहों पर भ्रम रहा। मैंने अपनी पुस्तक वैशाली (हिन्दी, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ५२) और तीर्थङ्कर महावीर (भाग १, पृष्ठ ९२) में इस प्रश्न पर विस्तृत विचार किया है। अतः यहाँ उनकी आवृत्ति नहीं करना चाहता।

बौद्ध-ग्रन्थों का यह उल्लेख कि, पायासी कोसल के राजा प्रसेनजित का आधीन राजा था, जैन-प्रमाणों से पूर्णतः खंडित हो जाता है।

इस प्रदेशी राजा के पास चित्त-नामक एक सारथी था। वह चित्त प्रदेशी से ज्येष्ठ था और भाई के समान था। वह चित्त अर्थशास्त्र में, साम-दाम-दंड-भेद में कुशल और अनुभवी व्यक्ति था। उसमें औत्पात्तिकी, वैनयिकी, कर्मज और पारिणामिक[1] चारों प्रकार की बुद्धियाँ थीं। राजा प्रदेशी विभिन्न बातों में चित्त से परामर्श लिया करता था।

एक बार प्रदेशी ने राजा को देने योग्य एक भेंट तैयार करायी और चित्त सारथी को बुला कर कहा—"कुणाल-देश के श्रावस्ती नगरी के जितशत्रु राजा को दे आओ।"

चित्त उस उपहार को लेकर श्रावस्ती गया। जितशत्रु ने उसका स्वागत किया और चित्त ने प्रदेशी का भेजा उपहार उसे दे दिया।

---

[1]—इन बुद्धियों की परिभाषा टीकाकार ने इस रूप में दी है—

औत्पात्तिक्या—अदृष्टाश्रुताननुभूतविषयाकस्माद् भवन शीलया

वैनयिक्या—विनयलभ्यशास्त्रार्थ संस्कारजन्यया

कर्मजया—कृषि वाणिज्यादिकर्मभ्यः समुद्भावया

पारिणामिक्या—प्रायोवयोविपाकजन्यया

—रायपसेणीयसुत्त सटीक, सूत्र १४५ पत्र २९७-१।

उसी समय पार्श्वनाथ की परम्परा के केशीकुमार[1] अपने ५०० शिष्यों के साथ विहार करते श्रावस्ती नगरी में आये थे और श्रावस्ती के ईशान कोण में स्थित कोट्ठय (कोष्ठक) चैत्य में ठहरे थे। अपार जनसमूह उनके दर्शन को जा रहा था। उस समूह को देखकर चित्त को शंका हुई कि आज इस नगरी में इंद्रमह, स्कंदमह, मुकुंदमह, नागमह, भूतमह, यक्षमह, स्तूपमह, चैत्यमह, वृक्षमह, गिरिमह, गुफामह, कूपमह, नदीमह, सरोवर मह अथवा समुद्रमह[2] में कौनसा उत्सव है, जो इतना बड़ा जनसमूह एक ओर चला जा रहा है।

चित्र-सारथी भी वहाँ गया। उसने केशी मुनि की प्रदक्षिणा करके उनकी वंदना की। केशी मुनि का उपदेश सुनकर चित्त ने पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत (गृहिधर्म) स्वीकार किये[3] और, वह श्रमणोपासक हो गया।

कुछ दिन बाद जितशत्रु ने भी एक भेंट तैयार की और चित्त के ही हाथ वह भेंट प्रदेशी के पास भेजी।

चित्त जब चलने लगा, वह पुनः केशी मुनि के पास गया और चित्त ने केशी मुनि को सेतव्या आने के लिए आमंत्रित किया। केशी मुनि ने अधार्मिक राजा के कारण पहले तो आने से इनकार किया; पर चित्त के अनुनय-विनय पर और समझाने पर वह सेतव्या आने को तैयार हो गये।

सेतव्या आने के बाद चित्त ने मृगवन के रखवालों को भी केशी मुनि के आने की सूचना दे दी और आते ही स्वागत-सत्कार में किसी प्रकार की कमी न आने देने के लिए सचेत कर दिया।

१—यह केशीकुमार वही थे, जिनसे श्रावस्ती में गौतमस्वामी से वार्तालाप हुई थी। और, बाद में वे भगवान् के तीर्थ में सम्मिलित हो गये [उत्तराध्ययन, अध्ययन २३, नेमिचंद्र की टीका सहित पत्र २८६-२-३०२-१।

२—रायपसेणी सटीक, सूत्र १४५, पत्र २७७-१।

३—रायपसेणी सटीक, सूत्र १५०, पत्र २९०।

कुछ समय बाद केशी मुनि ग्रामानुग्राम विहार करते हुए सेतव्या आये और मृगवन में ठहरे।

उसी दिन कम्बोज से भेंट में आये घोड़ों को रथ में जोत कर चित्त प्रदेशी को घुमाने निकला। वह रथ इतनो दूर ले गया कि प्रदेशी थक गया। राजा के थक जाने पर चित्त वापस लौटा। लौटते हुए राजा मृगवन में विश्राम के लिए ठहर गया। राजा के कानों में केशी मुनि की आवाज पड़ी। उसे बड़ा बुरा लगा। पर, चित्त के कहने पर और केशी मुनि की बड़ी प्रशंसा करने पर, प्रदेशी भी केशी मुनि के पास गया। प्रदेशी और केशी मुनि में पहिले ज्ञान के सम्बन्ध में कुछ वार्ता हुई फिर प्रदेशी ने केशी कुमार से अपनी मूल शंका व्यक्त की और कहा—"श्रमण-निर्गन्थों की यह संज्ञा है, यह प्रतिज्ञा है, यह दृष्टि है, यह रुचि है, यह हेतु है, यह उपदेश है, यह संकल्प है, यह तुला है, यह मान है, यह प्रमाण है और यह समवसरण है कि जीव पृथक है और शरीर पृथक है; पर वे यह नहीं मानते कि जो जीव है, वही शरीर है।"[1]

इस पर केशीकुमार ने कहा—"हे प्रदेशी! मेरा विचार भी यही है कि जीव और शरीर पृथक-पृथक हैं। जो जीव है वही शरीर है, यह मेरा मत नहीं है।"

इसे सुनकर प्रदेशी बोला—"जीव और शरीर पृथक-पृथक हैं और 'जो जीव है वही शरीर है' ऐसा नहीं है, तो भंते मान लें—'मेरे दादा अधार्मिक कार्यों के कारण मर कर नरक गये होंगे। उनका मैं पौत्र हूँ। मुझे वह बड़ा प्यार करते थे। अतः जीव और शरीर पृथक-पृथक है तो मेरे दादा को आकर मुझ से कहना चाहिए कि—'घोर पाप के कारण मैं नरक में गया। अतः तुम किंचित् मात्र पाप मत करना।' यदि मेरे दादा आकर मुझसे ऐसा कहें तो मैं जीव और शरीर को भिन्न मान

१—रायपसेणी सटीक १६६ पत्र सूत्र ३०६-३०७।

सकता हूँ। नहीं तो मैं तो यह समझता हूँ कि शरीर के साथ जीव भी नष्ट हो गया।"

इसे सुनकर केशी मुनि ने कहा—"यदि कोई कामी आपकी रानी के साथ काम भोगता पकड़ा जाये तो क्या दंड दोगे?

प्रदेशी ने उत्तर दिया—"हाथ-पाँव कटवा कर उसे प्राण दंड दूँगा।"

तो फिर केशी मुनि ने कहा—"यदि वह कहे कि 'दंड देने से पूर्व जरा ठहर जाइए। मैं अपने सम्बन्धियों को जरा बताता आऊँ कि व्यभिचार का फल प्राणदंड है।' तो तुम क्या करोगे?"

"पर, वह तो मेरा अपराधी है, क्षणमात्र ढील दिये बिना, मैं उसे दंडित करूँगा।"—प्रदेशी ने कहा।

"ठीक इसी प्रकार तुम्हारा दादा नरक भोगने में परतंत्र है, स्वतंत्र नहीं है। इसीलिए वह तुमसे कुछ कहने नहीं आ सकता।"—केशीमुनि ने उत्तर दिया।

इस प्रकार प्रदेशी के हर तर्क का उत्तर देकर केशीकुमार ने राजा को निरुत्तर कर दिया।

समस्त शंकाएं मिट जाने पर प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हो गया।[1]

श्रावक होने के बाद प्रदेशी ने अपने राज्य के सात हजार गाँवों को चार भागों में विभक्त कर दिया। एक भाग राज्य की व्यवस्था के लिए बलवाहन (सेना के हाथी, घोड़ा रथ आदि) को दे दिया, एक भाग कोष्ठागार के लिए रखा, एक भाग अंतःपुर की रक्षा और निर्वाह के लिए रखा और चौथे भाग की आय से एक कूटागारशाला[2] बनवायी जहाँ

१—तए णं पएसी राया समणोवासए अभिगए....

—रायपसेणी सटीक, सूत्र २०२, पत्र ३३२

२—कूटानि शिखराणि स्तूपिकास्तद्वन्त्य गाराणि-गेहानि—अथवा कूटं-सत्त्वबन्धन स्थानं तद्वद्गाराणि कूटागाराणि

—ठाणांगसूत्र सटीक, पूर्वार्द्ध, पत्र २०५-१

श्रमण[१], ब्राह्मण भिक्षु प्रवासी आदि को भोजन दिया जाता। और, स्वयं शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पोषध, उपवास द्वारा जीवन व्यतीत करने लगा।[२]

उसके बाद प्रदेशी का ध्यान राज्य कार्य और अंतःपुर की ओर कम रहने लगा।

उसे अन्यमनस्क देखकर उसकी रानी ने उसे विष देकर अपने पुत्र सूर्यकांत को गद्दी पर बैठाने का षड्यंत्र किया।

और, एक दिन रानी सूर्यकान्ता ने उसे विष दे ही दिया। राजा को यह ज्ञान हो गया कि रानी ने विष दिया। पर, असह्य वेदना सहन करने के बावजूद राजा ने रानी पर किंचित् मात्र रोष नहीं किया।

इस प्रकार अत्यंत शांत रूप में मृत्यु प्राप्त कर वह सौधर्मदेव-लोक में सूर्याभदेव के रूप में उत्पन्न हुआ।[३]

चण्डप्रद्योत

और बहुत बड़ी सेना का अधिपति होने से उसे महासेन भी कहा जाता था।[1]

पुराणों में कथा आती है कि उसका पिता पुलिक (अथवा पुणिक) अवंति-नरेश का अमात्य था। उसने अपने मालिक को मार कर अपने पुत्र को राजा बनाया। पुराणों के अनुसार वह अपने वंश का मूल पुरुष हुआ।

कथा-सरित्सागर में इससे भिन्न उसका वंश-वृक्ष दिया गया है। उसमें महेन्द्रवर्म से उस वंश का प्रारम्भ बताया गया है। महेन्द्रवर्म के पुत्र का नाम जयसेन लिखा है और इसी जयसेन को प्रद्योत का पिता बताया है।[2]

मल्लिषेण ने अपने ग्रन्थ नागकुमारचरित्र में उज्जयिनी के राजा का नाम जयसेन उसकी रानी का नाम जयश्री और उसकी पुत्री का नाम मेनकी लिखा है। यह जयसेन कथासरित्सागर वाले जयसेन से भिन्न है या वही, यह नहीं कहा जा सकता।

दुल्व (तिब्बती-विनयपिटक) में प्रद्योत के पिता का नाम अनन्तनेमि लिखा है।[3]

तिब्बत की बौद्ध-अनुश्रुति में यह बताया गया है कि, जिस दिन उसका जन्म हुआ, उसी दिन बुद्ध का भी जन्म हुआ था। उसका नाम प्रद्योत

१—उज्जैनी इन ऐंशेंट इंडिया पेज १३। भगवतीसूत्र सटीक शतक १३, उ० ६, पत्र ११३५ में उद्रायण के साथ जो महासेण का नाम आया है, वह चंडप्रद्योत के लिए है। इस महासेण का उल्लेख उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र सूरि की टीका सहित पत्र २५२-१ में भी है।

२—कथासरित्सागर १२।१६।६।

३—राकहिल-लिखित लाइफ आव बुद्ध, पेज १७।

पड़ने का कारण यह था कि, उसके जन्म लेते ही संसार में दीपक के समान प्रकाश हो गया था।[1] इस अनुश्रुति का यह मत है कि प्रद्योत उसी समय राज सिंहासन पर बैठा जब गौतम ने बुद्धत्व प्राप्त किया था।[2]

कथा-सरित्सागर में उसका नाम 'चंड' पड़ने का यह कारण दिया है कि महासेन ने चंडी की आराधना करके अजेय खड्ग और 'चंड' नाम प्राप्त किया था। इस कारण वह महाचंड कहलाने लगा।[3]

बुद्धघोष ने प्रद्योत के जन्म के विषय में लिखा है कि वह एक ऋषि के नियोग से पैदा हुआ था।[4]

पुराणों में प्रद्योत के लिए 'नयवर्जित' शब्द का भी उल्लेख मिलता है और धम्मपद की टीका में लिखा है कि वह किसी भी सिद्धान्त का पालन करने वाला नहीं था।[5] तथा कर्मफल पर विश्वास नहीं करता था। त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर्व १०, सर्ग ८ श्लोक १५० तथा १६८ में उसके लिए स्त्रीलोलुप, प्रचंड और स्त्री-लम्पट शब्द का प्रयोग किया जाता है।

उदेनवत्थु में चंडप्रद्योत की चर्चा करते हुए आता है कि, वह सूर्य की किरणों के समान शक्तिशाली था।[6]

१—राकहिल लिखित लाइफ आव बुद्ध, पेज १७।

२—राकहिल-लिखित लाइफ आव बुद्ध पेज ३२ की पादटिप्पणि १।

३—वही। तथा उज्जयिनी इन ऐंशेंट इंडिया-विमल चरण-लिखित, पेज १३।

४—समन्त पासादिका, भाग १, पेज २१८।

उज्जयिनी इन ऐंशेंट इण्डिया, पेज १४।

डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग १, पेज ८३६।

५—उज्जैनी इन ऐंशेंट इंडिया ला-लिखित पेज १३, मध्यभारत का इतिहास, प्रथम भाग, पेज १७५-१७६।

६—उज्जयिनी इन ऐंशेंट इंडिया, पेज १३।

चंद्रप्रद्योत के सम्बन्ध में जैन-ग्रंथों में आता है कि उसके पास चार रत्न थे—१ लोहजंघ-नामक लेखवाहक, २ अग्निभीरु नामक रथ, ३ अनलगिरि नामक हस्ति और ४ शिवा नामक देवी।[1]

पाली-ग्रंथ 'उदेनवत्थु' में प्रद्योत के एक द्रुतगामी रथ का वर्णन मिलता है। भद्रावति (भद्दवतिका) नामक हथिनी, कक्का (पाली 'काका') नामक दास, दो घोड़ियाँ चेल्कंठी तथा मंजुकेशी एवं नालागिरी नामक हाथी ये पाँचों उस रथ को खींचते थे।[2]

यह शिवा देवी वैशाली के राजा चेटक की पुत्री थी। आवश्यक-चूर्णी में जहाँ चेटक की सात पुत्रियों का उल्लेख आता है, उसी स्थल पर शिवा देवी का भी उल्लेख है।[3]

चंडप्रद्योत की ८ अन्य रानियों के उल्लेख जैन-ग्रंथों में मिलते हैं। वे सभी कौशाम्बी की रानी मृगावती के साथ साध्वी हो गयी थी। उनमें एक का नाम अंगारवती था।[4] यह अंगारवती सुंसुमारपुर[5] के राजा धुंधुमार की पुत्री थी। इस अंगारवती को प्राप्त करने के लिए प्रद्योत ने सुंसुमारपुर पर घेरा डाला था। इस अंगारवती के सम्बंध में यह भी

१—आवश्यकचूर्णि, भाग २, पत्र १६०; आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र ६७३-१; त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रपर्व १०, सर्ग ११, श्लोक १७३ पत्र १४२-२

२—धम्मपद-टीका; उज्जयिनी-दर्शन, पृष्ठ १२; उज्जयिनी इन ऐंशेंट इण्डिया, पृष्ठ १५

३—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६४

४—देखिए तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृष्ठ ६७

५—वर्तमान चुनार, जिला मिरजापुर

आता है कि वह पक्की श्राविका थी।[1] कथासरित्सागर में अंगारवती को अंगारक-नामक दैत्य की पुत्री बताया गया है।[2]

इसकी एक रानी का नाम मदनमंजरी था। वह दुम्मुह प्रत्येकबुद्ध की लड़की थी। इस विवाह का विवरण दुम्मुह के प्रसंग में सविस्तार दिया गया है।

भास ने प्रद्योत के दो पुत्रों का उल्लेख किया है—गोपालक और पालक। और उसमें उसकी एक पुत्री का उल्लेख भी है—उसका नाम वासुदत्ता[3] दिया है। हर्षचरित्र में उसके एक और पुत्र का उल्लेख आता है और उसका नाम कुमारसेन बताया गया है। बौद्ध-परम्परा की कथा है कि यह गोपालक की माँ एक श्रेष्ठि की पुत्री थी। उसके रूप पर मुग्ध होकर प्रद्योत ने उससे विवाह कर लिया था।[4]

जैन-ग्रंथों में खंडकम्म को प्रद्योत का एक मंत्री बताया गया है।[5]

कुछ ग्रंथों में उसके मंत्री का नाम भरत दिया गया है।[6]

यह प्रद्योत बड़ा दम्भी राजा था। अपने निकटवर्ती प्रदेशों पर विजय प्राप्त करने बाद वह दूर-दूर तक के राजाओं से आजीवन लड़ता ही रहा।

१—आवश्यकचूर्णि, भाग २, पत्र १९९

२—मध्यभारत का इतिहास (हरिहरनिवास द्विवेदी-लिखित) प्रथम खंड, पृष्ठ १७५

३—जैन-ग्रंथों में भी वासवदत्ता के नाम का उल्लेख है और उसे अंगारवती का पुत्री बताया गया है। आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध पत्र १६१

आवश्यक-निर्युक्ति-दीपिका, भाग २, पत्र ११०-१ गाथा १२८२ में गोपाल और पालक का उल्लेख आया है और उन्हें प्रद्योत का पुत्र बताया गया है।

४—उज्जयिनी इन ऐंशेंट इण्डिया, ला-लिखित, पृष्ठ १४। मध्यभारत का इतिहास द्विवेदी-लिखित, भाग १, पृष्ठ १७५।

५—लाइफ इन ऐंशेंट इंडिया, पृष्ठ ३९४

६—उज्जयिनी-दर्शन, (मध्य भारत सरकार) पृष्ठ १२

चंडप्रद्योत और राजगृह

एक बार इसने अपने आधीन १४ राजाओं के साथ राजगृह पर आक्रमण कर दिया। उस समय राजगृह में श्रेणिक-नामका राजा राज्य करता था और श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार श्रेणिक का प्रधानमंत्री था। अभयकुमार ने बड़ी बुद्धि से उस युद्ध को टाल दिया और बिना लड़े ही प्रद्योत अपनी राजधानी उज्जैन भाग गया।

कथा है कि, अभयकुमार ने शत्रु के वास करने योग्य भूमि में स्वर्ण के सिक्के गड़वा दिये और जब प्रद्योत ने राजगृह-नगर घेर लिया तो अभयकुमार ने प्रद्योत को एक पत्र भेजा—

"शिवादेवी और चिल्लणा के बीच मैं किंचित् मात्र भेद नहीं रखता हूँ। इसलिए शिवादेवी के सम्बन्ध के कारण आप भी मेरे पूज्य हैं। इसी दृष्टि से, हे उज्जयिनी-नरेश, आपके एकान्त हित की दृष्टि से आपको सूचित करना चाहता हूँ कि आपकी सेना के समस्त राजाओं को श्रेणिक ने फोड़ लिया है। और, आपको अपने आधीन करने के लिए श्रेणिक ने उनके पास स्वर्ण मुद्राएँ भेजी हैं। अतः वे राजा आपको बाँध करके मेरे पिता के अधीन कर देने वाले हैं। बात पर विश्वास करने के लिए आप लोगों के वासगृह के नीचे सोने की मुद्राएँ गड़ी हैं, उसे खुदवाकर देख लीजिये।"

इस पत्र को पढ़कर प्रद्योत ने वहाँ खुदाया और उसे स्वर्णमुद्राएँ सचमुच गड़ी मिलीं। बात सच्च देख कर प्रद्योत राजा ने वहाँ से पड़ाव उठा कर एकदम उज्जैन की ओर कूच कर दिया।[1]

उज्जयिनी लौट आने के बाद प्रद्योत को इस बात का भास हुआ कि अभयकुमार ने छल से उसे भगा दिया।

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ११, श्लोक १२४-१३० पत्र १४०-२

अतः एक दिन राजसभा में उसने घोषित किया कि जो कोई अभय-कुमार को बाँध कर मेरे समक्ष उपस्थित करेगा, उसे मैं प्रसन्न कर दूँगा। यह घोषणा सुनकर सभा में उपस्थित एक गणिका ने हाथ ऊँचा किया और बोली—

"इस काम को करने में मैं समर्थ हूँ।" इसे सुनकर प्रद्योत ने कहा—"इस काम को तुम करो। तुम्हें जिस प्रकार धन की आवश्यकता होगी मैं दूँगा।"

उस गणिका ने विचार किया कि अभयकुमार किसी अर्थ-रूप से तो पकड़ा नहीं जा सकता; केवल धर्म का छल करने से मेरा काम सध सकता है। यह विचार करके उस गणिका ने राजा से दो युवती नारियों की माँग की।

ये तीनों स्त्रियाँ राजगृह गयीं और नगर से बाहर एक उद्यान में ठहरीं। नगर के अन्दर के चैत्यों का दर्शन करने के लिए वे नगर में गयीं और बड़ी भक्ति से चैत्यों में पूजा करके मालकोश आदि राग से प्रभु की स्तुति करने लगीं। उस समय अभयकुमार भी वहाँ दर्शन करने आया था। उन कपट-श्राविकाओं की पूजा समाप्त होने के बाद अभयकुमार ने उनसे उनके बारे में पूछताछ की। एक औरत ने अभयकुमार से कहा—"उज्जयिनी नगरी की एक धनाढ्य व्यापारी की मैं विधवा हूँ। ये दोनों साथ की औरतें मेरी पुत्रवधु हैं।" अभयकुमार ने उन्हें राजमहल में भोजन के लिए आमंत्रित किया। इस पर उन कपट-श्राविकाओं ने कहा—"आज हम लोगों का तीर्थोपवास है। अतः हम लोग आपके अतिथि किस प्रकार हो सकते हैं।" इस पर अभय ने दूसरे दिन प्रातःकाल उन्हें बुलाया।

उसके बाद अभयकुमार जब एक बार उन कपट-श्राविकाओं के घर गया तो उन कपटश्राविकाओं ने चन्द्रहास-सुरा मिश्रित जल पिला कर अभयकुमार को बेहोश कर दिया और मूर्छावस्था में बाँध कर उसे लेकर उज्जयिनी चली आयीं।

उसे दिखा दिया। मुख देखकर उस चतुर चित्रकार ने उस दासी का सम्पूर्ण रूप यथार्थ उतार दिया। उसे देखकर राजा आश्वस्त हो गया। पर, ईर्ष्यावश उसने उसके दाहिने हाथ का अँगूठा कटवा दिया।

राजा के इस दुर्व्यवहार से चित्रकार को भी क्रोध आया। और, उसने बदला लेने का निश्चय कर लिया।

इस विचार से उसने अनेक आभूषणों सहित मृगावती देवी का एक चित्र अंकित किया। और, उसे लेजाकर प्रद्योत को दिखाया। चित्र देख कर प्रद्योत ने चित्र की बड़ी प्रशंसा की और पूछा "यह चित्र किसका है?" राजा को इस प्रकार मुग्ध देखकर चित्रकार बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा—"हे राजा! यह चित्र कौशाम्बी के राजा शतानीक की पत्नी मृगावती देवी का है।" मृगावती पर मुग्ध चंडप्रद्योत ने वज्रजंघ नामक दूत को समझा-बुझाकर शतानीक के पास भेजा। उसने जाकर शतानीक से मृगावती को सौंप देने का संदेश कहा। शतानीक इसे सुनकर बड़ा क्रुद्ध हुआ।

इस पर क्रुद्ध होकर चंडप्रद्योत ने कौशाम्बी पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में चंडप्रद्योत ठहर न सका। पर, कुछ समय बाद शतानीक को अतिसार हुआ और वह मर गया।

शतानीक ने अपने देश-विदेश में आने जाने वाले दूत से पूछा—"हे दूत ! ऐसी क्या वस्तु है, जो दूसरे राजाओं के पास है और मेरे पास नहीं है।" उस दूत ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! आपके पास चित्रसभा नहीं है।"

यह सुनकर, राजा ने चित्रसभा तैयार करने की आज्ञा दी। बहुत से चित्रकार एकत्र किये गये और चित्र बनाने के लिए सब ने समथल भूमि बाँट ली। उनमें एक युवक चित्रकार को अंतःपुर के निकट का भाग मिला। वहाँ रहकर चित्र बनाते समय जाली के अंदर से मृगावती देवी के पैर के अँगूठे का भाग देखने का उसे अवसर मिला। यही मृगावती है, यह अनुमान करके चित्रकार ने यक्ष के प्रसाद से मृगावती का रूप यथार्थ रूप से अंकित कर दिया। पीछे उसका नेत्र बनाते हुए स्याही की एक बूँद चित्र में जंघा पर पड़ गयी। चित्रकार ने उसे तत्काल पोंछ दिया। फिर दूसरी बार भी स्याही की बूँद गिरी उसने उसे भी पोंछ दिया। फिर तीसरी बार बूँद गिरी। तीसरी बार बूँद गिरने पर चित्रकार को विचार हुआ कि, अवश्य इस नारी के उरु-प्रदेश में लांछन है। तो यह स्याही की बूँद है तो रहने दें। मैं इसे नहीं पोंछूँगा।

उसके बाद उस चित्रकार ने पूर्णतः यथार्थ चित्र बना दिया। एक दिन उसकी चित्रकारिता देखने के लिए राजा वहाँ आया। अनुक्रम से देखता-देखता राजा ने मृगावती का स्वरूप भी देखा और फिर जंघे पर लांछन देखकर उसे विचार हुआ कि, अवश्य इसने मेरी पत्नी को भ्रष्ट किया है नहीं तो वस्त्र के अन्दर के इस लांछन को इसने कैसे देखा।

क्रुद्ध होकर राजा ने उसे रक्षकों के सुपुर्द कर दिया। उस समय समस्त चित्रकारों ने राजा से कहा—"हे स्वामी यह चित्रकार यदि किसी का एक अंग देख ले तो यक्ष के प्रभाव से वह उस व्यक्ति का यथावत चित्र बना देने में समर्थ है। इसमें इसका किंचित् मात्र अपराध नहीं है।" उसकी परीक्षा लेने के लिए राजा ने एक कुबड़ी दासी का मुख मात्र

उसे दिखा दिया। मुख देखकर उस चतुर चित्रकार ने उस दासी का सम्पूर्ण रूप यथार्थ उतार दिया। उसे देखकर राजा आश्वस्त हो गया। पर, ईर्ष्या-वश उसने उसके दाहिने हाथ का अँगूठा कटवा दिया।

राजा के इस दुर्व्यवहार से चित्रकार को भी क्रोध आया। और, उसने बदला लेने का निश्चय कर लिया।

इस विचार से उसने अनेक आभूषणों सहित मृगावती देवी का एक चित्र अंकित किया। और, उसे लेजाकर प्रद्योत को दिखाया। चित्र देख कर प्रद्योत ने चित्र की बड़ी प्रशंसा की और पूछा "यह चित्र किसका है?" राजा को इस प्रकार मुग्ध देखकर चित्रकार बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा—"हे राजा! यह चित्र कौशाम्बी के राजा शतानीक की पत्नी मृगावती देवी का है।" मृगावती पर मुग्ध चंडप्रद्योत ने वज्रजंघ नामक दूत को समझा-बुझाकर शतानीक के पास भेजा। उसने जाकर शतानीक से मृगावती को सौंप देने का संदेश कहा। शतानीक इसे सुनकर कड़ा क्रुद्ध हुआ।

इस पर क्रुद्ध होकर चंडप्रद्योत ने कौशाम्बी पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में चंडप्रद्योत ठहर न सका। पर, कुछ समय बाद शतानीक को अतिसार हुआ और वह मर गया।

मृगावती के इस संदेश से प्रद्योत बड़ा प्रसन्न हुआ और कहला भेजा कि, जब तक मैं रक्षक हूँ तब तक मृगावती के पुत्र को क्षति पहुँचाने की कौन चेष्टा कर सकता है ?"

प्रद्योत ने फिर उज्जयिनी से परम्परा से, ईंटें मँगवायीं और कौशाम्बी की किलेबन्दी करायी।[1]

इन घटनाओं के कुछ ही समय बाद महावीर स्वामी कौशाम्बी आये। और, मृगावती चंडप्रद्योत की ८ रानियों के साथ साध्वी हो गयीं। इसका वर्णन हम शतानीक के प्रसंग में दे आये हैं। भगवान् के उस समवसरण में जिसमें मृगावती गयी थी, प्रद्योत भी गया था। इसी प्रसंग में प्रद्योत के सम्बंध में भरतेश्वर-बाहुबलि वृत्ति में आता है :—

ततश्चण्डप्रद्योतो धर्ममङ्गीकृत्य स्वपुरम् ययौ।[2]

शतनीक के पश्चात् उदयन के साथ भी एक बार इस चण्डप्रद्योत ने बड़े छल से व्यवहार किया।

कथा आती है कि, उसकी पुत्री वासुदत्ता ने गुरु के पास समस्त विद्याएँ सीख लीं। केवल गंधर्वविद्या सिखाने के लिए उसे कोई उचित गुरु नहीं मिला। एक बार राजा ने बहुदृष्ट और बहुश्रुत मंत्रियों से पूछा—"इस कन्या को गंधर्वविद्या सिखाने के योग्य कौन गुरु है ?'

राजा का प्रश्न सुनकर मंत्री ने कहा—"महाराज! उदायन तुम्बरु[3]-गंधर्व की दूसरी मूर्ति के समान है। गंधर्वकला में वह

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ८, श्लोक १७६, पत्र १०५-२।

२—भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति, द्वितीय विभाग, पत्र ३२३-२।

३—शक्रस्य देवेन्द्रस्य गन्धर्वानीकाधीपतौ।

—स्थानांग सूत्र ठाणा ७,

उसे दिखा दिया। मुख देखकर उस चतुर चित्रकार ने उस दासी का सम्पूर्ण रूप यथार्थ उतार दिया। उसे देखकर राजा आश्वस्त हो गया। पर, ईर्ष्या-वश उसने उसके दाहिने हाथ का अँगूठा कटवा दिया।

राजा के इस दुर्व्यवहार से चित्रकार को भी क्रोध आया। और, उसने बदला लेने का निश्चय कर लिया।

इस विचार से उसने अनेक आभूषणों सहित मृगावती देवी का एक चित्र अंकित किया। और, उसे लेजाकर प्रद्योत को दिखाया। चित्र देख कर प्रद्योत ने चित्र की बड़ी प्रशंसा की और पूछा "यह चित्र किसका है?" राजा को इस प्रकार मुग्ध देखकर चित्रकार बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा—"हे राजा! यह चित्र कौशाम्बी के राजा शतानीक की पत्नी मृगावती देवी का है।" मृगावती पर मुग्ध चंडप्रद्योत ने वज्रजंघ नामक दूत को समझा-बुझाकर शतानीक के पास भेजा। उसने जाकर शतानीक से मृगावती को सौंप देने का संदेश कहा। शतानीक इसे सुनकर बड़ा क्रुद्ध हुआ।

इस पर क्रुद्ध होकर चंडप्रद्योत ने कौशाम्बी पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में चंडप्रद्योत ठहर न सका। पर, कुछ समय बाद शतानीक को अतिसार हुआ और वह मर गया।

मृगावती देवी को विचार हुआ कि, मेरे पति तो मर गये और हमारा पुत्र उदयन तो अभी बहुत छोटा है। अतः चतुराई पूर्ण ढंग से उसने प्रद्योत को संदेश कहलाया। दूत ने जाकर प्रद्योत से कहा—"देवी मृगावती ने कहलाया है कि, मेरे पति शतानीक राजा का स्वर्गवास हो गया है। इसलिए मैं तो आपकी शरण में हूँ। लेकिन, मेरा पुत्र अभी बिल्कुल बच्चा है। पिता के निधन की विपत्ति के शिकार उस बच्चे को यदि छोड़ दूँ तो शत्रु राजा उसे तबाह कर डालेंगे।"

अतिगुण वाला है। वह संगीत से मोहित करके बड़े-बड़े गजेन्द्रों को भी बाँध लेता है।"

फिर उदयन को पकड़ कर उज्जयिनी लाने की यह विधि निश्चित की गयी कि, एक काष्ठ का हाथी बनाया जाये जो सजीव हाथी की तरह व्यवहार करे। और, काष्ठ के हाथी के अंदर सशस्त्र पुरुष रहें। वे उस हाथी के यंत्रों को चलाते रहें और अवसर मिलने पर उदयन को पकड़कर उज्जयिनी ले आयें।

यह विधि कारगर रही। उदयन पकड़ लिया गया और उज्जयिनी लाया गया।

उज्जयिनी आ जाने पर प्रद्योत ने उदयन से कहा—"मेरे एक कानी कन्या है। उसे तुम गंधर्वविद्या सिखा दो और सुखपूर्वक मेरे घर में रहो। लेकिन, कन्या कानी है इसलिए उसे देखना नहीं। यदि तुम उसे देख लोगे तो वह लज्जित होगी। और, अपनी पुत्री से कहा—"तुम्हें गंधर्वविद्या सिखाने के लिए गुरु तो आ गया है, पर वह कोढ़ी है। इस-लिए तुम उसे प्रत्यक्ष मत देखना।

कन्या ने बात स्वीकार कर ली। उदयन वासवदत्ता को संगीत सिखाने लगा।

एक दिन वासवदत्ता को पाठ स्मरण करने में कुछ अन्यमनस्क जानकर उदयन ने क्रोधपूर्वक कहा—"हे कानी सीखने में तुम ध्यान नहीं देती हो। तुम दुःशिक्षिता हो।" ऐसा सुनकर वासवदत्ता को भी क्रोध आया। और, बोली—"तुम स्वयं कोढ़ी हो, यह तो देखते नहीं और मुझे झूठे ही कानी करते हो।"

इस प्रकार जब दोनों को अपने भ्रम का पता चल गया तो दोनों ने एक दूसरे को देखा।

और, बाद में यह वासवदत्ता उदयन के साथ कौशाम्बी चली गयी और वहाँ की महारानी हुई। वासवदत्ता के जाने पर पहले तो प्रद्योत क्रुद्ध

हुआ पर बाद में मंत्रियों ने समझाया कि, उदयन-सरीखा योग्य वर आपको कन्या के लिए कहाँ मिलेगा ।[1]

चंडप्रद्योत और वीतभय

चंडप्रद्योत के समय में सिंधु-सौवीर की राजधानी वीतभय में उद्रायण[2] नामक राजा था। उस उद्रायण के पास चंदन के काष्ट की महावीर स्वामी की एक प्रतिमा थी। उस प्रतिमा की सेवा-पूजा चंडप्रद्योत की देवदत्ता-नामक दासी किया करती थी।

एक बार गांधार-नामक कोई श्रावक चरित्र-ग्रहण करने की इच्छा से जिनेश्वरों के सभी कल्याणक स्थानों की वंदना करने की इच्छा से निकला ।[3] अनुक्रम से वैताढ्य पर्वत पर स्थित शाश्वत प्रतिमाओं की वंदना करने की इच्छा से उसने उस पर्वत के मूल में बैठकर उपवास किये और शासन देवी की आराधना की। उससे तुष्ट होकर देवी ने उसे उन प्रतिमाओं का दर्शन करा दिया। शासन देवी ने सभी इच्छाओं की पूर्ति कराने वाली सौ गुटिकाएँ उस भक्त को दीं।

वहाँ से लौटते हुए चंदन की प्रतिमा का दर्शन करने वह वीतभय आया। दैव संयोग से वह वहाँ बीमार पड़ गया। उस समय देवदत्ता-नामक कुब्जा दासी ने पिता-सदृश उसकी सेवा की। कुछ दिनों के बाद

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ११, श्लोक १८४–२६५। पत्र १४२-२—१४५–२।

२—उत्तराध्ययन नेमिचंद्र की टीका अ० १८ पत्र २५२–१ से २५५-९।

३—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ११, श्लोक ४४५, पत्र १५१।२।

जब श्रावक स्वस्थ हुआ तो दासी की सेवा से प्रसन्न होकर सभी गुटिकाएँ दासी को देकर उसने स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली।

गुटिकाओं को पाकर दासी बड़ी प्रसन्न हुई। उसे विचार हुआ कि इस गुटिका के प्रयोग से मैं अत्यन्त सुन्दर और स्वर्ण-सरीखी आकृतिवाली हो जाऊँ। इस विचार से उसने एक गोली खायी और अत्यन्त मनोहर रूपवाली हो गयी। अपने स्वर्ण सरीखे सौंदर्य के कारण वह स्वर्णगुलिका नाम से विख्यात हुई।

फिर उसे विचार हुआ कि बिना पति के मेरा यह यौवन और रूप आरण्य पुष्प-सरीर का है। अतः इस विचार से उसने चंडप्रद्योत को पति के रूप में कामना की। और, उसने दूसरी गुटिका खाली। गुटिका के प्रभाव से देवी ने जाकर चंडप्रद्योत से स्वर्णगुलिका का रूप वर्णन किया। उसका रूप-वर्णन सुनकर चंडप्रद्योत ने वीतभय दूत भेजा। स्वर्ण-गुलिका ने उस दूत के द्वारा प्रद्योत से कहला दिया कि, मुझे ले चलना हो तो राजा को तुरत आना चाहिए।

संदेश पाकर चंडप्रद्योत अनलगिरि हाथी पर बैठकर वीतभय आया और उसको मिला। चंडप्रद्योत को देखकर स्वर्णगुलिका भी आसक्त हो गयी। पर, उसने अपने साथ चंदन की प्रतिमा भी ले चलने की बात प्रद्योत से कही।

चंडप्रद्योत उस चंदन की प्रतिमा की प्रतिमूर्ति तैयार कराने के विचार से अवन्ती लौट आया और दूसरी मूर्ति तैयार कराकर पुनः वीतभय गया। हाथी को बाहर रोक कर, नयी प्रतिमा लेकर वह राज-महल में गया और नयी प्रतिमा वहाँ रखकर चंदन की मूल प्रतिमा और दासी को लेकर अवंती नगरी में आ गया।

अनलगिरि नगर के बाहर जहाँ टहरा था वह स्थान देखकर और अवंती के रास्ते में पड़े उसके कदमों को देखकर, लोगों ने राजा को जब

इसकी सूचना दी तो उसने तत्काल अनुमान लगा लिया कि, प्रद्योत वीतभय आया था।

तब तक दासियों ने सूचित किया कि स्वर्णगुलिका दासी नहीं है। यह सुनकर राजा ने यह जाँच करायी कि, प्रभु की प्रतिमा है या नहीं। प्रतिमा भी बदली होने का समाचार सुनकर उद्रायण ने प्रद्योत के पास दूत भेजा।

उस दूत ने प्रद्योत से जाकर कहा—"मेरे राजा ने आप से कहलाया है कि चोर के समान दासी और प्रतिमा ले जाने में क्या आपको लज्जा नहीं लगी? यदि दासी पर आप आसक्त हों तो उसकी आवश्यकता नहीं है, पर आप प्रतिमा वापस कर दें।"

चंडप्रद्योत इस संदेश को सुनकर दूत पर ही बिगड़ गया।

चंडप्रद्योत का उत्तर सुनकर उद्रायण दस मुकुटधारी राजाओं को लेकर अवन्ती की ओर चला। उस समय जेष्ठ का महीना था।

अवन्ती आकर उद्रायण ने चंडप्रद्योत से कहला भेजा—"अधिक आदमियों का नाश करने से क्या फल? हम तुम में परस्पर युद्ध हो जाये।" चंडप्रद्योत ने रथ में बैठकर अकेले युद्ध करने की बात स्वीकार की।

पर, बाद में उसे भास हुआ कि रथ पर बैठकर तो मैं उद्रायण से जीत नहीं सकूँगा। अतः अनलगिरि हाथी पर बैठकर रणस्थल में गया। उसे देखकर उद्रायण ने कहा—"प्रतिज्ञा भूलकर हाथी पर बैठकर आये?"

उद्रायण ने बाणों से हाथी के चरण बींध दिये। घायल होकर हाथी गिर पड़ा और उतरते ही प्रद्योत भी पकड़ लिया गया। राजा ने प्रद्योत के सिर पर लिखकर लगवा दिया—

"यह हमारी दासी का पति है।"

लड़ाई में विजय पाने पर उद्रायण को अपनी प्रतिमा वापस मिल गयी।

उद्रायण चंडप्रद्योत को बंदी बनाकर वीतभय की ओर चला। पर, रास्ते में वर्षा आ गयी। राजा एक जगह ठहर गया। वहाँ किलाबंदी करायी और दसो राजा उसकी रक्षा करने लगे। अतः वह विश्रामस्थल दशपुर[1] कहाँ जाने लगा।

उद्रायण राजा सदा प्रद्योत को अपने साथ भोजन कराता। इसी बीच पर्यूषणा-पर्व आया। वह दिन उद्रायण के उपवास का था। अतः रसोइया चंडप्रद्योत के पास आकर पूछने लगा—"क्या भोजन कीजियेगा?"

किसी दिन तो प्रद्योत से भोजन की बात नहीं पूछी जाती थी। उस दिन भोजन पूछे जाने पर उसे आश्चर्य हुआ और उसने रसोइए से उसका कारण पूछा तो रसोइए ने पर्यूषणा-पर्व की बात कह दी और कहा कि श्रावक होने से महाराज उद्रायण आज उपवास करेंगे।

इस पर चंडप्रद्योत ने रसोइए से कहा—"**तन्ममाप्युपवासोऽद्य, पितरौ श्रावकौ हि मे**"—[2]

इस पर्यूषणा-पर्व के अवसर पर उद्रायण ने चंडप्रद्योत को कारागार से मुक्त कर दिया। मुक्त करने के बाद चंडप्रद्योत

ततः प्रद्योत नो राजा जैन धर्मं शुद्धमारराध

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ११, श्लोक ५८९ पत्र १५६–२।

२—उत्तराध्ययन, भावविजय की टीका, उत्तरार्द्ध, श्लोक १८२, पत्र ३८६–२।

ऐसा ही वर्णन त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ११, श्लोक ५९७ पत्र १५६-२ में भी आता है। वहाँ भी प्रद्योत से कहलाया गया है—

"....श्रावकौ पितरौ मम"

राजा प्रद्योत सदा द्विमुख के दरबार में जाता और द्विमुख उसे आदर-पूर्वक अर्द्धआसन पर बैठाता।

एक बार प्रद्योत ने द्विमुख की पुत्री मदनमंजरी को देख लिया और उसके विरह में प्रद्योत पीला पड़ गया। द्विमुख राजा के बहुत पूछने पर प्रद्योत ने मदनमंजरी से विवाह करने का प्रस्ताव किया और कहा—"मदनमंजरी न मिली तो मैं अग्नि में कूद कर आत्महत्या कर लूँगा।"

इस प्रस्ताव पर द्विमुख ने अपनी पुत्री का विवाह प्रद्योत से कर दिया।[1]

इन युद्धों के अतिरिक्त चंद्रप्रद्योत के तक्षशिला के राजा पुष्करसाती से युद्ध करने का उल्लेख गुणाढ्य ने किया है।[2]

प्रसन्नचन्द्र[3]

एक बार भगवान् विहार करते हुए पोतनपुर[4]-नामक नगर में पधारे और नगर से बाहर मनोरम-नामक उद्यान में ठहरे। उनके आने का

१—उत्तराध्ययन ९-वाँ अध्याय नेमिचंद्र की टीका १३५-२—१३६-२

२—पोलिटिकल हिस्ट्री आव इंडिया, ५-वाँ संस्करण, पृष्ठ २०४।

३—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ९, श्लोक २१-५० पत्र ११९-१—१२०-१

४—बौद्ध-ग्रंथों में पोतन-नगर अस्सक की राजधानी बतायी गयी है। जातकों से ज्ञात होता है कि पहले अस्सक और दंतपुर के राजाओं में परस्पर युद्ध हुआ करता था। यह पोतन कभी काशी राज्य का अंग रह चुका था। वर्तमान पैठन की पहचान पोतन से की जाती है।—ज्यागरैफी आव अर्ली बुद्धिज्मा, पृष्ठ २१; संयुक्तनिकाय हिन्दी-अनुवाद, भूमिका पृष्ठ ७।

समाचार सुनकर पोतनपुर का राजा प्रसन्नचन्द्र तत्काल भगवान् की वंदना करने आया। भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर अपने बालकुमार को गद्दी पर बैठा कर वह दीक्षित हो गया। प्रभु के साथ विहार करता रहा और उग्र तपस्या करता रहा। अनुक्रम से प्रसन्नचन्द्र समस्त सूत्रों और उनके अर्थों में पारगामी हुआ।

एक बार भगवान् महावीर राजगृह आये। भगवान् के आने का समाचार सुनकर श्रेणिक बड़े सजधज से भगवान् की वंदना करने निकला। आगे-आगे सुमुख और दुर्मुख-नाम के दो मिथ्यादृष्टि सेनानी चल रहे थे। उन दोनों ने प्रसन्नचन्द्र को एक पैर पर खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर करके आतापना लेते देखा। उसे देखकर सुमुख बोला—"अहो! आतापना करने वाले इस मुनि को मोक्ष कुछ भी दुर्लभ नहीं है।" सुनकर दुर्मुख बोला—"अरे! यह पोतनपुर का राजा प्रसन्नचन्द्र है। बड़ी-सी गाड़ी में जैसे कोई छोटा-सा बछड़ा जोत दे, वैसे ही इन्होंने अपने नन्हें-से बच्चे पर राज्य का भार डाल दिया है। यह कैसा धर्म? इसके मंत्री चम्पा-नगरी के राजा दधिवाहन से मिलकर उसके राजकुमार को राज्य भ्रष्ट करेंगे। उस पर उनकी पत्नियाँ भी कहीं चली गयी हैं। पापंडा-दर्शन वाला यह प्रसन्नचन्द्र देखने योग्य नहीं है!"

इनकी बात सुनकर प्रसन्नचन्द्र का ध्यान टूट गया और वे विचार करने लगे—"मेरे मंत्रियों को धिक्कार है। मैंने सदा इनका सत्कार किया; पर उन लोगों ने मेरे पुत्र के साथ बुरा व्यवहार किया। यदि मैं वहाँ होता तो उनको उचित शिक्षा देता। इस संकल्प-विकल्प के कारण प्रसन्नचन्द्र अपना व्रत भूल गये। अपने को राजा-रूप में मानते हुए प्रसन्नचन्द्र मंत्रियों से युद्ध करने पर उद्यत हुए।

इतने में श्रेणिक उनके निकट पहुँचा और उसने विनयपूर्वक प्रसन्न-चन्द्र की वंदना की। यह विचार कर कि अभी राजर्षि प्रसन्नचन्द्र पूर्ण-ध्यान में हैं, श्रेणिक भगवान् के पास आया और उसने भगवान् से पूछा—

"भगवान् ! इस समय प्रसन्नचन्द्र मुनि पूर्ण ध्यानावस्था में हैं। यदि इस समय उनका निधन हो तो किस गति में जायें ?"

यह सुनकर भगवान् बोले—"सातवें नरक में जायेंगे !" भगवान् के मुख से ऐसा सुनकर श्रेणिक को विचार उठा कि, साधु को तो नरक होता नहीं। प्रभु की कही बात बराबर मेरी समझ में नहीं आयी।"

थोड़ी देर बाद फिर श्रेणिक ने पूछा—"हे भगवन् ! यदि प्रसन्नचन्द्र का इस समय देहावसान हो तो वे किस गति को प्राप्त करेंगे ?" भगवान् ने उत्तर दिया—"सर्वार्थसिद्ध-विमान पर जायेंगे।"

यह सुनकर श्रेणिक ने पूछा—"भगवन्, क्षण भर के अन्तर में आपने यह भिन्न-भिन्न बातें कैसे कहीं ?"

भगवान् ने उत्तर दिया—"ध्यान के भेद से मुनि की स्थिति दो प्रकार की थी। इसी कारण मैंने दो बातें कहीं। पहले दुर्मुख की बात से प्रसन्नचन्द्र क्रुद्ध हो गये थे और अपने मंत्रियों आदि से मन में युद्ध कर रहे थे। उसी समय आपने वंदना की। उस समय वह नरक में जाने योग्य थे। उसके बाद उनका ध्यान पुनः व्रत की ओर गया और वे पश्चाताप करने लगे। इससे वह सर्वार्थसिद्ध के योग्य हो गये। आपने दूसरा प्रश्न इसी समय पूछा था।"

इतने में प्रसन्नचन्द्र के निकट देवदुन्दुभी आदि के स्वर सुनायी पड़े। उसे सुनकर श्रेणिक ने पूछा—"भगवन् ! यह क्या हुआ।" भगवान् ने उत्तर दिया—"प्रसन्नचन्द्र को केवलज्ञान हो गया ! यह देवताओं के हर्ष का द्योतन करने वाली दुन्दुभी का नाद है।

श्रेणिक के पूछने पर भगवान् ने प्रसन्नचन्द्र के सम्बन्ध में निम्नलिखित कथा कही—[1]

१—परिशिष्ट-पर्व, याकोबी-सम्पादित, द्वितीय संस्करण, सर्ग १, श्लोक ९२–१२८ पृष्ठ ९–१२।

"पोतनपुर में सोमचन्द्र-नामक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम धारिणी था। एक दिन धारिणी ने सोमचन्द्र का ध्यान उनके पके बाल की ओर आकृष्ट किया। बाल देखकर गृहत्याग करने का विचार आते ही सोमचन्द्र ने राज्य अपने पुत्र प्रसन्नचन्द्र को दे दिया और दिग्-प्रोषित तापस के रूप में जंगल में रहने लगे। वहाँ उनके साथ उनकी पत्नी और एक धाई भी थी।

"यहीं वन में धारिणी को एक पुत्र हुआ। उसका नाम वल्कल-चीरिन् पड़ा। उसके बचपन में ही धारिणी की मृत्यु हो गयी और धाई भी मर गयी। सदा जंगल में ही रहने से तापसों को ही देखने का उसे अवसर मिलता और वह जानता भी नहीं था कि नारी क्या है?"

"वन में अपने एक भाई होने की बात सुनकर प्रसन्नचन्द्र ने बड़े प्रयत्न से वल्कलचीरिन् को पोतनपुर मँगाया।

"छोटे पुत्र के गुम हो जाने से सोमचन्द्र अंधे हो गये। यद्यपि उन्हें समाचार मिल गया था कि वल्कलचीरिन् अपने भाई के साथ है, पर वह बहुत दुःखी रहते।

"बारह वर्षों के बाद, एक बार प्रसन्नचन्द्र और वल्कलचीरिन् अपने पिता को देखने गये। सोमचन्द्र पुत्रों को पाने के हर्ष में रो पड़े। रोते-रोते उनकी नेत्र की ज्योति भी पुनः वापस आ गयी।

"वल्कलचीरिन् भी एक प्रत्येकबुद्ध हो गये। पिता से मिल कर प्रसन्नचन्द्र पोतनपुर लौटे और अपना राजकार्य सँभालते रहे और यहीं मैंने उन्हें दीक्षा दी।"

प्रियचन्द्र[1]

कनकपुर-नामक नगर था। श्वेताश्वेत-नामक उद्यान था। उसमें वीरभद्र-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

१—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य—सम्पादित) श्रु० २, अ० ६, पृष्ठ ८२.

उस नगर में प्रियचन्द्र-नामक राजा राज्य करता था। उसकी मुख्य रानी का नाम सुभद्रा था। उसके पुत्र का नाम वैश्रमण था। (भगवान् का आना, संवसरण आदि समस्त विवरण अदीनशत्रु की तरह समझ लेना चाहिए)।

इस वैश्रमण ने भी पहले श्रावक-धर्म स्वीकार किया और बाद में साधु हो गया। (पूरी कथा सुबाहु के समान ही है)

बल[1]

महापुर-नामका नगर था। रक्ताशोक-नामक उद्यान था। उसमें रक्तपाक-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस नगर का राजा बल था। उसकी मुख्य रानी का नाम सुभद्रा था। राजकुमार का नाम महाबल था।

भगवान् महावीर का आगमन आदि अदीनशत्रु के विवरण के अनुरूप ही है और सुबाहु के समान महाबल ने पहले श्रावक के १२ व्रत लिए और फिर साधु हो गया।

महाचन्द्र[2]

साहंजणी-नामक नगरी थी। उसके उत्तर-पूर्व दिशा में देवरमण-नामक उद्यान था। उसमें अमोघ-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस नगर में महाचन्द्र-नामक राजा राज्य करता था।

जब भगवान् महावीर साहंजणी गये तो महाचन्द्र राजा भी कूणिक की भाँति उनकी वंदना करने गया था।

१—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० २, अ० ७, पृष्ठ ८२।

२—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य—सम्पादित) श्रु० १, अ० ४, पृष्ठ ३७-३८।

महाबल[1]

पुरिमताल-नामक नगर था। उसके उत्तरपूर्व दिशा में अमोघदर्शी-नामक उद्यान था। उस उद्यान में अमोघदर्शी-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस पुरिमताल-नामक नगर में महाबल-नामक राजा था।

एक बार भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए पुरिमताल-नगर में आये तो महाबल भी कूणिक के समान उनकी वंदना करने गया।

मित्र[2]

वाणिज्यग्राम-नामक नगर के उत्तरपूर्व दिशा में दुइपलाश-नामक उद्यान था। उसमें सुधर्म-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस वाणिज्यग्राम में मित्र-नामका राजा था। उस राजा की पत्नी का नाम श्रीदेवी था।

एक बार भगवान् ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वाणिज्यग्राम गये तो कूणिक के समान मित्र भी उनकी वंदना करने गया।

मित्रनन्दी[3]

साकेत-नामक नगर में उत्तरकुरु-उद्यान था। उसमें पाशामृग-यक्ष का यक्षायतन था।

१—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० १, अ० ३, पृष्ठ २६-२७।

२—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० १, अ० २, पृष्ठ १६-१७

३—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० २, अ० १० पृष्ठ ८३

उस नगर में मित्रनन्दी राजा था। श्रीकान्ता उनकी मुख्य देवी थी और वरदत्त कुमार था।

उस नगर में भगवान् महावीर का आना समवसरण आदि अदीनशत्रु ने समान समझ लेना चाहिए और सुबाहु के समान वरदत्त ने भी पहले श्रावक-धर्म स्वीकार किया और बाद में साधु हो गया।

वासवदत्त[1]

विजयपुर-नामक नगर था। वहाँ नंदन-वन नामक उद्यान था। उस उद्यान में अशोक-नामक यक्ष था।

उस नगर में वासवदत्त-नामक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम कृष्णा था। उनको सुवासव-नामका पुत्र था। भगवान् के आने पर वासवदत्त उनके समवसरण में गया। (यह पूरा विवरण अदीनशत्रु-सरीखा जान लेना चाहिए)

सुवासव ने पहले श्रावक-धर्म स्वीकार किया और बाद में साधु हो गया। (सुवासव का विवरण सुबाहु-सा ही है)

विजय

भगवान् महावीर के काल में पोलासपुर में विजय-नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम श्री था। उस राजा विजय और रानी श्री को एक पुत्र था। उसका नाम अतिमुक्तक (अइमुत्ते) था।[2] उस पोलासपुर नामक नगर के निकट श्रीवन-नामक उद्यान था।

१—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० २, अ० ४, पृष्ठ ८१

२—तणं कालेणं २ पोलासपुर नयरे, सिरिवणे उज्जाणे। तत्थणं पोलासपुरे नयरे विजए नामं राया होत्था। तस्सणं विजयस्स रन्नो सिरी नामं देवी होत्था।....तस्स णं विजयस्स रन्नो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते नामं कुमारे होत्था।

—अंतगडदसाओ, एन० वी० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ ३४

एक बार भगवान् परिवार के सहित विहार करते हुए पोलासपुर आये और श्रीवन-उद्यान में ठहरे।

गौतम इन्द्रभूति पोलासपुर नगर में भिक्षा के लिए गये। उस समय स्नान करके षष्ठवर्षीय कुमार अतिमुक्तक लड़के-लड़कियों, बच्चों-बच्चियों तथा युवक-युवतियों के साथ इन्द्रस्थान[1] पर खेल रहा था।

कुमार अतिमुक्तक ने जब इन्द्रभूति को देखा तो उनके पास जाकर उसने पूछा—"आप कौन हैं ?" इस प्रश्न पर इन्द्रभूति ने उत्तर दिया—"मैं निर्गंथ-साधु हूँ और भिक्षा माँगने निकला हूँ! यह उत्तर सुनकर अतिमुक्तक उन्हें अपने घर ले गया।

गौतम इन्द्रभूति को देखकर अतिमुक्तक की माता महादेवी श्री अति प्रसन्न हुईं और तीन बार उनकी परिक्रमा वंदना करके भिक्षा में उन्हें पर्याप्त भोजन दिया।

अतिमुक्तक ने गौतम स्वामी से पूछा—आप ठहरे कहाँ हैं ?" इस पर इन्द्रभूति ने उसे बताया—"मेरे धर्माचार्य (महावीर स्वामी) पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन में ठहरे हैं।" अतिमुक्तक भी भगवान् का धर्मोपदेश सुनने गया और भगवान् के धर्मोपदेश से प्रभावित होकर उसने अपने माता-पिता से अनुमति लेकर साधु होने का निश्चय किया।

वहाँ से लौट कर अतिमुक्तक घर आया और उसने अपने माता पिता से अपना विचार प्रकट किया। इस पर उसके माता-पिता ने कहा—"वत्स! तुम अभी बच्चे हो। तुम धर्म के सम्बन्ध में क्या जानते हो? इस पर अतिमुक्तक ने कहा—"मैं जो जानता हूँ, उसे मैं नहीं जानता और जिसे मैं नहीं जानता उसे मैं जानता हूँ।" इस पर उसके माता-पिता

१—यन्त्रेन्यष्टिरूर्ध्वी कियत

ने पूछा—"तुम यह कैसे कहते हो कि जो तुम जानते हो, उसे नहीं जानते और तुम जिसे नहीं जानते उसे तुम जानते हो ?"

माता-पिता के प्रश्न पर अतिमुक्तक ने उत्तर दिया—"मैं जानता हूँ कि जिसका जन्म होता है, वह मरेगा अवश्य। पर, वह कैसे, कब और कितने समय बाद मरेगा, यह मैं नहीं जानता। मैं यह नहीं जानता कि किन आधारभूत कर्मों से जीव नारकीय, तिर्यंच, मनुष्य अथवा देवयोनि में उत्पन्न होते हैं। पर, मैं जानता हूँ कि अपने ही कर्मों से जीव इन गतियों को प्राप्त होता है। इस प्रकार मैं सही-सही नहीं बता सकता कि, मैं क्या जानता हूँ और मैं क्या नहीं जानता हूँ। उसे मैं जानना चाहता हूँ। इसलिए गृहस्थ-धर्म का त्याग करना चाहता हूँ और इसके लिए आपकी अनुमति चाहता हूँ।"

पुत्र की ऐसी प्रबल इच्छा देखकर माता-पिता ने कहा—"पर, हम कम-से-कम एक दिन के लिए अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठा देखना चाहते हैं।"

माता-पिता की इच्छा रखने के लिए अतिमुक्तक एक दिन के लिए गद्दी पर बैठा और उसके बाद बड़े धूम-धाम से भगवान् के पास जाकर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। अपने पुत्र की दीक्षा में भाग लेने के लिए अति-मुक्तक के पिता विजय भी सपरिवार गये और उन लोगों ने भी भगवान् की वंदना की।[१]

अतिमुक्तक ६ वर्ष की उम्र में साधु हुआ। इस सम्बन्ध में भगवतीसूत्र की टीका में आता है :—

"कुमार समणे' त्ति षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात्, आह च—"छव्वरिसो पव्वइओ निग्गंथं रोइऊण पावयणं" ति, एतदेव चाश्चर्यमिह, अन्यथा वर्षाष्टकादाराग्न प्रव्रज्या स्यादिति,

१—अंतगडदसाओ—एन० पी० वैद्य-सम्पादित पृष्ठ ३४-३७
आत्मप्रबोध-पत्र १२३-२—१२५-२

—भगवतीसूत्र सटीक (समिति वाला) प्रथम भाग, श० ५, उ० ४, सूत्र १८८ पत्र २१९-२

दानशेखर की टीका भी इसी प्रकार है :—

षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वाद्, आह—"छव्वरिसो पव्वइयो निग्गंथं रोइऊण पावयणं' ति, एतदेवाश्चर्यं अन्यथा वर्षाष्टकादाराग्न दीक्षा स्यात .

—दानशेखर की टीका पत्र ७३-१

साधारणतः ८ वर्ष की उम्र में दीक्षा होती है; पर ६ वर्ष की उम्र में अतिमुक्तक की दीक्षा आश्चर्य है।

अतिमुक्तक के साधु-जीवन की एक घटना भगवतीसूत्र शतक ५ उद्देसा ४ में आयी है। एक बार जब खूब वृष्टि हो रही थी, (बड़ी शंका निवारण के लिए) बगल में रजोहरण और पात्र लेकर अतिमुक्तक बाहर निकला। जाते हुए उसने पानी बहते देखा। उसने मिट्टी से पाल बाँधी और अपने काष्ठपात्र को डोंगी की तरह चलाना प्रारम्भ किया और कहने लगा—"यह मेरी नाव है!" और, इस प्रकार वह खेलने लगा। उसे इस प्रकार खेलते स्थविरों ने देखा और भगवान् के पास जाकर पूछा —"भगवन्! अतिमुक्तक भगवान् का शिष्य है। वह अतिमुक्तक कितने भवों के बाद सिद्ध होगा और सब दुःखों का विनाश करेगा ?"

इस पर भगवान् महावीर ने कहा—"मेरा शिष्य अतिमुक्तक इस भव को पूरा करने के पश्चात् सिद्ध होगा। तुम लोग उसकी निंदा मत करो और उस पर मत हँसो। कुमार अतिमुक्तक सब दुःखों का नाश करने वाला है और इस बार शरीर त्यागने के बाद पुनः शरीर नहीं धारण करेगा।"

भगवान् की बात सुनकर सब स्थविर अतिमुक्तक की सार-सँभाल रखने लगे और उनकी सेवा करने लगे।[1]

अपने साधु-जीवन में अतिमुक्तक ने सामायिक आदि का अध्ययन किया। कई वर्षों तक साधु-जीवन व्यतीत करने के पश्चात् गुणरत्न-तपस्या करने के पश्चात् विपुल-पर्वत पर अतिमुक्तक ने सिद्धि प्राप्त की।[2]

विजय[3]

मृगगाम-नगर के उत्तरपूर्व-दिशा में चंदनपादप-नामक उद्यान था। उस उद्यान में सुधर्म-नामक यक्ष का यक्षायतन था। उस ग्राम में विजय-नामक राजा था। मृगा-नामकी उस राजा की रानी थी।

एक बार भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मृगग्राम पहुँचे। उस समय विजय राजा भी कूणिक के समान उनकी वंदना करने गया।

विजयमित्र[4]

वर्द्धमानपुर-नामक नगर था। जिसमें विजयवर्द्धमान-नामक उद्यान था। उसमें मणिभद्र-नामक यक्ष का मंदिर था।

उस नगर में विजयमित्र नामक राजा था।

१—भगवतीसूत्र सटीक (समिति वाला) श० ५, उ० ४, पत्र २१९।१-२ (प्रथम भाग)

२—अंतगडदसाओ एन० वी० वैद्य-सम्पादित, पृष्ठ ३५

३—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० १, अ० १, पृष्ठ ४-५

४—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० १, अ० १०, पृष्ठ ७२

भगवान् जब ग्रामानुग्राम विहार करते वर्द्धमानपुर आये तो विजय-मित्र भगवान् की वंदना करने गया।

वीरकृष्णमित्र[1]

वीरपुर-नामक नगर था। उस नगर में मनोरम-नामका उद्यान था। उस नगर में वीरकृष्णमित्र-नामक राजा थे। उनकी देवी का नाम श्री था। उन्हें सुजात-नामक कुमार था (जन्म, शिक्षा-दीक्षा, विवाह आदि की कथा सुबाहु कुमार के समान जान लेनी चाहिए।)

एक बार भगवान् महावीर यहाँ पधारे। समवसरण हुआ। राजा वंदना करने गये। (सब विवरण अदीनशत्रु के समान जान लेना चाहिए) सुजात ने पहले श्रावक धर्म स्वीकार किया और बाद में उसने प्रव्रज्या ले ली।

वीरंगय[2]

वीरंगय कहाँ का राजा था, यह ज्ञात नहीं है। उसके जीवन के सम्बंध में अन्य जानकारियाँ भी हमें प्राप्त नहीं हैं। पर स्थानांगसूत्र, स्थान ८, उद्देश्य ३, सूत्र ६२१ में भगवान् महावीर से दीक्षा लेने वाले ८ राजाओं में वीरंगय का भी नाम दिया है।

१—विपागसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० २, अ० ३, पृष्ठ ८१

२—समणेणं भगवता महावीरेणं अट्ठ रायाणो मुंडे भवेत्ता अगारातो अणगारितं पव्वाविता, पं० तं०—वीरंगय, वीरजसे, संजय, एणिज्जते, य रायरिसी। सेयसिवे उदायणे [तह संखे कासिवद्धणे]

—ठाणांग सटीक, उत्तरार्ध, पत्र ४३०-२

वीरयश[1]

वीरयश के सम्बन्ध में भी हमें कुछ जानकारी नहीं है। ठाणांगसूत्र में आठ राजाओं के दीक्षा लेने की बात आती है, उसमें एक नाम वीरयश का भी है।

वैश्रमणदत्त[2]

रोहितक नामक नगर था। उसमें पृथिव्यवतंसक नामक उद्यान था, जिसमें धरण-नामक यक्ष का आयतन था।

उस नगर का राजा वैश्रमणदत्त था। उसकी भार्या का नाम श्रीदेवी था और पुष्यनंदी उनका कुमार था।

जब भगवान् ग्रामानुग्राम विहार करते हुए रोहितक गये तो वैश्रमणदत्त भी भगवान् की वंदना करने गया।

शंख[3]

मथुरा-नगरी में शंख-नामक राजा राज्य करता था। उनमें परस्पर

१—समणेण भगवता महावीरेणं अट्ठ रायाणो मुंडे भवेत्ता अगारातो अणगारितं पव्वाविता पं० तं०—वीरंगय, वीरजसे, संजय, एणिज्जते, य रायरिसी। सेय सिवे उदायणे [तह संखे कासिवद्धणे]

—ठाणांगसूत्र सटीक, ठाणा ८, उ० ३, सूत्र ६२१ पत्र ४३०-२ (उत्तरार्द्ध)

२—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु० १, अ० ९, पृष्ठ ६२

३—उत्तराध्ययन सटीक, अ० १२

किसी प्रकार की बाधा न आये, इस रूप में वह त्रिवर्ग[1] की साधना करने वाला श्रावक[2] था।

शंख को वैराग्य हुआ और उन्होंने दीक्षा ले ली। कालान्तर में वह गीतार्थ[3] हुए।

एक बार विहार करते हुए शंख मुनि हस्तिनापुर गये और गोचरी के लिए उन्होंने नगर में प्रवेश किया।

वहाँ एक गली थी जो सूर्य की गर्मी से इतनी उत्तप्त हो जाती थी कि उसमें चलने वाला व्यक्ति भुन जाता था और इस प्रकार उसकी मृत्यु हो जाती थी।

शंख राजा जब उस गली के निकट पहुँचे तो पास के घर के स्वामी सोमदेव-नामक पुरोहित से पूछा—"इस गली में जाऊँ या नहीं?" द्वेषवश उस पुरोहित ने कह दिया—"हाँ! जाना हो तो जाइए।"

१—त्रिवर्गो धर्मार्थकामः तत्र यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। यतः सर्व प्रयोजन सिद्धिः सोऽर्थः। यत आभिमानिकरसानुविद्धा सर्वेन्द्रिय प्रीतिः स कामः। ततोऽन्योऽन्यस्य परस्परं योऽप्रतिबन्धोऽनुपघातस्तेन त्रिवर्गमपि न स्वैकेकं साधयेत।

यह विवरण हेमचन्द्राचार्य ने योगशास्त्र की स्वोपज्ञ टीका में श्रावकों के प्रकरण में दिया है।

—योगशास्त्र सटीक पत्र ५४-१

२—महुरा नयरीए संखो नाम राया, सो य तिवग्गसारं जिणधम्माणुट्ठाणं परं जीवलोगसुहमणुभविऊण

—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, पत्र १७३

३—गीतो विज्ञात कृत्याकृत्यलक्षणोऽर्थो येन स गीतार्थः। बहुश्रुते प्रव० १०२ द्वार

—राजेन्द्राभिधान, भाग ३, पृष्ठ ९०२

सोमशर्मा से ऐसा सुनकर शंख मुनि उस गली में चले। उनके चरण के स्पर्श के प्रभाव से गली बर्फ-जैसी ठंडी हो गयी। इर्यासमिति पूर्वक धीरे-धीरे मुनि को चलता देखकर पुरोहित को बड़ा आश्चर्य हुआ।

वह भी घर से निकला और गली में चला। गली को बर्फ-जैसी ठंडी पाकर उसे अपने कुकर्म पर पश्चाताप होने लगा और वह विचारने लगा—"मैं कितना पापी हूँ कि इस अग्नि-सरीखी उत्तप्त गली में चलने के लिए मैंने इस महात्मा को कहा। यह निश्चय ही कोई बड़े महात्मा मालूम होते हैं।"

ऐसा विचार करता-करता वह सोमशर्मा शंख मुनि के चरणों में गिर पड़ा। शंख मुनि ने उसे उपदेश दिया और वह सोमशर्मा भी साधु हो गया।[1]

शिवराजर्षि

स्थानांग-सूत्र में आठ राजाओं के नाम आते हैं, जिन्होंने भगवान् महावीर से दीक्षा ले ली और साधु हो गये।[2] उन आठ राजाओं के नामों में एक राजा शिवराजर्षि आता है। इस पर टीका करते हुए नवांगी वृत्तिकारक अभयदेव सूरि ने लिखा है:—

१—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्रसूरि की टीका सहित, अ० १२, पत्र १७३–१।

२—समणेणं भगवता महावीरेणं अट्ठ रायाणो मुंडे भवेत्ता आगारातो अणगारितं पव्वाविता, तं०—वीरंगय, वीरजसे, संजय एणिज्जते य रायरिसी। सेय सिवे उदायणे [तह संखे कासिवद्धणे]

—स्थानांग सूत्र, सटीक, स्थान ८, सूत्र ६२१ पत्र (उत्तरार्द्ध) ४३०–२।

शिवः हस्तिनागपुर राजो[1]

हस्तिनापुर के इस राजा की चर्चा भगवतीसूत्र[2] में भी आती है।

उस समय में हस्तिनापुर[3] नामक नगर था। उस हस्तिनापुर नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में सहस्र आम्रवन नाम का उद्यान था। वह उद्यान सब ऋतुओं के फल-पुष्प से समृद्ध था और नन्दनवन के समान रमणीक था।

उस हस्तिनापुर में शिव नाम के राजा थे। वह राजाओं में श्रेष्ठ थे। उक्त शिव राजा की पटरानी का नाम धारिणी था। धारिणी से उक्त शिव राजा को एक पुत्र था। उसका नाम शिवभद्र था।

एक दिन राजा के मन में रात्रि के पिछले प्रहर में विचार हुआ कि हमारे पास जो इतना-सारा धन है, वह हमारे पूर्व जन्म के पुण्य का फल है। अतः पुनः पुण्य संचय करना चाहिए। इस विचार से उसने दूसरे दिन अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर दिया और अपने सगे-सम्बन्धियों से अनुमति लेकर लोही आदि लेकर गंगा किनारे रहते तापसों के पास दीक्षा लेकर दिशाप्रोक्षक[4] तापस हो गया और निरन्तर ६ टंक उपवास का व्रत उसने ले लिया।

पहले उपवास के पारणा के दिन शिव राजर्षि तपस्थान से नीचे आया और नीचे आकर वल्कल-वस्त्र धारण करके अन्यों की झोपड़ी के निकट गया और किढिण (साधु के प्रयोग में आने वाला बाँस का पात्र) और

१—स्थानांगसूत्र सटीक, उत्तरार्द्ध पत्र ४३१-१।

२—भगवती सूत्र सटीक, शतक ११, उद्देशा ९, पत्र ९४४-९५८।

३—विशेष परिचय के लिए देखिए—'हस्तिनापुर' (ले० विजेन्द्रसूरि)

४—इस पर टीका करते हुए अभयदेव सूरि ने लिखा है—

'दिसापोक्खिणो' त्ति उदकेन दिशः प्रोक्ष्य ये फलपुष्पादि समुच्चिन्वन्ति।

—भगवतीसूत्र सटीक, पत्र ९५४।

कावड़ ग्रहण करके पूर्व दिशा को प्रोक्षित करके "सोम दिशा के सोम महाराज धर्म साधन में प्रवृत्त शिव राजर्षि का रक्षण करो, और पूर्व दिशा में स्थित कंद, मूल, छाल, पांदड़ा, पुष्प, फल, बीज और हरित वनस्पतियों को लेने की आज्ञा दें"—ऐसा कह कर शिव राजर्षि पूर्व ओर चले। और, कावड़ भर कर पत्र-पुष्प इत्यादि ले आया। कुटी के पीछे पहुँचने पर कावड़ को नीचे रखा, वेदिका साफ की, वेदिका को लीप करके शुद्ध किया और डाभ-कलश लेकर गंगा नदी के तट पर आया। वहाँ स्नान-आचमन करके पवित्र होकर, देव-पितृ कार्य करके, कुटी के पीछे आया। फिर दर्भ, कुश और रेती की वेदी बनायी। मथनकाष्ठ की अरणी घिस कर अग्नि प्रज्वलित की और समिधा के दक्षिण ओर निम्नलिखित सात वस्तुएं रखीं—

१—सकहं[1], २ वक्कल, ३ ठाणं[2], ४ सिज्जा[3], भंड, ५ कमंडलु, ६ दंड, ७ आत्मा (स्वयं दक्षिण ओर बैठा था)। उसके बाद मधु, घी और चावल से आहुति दी—और चरु-बलि तैयार की। चरु से वैश्वदेव की पूजा की, फिर अतिथि की पूजा की और उसके पश्चात् आहार किया।

इस प्रकार दूसरे पारणा के समय दक्षिण दिशा और उसके लोकपाल यम, तीसरे पारणा के समय पश्चिम दिशा और उसके लोकपाल वरुण; और चौथे पारणा के समय उत्तर दिशा और उसके लोकपाल वैश्रमण की पूजा आदि की।

१—तत्समय प्रसिद्ध उपकरण विशेषः—भगवतीसूत्र सटीक पत्र ९५६।

२—ज्योतिः स्थानं—वही।

३—शय्योपकरणं—वही।

इस प्रकार दिक्चक्रवाल[1]-तप करने से शिवराजर्षि के आवरणभूत कर्म नष्ट हो गये और विभंग-ज्ञान उत्पन्न हो गया। उससे शिवराजर्षि को इस लोक में ७ द्वीप और ७ समुद्र दिखलायी पड़े। उसने कहा उसके बाद द्वीप और समुद्र नहीं हैं।

यह बात हस्तिनापुर में फैल गयी।

उसी बीच महावीर स्वामी वहाँ आये। उनके शिष्य गौतम भिक्षा माँगने गये। गाँव में उन्होंने शिवराजर्षि की कही सात द्वीप और सात समुद्र की बात सुनी।

भिक्षा से लौटने पर उन्होंने भगवान् महावीर से यह बात पूछी—"भगवन्! शिवराजर्षि कहता है कि सात ही द्वीप और सात ही समुद्र हैं। यह बात कैसे सम्भव है?"

इस पर भगवान् महावीर ने कहा—हे गौतम! यह असत्य है। हे आयुष्मान्! इस तिर्यक् लोक में स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्य समुद्र और द्वीप हैं।

यह बात भी फैल गयी। उसे सुनकर शिव राजर्षि को शंका हो गयी और तत्काल उनका विभंग-ज्ञान नष्ट हो गया। फिर उसे ज्ञान हुआ कि भगवान् तीर्थंङ्कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। इसलिए उसने भगवान् के पास जाने का विचार किया।

वह भगवान् के पास गया और धर्म सुनकर श्रद्धायुक्त हुआ। पंच-मुष्टि लोच किया और भगवान् के पास उसने दीक्षा ले ली।

१—तपो विशेषे च। एकत्र पारणके पूर्वस्यां दिशि यानि -फलाऽऽदीनि तान्याहृत्यभुक्ते, द्वितीये तु दक्षिणस्यामित्येवं दिक्चक्रवालेन तत्र तपः कर्म्मणिपारणक करणं तत्तपः कर्म दिक्चक्रवालमुच्यते—नि० १ श्रु० ३ वर्ग २ अ०।

—राजेन्द्राभिधान, भाग ७, पृष्ठ २५३८

शौरिकदत्त[1]

शौरिकपुर-नामक नगर था। उसमें शौरिकावतंसक-नामक उद्यान था, जिसमें शौरिक-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस नगर में शौरिकदत्त नामक राजा था। जब भगवान् ग्रामानुग्राम में विहार करते उस नगर में आये थे, तो शौरिकदत्त भी उनकी वंदना करने गया।

श्रीदाम[2]

मथुरा-नामक नगरी थी। उसके उत्तर-पूर्व में भंडीर-नामक उद्यान था। उसमें सुदर्शन-नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस नगर में श्रीदाम-नामक राजा था और बंधुश्री उनकी भार्या थी। भगवान् जब उस नगर में गये तो श्रीदाम भी उनकी (कूणिक की भाँति) उनकी वंदना करने गया।

श्रेणिक भंभासार

भगवान् महावीर के समय में मगध की गणना अति शक्तिशाली राज्यों में था। उसकी राजधानी राजगृह थी।[3] उस समय वहाँ श्रेणिक भंभासार नाम का राजा राज्य कर रहा था।

१—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) श्रु०१, अ०८, पृष्ठ ५८

२—विपाकसूत्र (पी० एल० वैद्य-सम्पादित), श्रु० १ अ०६, पृष्ठ ४५-४६

३—बृहत् कल्पसूत्र सटीक, विभाग ३, पृष्ठ ९१३।

विशेष जानकारी के लिए देखिये तीर्थंकर महावीर भाग १, पृष्ठ ४२ से ५३ तक। आजकल यह राजगिर नाम से प्रसिद्ध है। यह रेलवे-स्टेशन भी है और बिहारशरीफ से १५ मील की दूरी पर है।

उसका तथा उसके वंश का उल्लेख वैदिक, बौद्ध तथा जैन सभी साहित्यों में मिलता है।

वैदिक-साहित्य में

उसके वंश का उल्लेख श्रीमद्भागवत् महापुराण में निम्नलिखित रूप में आता है :—

> **शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णः तत्सुतः।**
> **क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥५॥**
> **विधिसारः सुतस्तस्या जात शत्रुर्भविष्यति।**
> **दर्भकस्तत्सुतो भावीदर्भकस्या जयः स्मृतः ॥६॥**
> **नन्दिवर्द्धन आजेयो महानन्दिः सुतस्ततः।**
> **शिशुनागा दशैवेते षष्ट्युत्तर शतत्रयम् ॥७॥**

इसके बाद शिशुनाग नाम का राजा होगा। शिशुनाग का काकवर्ण, उसका क्षेत्रधर्मा। क्षेत्रधर्मा का पुत्र क्षेत्रज्ञ होगा। क्षेत्रज्ञ का विधिसार, उसका अजातशत्रु, फिर दर्भक और दर्भक का पुत्र अजय होगा। अजय से नन्दिवर्द्धन, और उससे महानन्दि का जन्म होगा। शिशुनाग वंश में ये दस राजे होंगे। ये सब मिलकर कलियुग में ३६० वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे।[1]

श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त वायुपुराण अध्याय ९९, श्लोक ३१५ से ३१९ तक, मत्स्यपुराण अध्याय २७२ श्लोक ५ से १२ तक, तथा विष्णु पुराण अंश ४, अध्याय २४, श्लोक १-८, पृष्ठ ३५८-३५९ में भी इस वंश का उल्लेख है।

१—श्रीमद्भागवत सानुवाद (गीताप्रेस, गोरखपुर) द्वितीय खंड, पृष्ठ ९०३।

इसी आधार पर इतिहासकार इस वंश का उल्लेख 'शिशुनाग-वंश' के रूप में करते हैं।

बौद्ध-ग्रन्थों में

१—पहली शताब्दि में हुए कनिष्क के समकालीन कवि अश्वघोष ने बुद्धचरित्र में इस कुल को हर्यंक-कुल बताया है।[1] बुद्धचरित्र के सम्पादक तथा अनुवादक डाक्टर ई० एच्० जांसन ने लिखा है कि मैं हर्यंक शब्द को हर्यंग-रूप में मानता हूँ, जो वृहद्रथ-वंश का राजा था और जिसकी महत्ता हरिवंश में वर्णित है। इस आधार पर उनका मत है कि शिशुनाग स्वयं वृहद्रथ-वंश का था।[2]

पर, इस कल्पना पर अपना मत व्यक्त करते हुए डाक्टर हेमचन्द्र राय चौधरी ने लिखा है कि इस 'हर्यंक' शब्द का 'हर्यंग' शब्द से तुक बैठाने का कोई कारण नहीं है।[3]

२—महावंस में इस कुल के लिए 'हर्यंक-कुल' शब्द का उल्लेख नहीं है। वहाँ इस कुल के लिए शिशुनाग-वंश ही लिखा है।[4]

३—इस वंश का उल्लेख :मंजुश्रीमूलकल्प में भी है, परन्तु उसमें उसके कुल के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है।[5]

१—नाश्चर्यमतेद्भवतो विधानं जातस्य हर्यंक कुले विशाले।
यन्मित्रपक्षे तव मित्र काम स्याद्वृत्तिरेषा परिशुद्धवृत्ते ॥
—बुद्धचरित्र, सर्ग ११, श्लोक २

२—बुद्धचरित्र, भाग २, पृष्ठ १४९

३—पोलिटिकल हिस्ट्री आव ऐंशेंट इण्डिया (पाँचवाँ संस्करण) पृष्ठ ११६.

४—महावंस (बम्बई-विश्वविद्यालय) परिच्छेद २, गाथा २७-३२ पृष्ठ १०, परिच्छेद ४ गाथा १-५ पृष्ठ १४

५—इम्पीरियल हिस्ट्री आव इण्डिया (मंजुश्रीमूलकल्प, के० पी० जायसवाल-सम्पादित), पृष्ठ १०-११

जैन-साहित्य में

पर, जैन-साहित्य में श्रेणिक को वाहीक-कुल[1] का बताया गया है। यहाँ प्रयुक्त 'कुल' शब्द को समझने में लोगों ने भूल की और इस कारण जब 'वाहीक' का अर्थ नहीं लगा तो जैन-विद्वानों और ऐतिहासिकों दोनों ही ने इस उल्लेख की ही उपेक्षा कर दी।

(१) 'कुल' शब्द की टीका करते हुए 'अमरकोष' की भानुजो दीक्षित की टीका में लिखा है :—

कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेऽपि[2]

इसका यह अर्थ हुआ कि 'कुल' शब्द से तात्पर्य जनपद से है। जहाँ का यह वंश मूल निवासी था।

२—प्रोफेसर वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी के गोडे-कर्वे-सम्पादित बृहत् संस्करण में कुल का एक अर्थ 'रेसिडेंस आव अ फैमिली' लिखा है।[3] और, इसके प्रमाण स्वरूप दो प्रमाण भी दिये हैं।

१—ददर्श धीमान्स कपिः कुलानि

—रामायण, ५, ५, १०

१—(अ) आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६५

(आ) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, पत्र ६७७-१

(इ) चेटकोऽप्य ब्रवीदेवमनात्मज्ञस्तवः।

वाहीक कुलजो वाञ्छन् कन्यां हैहय वंशजां ॥२२६॥

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, पत्र ७८

(ई) परिभाविऊण भूत्रो भणेइ कन्नं हेहया अम्हे।

वाहिय कुलंपि देभो जहा गयं जाह तो तुब्भे। ११०

—उपदेशमाला दोघट्टी टीका, पत्र ३३९.

२—अमरकोष, निर्णय सागर प्रेस, १९२९, पृष्ठ २५०

३—भाग १, पृष्ठ ५८६.

२—वसन्नृपि कुलेषु

—रघुवंश १२, २५.

और, उसके आगे चलकर उसका एक अर्थ 'कण्ट्री' (देश-जनपद) भी दिया है।[1]

(३) राजेन्द्राभिधान, तृतीय भाग में कुल शब्द का अर्थ 'जनपदे', 'देश' भी दिया है।[2]

(४) शब्दार्थ-चिन्तामणि में भी 'कुल' का अर्थ 'जनपदे' दिया है।[3]

(५) शब्द स्तोम महानिधि में 'कुल' का अर्थ 'देशे' लिखा है।[4]

इससे स्पष्ट है कि यहाँ 'कुल' शब्द का अर्थ जनपद है और 'वाहीक कुल' उस जनपद का द्योतन करता है, जहाँ का यह वंश मूलतः रहनेवाला था। 'वाहीक' का उल्लेख महाभारत में निम्नलिखित रूप में आया है:—

(अ) पंचानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रितः।
वाहीका नाम ते देशाः········· ।

महाभारत (गीता प्रेस) कर्ण पर्व, अ० ४४, श्लोक ७, पृष्ठ ३८९३

(आ) उसी पर्व में अन्यत्र उल्लेख आया है:—

वाहिश्च नाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ।
तयोरपत्यं वाहीकाः नैषा सृष्टि प्रजापतेः॥

१—वही, कालम २.

२—राजेन्द्राभिधान, भाग ३, पृष्ठ ५९३.

३—शब्दार्थ चिन्तामणि, प्रथम भाग, पृष्ठ ६३६.

४—शब्दस्तोम महानिधि, तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य-सम्पादित, पृष्ठ ११६.

—महाभारत (गीता प्रेस) कर्णपर्व अध्याय ४४, श्लोक ४२ पृष्ठ ३८९५।

इस जनपद का उल्लेख पतंजलि[1] ने भी किया है। डाक्टर वासुदेव-शरण अग्रवाल ने अपने ग्रंथ 'पाणिनीकालीन भारतवर्ष' में उसकी सीमा के सम्बन्ध में कहा है:—

"सिन्धु से शतद्रु तक का प्रदेश वाहीक था। इसके अंतर्गत भद्र, उशीनर, और तिगर्त तीन मुख्य भाग थे।"[2]

इसका उल्लेख शतपथ-ब्राह्मण में भी आता है।[3]

वंश-निर्णय

ऊपर दिये प्रमाणों के अतिरिक्त 'गर्ग-संहिता' (युगपुराण) में भी इस वंश को शिशुनाग का ही वंश होना लिखा है:—

ततः कलियुगे राजा शिशुनागात्मजो बली।
उद्धी (व्यी) नाम धर्मात्मा पृथिव्यां प्रथितो गुणैः॥[4]

अतः स्पष्ट है कि सभी पौराणिक ग्रन्थों में इस वंश को शिशुनाग-वंश लिखा है। बौद्ध-ग्रन्थों में इसे हर्यंक कुल का लिखा है और जैन-ग्रन्थों में इस कुल को वाहीकवासी लिखा गया है।

१—४-२-१०४; १-१-१५; ४-१०८-३५४; ४-२-१२४।
अन्य प्रसंगों के लिए देखिये महाभाष्य शब्दकोष, पृष्ठ ९६८।

२—पाणिनीकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ४२।

३—१-७-३८।

४—'जरनल आव द' बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, सितम्बर १९२८, वाल्यूम १४, भाग ३, पृष्ठ ४००। (हिस्टारिकल डाटा इन गर्ग संहिता)

'हरि' शब्द का एक अर्थ 'सर्प' भी होता है।[१] और 'अंक' का अर्थ 'चिह्न' होता है।[२] अतः शिशुनाग—छोटा नाग—वंश और हर्यंक कुल वस्तुतः एक ही लक्ष्य की ओर संकेत करते हैं। नागों के देश का मुख्य नगर तक्षशिला था और तक्षशिला वाहीक-देश में था। अतः जैन-ग्रन्थों में आये 'वाहीक-कुल' से भी उसी ओर संकेत मिलता है।

शिशुनाग-वंश का उल्लेख अन्न मूर्ति पर भी मिल जाने से इस वंश के मूल पुरुप के सम्बन्ध में कोई शंका नहीं की जा सकती। एक लेख पर उल्लेख है:—

नि भ द प्र श्रेणी अ ज (ा) सत्रु राजो (सि) र (ी) ४, २० (थ), १० (ड) ८ (हि या ह) के चिह्न।

श्रेणी के उत्तराधिकारी स्वर्गवासी अजातशत्रु राजा श्री कूणिक शेवासिनाग मागधों के राजा।

३४ (वर्ष) ८ (महीना) (शासन काल)[३]।

नाम

जैन-ग्रन्थों में श्रेणिक के दो नाम मिलते हैं—श्रेणिक और भंभासार।[४]

श्रेणिक शब्द पर टीका करते हुए हेमचन्द्राचार्य ने अभिधान-चिंतामणि की स्वोपज्ञ टीका में लिखा है:—

श्रेणीः कायति श्रेणिको मगधेश्वरः[५]

१—आप्टेज संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी, भाग ३, पृष्ठ १७४९।

२—वही, भाग १, पृष्ठ २२।

३—'जनरल आव द' बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्ज सोसाइटी। दिसम्बर १९१९, वाल्यूम ५, भाग ४, पृष्ठ ५५०।

४—'श्रेणिकस्तु भंभासारो'—अभिधान चिंतामणि, मर्त्यकांड, श्लोक ३७६, पृष्ठ २८५।

५—वही।

—जो श्रेणी का अधिपति है और श्रेणी को संग्रह करता है, वह श्रेणिक है। जैन-ग्रन्थों में श्रेणियों की संख्या अठारह बतायी गयी है।[1] और, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति की टीका में उन्हें इस प्रकार गिनाया गया है:—

अष्टादश श्रेणयश्चेमाः—"कुंभार १, पट्टइल्ला २, सुवण्णकारा ३, सूवकारा य ४। गंधव्वा ५, कासवगा ६, मालाकारा ७, कच्छकरा ८ ॥ १ ॥ तंबोलिश्रा ६ य ए ए नवप्पयारा य नारुश्रा भणिश्रा। श्रह णं णवप्पयारे कारुश्रवएणे पवक्खामि ॥ २ ॥

चम्मयरु १, जंतपीलग २, गंछिश्र ३, छिंपाय ४, कंसारे ५, य। सीवग ६, गुश्रार ७, भिल्ला ८, धीवर ६, वएणइ श्रट्ठदस ॥ ३ ॥[2]

—१ कुम्हार, २ रेशम बुनने वाला, ३ सोनार, ४ रसोईकार, ५ गायक, ६ नाई, ७ मालाकार, ८ कच्छकार (काछी), ९ तमोली, १० मोची, ११ तेली (जंतपीलग), १२ अगोछा बेचने वाले (गंछी), १३ कपड़े छापने वाले, १४ ठठेरा (कंसकार), १५ दर्जी (सीवग), १६ ग्वाले (गुआर), १७ शिकारी (भिल्ल), १८ मछुए।

डाक्टर जगदीशचंद्र जैन ने 'पट्टइल्ल' से गुजराती शब्द 'पटेल' का अर्थ लिया है।[3] यही अर्थ हरगोविंददास टी० सेठ ने अपने कोष 'पाइअ-सद्दमहण्णवो' में दिया है।[4] सुपासनाह चरिय में पट्टइल्ल का संस्कृत रूप 'प्रदेश' दिया है।[5] पर, यह उनकी भूल है। 'पट्ट' शब्द जैन तथा अन्य

१—'अट्ठारस सेणीप्पसेणीओ'—ज्ञाताधर्मकथा, भाग १, पत्र ४०।

२—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सटीक, वक्षस्कार ३, पत्र १९३।

३—लाइफ इन ऐंशेंट इण्डिया, पृष्ठ १०६।

४—पाइअसद्दमहण्णवो, पृष्ठ ६३२।

५—सुपासनाहचरियं, पृष्ठ २७३, ३६१

धर्मों की पुस्तकों में रेशमी कपड़े के लिए प्रयुक्त हुआ है। अणुयोगद्वार सटीक सूत्र ३७,[1] बृहत्कल्पसूत्र सटीक विभाग ४, गाथा ३६६२, पृष्ठ १०१८,[2] आचारांग सटीक श्रु० २, चूलिका १, अध्याय १४, गाथा ३८८ पत्र ३६१-२[3] आदि प्रसंगों से स्पष्ट है कि 'पट्ट' का अर्थ क्या है।

बौद्ध-ग्रन्थ 'महावस्तु' में भी श्रेणियों के नाम गिनाये गये हैं:— १ सौवर्णिक, २ हैरण्यिक, ३ चादर बेचने वाले (प्रावारिक), ४ शंख का काम करने वाले (शांखिक), ५ हाथी दाँत का काम करने वाले (दन्तकार), ६ मणिकार, ७ पत्थर का काम करने वाले, ८ गंधी, ९ रेशमी कपड़े वाले, १० ऊनी कपड़े वाले (कोशाविक), ११ तेली, १२ घी बेचने वाले (घृतकुंडिक), १३ गुड़ बेचने वाले (गौलिक), १४ पान बेचने वाले (वारिक), १५ कपास बेचने वाले (कार्पासिक) १६ दही बेचने वाले (दध्यिक), १७ पूये बेचने वाले (पूयिक), १८ खांड बनाने वाले (खंडकारक), १९ लड्डू बनाने वाले (मोदकारक), २० कन्दोई (कण्डुक), २१ आटा बनाने वाले (सपितकारक), २२ सत्तू बनाने वाले (सक्तुकारक), २३ फल बेचने वाले (फलवणिज), २४ कंद-मूल बेचने वाले (मूलवाणिज), २५ सुगंधित चूर्ण और तैल बेचने वाले, २६ गुड़पाचक, २७ खांड बनाने वाले, २८ सोंठ बेचने वाले, २९ शराब बनाने वाले (सीधु कारक) ३० शक्कर बेचने वाले (शर्कर वणिज)[4]।

श्रेणियों की संख्या १८ ही बौद्ध-ग्रंथों में भी बतायी गयी

१—पट्टे-त्ति पट्टसूत्रं मलयम्—पत्र ३५–१।

२—'पट्ट' त्ति पट्टसूत्रजम्।

३—पट्टसूत्र निष्पन्नानि पट्टानि।

४—महावस्तु भाग ३, पृष्ठ ११३ तथा ४४२-४४३।

है।[1] श्रेणियों का उल्लेख करते हुए डाक्टर रमेशचंद्र मजूमदार ने 'कारपोरेट लाइफ इन ऐंशेंट इंडिया' में लिखा है कि ये १८ श्रेणियाँ कौन थीं, यह बताना सम्भव नहीं है।[2] यदि डाक्टर मजूमदार ने जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति देखी होती तो उनकी कठिनाई दूर हो गयी होती। कहीं एक साथ श्रेणियों का उल्लेख न पा सकने के कारण श्री मजूमदार ने अपनी पुस्तक में विभिन्न स्थलों से एवं संगृहीत श्रेणियों की एक स्वतंत्र तालिका दी है। हम वह तालिका नीचे दे रहे हैं। (साथ ही कोष्ठ में उनका संदर्भ भी दिया है)

१ लकड़ी पर काम करने वाले (जातक ६, पृष्ठ ४२७), २ धातुओं का काम करने वाले (वही), ३ पत्थर का करने वाले, ४ चमड़े का काम करने वाले (वही), ५ हाथी दाँत पर काम करने वाले ६ आदेयांत्रिक (नासिक-इंस्क्रृप्शन, ल्यूडर्स, ११३७), ७ वासकार (जुन्नार-इंस्क्रृप्शन, ल्यूडर्स ११६५), ८ कसकार (वही) ९ जौहरी, १० जुलाहे (ना० इं० ११३३), ११ कुम्हार (ना० इं० ११३७), १२ तेली (वही), १३ टोकरी बनाने वाले, १४ रंगरेज, १५ चित्रकार (जातक ६, पृ० ४२७) १६ धान्निक (जु० इं०, ११८०), १७ कृषक (गौतम-धर्मसूत्र ९, २१), १८ मछवाहे, १९ पशु वध करने वाले २० नाई २१ माली

१—मूगपक्ख जातक। जातक के हिन्दी-अनुवाद, भाग ६, पृष्ठ २४ में भदंत आनंद कौसल्यापन ने सेणी का अर्थ 'सेना' कर दिया है। यह उनकी भूल है। बंगला-अनुवाद ठीक है उसमें वर्ण तथा श्रेणी ठीक रूप में लिखा है (देखिये जातक का बंगला अनुवाद, भाग ६, पृष्ठ १४) यह श्रेणी शब्द वैदिक ग्रंथों में भी आता है। मनुस्मृति (८-४२ मेधातिथि टीका, पृष्ठ ५७८) में 'एक कार्यापन्ना वणिक' आया है। यह शब्द श्रीमद्भागवत् में (स्कंध २, अ० ८, श्लोक १८ गीताप्रेस संस्करण भाग १, पृष्ठ १८३) तथा रामायण (भाग १, २-२६-१४ पृष्ठ १२२) में भी आया है।

२—कार्पोरेट लाइफ इन ऐंशेंट इंडिया, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १८

(जातक ३, ४०५), २२ जहाजी (जातक ४, १३७), २३ ढोर चराने वाले (गौ० ध० सू० ९, २१), २४ सार्थवाह (वही, जातक १, ३६८; जातक २, २९५), २५ डाकू (जातक ३, ३८८; ४, ४३०), २६ जंगल में नियुक्त रक्षक (जातक २, ३३५), २७ कर्ज देने वाले (गौ० ध० शा० २१ तथा रीसडेविस की बुद्धिस्ट इण्डिया पृष्ठ ९०)

श्रेणिक का नाम श्रेणी का अधिपति होने से ही 'श्रेणिक' पड़ा, यह बात अब बौद्ध-सूत्रों से भी प्रमाणित है। विनयपिटक के गिलगिट-मांस्क्रिप्ट में आता है :—

स पित्राष्टादशसु श्रेणीष्ववतारितः। अतोऽस्य श्रेण्यो बिम्बिसार इति ख्यातः।[1]

'डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स' में उसके श्रेणिक नाम पड़ने के दो कारण दिये हैं

महतीया सेनाय समन्नागोतत्त वा सेनिय गोत्त ता वा[2]

(१) या तो महती सेना होने से उसका नाम सेनिय पड़ा (२) या सेनिय गोत्र का होने से वह श्रेणिक कहलाता था।

जैन ग्रंथों में उसका दूसरा नाम भंभासार मिलता है। इसका कारण स्पष्ट करते हुए त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में कहा गया है कि श्रेणिक जब छोटा था तो एक बार राजमहल में आग लगी। श्रेणिक उस समय भंभा लेकर भागा। तब से उसे भंभासार कहा जाने लगा।[3]

भंभा बाजे के ही कारण उसका नाम भंभासार पड़ा, इसका उल्लेख

१—इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, वाल्यूम १४, अंक २, जून १९३८, पृष्ठ ४१५

२—डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृष्ठ २८९ तथा १२८४

३—त्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक १०९-११२ पत्र ७४।२ से ७५।१ तक

चतुर्विंशत्यंगुलवदनद्वयाभेरीति कश्चित्। अन्तस्तन्त्रीका ढक्का भेरीति स्वामी ॥[1]

उसका नाम भंभा के ही कारण भंभासार पड़ा, इसका उल्लेख स्थानांग की टीका में भी है :—

'भंभा' त्ति ढक्का सा सारो यस्य स भंभासारः[2]

और, उपदेशमाला सटीक में भी ऐसा ही आता है

सेणिय कुमरेण पुणो जयढक्का कड्ढिया पविसिऊणं।
पिऊण तुट्ठेणतओ, मणिओ सो भंभासारो ॥[3]

ऐसा उल्लेख आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध पत्र १५८-२ में भी है।

दलसुख मालवणिया ने स्थानांग-समवायांग के गुजराती-अनुवाद में बिम्बिसार[4] लिखा है। पर, श्रेणिक का यह नाम किसी जैन-ग्रन्थ में नहीं मिलता। अपनी उसी टिप्पणी में उन्होंने 'भिंभिसार'[5] नाम दिया है। पाइअसद्दमहण्णवो में 'भंभसार',[6] 'भिंभिसार'[7] और 'भिंभसार'[8] तीन शब्द आये हैं। पर ये सब अशुद्ध हैं। हमने ऊपर कितने ही प्रमाण दिये हैं, जिनसे स्पष्ट है कि 'भंभा' शब्द तो है, पर 'भिंभ', 'भिंभि', आदि

१—शब्दार्थचिंतामणि, भाग ३, पृष्ठ ४६६
२—स्थानांग सटीक उत्तरार्द्ध पत्र ४६१-१
३—उपदेशमाला पत्र ३३४-१
४—स्थानांग-समवायांग (गुजराती), पृष्ठ ७४०
५—वही
६—पाइअसद्दमहण्णवो पृष्ठ ७९४
७—वही, पृष्ठ ८०७
८—वही पृष्ठ ८०७

शब्द ही नहीं हैं। रतनचन्द्रजी ने 'अर्धमागधी कोष' में भंभसार[1] शब्द दिया है। वह भी अशुद्ध है।

बौद्ध-ग्रन्थों में श्रेणिक का दूसरा नाम बिंबिसार मिलता है। इसका कारण बताते हुए लिखा है कि सोने-सरीखा रंग होने से उसे बिंबिसार कहा जाता था।[2] तिब्बती-ग्रन्थों में आता है कि श्रेणिक की माँ का नाम 'बिम्बि' था। अतः उसे बिम्बिसार कहा जाने लगा।[3]

इन नामों के अतिरिक्त हिन्दू पुराणों में उसके कुछ अन्य नाम विधिसार[4], विंध्यसेन[5] तथा सुविंदु[6] भी मिलते हैं।

माता-पिता

जैन ग्रन्थों में श्रेणिक के पिता का नाम प्रसेनजित बतलाया गया है।[7] दिगम्बरों के उत्तरपुराण में आता है :—

१—अर्द्धमागधी कोष, वाल्यूम ४, पृष्ठ ४

२—बिम्बि ति सुवण्णाण सार सुवण्ण सदिस वण्णाताय

—पाली इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ ११०

३—महिष्यां बिम्बास्तनयः अतो अस्य बिम्बिसार इति नाम कार्यम्

—इंडियन हिस्टारिकल कार्टली, वाल्यूम १४, अंक २, पृष्ठ ४१३

४—श्रमद्भागवत, सानुवाद स्कंध १२, अध्याय १, पृष्ठ ९०३ (गोरखपुर)

५—भारतवर्ष का इतिहास—भगवद्दत्त-लिखित पृष्ठ २५२

६—वही

७—पुहईस पसेणइणो, तणुवभवो सेणिओ आसि

—उपदेश माला सटीक, पत्र ३३३

इसके अतिरिक्त यह उल्लेख आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध पत्र १५८, आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र ६७१-१, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक १, पत्र ७१-१, ऋषिमंडलप्रकरण पत्र १४३-१ भरतेश्वर बाहुबलि चरित्र, प्रथम विभाग, पत्र २१-१ आदि ग्रन्थों में भी आया है।

सूनुः कुणिकभूपस्य श्रीमत्यां त्वमभूरसौ ।
अथान्यदा पिता तेऽसौ मत्पुत्रेषु भवेत्पतिः ॥

—...और यहाँ राजा कुणिक की श्रीमती रानी से तू श्रेणिक नाम का पुत्र हुआ है।[1] दिगम्बर-पुराण का यह उल्लेख सर्वथा अशुद्ध और इतिहास-विरुद्ध है। कुणिक श्रेणिक का पुत्र था न कि, बाप !

पर, दिगम्बर-शास्त्र और ग्रंथों में भी मतिवैभिन्य है। हरिषेणाचार्य के वृहत्कथा-कोष में श्रेणिक के पिता का नाम उपश्रेणिक और उसकी माता का नाम प्रभा लिखा है।[2]

अन्य ग्रन्थों में श्रेणिक के पिता के विभिन्न नाम मिलते हैं—भट्टीयो (भट्टीय बोधिस), महापद्म, हेमजित, क्षेत्रौजा, क्षेत्प्रोजा।[3]

गिलिट मांस्क्रुप्ट में श्रेणिक के पिता का नाम महापद्म लिखा है।[4]

श्रेणिक के पिता का क्या नाम था, इस सम्बन्ध में अन्य धर्मग्रन्थों में तो मतभेद है, पर श्वेताम्बर ग्रन्थ सर्वथा एक मत से उसका नाम प्रसेनजित ही बताते हैं।

१—उत्तरपुराण, चतुःसततितमं पर्व, श्लोक ४१८, पृष्ठ ४७१।

२—तथास्ति मगधे देशे पुरं राजगृहं परम्।
तत्रोपश्रेणिको राजा तद्भार्या सुप्रभा प्रभा ॥१॥
तयोरन्योन्यसंप्रीतिसंलग्नमन सोरभूत्।
तनयः श्रेणिको नाम सम्यक्त्व कृतभूषणः ॥
—वृहत्कथाकोष, श्रेणिक कथानकम, पृष्ठ ७८.

३—पोलिटिकल हिस्ट्री आव ऐंशेंट इंडिया, (५-वाँ संस्करण) पृष्ठ २०५.

४—इंडियन हिस्टारिकल कार्टली, खंड १४, अंक २, पृष्ठ ४१३।

उनके सम्बन्ध में भरतेश्वर-बाहुबली-वृत्ति में आता है :—

तत्र तस्य राज्ञो राज्ञीनां शतमभूत। तासां मुख्या कलावती।[1]

—अर्थात् उस राजा को १०० रानियाँ थीं। जिनमें कलावती मुख्य थी। और, उपदेशमाला सटीक में श्रेणिक की माँ का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

सिरिवीर सामिणो अग्गभूमिभूयंमि रायगिह नयरे।
आसि पसेणइ राया, देवी से धारिणी नाम॥१॥
तग्गब्भसंभवो दब्भसुब्भसुब्भरजसोऽभिराम गुणो।
पुहईसपसेणइणो तणुब्भवो सेणिओ आसि॥२॥[2]

इस गाथा से पता चलता है कि श्रेणिक की माता का नाम धारिणी था।

और, प्रसेनजित के धर्म के संबंध में त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में आता है।

श्रीमत्पार्श्वजिनाधीश शासनांभोजषट्पदः
सम्यग्दर्शन पुण्यात्मा सोऽणुव्रतधरोऽभवत्॥[3]

—श्रीपार्श्वनाथ प्रभु के शासन-रूप कमल में भ्रमर के समान सम्यक्दर्शन से पुण्य हो वे अणुव्रतधारी थे।

राजधानी

जैन-ग्रन्थों में आता है कि मगध की प्राचीन राजधानी कुशाग्रपुर

१—भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, प्रथम विभाग, पृष्ठ २१-१।

२—उपदेश माला सटीक, पत्र ३३३।

३—त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ८, पत्र ७१-१

थी।[1] कुशाग्रपुर का उल्लेख मंजुश्रीमूलकल्प[2] (बौद्ध-ग्रन्थ) और ह्वैनसांग के यात्रा-ग्रंथ[3] में भी आया है।

जैन-ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि आग लगने से कुशाग्रपुर भस्म हो जाने के बाद उससे एक कोस की दूरी पर राजगृह बसी।[4] उसका नाम राजगृह क्यों पड़ा इसका कारण बताते हुए हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है कि पीछे लोग परस्पर पूछते कि कहाँ जा रहे हैं? तो उत्तर मिलता राजगृह (राजा के घर) जा रहा हूँ। इस प्रकार प्रसेनजित राजा ने वहाँ राजगृह-नामक नगर बसाया।[5] यह राजगृह बौद्ध-ग्रंथों में बुद्धकाल के ६ प्रमुख

१—तत्थ कुसग्गपुरं जातं, तंमि य काले पसेणइ राया
—आवश्यक चूर्णि, उत्तरार्ध, पत्र १५८

कुशाग्रीयमतिरभूत प्रसेनजिदिलापतिः
—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ६, पत्र ७१-१

इसी प्रकार का उल्लेख ऋषिमंडलप्रकरण पत्र १४३-१, आदि ग्रन्थों में भी है।

२—ऐन इम्पीरियल हिस्ट्री आव इंडिया, मंजुश्रीमूलकल्प, पृष्ठ १७

३—'आन युवान् च्वाङ् ट्रैवेल्स इन इंडिया' (वाटर्स कृत अनुवाद भाग २, पृष्ठ १६२

४—इति तत्याज नगरं तद्राजा सपरिच्छदः।
क्रोशेनैकेन च ततः शिविरं स न्यवेशयत ॥ ११५ ॥
—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, प० १०, स० ६, पत्र ७५-१

५—(अ) सञ्चरन्तस्तदा चैवं वदन्ति स्म मिथो जनाः।
क्नु यास्य थ यास्यामो वयं राजगृहं प्रति ॥ ११६ ॥
—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, पत्र ७५-१

(आ) कश्चित् पृच्छति यासिक? सोऽवग् राजगृहं प्रति।
आगतोऽसि कुतश्चान्यः? सोऽवग् राजगृहादिति ॥२६॥

नगरों में गिना जाता था ।[1] और, जैन-ग्रन्थों में इसकी गणना १० प्रमुख राजधानियों में की गयी है ।[2]

मगध की राजधानी के रूप में कई नगरों के बसाये जाने का उल्लेख जैन-ग्रंथों में मिलता है । विविधतीर्थ कल्प में जिनप्रभसूरि ने 'वैभारगिरि-कल्प' में उन सब नामों का उल्लेख किया है :—

क्षितिप्रतिष्ठ चणकपुर-र्षभपुराभिधम् ।
कुशाग्रपुर सज्ञं च क्रमाद्राजगृहाह्वयम् ॥[3]

ऋषिमंडलप्रकरण में अधिक विस्तृत रूप में इसका उल्लेख आया है :—

अतीतकाले भरतक्षेत्रे क्षत्रकुलोद्भवः ।
जितशत्रुरभूद् भूपः, पुरे क्षितिप्रतिष्ठिते ॥ १ ॥
कालात् तत्पुरवास्तूनां क्षयाद् वास्तु विशारदैः ।
पश्यद्भिश्चनकक्षेत्रं दृष्टं फलित-पुष्पितम् ॥ २ ॥
तत्राऽऽसीत् चनकपुरं कालाद् वास्तुक्षयात् पुनः ।
वास्तु विद्भिर्वने दृष्टो, वलिष्ठो वृषभोऽन्यदा ॥ ३ ॥

(पृष्ठ ६३६ की पादटिप्पणि का शेषांश)

ततो राजगृहाख्यं-तत्, पुरं कालान्तरेऽभवत् ।
....॥

—ऋषिमण्डल प्रकरण वृत्ति, पत्र १४३-२

(इ) कहिं वच्चह ? आह रायगिहं, कतो एह ? रायगिहातो, एवं नगरं रायगिहं जातं ।

—आवश्यक चूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १५८

१—डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृष्ठ ७३३

२—स्थानांग सूत्र सटीक ठाणा १०, उ०, सूत्र ७१८ पत्र ४७७-२

३—विविध तीर्थकल्प, पृष्ठ २२

स जीयते नृपैर्नान्यैः शूरः क्षेत्रवशात् ततः ।
तत्रर्षभपुरं न्यस्तमात्मानो वृद्धि मिच्छुभिः ॥ ४ ॥
क्रमात् तस्मिन्नपि क्षीणे कुशस्तम्बाङ्किताऽऽस्पदे ।
समस्त वस्तुविस्तीर्णं न्यस्तं कुशाग्रपत्तनम् ॥ ५ ॥[1]

श्रेणिक का परिवार

पत्नियाँ

बौद्ध-ग्रंथों में श्रेणिक को ५०० पत्नियाँ बतायी गयी हैं,[2] पर जैन-ग्रन्थों में उसकी २५ रानियों के उल्लेख मिलते हैं। अन्तगडदसाओ में उसकी निम्नलिखित रानियों के उल्लेख है :—

१ नंदा, २ नंदमई, ३ नंदुत्तरा, ४ नंदिसेणिय, ५ मरुय, ६ सुमरुय, ७ महामरुय, ८ मरुदेवा, ९ भद्दा, १० सुभद्दा, ११ सुजाया, १२ सुमणा, १३ भूयदिण्णा ।[3]

—अन्यत्र आता है ।

४—काली, सुकाली, महाकाली, कण्हा, सुकण्हा, महाकण्हा, वीरकण्हा, य वोधव्वा रामकण्हा तहेव य ।

पिउसेण कण्हा नवमो दसमी महासेण कण्हा य ।

—अंतगडदसाओ, म० च० मोदी सम्पादित,

१—ऋषिमण्डल प्रकरण वृत्ति, पत्र १४३-१

२—महावग्ग ८-१-१५

३—नंदा तह नंदवई नंदुत्तर नंदिसेणिया चेव ।
मरुय सुमरुय महमरुय मरुदेवा य अट्ठमा ॥
भद्दा य सुभद्दा य सुजाया सुमणा त्ति य
भूयदिण्णा य वोधव्वा सेणिय भज्जाणं नामाइं ॥
—अंतगडदसाओ, सत्तमवग्ग, म० च० मोदी-सम्पादित पृ० ५२

उसी ग्रन्थ में अन्यत्र उसकी १० अन्य रानियों की चर्चा है :—

—१४ काली, १५ सुकाली, १६ महाकाली, १७ कण्हा, १८ सुकण्हा, १९ महाकण्हा, २० वीरकण्हा, २१ रामकण्हा, २२ पिउसेणकण्हा, २३ महासेणकण्हा।

इनके अतिरिक्त श्रेणिक की एक पत्नी वैशाली के राजा चेडग की पुत्री चेल्लणा थी। इसका विवाह कैसे हुआ इसकी विस्तृत चर्चा आवश्यक चूर्णि उत्तरार्द्ध[1], त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[2], उपदेशमाला[3], आदि कितने ही जैन-ग्रन्थों में आती है। विवाह के प्रस्ताव पर चेडग ने श्रेणिक को अपने से नीच कुल का कहकर इनकार कर दिया था। इस पर अपने पुत्र अभय की सहायता से श्रेणिक ने चेल्लणा को चेटक के महल से निकलवा लिया। इसी चेल्लणा का पुत्र कूणिक[4] बाद में राजगृह की गद्दी पर बैठा।

निशीथचूर्णि में श्रेणिक की एक पत्नी का नाम अपतगंधा आया है।[5]

नंदा से श्रेणिक के विवाह का भी बड़ा विस्तृत वर्णन जैन-ग्रंथों में मिलता है। जब श्रेणिक भागकर वेन्नायड (वेण्णातट) चला गया था तो वहीं उसने नंदा से जो एक व्यापारी की पुत्री थी, विवाह कर लिया

१—आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध पत्र १६४-१६६।

२—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक १८६-२२६।

३—उपदेशमाला सटीक पत्र ३३८-३४०।

४—यह 'कूणिक' शब्द 'कूणि' से बना है। आप्टेज संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, भाग १, पृष्ठ ५८० में 'कूणिका' अर्थ 'ह्विटलो' दिया है। बचपन में कूणिक की उँगली में जख्म होने से लोग उसे कूणिक कहने लगे।

५—निशीथचूर्णि सभाष्य, भाग १, पृष्ठ १७।

था। वह गर्भवती थी तभी श्रेणिक राजगृह वापस लौट आया।[1] और, बाद में उसके पिता नंदा को राजगृह पहुँचा गये। इसी नंदा से अभय-कुमार का जन्म हुआ जो कालान्तर में श्रेणिक का प्रधानमंत्री बना।

वेणातट

यहाँ वेण्णातट का प्रसंग आया है तो उसकी भी पहचान कर लेनी चाहिए। खारवेल के हाथीगुम्फा-शिलालेख में 'कन्हवेंणा'[2] नाम आया है।

इसके अतिरिक्त मारकंडेय-पुराण में वेण्या शब्द आया है।[3] उस स्थल पर पादटिप्पणि में पार्जिटर ने विभिन्न पुराणों में आये इसके नामों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस नदी का नाम महाभारत वनपर्व, अध्याय ८५, श्लोक १८०-१, भीष्म पर्व अ० ९, ३३५, अनुशासन पर्व १६५, ७६४७, हरिवंश १६८, ९५०९-११ में आया है। पार्जिटर द्वारा दिये गये उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त इस नदी का उल्लेख भागवत पुराण (५, १९, १८), बृहत्संहिता (१४-४), योगिनीतंत्र (२-५ पृष्ठ १३९-१४०), रामायण किष्किंधाकाण्ड ४१-९, अग्निपुराण अध्याय ११८ आदि ग्रन्थों में आया है।

१—आवश्यकचूर्णि, पूर्व भाग, पत्र ५४६।

२—आर्क्यालाजिकल सिरीज आव इंडिया, न्यू इम्पीरियल सिरीज, वाल्यूम ५१, लिस्ट आव ऐंशेंट मानूमेंट्स'''इन द' प्राविंस आव बिहार ऐंड उड़ीसा, मौलवी मुहम्मद हमीद कुरैशी–लिखित, १९३१ ई०, पृष्ठ २६५।

प्राचीन भारतवर्ष समीक्षा, आचार्य विजयेन्द्रसूरि लिखित (अप्रकाशित) पृष्ठ २।

३—मारकण्डेय पुराण–एफ० ई० पार्जिटर-कृत अनुवाद, १९०४, पृष्ठ ३००।

संखपाल-जातक में वर्णित कण्ह पेण्णा नदी भी वस्तुतः वही है। और, इसी को खारवेल के शिलालेख में कण्हवेण्णा कहा गया है।[1] कृष्णा और वेण्णा दोनों नदियों के मिल जाने के बाद उसकी संयुक्त धारा के लिए कृष्णवेणी[2] तथा कण्णवण्णा, कण्णपेण्णा या कृष्णवेर्णा[3] नाम आया है। जैन-ग्रन्थों में जिस रूप में यह वेण्णा शब्द मिलता है, ठीक उसी रूप में वह भागवत-महापुराण में भी है।

इस नदी की पहचान पहले महाराष्ट्र के भंडारा जिले में मिलने वाली वेण्णा (वेण गंगा) से की जाती थी; पर अब विद्वत्-समाज इस बात पर एकमत है कि कण्ण वेण्णा वस्तुतः कृष्णा नदी ही है,[4] जो बम्बई प्रांत के सतारा जिले में महाबलेश्वर स्थान के उत्तर खड़ी पहाड़ी के नीचे एक मंदिर के कुण्ड के गोमुख से निकली है।[5] और दक्षिण भारत के पठार पर से बहती हुई, पूर्वी घाट पार करके बंगाल की खाड़ी में गिरी है।[6]

खारवेल के शिलालेख में कृष्णा-वेण्णा के तट पर मूसिक नगर स्थित होने का उल्लेख है। कृष्णा की एक सहायक नदी मूसी भी है; जिसके तट पर हैदराबाद बसा है। अतः कल्पना करनी चाहिए कि मूषिक नगर मूसी और कृष्णा के संगम के आस ही पास रहा होगा।

१—हिस्टारिकल ज्यागरैफी आय ऐंशेंट इंडिया, पृष्ठ १६८।

२—द ज्यागरैफिकल डिक्शनरी, नंदलाल द-सम्पादित पृष्ठ १०४।

३—भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग २, पृष्ठ ७१७।

४—वही, भाग २, पृष्ठ ७१६-७१७।

ज्यागरैफिकल डिक्शनरी, पृष्ठ १०४।

हिस्टारिकल ज्यागरैफी, पृष्ठ १६८।

इपिग्राफिका इंडिका, वाल्यूम २०, संख्या ७, पृष्ठ ८३।

५—भारत की नदियाँ, पृष्ठ १२४।

६—हिस्टारिकल ज्यागरैफी आव इंडिया, पृष्ठ १६८।

वेण्णा की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए जैन-ग्रन्थों में आता है :—

आभीर विसए कण्हाए वेण्णाए[1]

'वेण्णायड' वेण्णा के तट पर था, इसका अधिक स्पष्ट उल्लेख मूलदेव की कथा[2] से हो जाता है। उसमें आता है कि एक सार्थवाह फारस से जहाज में माल भर कर वहाँ आता है। इससे स्पष्ट है कि यह वेण्णातट जहाँ समुद्र में कृष्णानदी मिलती है, स्थित रहा होगा।[3] मंडित चोर के प्रकरण में भी इस नगर का उल्लेख है।[4]

इस नदी का नाम प्राकृत ग्रन्थों में कण्ह वेण्णा आया है। 'कण्ह' से संस्कृत रूप 'कृष्ण' तो ठीक हुआ; पर 'वेण्णा' शब्द को संस्कृत रूप देने में सभी ने भूल की है। भागवत में वह प्राकृत-सरीखा ही 'वेण्णा' लिख दिया है[5]; पर अन्य पुराणों के लिपिकारों ने 'ण्ण' की प्रकृति पर ध्यान दिये बिना ही एक 'ण' लिखकर उसे 'वेणा' बना दिया। पर, 'ण्ण' ही ठीक है, यह बात शिलालेख, जातक, जैनग्रन्थों और भागवत से सिद्ध है। प्राकृत शब्द 'वण्ण' का संस्कृत रूप 'वर्ण' होता है, 'कण्ण' का संस्कृत रूप 'कर्ण' होता है। अतः वेण्णा का संस्कृत रूप वेर्णा होगा वेण्णा नहीं।

इस कण्हा-वेण्णा का उल्लेख भाष्य-अवचूरी सहित पिंडनियुक्ति में आया है। 'कण्हा-वेण्णा' पर टीका करते हुए उसमें उल्लेख आया है:—

१—आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, पत्र ४१२-२

२—उत्तराध्ययन नेमिचंद्रसूरि की टीका पत्र ६४-२
हिन्दू टेल्स मेयर-लिखित पृष्ठ २१५-२१६

३—'षट्खंडागम' में पाठ आता है—
···अंध विसयवेण्णायणादो पेसिदा......
इससे भी हमारी कल्पना की पुष्टि हो जाती है।

४—उत्तराध्ययन नेमिचंद्र की टीका, पत्र ९५-१

५—हिस्टारिकल ज्यागरैफी आव ऐंशेंट इंडिया, पृष्ठ १६८

१—आवश्यकचूर्णि, प्रथम भाग, पत्र ५४७
२—आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, पत्र ४१८-१
३—उपदेशमाला सटीक, पत्र ३३५-३३६
४—ऋषिमंडल प्रकरण वृत्ति, पत्र १४४-१
५—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक १२०-१४३ पत्र ७५-१—७६-१

जैन-ग्रन्थों में जब स्पष्ट लिखा है कि, अभय कुमार की माता श्रेष्ठी-पुत्री थी और उसके पिता वेन्नातट के रहने वाले थे, तो फिर उसका सम्बंध उज्जयिनी अथवा वैशाली से जोड़ना वस्तुतः एक बहुत बड़ी भूल है। और, विमलचरण लाने तो बिना कुछ सोचे-समझे लिख दिया कि, जैन-ग्रंथों में अभयकुमार को आम्रपाली का पुत्र लिखा है।

पुत्र

जैन-ग्रन्थों में श्रेणिक के पुत्रों का भी बहुत विस्तृत उल्लेख है। 'अणुत्तरोवाइयसुत्त' में उसके निम्नलिखित १० पुत्रों के नाम आये हैं :—

१ जाली, २ मयाली, ३ उवयाली, ४ पुरिससेण, ५ वारिसेण, ६ दिहदंत, ७ लट्ठदंत, ८ वेहल्ल, ९ बेहायस, १० अभयकुमार।[1]

इनमें से प्रथम ७ धारिणी के पुत्र थे।[2] हल्ल और वेहायस चेल्लणा के थे[3] और अभयकुमार नंदा के।[4]

१—जालि मयालि उवयाली पुरिससेणे य वारिसेणे य।
दीहदंते य लट्ठदंते य वेहल्ले वेहायसे अभए इ य कुमारे ॥
—अंतगडाणुत्तरोववाइयदसाओ (म० चि० मोदी-सम्पादित) पृष्ठ ६६
२—नवरं छ धारिणी सुआ—अणुत्तरोववाइयसुत्त।
—अंतगडाणुत्तरोववाइयदसाओ (वही) पृष्ठ ६८.
३—हल्ल-वेहायस चेल्लणाए—उपर्युक्त ग्रंथ, पृष्ठ ६८.
४—अभयस्स नाणत्तं रायगिहे नयरे सेणिए राया नंदा देवी
—वही, पृष्ठ ६८.

उसी ग्रन्थ में श्रेणिक के अन्य १३ पुत्र गिनाये गये हैं :—

१ दीहसेण, २ महासेण, ३ लट्ठदंत, ४ गूढ़दंत, ५ सुद्धदंत, ६ हल्ल, ७ दुम, ८ दुमसेण, ९ महादुमसेण, १० सीह, ११ सीहसेण, १२ महासिहसेण, १३ पुण्णसेण।[1]

निरमावलिआ में श्रेणिक के १० अन्य पुत्रों के नाम दिये हैं :—

१—काली रानी से कालीकुमार।[2]

२—सुकाली रानी से सुकालकुमार।

३—महाकाली से महाकालकुमार।

४—कण्हा से कण्हकुमार।

५—सुकण्हा से सुकण्हकुमार।

६—महाकण्हा से महाकण्हकुमार।

७—वीरकण्हा से वीरकण्हकुमार।

८—रामकण्हा से रामकण्हकुमार।

९—सेणकण्हा से सेणकण्हकुमार।

१०—महासेणकण्हा से महासेणकण्हकुमार।[3]

१—दीहसेणे महासेणे लट्ठदंते य गूढ़दंते य सुद्धदंते य।
हल्ले दुमे दुमसेणे महादुमसेणे य आहिए।
सीहे य सीहसेणे य महासीहसेणे य आहिए।
पुण्ण सेणे य बोधव्वे तेरसमे होइ अज्झयणे।

—वही, पृष्ठ ६६

२—तीसेणं कालीए देवीए पुत्ते काले नाम कुमारे होत्था

—निरमावलिका (पी० एल० वैद्य-सम्पादित) पृष्ठ ५

३—सुकाली नामं देवी होत्था सुकुमाला। तीसे णं सुकालीए देवीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे होत्था''एवं सेसा हि अट्ठ हि अट्ठ अज्झयणा नेयव्वा पढमसरिसा, नवरं मायाओ सरिस नामाओ।

—निरयावलिया (वैद्य-सम्पादित), पृष्ठ ३०.

चेल्लणा से उसे एक पुत्र था कूणिक। जैन-ग्रन्थों में कूणिक का दूसरा नाम अशोकचंद्र[1] मिलता है।

इनके अतिरिक्त श्रेणिक के अन्य पुत्र नन्दिषेण का भी उल्लेख जैन-ग्रन्थों में है।[2]

श्रेणिक को धारिणी से एक पुत्री भी थी। उसका नाम सोमश्री था।[3]

आवश्यकचूर्णि में आता है कि श्रेणिक ने अपनी एक पुत्री का विवाह राजगृह के कृतपुण्यक सेठ से किया था। कृतपुण्यक ने उसके हाथी सेचनक का प्राण मगर से बचाया था।[4]

भरतेश्वर-बाहुबलि सज्झाय में उसकी एक लड़की का नाम मनोरमा दिया है।[5]

जैन-ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि श्रेणिक ने अपने प्रधानमंत्री

१—असोगवण चंद उत्ति असोगचंदुत्ति नामं च से कतं, तत्थ य कुक्कुडपिच्छेणं काणंगुली से विद्धा सुकुमालिया, सा ण पाउणति सा कुणिगा जाता, ताहे से दासा रूवेहिं कतं नामं कुणिओत्ति।—आवश्यक चूर्णि, उत्तर भाग, पत्र १६७

२—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ३२०, पत्र ८२-१

३—राज्ञा निजपुत्र्याः सोमश्री इति नाम कृतम्।

—कथा-कोष (जगदीशलाल शास्त्री-सम्पादित) पृष्ठ ६० कथाकोष—टानी-कृत अनुवाद पृष्ठ ८२

४—आवश्यकचूर्णि-भाग १, पत्र ४६८

५—प्रतिक्रमणसूत्र प्रबोध टीका, भाग २, पृष्ठ ५५८ तथा ५७३।

अभयकुमार के परामर्श पर अपनी एक कन्या का विवाह मेतार्यमुनि से किया था।[1]

श्रेणिक को एक बहन थी। उसका नाम सेणा था। एक विद्याधर से उसका विवाह श्रेणिक ने कर दिया था। विद्याधरों ने उसे मार डाला तो उसकी पुत्री श्रेणिक के यहाँ भेज दी गयी। जब वह कन्या युवती हुई तो श्रेणिक ने उसका विवाह अभयकुमार से कर दिया।[2]

श्रेणिक किस धर्म का अवलम्बी था ?

श्रेणिक किस धर्म का अवलम्बी था, इस सम्बन्ध में तरह-तरह के विवाद प्रायः होते रहते हैं। बौद्ध-ग्रन्थों में उसे बौद्ध बताया गया है।[3] दलसुख मालवणिया ने 'स्थानांग-समवामांग' के गुजराती-अनुवाद में लिख डाला—"मुझे लगता है कि पहले श्रेणिक भगवान् महावीर का भक्त रहा होगा। पीछे भगवान् बुद्ध का भक्त हो गया होगा। सम्भवतः इसी के फलस्वरूप जैन-कथा-ग्रन्थों में उसे नरक में जाने का उल्लेख मिलता है।"[4] पर, जैन-ग्रन्थों में उसका जिस रूप में उल्लेख मिलता है, उससे उसके जैन-श्रावक होने के सम्बन्ध में किंचित् मात्र शंका नहीं रह जाती। त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र में उसके पिता के सम्बन्ध में आता है।

१—उपदेश माला सटीक, पत्र २७५।
भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति, प्रथम भाग, पत्र ६०-२।
आवश्यक मलयगिरि-टीका, तृतीय भाग, पत्र ४७८-१।
आवश्यक हारिभद्रीय टीका, पत्र ३६८-२
आवश्यकचूर्णि पूर्वार्द्ध पत्र ४९४।
२—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६०।
३—डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृष्ठ २८५।
४—स्थानांग-समवायांग (गुजराती), पृष्ठ ७४१।

श्रीमत्पार्श्व जिनाधीशशासनांभोजषट्पदः ।
सम्यग्दर्शन पुण्यात्मा सोऽणुव्रतधरोऽभवत् ॥[1]

इससे स्पष्ट है कि श्रेणिक का वंश ही जैन-श्रावक था।

जैन-साहित्य में उसके उल्लेख की चर्चा से पूर्व बौद्ध-साहित्य में आये उसके प्रसंग का भी उल्लेख कर दूँ। महावग्ग में आता है कि सम्यक् सम्बुद्ध होने के बाद बुद्ध राजगृह आये तो बुद्ध के उपदेश से प्रभावित होने के बाद श्रेणिक उनसे बोला—

"एसाहं भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि, धम्मं च, भिक्खु संघं च। उपासकं मं भंते भगवा धारेतु·····पे० स्वातनाय भत्तंसिद्धिं भिक्खुसंघेना ति।

—महावग्ग, पृष्ठ ३७।

—इसलिए मैं भगवान् की शरण लेता हूँ—धर्म और भिक्षु-संघ की भी। आज से भगवान् मुझे हाथ जोड़ शरण में आया उपासक जानें। भिक्षु-संघ सहित कल के लिए मेरा निमंत्रण स्वीकार करें।

—विनयपिटक (हिन्दी), पृष्ठ ९७।

इस प्रसंग से अधिक-से-अधिक इतना माना जा सकता है कि बीच में वह बौद्ध-धर्म की ओर आकृष्ट हुआ था। पर, वह प्रभाव बहुत दिनों तक उस पर नहीं रहा, यह बात जैन-प्रसंगों से पूर्णतः प्रमाणित है।

उत्तराध्ययन में मंडिकुच्छि-चैत्य में अनाथी ऋषि से श्रेणिक के भेंट होने का उल्लेख आया है। जैन ग्रन्थों में जिसे 'मंडिकुच्छि' कहा गया है, उसका उल्लेख बौद्ध-ग्रंथों में मद्दकुच्छि[2] नाम से किया गया है। मंडिकुक्षि पर टीका करते हुए उत्तराध्ययन से टीकाकार ने लिखा है—

१—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ८ पत्र ७१-१।

२—राजगहे विहरामि मद्दकुच्छिस्मिं मिगदाये

—दीघनिकाय, भाग २, पृष्ठ ९१

राजगृहे नगराद् बहिः क्रीडार्थं मण्डित कुक्षि वने

—राजेन्द्राभिधान, भाग ६, पृष्ठ २३।

जैन और बौद्ध दोनों सूत्रों से स्पष्ट है कि, यह वन[1] राजगृह से कुछ दूरी पर था।

'मंडि' का संस्कृत रूप मंडित होता है। मंडित का अर्थ हुआ—'सजाया हुआ—भूषित (बृहत् हिन्दी कोष, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ९९१) और कुक्षि का अर्थ हुआ किसी वस्तु का आन्तरिक भाग (इण्टीरियर आव एनी थिंग आप्टेज संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी, भाग १, पृष्ठ ५७७) अतः मंडिकुक्षि का अर्थ हुआ कि जिसके अंदर का भाग रमणीक हो।

इस मंडिकुक्षि में श्रेणिक विहार-यात्रा के लिए गया था। इस 'विहार-यात्रा' की टीका नेमिचन्द्रजी ने इस प्रकार की है :—

'विहार यात्रा' क्रीडार्थश्व वाहनिकादि रूपया"[2]

जार्ल कार्पेंटियर ने स्वसम्पादित उत्तराध्ययन में 'विहार-यात्रा' का अर्थ 'प्लेजर एक्सकरशन' अथवा 'हंटिंग एक्सपिडिशन'[3] दिया है। पर, उत्तराध्ययन की किसी भी टीका में 'विहार-यात्रा' का अर्थ 'शिकार-यात्रा' नहीं दिया है। और, किसी कोष में भी उसका यह अर्थ नहीं मिलता। हम यहाँ इसके कुछ प्रमाण दे रहे हैं :—

१—विहार यात्रा—ए प्लेजर वाक (महाभारत)[4]

१—'वण' त्ति वनानि नगर विप्रकृष्टानि

—भगवतीसूत्र सटीक भाग १, श० ५, उ० ७, पत्र ४३०

२—उत्तराध्ययन सटीक पत्र २६८-१।

३—उत्तराध्ययन (अंग्रेजी-खंड) पृष्ठ ३५।

४—मोन्योर-मोन्योर, विलियम्स संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी पृष्ठ १००३।

२—विहार यात्रा—ए प्लेजर वाक[1]

यदि प्रोफेसर महोदय ने 'विहार' शब्द पर भी ध्यान दिया होता तो उन्हें यह शंका न हो पाती। शब्दार्थ-चिन्तामणि, भाग ४, पृष्ठ ४०३ में 'विहार' का अर्थ दिया है—

क्रीडार्थं पद्भ्यांसञ्चरणे। परिक्रमे। भ्रमणे।[2]

इनमें प्रोफेसर महोदय ने शिकार कैसे जोड़ लिया यह नहीं कहा जा सकता। कार्पेंटियर ने 'हंटिंग' के बाद कोष्ठ में कौटिल्य-अर्थशास्त्र का नाम लिखा है। कौटिल्य-अर्थशास्त्र में १३-वें अधिकार के २ अध्याय में यात्रा विहार शब्द आया है। वहाँ उल्लेख है :—

यात्रा विहारे रमते यत्राक्रीडति वाऽम्भसि[3]

और, जहाँ शिकार का प्रसंग है, वहाँ कौटिल्य अर्थशास्त्र में 'मृगया'[4] शब्द लिखा है। यदि कार्पेंटियर ने 'चैत्य' शब्द पर ध्यान दिया होता तो शिकार-यात्रा की कल्पना ही न उठती।

डाक्टर याकोबी ने उसका ठीक अर्थ 'प्लेजर एक्सकरशन'[5] किया है।

इस यात्रा में श्रेणिक ने एक वृक्ष के नीचे एक संयमशील साधु को देखा। और उनके निकट जाकर

तस्स पाए उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं।
नाइदूरमणासन्ने पंजली पडिपुच्छई॥[6]

१—आप्टेज संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी, भाग ३, पृष्ठ १४८५।

२—शब्दार्थ चिंतामणि-भाग ४, पृष्ठ ४०३।

३—कौटिल्य अर्थशास्त्र, शामाशास्त्री-सम्पादित, पृष्ठ ३९९।

४—वही, पृष्ठ ३२९।

५—सेक्रेड बुक्स आव द' ईस्ट, वाल्यूम ४५, पृष्ठ १००।

६—उत्तराध्ययन, नेमिचन्द्र की टीका, अध्ययन २०, गाथा ७, पत्र २६८-१।

—राजा उनके चरणों की वंदना करके, उनकी प्रदक्षिणा करके न अति दूर और न अति निकट रहकर हाथ जोड़कर पूछने लगा।

इस वर्णन से ही स्पष्ट है कि श्रेणिक जैन-परम्परा से परिचित था।

अनाथी ऋषि से उसकी जो वार्ता हुई, उसका विषद वर्णन उत्तराध्ययन[1] में है। और, उस वार्ता के पश्चात् तो

एवं थुणित्ताण स रायसीहो,
अणागार सीहं परमाए भत्तिए।
सओरोहो य सपरियणो य,
धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा॥[2]

—इस प्रकार राजाओं में सिंह के समान श्रेणिक राजा अणगार सिंह मुनि की स्तुति करके परम भक्ति से अपने अंतःपुर के साथ परिजनों और भाइयों के साथ निर्मल चित्त से धर्म में अनुरक्त हो गया।

मंडिकुक्षि में श्रेणिक के धर्मानुरक्त होने का उल्लेख डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी ने भी किया है,[3] पर उन्होंने लिखा है कि, वहाँ श्रेणिक की भेंट अणगार सिंह महावीर स्वामी से हुई थी। उत्तराध्ययन में उस ऋषि ने स्वयं अपना परिचय दिया है :—

१—उत्तराध्ययन, नेमिचन्द्र की टीका, अध्ययन २०, पत्र २६७-२—२७३-१

२—वही, अध्ययन २०, गाथा ५८ पत्र २७३-१

३—(अ) हिन्दू सिविलाइजेशन, पृष्ठ १८७

(आ) भारतीय विद्याभवन द्वारा प्रकाशित हिस्ट्री ऐंड कलर आव द' पीपुल', खंड २ (द' एज आव इम्पीरियल यूनिटी) में 'द' राइज आव मगधन इम्पीरियलिज्म' पृष्ठ २१

कोसंबी नाम नयरी, पुराण पुरभेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्झं पभूयधणसंचओ॥[1]

—कौशाम्बी-नामा अति प्राचीन नगरी में प्रभूतसंचय नाम वाले मेरे पिता निवास करते थे।

डाक्टर मुखर्जी ने इस कथन की ओर किंचित् मात्र ध्यान नहीं दिया अन्यथा उनसे यह भूल न हुई होती।

अनाथी मुनि के अतिरिक्त श्रेणिक पर चेल्लणा का भी प्रभाव कुछ कम नहीं पड़ा। वह यावज्जीवन श्रेणिक को जैन-धर्म की ओर आकृष्ट करती रही।

इसके अतिरिक्त महावीर स्वामी से जीवन-पर्यंत श्रेणिक का जैसा सम्बंध था और जिस रूप में वह महावीर स्वामी के पास जाता था उससे भी स्पष्ट है कि उसका धर्म क्या है। महावीर स्वामी के सम्पर्क में पहली बार आते ही वह अव्रत्ति सम्यक् दृष्टि श्रावक बन गया।[2]

श्रेणिक के बहुत से निम्नलिखित पुत्र जैन-साधु हो गये थे :—

१ जाली, २ मयाली, ३ उववाली, ४ पुरिससेण, ५ वारिसेण, ६ दीहदंत, ७ लट्ठदंत, ८ वेहल्ल, ९ वेहायस, १० अभयकुमार,[3] ११ दीहसेण, १२ महासेण, १३ गूढ़दंत, १४ सुद्धदंत, १५ हल्ल, १६ दुम, १७ दुमसेण

१—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका, अध्ययन २०, गाथा १८, पत्र २६८-२

२—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ३७६ पत्र ८४।२

३—अणुत्तरोववाइयदसाओ, पढम वग्ग (मोदी-सम्पादित) पृष्ठ ६५-६९

१८ महादुमसेण, १९ सीह, २० सीहसेण, २१ महासीहसेण, २२ पुण्णसेण,[1] २५ मेह[2]

इनमें से अधिकांश श्रेणिक के जीवन-काल में ही उसकी अनुमति लेकर साधु हुए। इन पुत्रों के अतिरिक्त उसकी कितनी ही रानियाँ भी साध्वी हुई थीं। इससे भी स्पष्ट है कि वह किस धर्म का मानने वाला था।

जिनेश्वरसूरि-कृत कथाकोष में उसके सम्बंध में आया है

'जिण सासणाणुरत्तो अहेसि'[3]

आवश्यकचूर्णि पूर्वार्द्ध पत्र ४९५ में आता है कि, श्रेणिक सोने के १०८ यव से नित्यप्रति चैत्य की अर्चना करता था।[4]

श्रेणिक का अंत

साधारणतः इतिहासकार यही मानते हैं कि कूणिक ने श्रेणिक को मार डाला और स्वयं गद्दी पर बैठ गया। पर, जैन-ग्रन्थों में इससे भिन्न कथा है।

जब तक अभयकुमार साधु नहीं हुआ था और प्रधानमंत्री था, तब तक कूणिक की एक नहीं चली। अभयकुमार के साधु होने के बाद कूणिक को खुलकर अपना खेल खेलने का अवसर मिला। उसने काली आदि अपने दस भाइयों को यह कहकर मिला लिया कि, यदि मुझे राज्य करने का अवसर मिले तो मैं इस राज्य का उचित अंश तुम सभी को बाँट दूँगा।

१—वही, द्वितीय वग्ग, पृष्ठ ६९-७०

२—नायाधम्मकहा अध्ययन १

३—कथाकोश प्रकरण, पृष्ठ १०४ (सिंघी जैन ग्रंथमाला)

४—सेणियस्स अट्ठसतं सोवण्णियाण जवाण करेति चेतियअच्चणितानिमित्तं

दसों भाई राज्य के लोभ में आ गये। कूणिक ने श्रेणिक को बंदी बना कर पिंजरे में डाल दिया और स्वयं अपना राज्याभिषेक करके गद्दी पर बैठ गया।

कूणिक ने अपने पिता को भोजनादि का नाना प्रकार से कष्ट दिया; पर चेल्लणा सदा अपने पति की सेवा में लीन रही और छिपा कर श्रेणिक को भोजनादि पहुँचाती रही।

एक दिन अपने पुत्र-स्नेह का ध्यान करके कूणिक ने अपनी माँ से पूछा—"क्या और कोई अपने पुत्र को इतना स्नेह करता है?" इस पर माता ने कहा—"पुत्र, तुम्हारे पिता क्या तुम्हें कुछ कम स्नेह करते थे? बचपन में तुम्हारी उँगली में व्रण था। उससे तुम्हें पीड़ा होती थी। तुम्हारी पीड़ा नष्ट करने के लिए, तुम्हारे पिता तुम्हारी व्रण वाली उँगली मुख में रखकर चूसते थे। इससे तुम्हें सुख होता था।"

माता द्वारा स्वपितृस्नेह की कथा सुनकर, कूणिक को अपने किये का पश्चाताप होने लगा और कुराँट लेकर अपने पिता का पिंजरा तोड़ने चला।

श्रेणिक ने कूणिक को कुराँट लेकर आता देखकर समझा कि इस दुष्ट ने अब तक मुझे नाना कष्ट दिये। अब न जाने क्या कष्ट देने आ रहा है। इस विचार से श्रेणिक ने तालपुट[1] विष खाकर आत्महत्या कर ली।[2]

जब कूणिक पिता के पास पहुँचा तो उसे पिता का निर्जीव शरीर मिला। इस पर कूणिक बहुत दुःखी हुआ। पिता के निधन पर कूणिक

१—तालमात्र व्यापत्ति करे उपविषे

राजेन्द्राभिधान, भाग ४, पृष्ठ २२२९

तालपुट विषं सद्योघातित्वेन

—उत्तराध्ययन, अ० १६, गा० १६, नेमिचन्द्र की टीका पत्र २२४-१

२—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १७२

को दुखी होने का उल्लेख एक बौद्ध-ग्रन्थ मंजुश्रीमूलकल्प में भी मिलता है।[1]

यदि कूणिक ने स्वयं हत्या की होती तो उसे इस प्रकार विलाप करने का कोई कारण नहीं था। इसी आत्मग्लानि के कारण कूणिक ने अपनी राजधानी राजगृह से बदल कर चम्पा कर ली थी।[2]

श्रेणिक की मृत्यु की कथा बड़े विस्तार से निरयावलिकासूत्र में आती है।

यह श्रेणिक मर कर नरक गया और अगली चौवीसी में प्रथम तीर्थंकर होगा। इस सम्बंधी स्वयं भगवान् महावीर ने सूचना दी थी (देखिए, पृष्ठ ५१-५२)। नरक जाने का कारण स्पष्ट करते हुए देवविजय गणि-रचित पाण्डवचरित्र (पृष्ठ १४७) में पाठ आता है—

मांसात् श्रेणिकभूपतिश्च नरके चौर्याद् विनष्टा न के ?

तद्रूप ही उल्लेख सूक्तमुक्तावलि में भी है। हम उसका पाठ पृष्ठ १५४ पर दे चुके हैं। श्रेणिक का भावी तीर्थङ्कर जीवन विस्तार से ठाणांगसूत्र सटीक ठा० ९, उ० ३ सूत्र ६९३ पत्र ४५८-२—४६८-१ में आया है।

साल

पृष्ठ चम्पा[3]-नामक नगर में साल-नामक राजा राज्य करता था। उसका भाई महासाल था। वही युवराज पद पर था। इनके पिता का

१—ऐन इम्पीरियल हिस्ट्री आव इंडिया-जयसवाल-सम्पादित, मंजुश्री मूलकल्प—(भूमिका पृष्ठ ९), श्लोक १४०-१४५ पृष्ठ ११

२—आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १७२

३—यह पृष्ठचम्पा भी चम्पा के निकट ही थी।

नाम प्रसन्नचन्द्र था।[१] उन दोनों भाइयों को यशोमति-नामक बहन थी। उसके पति का नाम पिठर था। यशोमति को एक पुत्र था, उसका नाम गागलि था।

एक बार महावीर स्वामी विहार करते हुए पृष्ठ चम्पा आये। उनके आने का समाचार सुनकर साल और महासाल सपरिवार भगवान् की वंदना करने गये।

भगवान् ने अपनी धर्मदेशना में कहा:—

"हे भव्य प्राणियों! इस संसार में मनुष्य-भव के बिना धर्म-साधन की सामग्री मिलना अत्यन्त कठिन है। मिथ्यात्व अविरति आदि धर्म का प्रबंधक है।

महा आरंभ नरक का कारण है। यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि अनेक दुःखों से भरा है। क्रोधादिक कषाय संसार-भ्रमण के हेतु-रूप हैं। उन कषायों के त्याग से मोक्ष-प्राप्ति होती है।"

धर्मदेशना सुनकर दोनों भाई अपने-अपने स्थान पर वापस चले गये।

घर आने के पश्चात् साल ने अपने भाई महासाल से कहा—"हे भाई! भगवान् की देशना सुनकर मुझे वैराग्य हो गया है। मैं दीक्षा ग्रहण करने जा रहा हूँ। यह राज्य अब तुम सँभालो।"

इसे सुनकर महासाल बोला—"भाई! दुर्गति का कारण-रूप यह राज्य आप मुझे क्यों सौंप रहे हैं? मुझे भी वैराग्य हो गया है। मैं भी आपके साथ दीक्षा ग्रहण करूँगा। मुझे अपने साथ रखकर दुर्गति से मेरा उद्धार करें।"

अतः उन दोनों ने अपने भांजे गागलि को राज्य सौंप कर उत्सव पूर्वक दीक्षा ग्रहण कर ली और भगवान् के साथ विचरते हुए उन दोनों

२—उपदेशपद सटीक गा० ७, पत्र ११६—१।

नाट्य विधिं चोपदर्शयामास, यत्र च प्रदेशिराज चरितं भगवता प्रत्यपादीति…'[1]

इस राजा का उल्लेख रायपसेणी सुत्त में बड़े विस्तार से आता है।

एक समय भगवान् श्रमण महावीर आमलकप्पा नगरी में आये। उस समय आमलकप्पा नगरी में स्थान-स्थान पर श्रृंगाटक (सिंघाडग), त्रिक (तिय), चतुष्क (चउक्क), चत्वर (चच्चर), चतुर्मुख (चउम्मुह), महापथ (महापह) पर बहुत-से लोग, यह कहते सुने गये कि, हे देवानुप्रियो ! आकाशगत छत्र इत्यादि के साथ संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए, भगवान् महावीर यहाँ आये हैं। भगवंत का नाम-गोत्र भी कान में पड़ने से महा फल होता है। उनके पास जाने से, उनकी वंदना करने से, उनके पास जाकर शंकाएं मिटाने से, पर्युपासना-सेवा का अवसर मिले तो बड़ा फल मिलता है।

भगवान् महावीर के आने का समाचार सुनकर उग्र, उग्रपुत्र, भोग, भोगपुत्र, राजन्य, राजन्यपुत्र, क्षत्रिय, क्षत्रियपुत्र, भट, भटपुत्र, योद्धा, योद्धापुत्र, प्रशास्ता, लिच्छिवि, लिच्छिविपुत्र, और अन्य बहुत से मांडलिक राजा, युवराज, राजमान्य अन्य बहुत से अधिकारी जहाँ भगवान् थे वहाँ जाने के लिए निकल पड़े।

१—स्थानांग सूत्र सटीक, स्थान ८, सूत्र ६२१ पत्र ४३१-१। रायपसेणी में आता है।

[तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए] सेओ राया [….] धारिणी [नामं] देवी…'

पत्र २३—२७।

इसी अवसर पर आमलकप्पा के राजा सेय अपनी रानी धारिणी के साथ वंदना करने गया।[1]

राजा सेय और देवी धारिणी भगवान् की देशना सुनकर अति आनंदित हुई। उन लोगों ने भगवान् की वंदना करके और नमन करके कितने ही शंकाओं का समाधान किया और भगवान् के यश का गुणगान करते हुए लौटे।[2]

संजय

काम्पिल्यपुर नगर में संजय-नामका एक राजा रहता था। एक दिन वह सेना और वाहन आदि से सज्ज होकर शिकार के लिए निकला और घोड़े पर आरूढ़ राजा केसर-नामक उद्यान में जाकर डरे हुए और श्रांत मृगों को व्यथित करने लगा।

उस केसर-उद्यान में स्वाध्याय ध्यान से युक्त एक अनागार परम तपस्वी द्राक्षा और नागवल्ली आदि लताओं के मंडप के नीचे धर्मध्यान कर रहा था। उस मुनि के समीप आये मृगों को भी राजा ने मारा।

१—तए णं से सेए राया नयणमाला सहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे जाव सा णं धारिणी देवी जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छिता जाव समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति वंदति णमंसंति सेअरायं पुरओ कट्टु जाव विणएणं पञ्जलिकडाओ पज्जुवासंति

—रायसेणी, बेचरदास-सम्पादित, सूत्र १०, पत्र ४२

२—तएणं से सेय राया सा धारिणी देवी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया उट्ठाए उट्ठेंति उट्ठिता सुअक्खाए णं भन्ते। निग्गन्थे पावयणे एवं जामेव दिसिं पाउब्भूयाओ तामेव दिसिं पडिगयाओ।

—रायपसेणी बेचरदास-सम्पादित, सूत्र ११, पत्र ४३

घोड़े पर आरूढ़ राजा वहाँ भी आया और उसने जब मरे हुए मृगों के निकट हो उस अनागार को देखा तो मुनि को देख कर वह भयग्रस्त हो गया। राजा अविलम्ब घोड़े से उतरा और मुनि के निकट जाकर उनकी वंदना करता हुआ क्षमायाचना करने लगा।

उस अनागार ने राजा को कुछ भी उत्तर नहीं दिया। मुनि के उत्तर न देने से राजा और भी भयग्रस्त हुआ और उसने अपना परिचय बताते हुए कहा—"हे भगवन्! मैं संजय-नामका राजा हूँ। आप मुझे उत्तर दें; क्योंकि कुपित हुआ अनागार अपने तेज से करोड़ों मनुष्यों को भस्म कर देता है।"

राजा के इन वचनों को सुनकर उस मुनि ने कहा—"हे पार्थिव! तुझे अभय है। तू भी अभय देने वाला हो। अनित्य जीवलोक में तू हिंसा में क्यों आसक्त हो रहा है?

"हे राजन्! यह जीवन और रूप जिसमें तू मूर्छित हो रहा है विद्युत्सम्पात के समान अति चंचल है! परलोक का तुझको बोध भी नहीं है।

"स्त्री-पुत्र-मित्र और बांधव सब जीते के साथी हैं और मरे हुए के साथ नहीं जाते।

"हे पुत्र! परम दुखी होकर मरे हुए पिता को लोग घर से निकाल देते हैं। इसी प्रकार मरे हुए पुत्र को पिता तथा भाई को भाई घर से निकाल देता है।

"फिर हे राजन उस व्यक्ति द्वारा उपार्जित वस्तुओं का दूसरे ही लोग उपभोग करते हैं।

"मनुष्य तो शुभ अथवा अशुभ अपने कर्मों से ही संयुक्त परलोक में जाता है।"

उस अनागार मुनि के धर्म को सुनकर वह राजा उस अनागार के

पास महान् संवेग और निर्वेद को प्राप्त हो गया। और, राज्य को छोड़-कर गर्दभालि-अनागार के पास जाकर जिन-शासन में दीक्षित हो गया।

इस प्रकार दीक्षित हो जाने के बाद संजय को एक दिन एक क्षत्रिय-साधु मिला और उसने संजय से कहा—"जिस प्रकार तुम्हारा रूप बाहर से प्रसन्न दिखता है, उसी प्रकार तुम्हारा मन भी प्रसन्न प्रतीत होता है। तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारा गोत्र क्या है? किसलिए माहण (साधु) हुए हो? किस प्रकार तुम बुद्धों की परिचर्या करते हो? तुम किस प्रकार विनयवान कहे जाते हो?"

इन प्रश्नों को सुनकर उसने कहा—"मेरा नाम संजय है और मैं गौतम गोत्र का हूँ। गर्दभालि मेरे आचार्य हैं। वे विद्या और चरित्र के पारगामी हैं।"

संजय के इस उत्तर को सुन कर उस क्षत्रिय-साधु ने क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद के सम्बन्ध में संजय को उपदेश किया और बताया कि विद्या और चरित्र से युक्त, सत्यवादी, सत्य पराक्रमवाले बुद्ध ज्ञातृपुत्र श्री महावीर स्वामी ने किस प्रकार इन तत्त्वों को प्रकट किया है।

इस प्रकार उपदेश देते हुए उस क्षत्रिय ने अपनी पूर्वभव की कथा बतायी और चक्रवर्तियों[1] की कथाएँ बतायीं। दशार्णभद्र, नमि, करकंडू, द्विमुख, नग्गति (चार प्रत्येक बुद्ध) के प्रसंग कहे कि किस प्रकार संयम को पालकर वे मोक्ष गये।

उस मुनि ने संजय को सिंधु-सौवीर के राजा उद्रायन का भी चरित्र सुनाया।

१—टीका में यहाँ भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती, मघवा चक्रवर्ती, सनत्कुमार चक्रवर्ती, शांतिनाथ चक्रवर्ती, कुंथुनाथ चक्रवर्ती, अर चक्रवर्ती, महापद्म चक्रवर्ती, हरिषेण चक्रवर्ती, जय चक्रवर्ती, की विस्तार से कथा आती है।

और, काशिराज (नंदन बलदेव), विजय, महाबल आदि के तथा कुछ अन्य चरित्र भी संजय को बताये।[1]

काम्पिल्य

इस काम्पिल्य का उल्लेख जैन-ग्रन्थों में दस राजधानियों में किया गया है।

जम्बूदीवे भरहवासे दस रायहाणिओ पं० तं०—चंपा १, महुरा २, वाणारसी ३, य सावत्थी ४. तहत सातेतं ५, हत्थिणाउर ६ कंपिल्लं ७, मिहिला ८, कोसंबि ९, रायगिहं

—ठाणांगसूत्र, ठाणा १०, उद्देशः ३, सूत्र ७१९, पत्र ४७७-२

यह आर्य-क्षेत्र में था और पांचाल की राजधानी थी। विविधतीर्थकल्प में जिनप्रभ सूरि ने काम्पिल्य के सम्बन्ध में कहा है :—

अत्थि इहेव जंबुद्दीवे दक्खिण भारह खंडे पुव्वदिसाए पंचाला नाम जणवओ। तत्थ गंगानाम महानई तरंगभंगिपक्खालिज्जमाण पायारभित्तिअं कंपिल्लपुरं नाम नयरं...

(पृष्ठ ५०)

इसी कंपिलपुर का राजा संजय था। इसका भी उल्लेख विविधतीर्थकल्प में है :—

इत्थ संजयो नाम राया हुत्था। सो अ पारद्धीए गओ केसरुज्जाणे मिए हए पासंति तत्थ गद्दभालिं अणगारं पासित्ता संविग्गो पव्वइत्ता सुगइं पत्तो।

इस नगर का नाम संस्कृत ग्रंथों में काम्पिल और बौद्ध-ग्रंथों में कम्पिल्ल मिलता है। रामायण आदिकांड सर्ग ३३ श्लोक १०, पृष्ठ ३७ में इस नगर को इन्द्र के वासस्थान के समान सुन्दर बताया गया है। महाभारत

१—उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र की टीका सहित, अध्ययन १८, पत्र २२८-१—२५१-२

(आ०, १४८ । ७८) में इसे दक्षिण पांचाल की राजधानी कहा गया है और द्रुपद को यहाँ का राजा बताया गया है। यहीं द्रौपदी का स्वयंवर हुआ था। विविधतीर्थकल्प में भी इसका उल्लेख है। जातक में उत्तर पंचाल में इसकी स्थिति लिखी है। पाणिनी में भी इस नगर का उल्लेख आता है (पाणिनी कालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ८७, संकाशादिगण ४।२।८०) इसी नगर में १३ वें तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म हुआ था। इसलिए यह जैनों का एक तीर्थ है। प्रत्येक बुद्ध दुम्मुह भी यहीं का राजा था (विविध तीर्थ कल्प, पृष्ठ ५०)।

नंदलाल दे ने लिखा है कि उत्तरप्रदेश के फरुखाबाद जिले में स्थित फतहगढ़ से यह स्थान २८ मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। कायमगंज रेलवे स्टेशन से यह केवल ५ मील की दूरी पर स्थित है (नंदलाल दे-लिखित ज्यागरैफिकल डिक्शनरी, पृष्ठ ८८, कनिंघम्स ऐंशेंट ज्यागरैफी, द्वितीय संस्करण पृष्ठ ७०४)

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भी इसी काम्पिल्य का था।

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि विख्यात ज्योतिषाचार्य वाराह मिहिर का जन्म इसी नगर में हुआ था। (विमलचरण ला.वाल्यूम, भाग २, पृष्ठ २४०)

हस्तिपाल

देखिए पृष्ठ २९४–३०१

※०※

सूक्ति-माला

सोच्चा जाणइ कल्लाणं सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं छेयं तं समायरे॥५॥

—दशवैकालिकसूत्र, अ० ७, गा० ८

—सुनकर ही कल्याण का मार्ग जाना जाता है। सुनकर ही पाप का मार्ग जाना जाता है। दोनों ही मार्ग सुनकर जाने जाते हैं। बुद्धिमान् साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे और फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे।

सूक्ति-माला

(१)

जैन-आगमों में स्थल-स्थल पर 'यावत्' करके समवसरण में भगवान् द्वारा धर्मकथा कहने का उल्लेख आता है। उस धर्म-कथा का पूरा पाठ ('यावत्' का वर्णक) औपपातिक सूत्र सटीक (सूत्र ३४ पत्र १४८–१५५) में आता है। पाठकों की जानकारी के लिए हम यहाँ मूल पाठ और उसका अर्थ दे रहे हैं।

भगवान् अपने समवसरण में अर्द्धमागधी (लोकभाषा) में भाषण करते थे और उनकी भाषा की यह विशेषता थी कि जिन-की वह भाषा नहीं भी होती, वे भी उसे समझते थे। उसमें सभी —चाहे वह आर्य हो या अनार्य—जा सकते थे।

अत्थि लोए अत्थि अलोए एवं जीवा अजीवा बंधे मोक्खे पुण्णे पावे आसवे संवरे वेयणा णिज्जरा अरिहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा नरका णेरइया तिरिक्खजोणिआ तिरिक्खजोणिणीओ माया पिया रिसओ देवा देवलोआ सिद्धी सिद्धा परिणिव्वाणं परिणिव्वुया अत्थि पाणाइवाए मुसावाए अदिण्णादाणे मेहुणे परिग्गहे अत्थि कोहे माणे माया लोभे जाव मिच्छादंसणसल्ले। अत्थि पाणाइवायवेरमणे मुसावायवेरमणे अदिण्णादाणवेरमणे मेहुणवेरमणे परिग्गहवेरमणे जाव मिच्छादंसणसल्ल विवेगे सव्वं अत्थिभावं अत्थित्ति वयति, सव्वं णत्थिभावं णत्थित्ति वयति, सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति, दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला भवंति, फुसइ पुण्णपावे, पच्चायंति जीवा, सफले कल्लाणपावए। धम्म-माइक्खइ—इणमेव णिग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलए संसुद्धे

पडिपुण्णे णे आऊण सल्लकत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे णिव्वाणमग्गे णिज्जाणमग्गे अवितहमविसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे इहट्ठिआ जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खणमंतं करंति। एगच्चा पुण एगे भयंतारो पुव्वकम्मावसेसेणं अण्णयरेसु देवलोएसु उववत्तारो भवन्ति, महड्ढीएसु जाव महासुक्खेसु दूरंगइएसु चिरट्ठिईएसु, ते णं तत्थ देवा भवंति महड्ढीए जाव चिरट्ठिईआ हारविराइयवच्छा जाव पभासमाणा कप्पोवगा गति कल्लाणा आगमेसिभद्दा जाव पडिरूवा, तमाइक्खइ एवं खलु चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइअत्ताए कम्मं पकरंति, णेरइअत्ताए कम्मं पकरेत्ता णेरइसु उववज्जंति, तंजहा—महारंभयाए, महापरिग्गहयाए, पंचिंदियवहेणं, कुणिमाहारेणं, एवं एएणं अभिलावेणं तिरिक्खजोणिएसु माइल्लयाए णिअडिल्लाए अलिअवयणेणं उक्कंचणयाए वंचणयाए, मणुस्सेसु पगतिभद्दयाए पगति विणीतताए साणुक्कोसयाए अमच्छरियताए, देवेसु सरागसंजमेणं संजमासंजमेणं अकामणिज्जराए बालतवो कम्मेणं तमाइक्खइ—

जह णरगा गम्मंति जे णरगा जा य वेयणा णरए।
सरीरमाणसाइं दुक्खाइं तिरिक्ख जोणीए ॥१॥
माणुस्सं च अणिच्चं वाहिजरामरणवेयणा पउरं।
देवे अ देवलोए देविड्ढि देवसोक्खाइं ॥२॥
णरगं तिरिक्ख जोणिं माणुसभावं च देवलोअं च।
सिद्धे अ सिद्धवसहिं छज्जीवणियं परिकहेइ ॥३॥
जह जीवा बज्झंति मुच्चंति जह य परिकिलिस्संति।
जह दुक्खाणं अंतं करंति केइ अपडिबद्धा ॥४॥
अट्टदुहट्टिय चित्ता जह जीवा दुक्खसागा भुविंति।
जह वेरग्गमुवगया कम्म समुग्गं विहाडंति ॥५॥
जहा रागेण कडाणं कम्माणं पावगो फलविवागो।
जह य परिहीणकम्मा सिद्धा सिद्धालयमुवेंति ॥६॥

तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ। तं जहा—अगारधम्मं अणगारधम्मं च, अणगारधम्मो ताव इह खलु सव्वओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगारातो अणगारियं पव्वयइ सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावाय० अदिण्णादाण० मेहुण० परिग्गह० राईभोयणाउ वेरमणं अयमाउसो! अणगारसामइए धम्मे पण्णत्ते, एअस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिए निग्गंथे वा निग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवति। आगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ, तं जहा—पंच अणुव्वयाइं तिण्णि गुणवयाइं चत्तारि सिक्खावयाइं पंच अणुव्वयाइं, तंजहा—थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, थूलाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सदारसंतोसे, इच्छापरिणामे, तिण्णि गुणव्वयाइं तं जहा—अणत्थदंडवेरमणं दिसिव्वयं, उवभोगपरिभोगपरिमाणं चत्तारि सिक्खावयाइं तंजहा—सामाइअं, देसावगासियं, पोसहोववासे अतिहिसंयअस्स विभागे, अपच्छिमा मारणंतिआ संलेहणा जूसणाराहणा अयमाउसो! अगार सामइए धम्मे पण्णत्ते, अगार धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिए समणोवासए समणोवासिआ वा विहरमाणे आणाइ आराहए भवति।

—औपपातिकसूत्र सटीक, सूत्र ३४, पत्र १४८-१५५

लोक है। अलोक है। जीव है। अजीव है। बंध है। मोक्ष है। पुण्य है। पाप है। आश्रव है। संवर है। वेदना है। निर्जरा है। अर्हन्त है। चक्रवर्ती है। वलदेव है। वासुदेव है। नरक है। नारक है। तिर्यंच योनिवाला है। तिर्यंच योनि वाली मादा है। माता है। पिता है। ऋषि है। देव है। देवलोक है। सिद्धि है। सिद्ध है। परिनिर्वाण है। परिनिवृत्त जीव है। १ प्राणातिपात (हिंसा) है। २ मृषावाद है। ३ अदत्तादान है। ४ मैथुन है। ५ परिग्रह है। ६ क्रोध है। ७ मान है। ८ माया है। ९ लोभ है। १० प्रेम है। ११ द्वेष है। १२ कलह

है। १३ असत्य दोषारोपण है। १४ पेसुण्ण (पीठ पीछे दोष प्रकट करना) है। १५ परपरिवाद (दूसरे की निन्दा करना) है। १६ अरति रति है। १७ माया मृषावाद है और १८ मिथ्या दर्शन शल्य है। प्राणातिपात विरमण (अहिंसा) है। मृषावाद विरमण है। अदत्तादान विरमण है। मैथुन विरमण है। परिग्रह विरमण है यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक सब (अस्ति-भाव) है। व्रत है। सब में नास्ति भाव है। व्रत नहीं है। सत्कर्म अच्छे फल वाले होते हैं। दुष्कर्म बुरे फल वाले होते हैं। पुण्य-पाप का स्पर्श करता है (जीव अपने कर्मों से)। जीव अनुभव करता है। कल्याण और पाप सफल हैं। धर्म का उपदेश किया—यह निर्थंथ-प्रवचन ही सत्य है। यह अनुत्तर (इससे उत्कृष्ट कोई नहीं) है (क्योंकि) केवलज्ञानी द्वारा प्रणीत है। यह सम्यक् रूप से शुद्ध है। यह परिपूर्ण है। यह न्याय से बाधा रहित है। यह शल्य का कर्तन करने वाला है। सिद्धि, मुक्ति, निर्वाण तथा बाहर निकलने का यह मार्ग है। अवितथ तथा बिना बाधा के पूर्व और अपर में घटित होने वाला है। सर्व दुःखों का जिसमें अभाव हो, उसका यह मार्ग है। इसमें स्थित जीव सिद्ध होते हैं। बुद्ध होते हैं, मोचन करते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं और समस्त दुःखों का अन्त करते हैं। (इस निर्गंथ-प्रवचन पर विश्वास करने वाले) भक्त पुनः एक बार मनुष्य शरीर धारण करते हैं। पूर्व कर्म के शेष रहने से, अन्यतर देवलोक में देवता-रूप में उत्पन्न होते हैं। महान् सम्पत्ति वाले, यावत् महासुख वाले दूर गये हुए चिरकाल तक स्थित होते हैं। वे तब वहाँ देव होते हैं—महर्द्धिक वाले यावत् चिरकाल तक स्थित रहने वाले। इनका वक्षस्थल हार से सुशोभित रहता है यावत् प्रकाशमान होते हैं। कल्पोपग, कल्याणकारी गति वाले, आगमिष्यद्भद्र, यावत् असाधारण रूप

वाले होते हैं। अधोदृष्टि वाले चार स्थानों से जीव नैरयिक कर्म को पकड़ता है। नैरयिक का कर्म पकड़कर वह नरक में उत्पन्न होता है। सो यह है—१ महा आरम्भ, २ महा परिग्रह, ३ पंचिन्द्रिय वध और ४ मांसाहार। तिर्यंच गति में उत्पन्न होने के इसी प्रकार चार कारण हैं—१ मायाचरण-कपटाचरण, २ असत्य भाषण, ३ मिथ्या प्रशंसा और ४ वंचना। मनुष्य गति में जीव इन चार कारणों से उत्पन्न होता है—१ प्रकृति से भद्र होने से, २ प्रकृति से विनीत होने से, ३ दयालु होने से और ४ अमत्सरी होने से। चार कारणों से देवलोक में उत्पन्न होते हैं—१ सराग संयम से, २ देशविरति से, ३ अकाम निर्जरा से और ४ बालतप से।

जीव जिस प्रकार नरक गमन करता है, वहाँ जो नारकी हैं, एवं उन्हें जो वेदना भोगनी पड़ती है, यह सब बतलाया। तिर्यंच-योनि में जो शारीरिक और मानसिक दुःख होते हैं, यह भी (स्पष्ट किया)।

मानव-पर्याय अनित्य है। व्याधि, जरा, मरण एवं वेदना से भरा है। देव और देवलोक देवर्द्धि और देवसौख्य (का वर्णन किया) ॥२॥

नरक, तिर्यंच योनि, मनुष्य-भाव और देवगति का कथन किया। सिद्ध, सिद्धस्थान और षट्जीव निकायों का वर्णन किया ॥३॥

जिस प्रकार जीव बँधते हैं, बंधन से छूटते हैं, जिस प्रकार संक्लेशों को भोगते हैं, जिस प्रकार दुःखों का अन्त करते हैं, कितने अप्रतिबद्ध हैं—उनका वर्णन किया ॥४॥

आर्तध्यान से पीड़ित चित्त वाले प्राणी जीव किस प्रकार

है। १३ असत्य दोषारोपण है। १४ पेसुण्ण (पीठ पीछे दोष प्रकट करना) है। १५ परपरिवाद (दूसरे की निन्दा करना) है। १६ अरति रति है। १७ माया मृषावाद है और १८ मिथ्या दर्शन शल्य है। प्राणातिपात विरमण (अहिंसा) है। मृषावाद विरमण है। अदत्तादान विरमण है। मैथुन विरमण है। परिग्रह विरमण है यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक सब (अस्ति-भाव) है। व्रत है। सब में नास्ति भाव है। व्रत नहीं है। सत्कर्म अच्छे फल वाले होते हैं। दुष्कर्म बुरे फल वाले होते हैं। पुण्य-पाप का स्पर्श करता है (जीव अपने कर्मों से)। जीव अनुभव करता है। कल्याण और पाप सफल हैं। धर्म का उपदेश किया—यह निर्ग्रंथ-प्रवचन ही सत्य है। यह अनुत्तर (इससे उत्कृष्ट कोई नहीं) है (क्योंकि) केवलज्ञानी द्वारा प्रणीत है। यह सम्यक् रूप से शुद्ध है। यह परिपूर्ण है। यह न्याय से बाधा रहित है। यह शल्य का कर्तन करने वाला है। सिद्धि, मुक्ति, निर्वाण तथा बाहर निकलने का यह मार्ग है। अवितथ तथा बिना बाधा के पूर्व और अपर में घटित होने वाला है। सर्व दुःखों का जिसमें अभाव हो, उसका यह मार्ग है। इसमें स्थित जीव सिद्ध होते हैं। बुद्ध होते हैं, मोचन करते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं और समस्त दुःखों का अन्त करते हैं। (इस निर्गंथ-प्रवचन पर विश्वास करने वाले) भक्त पुनः एक बार मनुष्य शरीर धारण करते हैं। पूर्व कर्म के शेष रहने से, अन्यतर देवलोक में देवता-रूप में उत्पन्न होते हैं। महान् सम्पत्ति वाले, यावत् महासुख वाले दूर गये हुए चिरकाल तक स्थित होते हैं। वे तब वहाँ देव होते हैं—महर्द्धिक वाले यावत् चिरकाल तक स्थित रहने वाले। इनका वक्षस्थल हार से सुशोभित रहता है यावत् प्रकाशमान होते हैं। कल्पोपग, कल्याणकारी गति वाले, आगमिष्यद्भद्र, यावत् असाधारण रूप

वाले होते हैं। अधोदृष्टि वाले चार स्थानों से जीव नैरयिक कर्म को पकड़ता है। नैरयिक का कर्म पकड़कर वह नरक में उत्पन्न होता है। सो यह है—१ महा आरम्भ, २ महा परिग्रह, ३ पंचिन्द्रिय वध और ४ मांसाहार। तिर्यंच गति में उत्पन्न होने के इसी प्रकार चार कारण हैं—१ मायाचरण-कपटाचरण, २ असत्य भाषण, ३ मिथ्या प्रशंसा और ४ वंचना। मनुष्य गति में जीव इन चार कारणों से उत्पन्न होता है—१ प्रकृति से भद्र होने से, २ प्रकृति से विनीत होने से, ३ दयालु होने से और ४ अमत्सरी होने से। चार कारणों से देवलोक में उत्पन्न होते हैं—१ सराग संयम से, २ देशविरति से, ३ अकाम निर्जरा से और ४ बालतप से।

जीव जिस प्रकार नरक गमन करता है, वहाँ जो नारकी हैं, एवं उन्हें जो वेदना भोगनी पड़ती है, यह सब बतलाया। तिर्यंच-योनि में जो शारीरिक और मानसिक दुःख होते हैं, यह भी (स्पष्ट किया)।

मानव-पर्याय अनित्य है। व्याधि, जरा, मरण एवं वेदना से भरा है। देव और देवलोक देवर्द्धि और देवसौख्य (का वर्णन किया) ॥२॥

नरक, तिर्यंच योनि, मनुष्य-भाव और देवगति का कथन किया। सिद्ध, सिद्धस्थान और षट्जीव निकायों का वर्णन किया ॥३॥

जिस प्रकार जीव बँधते हैं, बंधन से छूटते हैं, जिस प्रकार संक्लेशों को भोगते हैं, जिस प्रकार दुःखों का अन्त करते हैं, कितने अप्रतिबद्ध हैं—उनका वर्णन किया ॥४॥

आर्तध्यान से पीड़ित चित्त वाले प्राणी जीव किस प्रकार

दुःख सागर में डूबते हैं और वैराग्य से कर्मराशि नष्ट करते हैं, बताया ॥५॥

जिस प्रकार राग कृत कर्म पाप फल विपाक प्राप्त करते हैं, (उसे कह कर भगवान् ने) जिस प्रकार परिहीन कर्म वाले सिद्ध सिद्धालय पहुँचते हैं (कहा) ॥६॥

भगवान् ने धर्म दो प्रकार के बताये—१ अगारधर्म (गृहस्थ-धर्म) और २ अणगार धर्म (साधु-धर्म)। अणगार-धर्म वही पालन करते हैं, जो सब प्रकार से मुंडित हो जाते हैं। प्रव्रजित अणगार सर्व रूप से, प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण, रात्रि भोजन विरमण (स्वीकार करता है)। हे आयुष्मन् ! अनगार-सामायिक धर्म कहता हूँ—इस धर्म अथवा शिक्षा में उपस्थित निर्गंथ अथवा निर्गंथी आज्ञा का आराधक होता है।

आगार धर्म १२ प्रकार का कहा—५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत।

पाँच अणुव्रत ये हैं—१ स्थूल प्राणातिपात विरमण, २ स्थूल मृषावाद विरमण, ३ स्थूल अदत्तादान विरमण, ४ स्वदार संतोष और ५ इच्छा परिमाण तीन गुणव्रत हैं—१ अनर्थदंड विरमण, २ दिग्व्रत विरमण, ३ उपभोग परिभोग-परिमाण। चार शिक्षाव्रत है—१ सामायिक, २ देशावकाशिक, ३ पौषधोपवास, ४ अतिथि-संविभाग। अपश्चिम मरणांतिक संलेखना, जूसणा (सेवा) आराधना (भगवान् ने बताये)। आयुष्मनों ! आगार सामायिक धर्म कहता हूँ। आगार शिक्षा में उपस्थित (जो) श्रमणोपासक-श्रमण्येपासिका विचरण करता है वह आराधक होता है।

आचाराङ्गसूत्र सटीक

(२)

पहूय एजस्स दुगुन्छणाए। आयंकदंसी 'अहियं' ति नच्चा ॥

जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ, जे बहिया जाणइ से अज्झत्थं जाणइ, एयं तुल्लं अन्नेसिं। इह सन्तिगया दविया नावकंखन्ति जीविउं

—पत्र ६८-२

—मनुष्य विविध प्राणों की हिंसा में अपना अनिष्ट देख सकने में समर्थ है, और वह उसका त्याग करने में समर्थ है।

जो मनुष्य अपने दुःख को जानता है, वह बाहर के दुःख को भी जानता है, जो बाहर का दुःख जानता है, वह अपने दुःख को भी जानता है। शांति-प्राप्त संयमी (दूसरे की हिंसा कर के) असंयमी जीवन की इच्छा नहीं करते।

(३)

से वसुमं सव्व समण्णागयपण्णाणेणं, अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं णो अण्णेसि।

—पत्र ७१-२

—संयमधनी साधक सर्वथा सावधान और सर्वप्रकार से ज्ञानयुक्त होकर न करने योग्य पापकर्मों में यत्न न करें।

(४)

जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे। इति से गुणट्ठी महता परियावेणं वसे पमत्ते, तं जहा—माया मे, पिया मे, भाया मे, भइणी मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धूया मे, सुण्हा मे, सहिसयणसंगंथसंथुया मे, विवित्तोवगरण परियट्टण भोयणच्छायणं मे इच्चत्थं गढिए लोए वसेपमत्ते...।

—पत्र ८९-१

—जो शब्दादि विषय हैं, वही संसार के मूल कारण हैं; जो संसार के मूलभूत कारण हैं, वे विषय हैं। इसलिए विषयाभिलाषी प्राणी प्रमादी बनकर (शारीरिक और मानसिक) बड़े-बड़े दुःखों का अनुभव कर सदा परितप्त रहता है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरे भाई, मेरी बहिन, मेरी पत्नी, मेरी पुत्री, मेरी पुत्रवधू, मेरे मित्र, मेरे स्वजन, मेरे कुटुम्बी, मेरे परिचित, मेरे हाथी-घोड़े-मकान आदि साधन, मेरी धन-सम्पत्ति, मेरा खान-पान, मेरे वस्त्र इस प्रकार के अनेक प्रपंचों में फँसा हुआ यह प्राणी आमरण प्रमादी बनकर कर्मबन्धन करता रहता है।

(५)

इच्चेवं समुट्ठिए अहोविहाराए अन्तरं च खलु इमं संपेहाए धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए। वओ अच्चेति जोव्वणं च।

—पत्र ९६-२

—इस प्रकार संयम के लिए उद्यत होकर इस अवसर को विचार कर धीर पुरुष मुहूर्त मात्र का भी प्रमाद न करे—अवस्था बीतती है, यौवन भी।

(६)

जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं, अणभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाए खणं जाणाहि पंडिए।

—पत्र ९८-२, ९९-१

—प्रत्येक प्राणी अपने ही सुख और दुःख का निर्माता है और स्वयं ही सुख-दुःख का भोक्ता है। यह जानकर तथा अब भी कर्त्तव्य और धर्म अनुष्ठान करने की आयु को शेष रही हुई जानकर, हे पंडित पुरुष! अवसर को पहिचानो!

(७)

...से आयबले, से नाइबले, से मित्त बले, से पिच्चबले, से देवबले, से रायबले, से चोरबले, से अतिहिबले, से किविणबले, से समणबले, इच्चेहिं विरूव रूवेहिं कज्जेहिं दंडसमायाणं संपेहाए भया कज्जइ, पावमुक्खुत्ति मन्नमाणे, अदुवा आसंसाए।

—पत्र १०३-२

—शरीरबल, जातिबल, मित्रबल, परलोकबल, देवबल, राजबल, चोरबल, अतिथिबल, भिक्षुकबल, श्रमणबल आदि विविध बलों की प्राप्ति के लिए यह अज्ञानी प्राणी विविध प्रकार की हिंसक प्रवृत्ति में पड़कर जीवों की हिंसा करता है। कई बार इन कार्यों से पापों का क्षय होगा अथवा इस लोक और परलोक में सुख मिलेगा, इस प्रकार की वासना से भी अज्ञानीपुरुष सावद्य (पाप) कर्म करता है।

(८)

से अबुज्झमाणे हओवहए जाईमरणं अणुपरियट्टमाणे

—पत्र १०९-१

—अज्ञान जीव राग से ग्रस्त तथा अपयशवंत होकर जन्म-मरण में फँसता रहता है।

(९)

ततो से एगया रोग समुप्पाया समुप्पजंति

—पत्र ११३-२

—कामभोग से भोगी के असाता वेदनीय के उदय से रोगों का प्रादुर्भाव होता है।

(१०)

आसं च छंदं च विगिंच धीरे । तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु ।

—पत्र ११४-२

—हे धीर पुरुषो ! तुम्हें विषय की आशा और लालच से दूर रहना चाहिए। तुम स्वयं अपने अंतःकरण में इस काँटे को स्थान देकर अपने ही हाथों दुःखी बन रहे हो।

(११)

जहा अंतो तहा बाहिं जहा बाहिं तहा अंतो, अंतो अंतो पूतिदेहंतराणि पासति पुढोविसवंति पंडिए पडिलेहए ।

—पत्र १२४-१

—जिस प्रकार शरीर बाहर असार है, उसी प्रकार अंदर से असार है। और जिस प्रकार अंदर से असार है, उसी प्रकार बाहर से असार है। बुद्धिमान इस शरीर में रहे हुए दुर्गन्धियुक्त पदार्थों को और शरीर के अन्दर की अवस्थाओं को देखता है कि इनमें से मलादिक निकलते रहते हैं। यह देखकर पंडित पुरुष इसके सच्चे स्वरूप को समझकर इस शरीर का मोह न रखे।

(१२)

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय तम्हा पावकम्मं नेव कुज्जा न करावेज्जा ।

—पत्र १२७-१

—पूर्वोक्त वस्तु-स्वरूप को समझकर साधक का यह कर्त्तव्य है कि न स्वयं पापकर्म करे न कराये।

(१३)

जे ममाइयमइं जहाइ से चयइ ममाइयं, से हु दिट्ठपहे मुणी जस्स

नत्थि ममाइयं, तं परिन्नाय मेहावी विइत्ता लोगं, वंता लोगसन्नं से मइमं परिक्कमिज्जासि त्ति वेमि !

—पत्र १२९-१

—जो ममत्त्व बुद्धि का त्याग करता है, वह ममत्व का त्याग करता है। जिसको ममत्त्व नहीं है, वही मोक्ष के मार्ग का जानकार मुनि है। ऐसा जाननेवाला चतुर मुनि लोक-स्वरूप को जानकर लोक-संज्ञाओं को दूर कर विवेकवंत होकर विचरता है।

(१४)

से मेहावी जे अणुग्घायणस्स खेयन्ने, जे य बन्धपमोक्ख मन्नेसिं

—पत्र १३२-२

—जो अहिंसा में कुशल है, और जो बंध से मुक्ति प्राप्त करने के प्रयास में है, वह ही सच्चा बुद्धिमान है।

(१५)

अणेग चित्ते खलु अयं पुरिसे : से केयण अरिहइ पूरइत्तए

—पत्र १४७-२

—जगत के लोक की कामना का पार नहीं है। यह तो चलनी में पानी भरने के समान है।

(१६)

पुरिसा ! तुममेव तुमं—मित्तं, किं वहिया
मित्तमिच्छसी ? पुरिसा ! अत्ताणमेव
अभिनिगिज्झ एवं दुक्खा पमोक्खसि।

—पत्र १५२-१

—हे पुरुप ! तू ही तेरा मित्र है। बाहर क्यों मित्र की खोज करता है ? हे पुरुष अपनी आत्मा को ही वश में कर। ऐसा करने से तू सर्व दुःखों से मुक्त होगा।

(१७)

सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भयं।

—पत्र १५५-२

—प्रमादी को सभी प्रकार का डर रहता है। अप्रमत्तात्मा को किसी प्रकार का डर नहीं रहता।

(१८)

जे एगं नामे से बहुं नामे, जे बहुं नामे से एगं नामे

—पत्र १५५-२

—जो एक को नमाता है, वह अनेक को नमाता है और जो अनेक को नमाता है, वह एक को नमाता है।

(१९)

पुव्वं निकायसमयं पत्तेयं, पुच्छिस्सामि
हं भो! पवाइया किं भे सायं दुक्खं असाय?
समिया पडिवण्णे यावि एवं बूया—
सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं
सव्वेसिं सत्ताणं, असायं अपरिनिव्वाणंमहब्भयं दुक्खं।

—पत्र १६८-१

—प्रत्येक दर्शन को पहले जानकर मैं प्रश्न करता हूँ—"हे वादियों! तुम्हें सुख अप्रिय है या दुःख अप्रिय है?" यदि तुम स्वीकार करते हो कि दुःख अप्रिय है तो तुम्हारी तरह ही सर्व प्राणियों को सर्व भूतों को सर्व जीवों को और सर्व तत्त्वों को दुःख महाभयंकर अनिष्ट और अशांतिकर है।

(२०)

इमेण चेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण वज्झाओ जुद्धारिहं खलु दुल्लभं।

—पत्र १६०-२

—हे प्राणी ! अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध कर। वाहरी युद्ध करने से क्या मतलव ? दुष्ट आत्मा के समान युद्ध योग्य दूसरी वस्तु दुर्लभ है।

(२१)

तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव जं परियावेयव्वं ति मन्नसि
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिघित्तव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वं ति मन्नसि,
अंजू चेय पडिबुद्धिजीवी तम्हा न हंता न वि
घायए अणुसंवेयणामप्पाणेणं जं हंतव्वं नाभि पत्थए।

पत्र २०४-१

—हे पुरुष ! जिसे तू मारने की इच्छा करता है, वह तेरे ही जैसा सुख-दुःख का अनुभव करनेवाला प्राणी है; जिस पर हुकूमत करने की इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे दुःख देने का विचार करता है, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे अपने वश में रखने की इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसके प्राण लेने की इच्छा करता है—विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है।

सत्पुरुष इसी तरह विवेक रखता हुआ, जीवन बिताता है और न किसी को मारता है और न किसी का घात करता है।

जो हिंसा करता है, उसका फल वैसा ही पीछे भोगना पड़ता है, अतः वह किसी भी प्राणी की हिंसा करने की कामना न करें।

× × × ×

सूत्रकृतांग (पी० एल्० वैद्य-सम्पादित)

(२२)

जमिणं जगती पुढो जगा, कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो।
सयमेव कडेहिं गाहइ, णो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठयं ॥ ४ ॥

—पृष्ठ ११

—जगत में प्राणी अपने कर्मों से दुःखी होता है। और (स्व कर्मों से ही) अच्छी दशा प्राप्त करता है। किया हुआ कर्म फल दिये बिना पृथक नहीं होने का।

(२३)

जइ वि य नगिणे किसे चरे, जइ वि य भुञ्जिय मासमंतसो।
जे इह मायावि मिज्जई, आगन्ता गब्भाय णन्तसो ॥ ९ ॥

—पृष्ठ १२

—भले ही व्यक्ति चिरकाल तक नग्न रहे, भले ही कोई मास-मास के अन्तर से भोजन करे, जो माया में लिप्त होता है, वह अनन्त बार गर्भवास करता है।

(२४)

अग्गं वणिएहिं आहियं, धारेन्ती राइणिया इहं।
एवं परमा महव्वया, अक्खाया उ सराइभोयणा ॥३॥

—पृष्ठ १६

—दूर देशावर के व्यापारियों द्वारा लाया हुआ रत्न राजा-मात्र धारण कर सकते हैं। उसी प्रकार रात्रि-भोजन त्याग के साथ महाव्रत कोई विरला ही धारण कर सकता है।

(२५)

मा पच्छ असाधुता भवे, अच्चेही अणुसास अप्पगं ।
अहियं च असाहु , सोयई से थणाई परिदेवई बहुं ॥७॥

—पृष्ठ १६

—परभव में असाधुता न हो, इस विचार से आत्मा को विषयों से दूर रखकर अंकुश में रखो। असाधु कर्म के कारण तीव्र दुर्गति में गया हुआ जीव सोच करता है, आक्रन्दन करता है और विलाप करता है।

(२६)

गारं पि य आवसे नरे, अणुपुव्वं पाणेहि संजए ।
समता सव्वत्थ सुव्वए, देवाणं गच्छे सलोग यं ॥१३॥

—पृष्ठ १७

—गृह में निवास करता हुआ भी जो मनुष्य प्राणियों के प्रति यथाशक्ति समभाव रखनेवाला होता है, वह सुव्रती देवताओं के लोक में जाता है।

(२७)

जेहिं काले परिक्कन्तं न पच्छा परितप्पए ।
ते धीरा बन्धणुमुक्का, नावकंखन्ति जीवियं ॥१५॥

—पृष्ठ २४

—जो योग्य समय पर पराक्रम करता है, वह पीछे परितप्त नहीं होता। वे धीर पुरुप बंधनों से उन्मुक्त और जीवित में आसक्ति विना होते हैं।

(२८)

उदगेण जे सिद्धिमुदाहरन्ति, सायं च पायं उदगं फुसन्ता।
उदगस्स फासेण सिया य सिद्धी, सिज्झिंसु पाणा बहवेदगंसि ॥१४॥

—पृष्ठ ३९

—यदि स्नान से मोक्ष मिलता हो, तो पानी में रहनेवाले कितने ही जीव मुक्त हो जायें।

(२९)

पमायं कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहावरं।
तब्भावादेसओ वा वि, बालं पंडियमेव वा ॥३॥

—पृष्ठ ४१

—ज्ञानियों ने प्रमाद को कर्म और अप्रमाद को अकर्म कहा है। अतः प्रमाद होने से बलवीर्य और अप्रमाद होने से पंडित वीर्य होता है।

(३०)

वेराइं कुव्वई वेरी, तओ वेरेहि रज्जई।
पावोवगा य आरंभा, दुक्खफासा य अन्तसो ॥७॥

—पृष्ठ ४१

—वैरी वैर करता है। वह दूसरों के वैर का भागी होता है। इस प्रकार वैर से वैर बढ़ता जाता है। पाप को बढ़ाने वाले आरम्भ अन्त में दुःखकारक होते हैं।

(३१)

नेयाउयं सुयक्खायं, उवायाय समीहए।
भुज्जो भुज्जो दुहावा सं, असुहत्तं तहा तहा ॥११॥

—पृष्ठ ४१

—बल-वीर्य पुनः-पुनः दुःखावास है। प्राणी बलवीर्य का जैसे-जैसे उपयोग करता है, वैसे-वैसे अशुभ होता है। मोक्ष की ओर ले जाने वाले मार्ग सम्यक् ज्ञान, दर्शन और तप हैं। इन्हें ग्रहण कर पंडित मुक्ति का उद्योग करे।

(३२)

पाणेय णाइवाएज्जा, अदिन्नं पियणादए।
सादियं ण मुसं बूया, एस धम्मे वुसीमओ ॥१९॥

—पृष्ठ ४२

—प्राणियों के प्राणों को न हरे, विना दी हुई कोई भी वस्तु न ले, कपटपूर्ण झूठ न बोले—आत्मजयी पुरुषों का यही धर्म है।

(३३)

कडं च कज्जमाणं च, आगमिस्सं च पावगं।
सव्वं तं णाणुजाणन्ति, आयगुत्ता जिइंदिया ॥२१॥

—पृष्ठ ४२

—आत्मगुप्त जितेन्द्रिय पुरुष किसी द्वारा किये गये, किये जाते हुए तथा किये जाने वाले पाप-कर्म का अनुमोदन नहीं करता।

(३४)

तेसिं पि न तवो सुद्धो, निक्खन्ता जे महाकुला।
जं ने वन्ने वियाणन्ति, न सिलोगं पव्वे जए ॥२४॥

—पृष्ठ ४३

—जो कीर्ति आदि की कामना से तप करते हैं, उनका तप शुद्ध नहीं है, भले ही उच्च कुल में प्रव्रज्या हुई हो। जिसे दूसरे न जाने वह सच्चा तप है। तपस्वी आत्मश्लाघा न करे।

(३५)

अप्पपिण्डासि पाणासि, अप्पं भासेज्ज सुव्वए ।
खन्तेऽभिनिव्वुडे दन्ते, वीतगिद्धी सया जए ॥२५॥

—पृष्ठ ४३

—सुव्रती पुरुष, अल्प खाये, अल्प पीये, अल्प बोले। वह क्षमावान् हो, लोभादि से निवृत्त हो, जितेन्द्रिय हो, गृद्धि-रहित-अनासक्त हो तथा सदाचार में सदा यत्नवान् हो।

(३६)

सुस्सूसमाणो उवासेज्जा, सुप्पन्नं सुतवस्सियं ।
वीरा जे अत्तपन्नेसी, धिइमन्ता जिइन्दिया ॥३३॥

—पृष्ठ ४६

—मुमुक्षु लोग प्रज्ञायुक्त, तपस्वी, पुरुषार्थी, आत्मज्ञान की वांछा करने वाले, धृतिमान तथा जितेन्द्रिय गुरु की सदा सेवा-सुश्रुषा करते हैं।

(३७)

सीहं जहा खुड्डमिगा चरन्ता, दूरे चरन्ति परिसंकमाणा ।
एवं तु मेहावि समिक्ख धम्मं, दूरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥२०॥

—पृष्ठ ४८

—मृगादि अटवी में विचरने वाले जीव जैसे सिंह से सदा भयभीत रहते हुए दूर में—एकान्त में—चरते हैं, इसी तरह मेधावी पुरुष धर्म को विचार कर पाप को दूर ही से छोड़े।

(३८)

एयं खु नाणिणो सारं, जन्न हिंसइ किंचण ।
अहिंसा समयं चेव, एतावन्तं वियाणिया ॥१०॥

—पृष्ठ ४९

—ज्ञानी के ज्ञान का सार यह है कि, वह किसी की हिंसा नहीं करता। अहिंसा का सिद्धान्त बस इतना मात्र है।

(३६)

जे रक्खसा वा जमलोइया वा, जे वा सुरा गंधव्वा य काया।
आगासगामी य पुढोसिया जे, पुणो पुणो विप्परियासुवेंति ॥१२॥

—पृष्ठ ५३

—जो राक्षस हैं, जो यमपुरवासी हैं, जो देवता हैं, जो गंधर्व हैं, जो आकाशगामी व पृथ्वीनिवासी हैं, वे सब मिथ्यात्वादि कारणों से ही बार-बार भिन्न-भिन्न रूपों में जन्म धारण करते हैं।

(४०)

जे कोहणे होइ जयट्ठभासी, विओसियं जे उ उदीरएज्जा।
अन्धे व से दण्डपहं गहाय, अविओसिए धासइ पावकम्मी ॥५॥

—पृष्ठ ५५

—जो स्वभाव से क्रोधी होता है, जो कटुभाषी होता है, जो शान्त हुए कलह को उखाड़ता है, वह अनुपशांत परिणाम वाला पगडंडी पर चलने वाले अन्धे की तरह धर्म-मार्ग से पतित होता है।

(४१)

से हु चक्खू मणुस्साणं, जे कंखाए य अन्तए।
अन्तेण खुरो वहई, चक्कं अन्तेण लोट्टई ॥१४॥
अन्ताणि धीरा सेवन्ति, तेण अन्तकरा होई।

—पृष्ठ ६०

—जो आकांक्षाओं का अन्त करता है, वह पुरुष (जगत के लिए) चक्षुरूप है। छुरा अपने अन्त पर चलता है, चक्र भी अपने किनारों पर ही चलता है। धीर पुरुष भी अन्त का ही सेवन करते हैं और वे ही (जीवन-मरण का) अन्त करने वाले होते हैं।

(४२)

धम्मं कहन्तस्स उ णत्थि दोसो, खन्तस्स दन्तस्स जिइन्दियस्स।
भासाय दोसे य विवज्जगस्स, गुणे य भासाय णिसेवगस्स ॥५॥

—पृष्ठ ११८

—धर्म कहने मात्र से दोष नहीं लगता—यदि उसका कथन करने वाला क्षांत हो, दांत हो, जितेन्द्रिय हो, वाणी के दोष का त्याग करने वाला हो और वाणी के गुण का सेवन करने वाला हो।

ठाणांगसूत्र सटीक

(४३)

दोहिं ठाणेहिं अणगारे संपन्ने अणादीयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसारकंतारं वीतिवतेज्जा—तंजहा विज्जाए चेव चरणेण चेव।

—ठा० २, उ० १, सूत्र ६३, पत्र ४४-१

—विद्या और चारित्र इन दो वस्तुओं के होने से साधु अनादि और दीर्घकालीन चार गति वाले संसार से तर जाता है।

(४४)

अज्झवसाणनिमित्ते आहारे वेयणापराघाते।
फासे आणापाणू, सत्तविहं भिज्जए आऊं ॥१७॥

—ठा० ७, उ० ३, सूत्र ५६१ पत्र ३६०-२

—सात प्रकार से आयु का क्षय होता है—१ (भयानक) अध्यवसाय से, २ (दण्ड-लकड़ी-कुशा-चाबुक आदि) निमित्त से, ३ (अधिक) आहार से, ४ (शारीरिक) वेदना से, ५ (कूएँ में गिरना) पराघात से, ६ स्पर्श (साँप-बिच्छी आदि के डंक से), ७ श्वास-उच्छ्वास (के निरोध से)।

(४५)

णवविधे पुन्ने पं० तं०—अन्नपुन्ने १, पाणपुण्णे २, वत्थपुण्णे ३, लेणपुण्णे ४, सयणपुण्णे ५, मणपुण्णे ६, वतिपुण्णे ७, कायपुण्णे ८, नमोक्कारपुण्णे ९।

—ठा० ९ सू० ६७६ पत्र ४५०-२

—पुण्य ९ कहे गये हैं—१ अन्नपुण्य, २ पानपुण्य, ३ वस्त्र-पुण्य, ४ लेणपुण्य (आवास), ५ शयनपुण्य, ६ मनपुण्य (गुणी-जन को देखकर मन में प्रसन्न होना), ७ वचनपुण्य (गुणीजन के वचन की प्रशंसा करने से प्राप्त पुण्य), ८ कायपुण्य (सेवा करने से प्राप्त पुण्य), ९ नमस्कार पुण्य।

(४६)

दस विहे दोसे प० तं०—तज्जातदोसे १, मतिभंगदोसे २, पसत्थार-दोसे ३, परिहरण दोसे ४, सलक्खण ५, कारण ६, हेउदोसे ७, संका-मणं ८, निग्गह ९, वत्थुदोसे १०।

—सटीक ठा० १०, उ० ३, सूत्र ७४३ पत्र ४९२-१

—दोष दश प्रकार के हैं—१ तज्जातदोष, २ मतिभंगदोष, ३ प्रशास्तृदोष, ४ परिहरणदोष, ५ स्वलक्षणदोष, ६ कारणदोष, ७ हेतुदोष, ८ संक्रामणदोष, ९ निग्रहदोष, १० वस्तुदोष।

समवायांगसूत्र सटीक

(४७)

सत्त भयट्ठाणा पन्नत्ता तं जहा—इहलोगभए, परलोगभए, अ
भए, अकम्हाभए, आजीवभए, मरणभए, असिलोगभए ।

—पत्र

—भय के सात स्थान कहे गये हैं—१ इस लोक सम
भय, २ परलोक-सम्बन्धी भय, ३ आदान भय, ४ अकस्मात
५ आजीविका भय, ६ मरण भय, ७ अकीर्ति भय ।

(४८)

दसविहे समणधम्मे पन्नत्ते, तं० जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे,
लाघवे, सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे ।

—पत्र

—दस प्रकार का साधु-धर्म कहा गया है—१ क्षांति, २
(निर्लोभता), ३ आर्जव, ४ मार्दव, ५ लाघव, ६ सत्य, ७ सं
८ तप, ९ त्याग, १० ब्रह्मचर्यवास ।

भगवतीसूत्र सटीक

(४९)

(प्र० कह णं भंते ! जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?) (उ०
गोयमा ! तिहिं ठाणेहिं, तं जहा—पाणे अइवाएत्ता, मुसं वाइ
तहारूवं समणं वा, माहणं वा, अफासुएणं, अणेसणिज्जेणं, असण-पा
खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता, एवं खलु जीवा अप्पाउयत्ताए क
पकरेंति ।

—भगवतीसूत्र श० ५ उ०

—हे गौतम ! तीन कारणों से जीव अल्पायु

श्रमण-ब्राह्मण को अप्रासुक, अनेषणीय खान, पान, खादिम तथा स्वादिम पदार्थों का प्रतिलाभ करा कर।

ज्ञाताधर्मकथा (एन० वी० वैद्य-सम्पादत)

(५०)

देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिट्ठितव्वं णिसीयव्वं तुयट्टियव्वं भुंजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूतेहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमितव्वं अस्सिं च णं अट्ठे णो पमादेयव्वं। —पृष्ठ १०३

—हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार पृथ्वी पर युग (शरीर-प्रमाण मात्र) मात्र दृष्टि रखकर चलना, शुद्ध भूमि पर खड़े रहना, भूमि का प्रमार्जन करके बैठना, सामायिक आदि का उच्चारण करके शरीर की प्रमार्जना करके संस्तारक और उत्तरपट्ट पर अपनी भुजा को सिर के नीचे लगा कर बायीं ओर शयन करना, वेदनादि के कारण अंगारादिक दोष-रहित भोजन करना, हित, मित और मधुर वचन बोलना। इस प्रकार उठ-उठ करके प्रमाद और निद्रा को दूर कर बोध प्राप्त करके प्राण, भूत, जीव और सत्य-सम्बन्धी संयम के लिए सम्यक् प्रकार से यत्न करना। इसमें और प्राणादिक की रक्षा करने में किंचित् मात्र प्रमाद मत करना।

(५१)

सोइंदिय दुद्दंत-त्तणस्स अह एत्तिओ हवति दोसो।
दीविगरुयमसहंतो, वहबंधं तित्तिरो पत्तो। —पृष्ठ २०६.

—श्रोत्रेन्द्रिय के दुर्दांतपने के कारण इतना दोष होता है कि जैसे पराधीन पिंजरे में पड़े तीतर के शब्द को न सहन कर पाने के कारण, वन में रहने वाले तीतर पक्षी वध और बंधन को

प्राप्त होते हैं (वैसे श्रोत्रेन्द्रिय के आश्रयी भी वध-बंधन करते हैं ।)

(४२)

चक्खिंदियदुद्दंत-त्तणस्स अह एत्तिश्रो भवति दोसो ।
जं जलणम्मि जलंते, पडसि पयंगो अबुद्धिश्रो ॥

—पृष्ठ २

—चक्षुरिन्द्रिय के दुर्दुरान्तपने से पुरुष में इतना द होता है कि, जैसे मूर्ख पतंग जलते अग्नि में कूद पड़ते हैं (वै ही वे दुःख प्राप्त करते हैं) ।

(४३)

घाणिंदिय दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिश्रो हवइ दोसो ।
जं श्रोसहि गंधेण बिलाश्रो निद्धावई उरगो ॥६॥

—पृष्ठ २०

—जो मनुष्य घ्राणेन्द्रिय के आधीन (अनेक प्रकार के सुगंध में आसक्त) होते हैं, (वे उसी प्रकार बंधित होते हैं) जैसे ओषधि के गंध के कारण बिल से निकलने पर सर्प पकड़ लिया जाता है

(४४)

जिब्भिदि य दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिश्रो हवइ दोसो ।
जं गललग्गुक्खित्तो फुरइ थल विरेल्लिश्रो मच्छो ॥७॥

—पृष्ठ २०६

—जो जिह्वेन्द्रिय के वश में होता है, वह गले में काँटा लगा कर पृथ्वी पर पटकी हुई मछली की तरह तड़पता है (और मरण पाता है ।)

हिंसा अथवा प्रमादी जीवों से विशेष रूप में होने के कारण इसे हिंस्र-विहिंसा कहते हैं), ५ अकृत्य, ६ घातना, ७ मारणा, ८ वधणा, ९ उपद्रवण, १० त्रिपातना (मन, वाणी और काया का अथवा देह, आयु और इन्द्रिय रूप प्राणों से जीव का पतन कराने से इसे 'त्रितापना' कहते हैं), ११ आरम्भ-समारम्भ, १२ आयुः—कर्मणउपद्रव, भेदनिष्ठापन गालना तथा संवर्तकसंक्षेप (आयु-कर्म का उपद्रव या उसी का भेद या उस आयु का अन्त करना और आयु को गालना, खुटाना, आयु को संक्षेप करना), १३ मृत्युः १४ असंयम, १५ कटक-मर्दन, १६ व्युपरमणम् (प्राणों से जीव के अलग करने के कारण यह व्युपरमण कहलाता है), १७ परभ-वसंक्रमकारक, १८ दुर्गति प्रपातः, १९ पाप-कोप, २० पाप लोभ, २१ छविच्छेद, २२ जीवितान्तकरण, २३ भयङ्कर, २४ ऋणकर, २५ वर्ज्य, २६ परितापनाश्रव, २७ विनाश, २८ निर्यापना, २९ लोपना, ३० गुणों की विराधना।

इस प्रकार इस पाप-रूप प्राणवध के कटु फल बताने वाले तीस नाम कहे गये हैं।

(४७)

तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तंजहा—अलियं १, सढं २, अणज्जं ३, मायामोसो ४, असंतकं ५, कूडकवडमवत्थुगं च ६, निरत्थयमवत्थयं च ७, विद्देसगरहणिज्जं ८, अणुज्जुकं ९, कक्कणाय १०, वंचणाय ११, मिच्छापच्छाकडं च १२, साती उ १३, उच्छन्नं १४, उक्कूलं च १५, अट्टं १६, अब्भक्खाणं च १७, किव्विसं १८, वलयं १९, गहणं च २०, मम्मणं च २१, नूमं २२, नियथी २३, अप्पच्चाओ २४, असमओ २५, असच्चसंधत्तणं २६, विवक्खो २७, अवहीयं २८, उवहि-

असुद्धं २६, अवलोवोत्ति ३०, अविय तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं सावज्जस्स वइजोगस्स अणेगाइं ।

—पत्र २६-२

उस (मृषावाद) के गुणनिष्पन्न ३० नाम हैं जैसे १ अलीक २ शठम् (शठस्य-मायिनः कर्म्मत्वात्), ३ अनार्यम् , ४ माया-मृपा, ५ असत्क, ६ कूट कपटाऽवस्तुकञ्ज (परवञ्चनार्थं न्यूनाधिकभाषणं कपटं–भाषाविपर्ययकरणं अविद्यमानं वस्तु–अभिधेयोऽर्थो यत्र तद्वस्तु, पदत्रयस्याप्ये तस्य कथञ्चित्समानार्थत्वेनैकतमस्यैव गुणनादिमेकं नाम), ७ निरर्थकापार्थक(निष्प्रयोजन होने से तथा सत्यहीन होने से), ८ विद्वेष गर्हणीय (विद्वेष तथा निन्दा का कारण होने से) ९ अनृजुकम् (कुटिल होने से) १० कल्कना (मायामय होने से), ११ वञ्चना (ठगने का कारण होने से), १२ मिथ्या पश्चात्कृतम् (झूठ समझ कर न्यायवादी उसे पीछा कर देते हैं), १३ सातिस्तु (अविश्वासकारक होने से उसे साति कहते हैं) १४ अपच्छन्नम् (अपने दोप को व परगुणों के ढक देने कारण यह 'अपच्छन्न' है, १५ उत्कूल १६ आर्त, १७ अभ्याख्यान, १८ किल्विप, १९ वलय, २० गहन २१ मन्मन, २२ नूम (सत्य को ढकनेवाला), २३ निकृति २४ अप्रत्यय, २५ असमय, २६ असत्य सन्धत्व, २७ विपक्ष, २८ अपधीक-आज्ञातिग, २९ उपध्यशुद्ध, ३० अवलोप ।

उस मृषावाद के इस प्रकार ये तीस नाम हैं जो मृपावाद सावद्य सपाप और अलीक है तथा वचन का व्यापार है, उसके ऐसे अनेक नाम है ।

(२८)

तस्स य णामाणि गोन्नाणि होंति तीसं, तं जहा चोरिकं १, परहडं २, अदत्तं ३, कूरिकडं ४, परलाभो ५, असंजमो ६, परधणंमिगेही ७,

लोलिकं ८, तक्करत्तणं ति य ९, अवहारो १०, हत्थलहुत्तणं ११, पावक करणं १२, तेणिक्कं १३, हरणविप्पणासो १४, आदियणा १५, लुं धणाणं १६, अप्पच्चओ १७, अवीलो १८, अक्खेवो १९, खेवो विक्खेवो २१, कूडया २२, कुलमसी य २३, कंखा २४, लालप्पणपत्थ य २५, आससणाय वसणं २६, इच्छामुच्छा य २७, तण्हागेहि नियडिकम्मं २९, अपरच्छं ति विय ३० तस्स एयाणि एवमादीणि ना ज्जाणि होंति तीसं अदिन्नादाणस्स पावकलिकलुस-कम्म बहु अणेगाइं । —पत्र ४

उस चौर्य-कर्म के गुणनिष्पन्न तीस नाम हैं—१ चोरी परहृतम, ३ अदत्तम्, ४ क्रूरिकृतम्, ५ परलाभः, ६ असंयम परधन गृद्धि, ८ लौल्य, ९ तस्करत्व, १० अपहार, ११ हस्तलघु १२ पापकर्मकरण, १३ स्तेनिका, १४ हरण-विप्रणाश, १५ आ यना (परधन का ग्रहण होने से), १६ धनलुम्पना, १७ अप्रत्य १८ अवपीडय (पीड़ा पहुँचाना), १९ आक्षेप, २० क्षेप, विक्षेप, २२ कूटता, २३ कुलमषी, २४ कांक्षा, २५ लालपन-प्रार्थ २६ आशंसना-व्यसन २७ इच्छमूर्च्छा, २८ तृष्णागृद्धि, निकृतिकर्म, ३० अपरोक्ष

उस अदत्तादान के उपरोक्त ये तीस नाम होते हैं। पाप तथा कलह से मलिन मित्रद्रोह आदि कर्म की अधिव वाले अदत्तादान के अनेक नाम हैं।

(५९)

तस्स य णामाणि गोन्नाणि इमाणि होंति तीसं, तंजहा—अबंभं मेहुणं २, चरंतं ३, संसग्गि ४, सेवणा-धिकार ५, संकप्प ६, बाह पदाणं ७, दप्पो ८, मोहो ९, मणसंखेवो १०, अणिग्गहो ११, वुग्ग १२, विघाओ १३, विभंगो १४, विब्भमो १५, अधम्मो १६, असील

१७, गामधम्मतित्ती १८, रती १९, रागकाम भोगमारो २१, वेरं २२ रहस्सं २३, गुज्झं २४, बहुमाणो २५, बंभचेरविग्घो २६, वावत्ति २७, विराहणा २८, पसंगो २९, कामगुणो ३० । त्तिविय तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं

—सूत्र १४ पत्र ६६-२

—उस अब्रह्म के गुणनिष्पन्न तीस नाम होते हैं—१ अब्रह्म, २ मैथुन, ३ चरत्, ४ संसर्गि, ५ सेवनाधिकार, ६ संकल्प, ७ बाधना, ८ दर्प, ९ मोह, १० मनसंक्षोभ, ११ अनिग्रह, १२ विग्रह, १३ विघात, १४ विभङ्ग, १५ विभ्रम, १६ अधर्म, १७ अशीलता, १८ ग्रामधर्मतृप्ति, १९ रति, २० राग, २१ कामभोगमार:, २२ वैर, २३ रहस्य, २४ गुह्य, २५ बहुमान, २६ ब्रह्मचर्यविघ्न, २७ व्यापत्ति, २८ विराधना, २९ प्रसङ्ग, ३० कामगुण

इस प्रकार उनके तीस नाम हैं ।

(६०)

तस्स य नामाणि गोएणाणि होंति तीसं, तंजहा—परिग्गहो १, संचयो २, चयो ३, उवचओ ४, निहाणं ५, संभार ६, संकरो ७, आयारो ८, पिंडो ९, दव्वसारो १० तहा महिच्छा ११, पडिबंधो १२, लोहप्पा १३, महद्दी १४, उवकरणं १५, संरक्खणा य १६, भारो १७, संपाउप्पायको १८, कलिकरंडो १९, पवित्थरो २०, अणत्थो २१, संथवो २२, अगुत्ती २३, आयासो २४, अविओगो २५, अमुत्ती २६, तण्हा २७, अणत्थको २८, आसत्ती २९, असंतोसोत्तिविय ३० । तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं ॥

—सूत्र १८ पत्र ९२-२

—इस परिग्रह के तीस नाम हैं— १ परिग्रह, २ सञ्चय, ३ चय, ४ उवचय, ५ निधान, ६ सम्भार, ७ सङ्कर, ८ आदर,

९ पिंड, १० द्रव्यसार, ११ महेच्छा, १२ प्रतिबन्ध, १३ लोभात्मा, १४ महार्द्दि, १५ उपकरण, १६ संरक्षण, १७ भार, १८ सम्पातोत्पादक, १९ कलिकरण्ड, २० प्रविस्तर, २१ अनर्थ, २२ संस्तव, २३ अगुप्ति, २४ आयास, २५ अवियोग, २६ अमुक्ति, २७ तृष्णा, २८ अनर्थक, २९ आसक्ति, ३० असंतोप।

इस प्रकार परिग्रह के ये तीस नाम अन्वर्थक-सार्थक हैं।

औपपातिक सूत्र

(६१)

जह जीवा बज्झंति, मुच्चंति जह य परिकिलिस्संति।
जह दुक्खाण अंतं, करेंति केई अपडिबद्धा॥

—पृष्ठ ५५

—जैसे कई जीव कर्मों से बँधते हैं, वैसे ही मुक्त भी होते हैं। और, जैसे कर्मों की वृद्धि होने से महान् कष्ट पाते हैं। वैसे ही दुःखों का अंत भी कर डालते हैं। ऐसा अप्रतिबद्ध विहारी निर्ग्रंथों ने कहा है।

(६२)

अट्टदुहट्टिय चित्ता जह, जीवा दुक्खसागर मुवति।
जह वेरग्गमुवगया, कम्मसमुग्गं विहाडेंति॥

—पृष्ठ ५५

—जो जीव वैराग्यभाव से रहित हैं, वे आर्तरौद्र ध्यान से विकल्प चित्त हो जैसे दुःख-सागर को प्राप्त होते हैं, वैसे ही वैराग्य को प्राप्त हुए जीव कर्म-समूह नष्ट कर डालते हैं।

(७३)

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणामेवमप्पाणं, जइत्ता सुहमेहइ ॥ ३५ ॥

—अ० ६, पृष्ठ २०

—हे शिष्य ! तू आत्मा से ही युद्ध कर। बाहर के युद्ध से तुझे क्या काम ? आत्मा को आत्मा से ही जीत करके जीव सुख प्राप्त करता है।

(७४)

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे य पत्थेमाणा, अकामा जंति दोग्गई ॥ ५३ ॥

—अ० ९, पृष्ठ २२

—काम शल्य है, काम विष है, काम आशीविष है। भोगों की प्रार्थना करते-करते जीव विचारे उनको प्राप्त किये बिना ही दुर्गति में चले जाते हैं।

(७५)

कुसग्गे जह ओस बिंदुए, थोवंचिट्ठइ लंबमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए ॥ २ ॥

अ० १०, पृष्ठ २३

—जैसे कुशा के अग्रभाग का ओस का बिन्दु अपनी शोभा को धारण किये हुए थोड़े काल पर्यन्त ठहरता है, इसी प्रकार मनुष्य-जीवन है। अतः हे गौतम ! समय मात्र के लिये प्रमाद मत कर।

(७६)

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मेह संजमजोगसन्ती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ॥ ४४ ॥

—अ० १२, पृष्ठ ३१

—तप अग्नि है, जीव अग्निस्थान है, तीनों योग स्रुव हैं, शरीर करीपांग है; कर्म ईंधन है, संयम शांति (पाठ) है। इस प्रकार के होम से मैं अग्नि को प्रसन्न करता हूँ। ऋषियों ने इसकी प्रशंसा की है।

(७७)

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अन्तकाले।
न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मिंसहरा भवंति ॥२२॥

—अ० १३, पृष्ठ ३३

—जैसे सिंह मृग को पकड़ लेता है, वैसे ही मृत्यु मनुष्य को पकड़ती है। काल में माता, पिता, भ्राता आदि कोई भागीदार नहीं होते।

(७८)

अभयं पत्थिवा तुब्भं, अभयदाया भवाहि य।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसी ॥ ११ ॥

—अ० १८, पृष्ठ ४५

—हे पार्थिव ! तुझे अभय है। तू भी अभय देने वाला हो। अनित्य जीवलोक में हिंसा में क्यों आसक्त हो रहा है।

(७९)

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नन्दणं वणं ॥ ३६ ॥

अ० २०, पृष्ठ ५७

—आत्मा वैतरणी नदी है। मेरी आत्मा कूटशाल्मलि वृक्ष है। आत्म कामदुधा धेनु है। मेरी आत्मा नन्दनवन है।

(८०)

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥ ३७ ॥

—अ० २०, पृष्ठ ५७

—आत्मा ही दुःख और सुख का कर्ता और विकर्ता है। एवं यह आत्मा ही शत्रु और मित्र है, सुप्रस्थित मित्र और दुःप्रस्थित शत्रु है।

(८१)

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य ।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ॥ ३८ ॥

—अ० २३, पृष्ठ ६७

—वशीभूत न किया हुआ आत्मा शत्रुरूप है—कषाय और इन्द्रियाँ भी शत्रुरूप हैं। उनको न्यायपूर्वक जीत कर मैं विचरता हूँ।

(८२)

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई ॥ ४१ ॥

—अ० २५, पृष्ठ ७५

—भोग से कर्म पर आलेपन होता है, भोगी संसार का भ्रमण करता है। अभोगी पर आलेपन नहीं होता और अभोगी संसार पार कर जाता है।

(८३)

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयंति ।
कम्मं च जाई मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई मरणं वयंति ॥ ७ ॥

—अ० ३२, पृष्ठ ९६

—रागद्वेष दोनों कर्म के बीज हैं। मोह कर्म से उत्पन्न होता है। कर्म जन्म और मरण का मूल है। जन्म और मृत्यु दुःख के हेतु कहे गये हैं।

(८४)

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥ ८ ॥

—अ० ३२, पृष्ठ ९६

—जिसे मोह नहीं है, उसने दुःख का नाश कर दिया, जिसको तृष्णा नहीं, उसने मोह का अंत कर दिया; जिसने लोभ का परित्याग किया उसने तृष्णा का क्षय कर डाला और जो अकिंचन है, उसने लोभ का विनाश कर डाला।

(८५)

अच्चणं रयणं चेव, वन्दणं पूअणं तहा।
इड्ढीसक्कार सम्माणं, मणसाऽवि न पत्थए ॥ १८ ॥

—अ० ३५, पृष्ठ ११०

—अर्चा, रत्न, वन्दन, पूजन, ऋद्धि, सत्कार, सम्मान इन सबकी मुमुक्षु मन से भी इच्छा न करे।

(८६)

कंदप्पमाभिओगं च, किब्बिसियं मोहमासुरत्तं च।
एयाउ दुग्गईओ, मरणम्मि विराहिया होंति ॥ २५५ ॥

—अ० ३६, पृष्ठ १२८

—कंदर्प-भावना, अभियोग-भावना, किल्विष-भावना, मोह-भावना, और आसुरत्व-भावना, ये भावनाएँ दुर्गति की हेतुभूत होने से दुर्गति-रूप कही जाती हैं। मरण के समय इन भावनाओं से जीव विराधक हो जाते हैं।

दशवैकालिकसूत्र (हरिभद्र की टीका सहित)

(८७)

आयावयाही च य सोगमल्लं कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए ॥५॥

—अ० २, पत्र ९५-१

—आतापना ले, सौकुमार्य-भाव को छोड़, काम भोगों को अतिक्रमकर। दुःख निश्चय ही अतिक्रान्त हो जाता है। द्वेष को छेदन कर, राग को दूर कर—इस प्रकार करने से तू संसार में सुखी हो जायेगा।

(८८)

अजयं भासमाणो अ, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं ॥६॥

—अ० ४, पत्र १५६-२

—अयत्नपूर्वक बोलता हुआ जीव, प्राणी और भूतों की हिंसा करता है और पाप-कर्म बाँधता है। उसका फल उसे कटु मिलता है।

(८९)

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए।
कहं भुंजतो भासंतो, पावकम्मं न बंधइ ॥७॥
जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधइ ॥८॥

—दशवैकालिक अ० ४ पत्र १५६-२

—हे भगवन् ! जीव किस प्रकार से चले ? किस प्रकार से खड़ा हो ? किस प्रकार बैठे ? किस प्रकार सोवे ? किस प्रकार

से भोजन करे? और किस प्रकार से बोले? जिससे उसे पाप-कर्म का बन्धन न हो।

—यत्नपूर्वक चले, यत्नपूर्वक खड़ा होवे; यत्नपूर्वक बैठे, यत्नपूर्वक सोवे; यत्नपूर्वक भोजन करता हुआ और भाषण करता हुआ पाप-कर्म को नहीं बाँधता।

(९०)

सव्वभूयप्पभूअस्स, सम्मं भूयाइ पासओ।
पिहियासवस्स दंतस्स, पावकम्मं न बंधइ ॥९॥

—अ० ४, पत्र १५६-२

—जो सब जीवों को अपने समान समझते हैं, जो जगत को समभाव से देखते हैं, कर्मों के आने के मार्ग को जिसने रोक दिया हो और जो इन्द्रियों का दमन करने वाला हो, उसे पाप-कर्म का बंधन नहीं होता।

(९१)

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्व संजए।
अन्नाणी किं काही? किं वा नाही सेयपावगं ॥१०॥

—अ० ४, पत्र १५७-२

—पहले ज्ञान, उसके बाद दया। इसी प्रकार से सब संयत वर्ग (साधु) स्थित है। अज्ञानी क्या करेगा? और पुण्य-पाप के मार्ग को वह क्या जानेगा।

(९२)

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणइ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं ॥१२॥

—अ० ४, पत्र १५७-२

—जो जीव को नहीं जानता, अजीव को नहीं जानता, जीवाजीव को नहीं जानता वह संयम को किस प्रकार जानेगा ?

(९३)

तवे तेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे नरे ।
आयारभावतेणे य, कुव्वइ देवकिव्विसं ॥४६॥

—अ० ५, उ० २, पत्र १८९-२

—जो तप का चोर, वचन का चोर, रूप का चोर, आचार का चोर, भाव का चोर होता है, वह अगले जन्म में अत्यन्त नीच योनि किल्विष-देवों में उत्पन्न होता है ।

(९४)

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसिअं ।
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो ॥८॥

—अ० ६, पत्र १९६-२

—(अठारह ठाणों में) प्रथम स्थानक अहिंसा महावीरस्वामी ने उपदेशित किया । अहिंसा सब सुख देने वाली है । अतः सर्व भूतों को इसका संयम रखना चाहिए ।

(९५)

अप्पणट्ठा परट्ठा वा कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसगं न मुसं बूआ, नोवि अन्नं वयावए ॥११॥

—अ० ६, पत्र १९७-१

—क्रोध, मान, माया, लोभ तथा भय के कारण से अपने लिए तथा दूसरों के लिए साधु न तो स्वयं मृषा भाषण करे और न करवाए ।

(९६)

चित्तमंत मचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दंतसोहणमित्तं पि, उग्गहंसि अजाइया ॥१३॥

तं अप्पणा न गिण्हंति, नो वि गिण्हावए परं।
अन्नं वा गिण्हमाणं वि, नाणु जाणंति संजया ॥१४॥
—अ० ६, पत्र १९७-२

—पदार्थ सचित्त हो या अचित्त, अल्पमूल्य का हो या बहुमूल्य, दंतशोधन (तृण) मात्र पदार्थ भी जिस गृहस्थ के अधिकार में हो, उसकी आज्ञा लिए बिना न तो स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरों से करवाते हैं और न दूसरों द्वारा ग्रहण किया जाना अच्छा समझते हैं।

(६७)

जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा अ जा मुसा।
जा य बुद्धेहिं नाइन्ना, न तं भासिज्ज पन्नवं ॥२॥
—अ० ७, उ० २, पत्र २१३-१

—जो भाषा सत्य है परन्तु (सावद्य होने से) बोलने योग्य नहीं है, जो सत्या-मृषा है, जो मृषा है, (जो असत्यमृषा भाषा है) तीर्थंकर द्वारा अनाचरित है, उस भाषा को प्रज्ञावान न बोले।

(६८)

तहेव काणं काणत्ति, पंडगं पंडगत्ति वा।
वाहिअं वावि रोगित्ति, तेणं चोरत्ति नो वए ॥१२॥
—अ० ७, उ० २, पत्र २१५-१

—काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोरी करने वाले को चोर न कहे।

(६९)

भासाइ दोसे य गुणे य जाणिया, तीसे अ दुट्ठे परिवज्जए सया।
छसु संजए सामणिए सया जए, वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं ॥५६॥
—अ० ७, उ० २, पत्र २२३-१

—षट्काय के जीवों की रक्षा करने वाला, तथा स्वीकृत संयम में पुरुषार्थ रत रहने वाला सम्यक् ज्ञानधारी मुनि; पूर्व कथित भाषा के गुण और दोषों को भली-भाँति जानकर स्व-पर वंचक दुष्ट भाषा को तो छोड़ दे और काम पड़ने पर केवल स्व-पर हितकारी एवं सुमधुर भाषा को ही बोले।

(१००)

तेसिं अच्छण जोएण, निच्चं होयव्वयं सिआ।
मणसा कायवक्केण, एवं हवइ संजए ॥३॥

—अ० ८, पत्र २२७-२

—मन, वचन और काया में किसी एक के द्वारा भी किसी प्रकार के जीवों की हिंसा न हो, ऐसा व्यवहार ही संयमी (साधु) जीवन है। नित्य (ऐसा) अहिंसा-व्यापार वर्तना उचित है।

(१०१)

से जाणम जाणं वा, कट्टु आहम्मिअं पयं।
संवरे खिप्पमप्पाणं, बीअं तं न समायरे ॥३१॥

—अ० ८, पत्र २३२-२

—जानते हुए या न जानते हुए यदि कोई अधार्मिक कार्य बन पड़े तो शीघ्र ही उस पाप से अपनी आत्मा का संवरण करे और भविष्य में वह कार्य कभी न करे।

(१०२)

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविणासणो ॥ ३८ ॥

—दशवैकालिक अ० ८, पत्र २३३-१

—क्रोध से प्रीति का नाश होता है, मान से विनय का नाश

होता है, माया से मित्रता का नाश होता है और लोभ सभी सद्गुणों का नाश करने वाला है।

(१०३)

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं च अज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥ ३९ ॥

—अ० ८, पत्र २३३-१

—शान्ति से क्रोध को, नम्रता से, मान को, सरलता से माया को, एवं संतोष से लोभ को जीत कर समूल नष्ट करना चाहिए।

(१०४)

कोहो अ माणो अ अणिग्गहीआ, माया अ लोभो अ पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया सिंचंत्ति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥ ४० ॥

—अ० ८, पत्र २३३-१

—अनिगृहीत क्रोध और मान, तथा प्रवर्द्धमान माया और लोभ, ये चारों ही क्लिष्ट-कषाय पुनर्जन्म-रूप विषवृक्ष की जड़ों का सिंचन करने वाले हैं।

(१०५)

अप्पत्तिअं जेण सिआ, आसु कुप्पिज्ज वा परो ।
सव्वसो तं न भासिज्जा, भासं अहिअगामिणिं ॥ ४८ ॥

—अ० ८, पत्र २३४-२

जिस भाषा के बोलने से अप्रीति हो और दूसरा क्रुद्ध हो, ऐसी उभयलोक विरुद्ध अहितकारिणी भाषा का भाषण सभी प्रकार से त्याज्य है।

(१०६)

जहाहियग्गी जलणं नमंसे, नाणाहुईमंतपयाभिसित्तं ।

एवायरियं उवचिट्ठएज्जा, अणंतनाणोवगओऽवि संतो ॥११॥

—अ० ९-उ० १, पत्र २४५-१

—जिस प्रकार अग्निहोत्री ब्राह्मण, मधु, घृत आदि की आहुति से एवं मंत्रों से अभिषिक्त अग्नि की नमस्कार आदि से पूजा करता है, ठीक उसी प्रकार अनन्तज्ञान सम्पन्न हो जाने पर भी शिष्य को आचार्यश्री की नम्र भाव से उपासना करनी चाहिए।

(१०७)

जे य चण्डे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे ।

वुज्झइ से अविणीअप्पा, कट्ठं सोअगयं जहा ॥ ३ ॥

—अ० ९ उ० २ पत्र २४७-१

—जो क्रोधी, अज्ञानी, अहंकारी, कटुवादी, कपटी और अविनीत पुरुष होते हैं, वे जल-प्रवाह में पड़े काष्ठ के समान संसार-समुद्र में बह जाते हैं।

(१०८)

न जाइमत्ते न य रूवमत्ते, न लाभमत्ते न सुएण मत्ते ।

मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता, धम्मज्झाणरए से य भिक्खु ॥१६॥

—दशवैकालिक अ० १०, पत्र २६८-१

—जो जातिमद नहीं करता, रूप का मद नहीं करता, लाभ का मद नहीं करता, श्रुत का मद नहीं करता, इस प्रकार सब मदों को विवर्जन कर जो धर्मध्यान में सदा रत रहता है, वह सच्चा भिक्षु है।

****

तीर्थंकर महावीर

भाग १ पर

कुछ सम्मतियाँ

आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, कोल्हापुर

It is a valuable treatise full of well-documented information. You deserve all praise for the pains you have taken in collecting so much information and presenting it in a systematic form.

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

तीर्थङ्कर महावीर (भाग १) पुस्तक पुण्यात्मा विद्वान के विद्या-व्रदात तप का फल है। देखकर चित्त प्रसन्न हुआ, विशेषतः यह देखकर कि इस आयु में उनका ज्ञानसत्र प्रचलित है। पुस्तक शोध-सामग्री से युक्त और सर्वथा उपादेय है।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी एम० पी०, नयी दिल्ली

ग्रंथ मेरे लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

डा० शिवनाथ, शान्ति निकेतन

भगवान महावीर सम्बन्धी ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्ट इस ग्रन्थ के समान अन्य ग्रन्थ दृष्टिगोचर नहीं होगा। विद्या को तपस्या के रूप में ग्रहण कर महाराज जी ने जो यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया है उसके कारण वे साहित्य-जगत में अमर रहेंगे।

माईदयाल जैन, दिल्ली

पुस्तक ऐतिहासिक पद्धति पर लिखी गयी है। अतः एक नये ढंग की चीज है। मैंने इसे पढ़ने की अपने कई मित्रों से प्रेरणा की है।

●

दैनिक 'हिन्दुस्तान' (नयी दिल्ली)

...परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इन मान्यताओं को कसौटी पर कसने और उनका विवेचन करने का साहस किसी भी लेखक ने नहीं किया। भगवान महावीर स्वामी के जीवन को ऐतिहासिक कसौटी पर कसकर प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास इस पुस्तक में किया गया है और हमें विश्वास है कि इतिहास की इस परम्परा को अन्य लेखक भी अपनाना चाहेंगे और इस ढंग का ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक जीवन-चरित्र प्रस्तुत करने का आयोजन करेंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ के विद्वान लेखक ने वर्षों के ऐतिहासिक अनुसंधान द्वारा जो निष्कर्ष निकाले हैं, उन्हें एक नियमित क्रम देकर ग्रन्थाकार प्रकाशित करना शुरू किया है और यह उन निष्कर्षों का प्रथम भाग है।

......इस प्रकार के प्रमाण-पुष्ट ऐतिहासिक विवेचन के कारण ऐसी नवीन सामग्री भी इस पुस्तक में देखने को मिलती है जिससे तत्कालीन इतिहास को फिर से जाँचने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

दैनिक 'आज' (वाराणसी)

अबतक जितने जीवन-चरित्र महावीर स्वामी के प्रकाशित हुए हैं, वे या तो कथा के रूप में लिखे गये हैं या साधारण पाठक के लिए। प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य इन दोनों से भिन्न है। यह खोज के क्षेत्र में काम करनेवाले विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी है। शंकास्पद स्थलों पर तत्सम्बन्धी सभी प्रमाण एकत्र कर दिये गये हैं तथा स्थान-निर्णय में बौद्ध और वैदिक ग्रन्थों की भी सहायता ली गयी है। इनके अतिरिक्त इस दशा में काम करनेवाले देशी-विदेशी विद्वानों ने जो भूलें की हैं, उनका भी सप्रमाण स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया गया है।

ग्रन्थकार के सम्बन्ध में

Reverend Suri ji is well-known for his devotion to scholarship and for his quest for truth.

—Dr. Baburam Saksena
Allahabad

⊙

The Reverend Acharya has served as a mighty link, spiritual as well as scholarly between Jain tradition and modern historical methodology...The world of modern Jain Scholarship owes a deep gratitude to him.

—Dr. Raghuvira
New Delhi

⊙

.. Acharya Maharaj has taken and is taking a great role as a Rainbow in the field of Jainology and Indology between India and foreign countries.

—S. Takahara
Japan

⊙

He is a living link between East and west.

—Sten Konow

⊙